[illegible] और रकम मालूम होती रहे तो हम शीघ्र ही संस्कृतटीका सहित गोमट्टसारजी, श्लोकवार्तिकजी व न्यायवि- [illegible] आदि बड़े बड़े ग्रंथोंका भी जीर्णोद्धार करनेमें समर्थ हो सकते हैं। यदि समाजके सर्व सज्जन महाशय ऐसा नहिं करेंगे तो [illegible] प्रदान करना स्वीकार किया है वह तीन चार ग्रंथोंके छपानेमें ही लग जायगी और संस्था सब ग्रंथोंका [illegible] देखती हुई बैठी रहेगी। इसलिये सबसे प्रार्थना है कि संस्था जो जो ग्रंथ छापे श्वेतांबरी भाईयोंकी तरह दानी महाशय तो सौ सौ दो दो सौ प्रतियां दान करनेकेलिये मगावैं और मंदिरजीके भंडारवाले सब ग्रंथोंकी एक एक दो दो प्रति लेकर इन ग्रंथोंकी रक्षा करके पुण्योपार्जन करें। यद्यपि संस्कृत ग्रंथ वा भाषाके ग्रंथ भी कठिन होनेसे आपके स्वाध्यायमें कदाचित् उपयोगी न हो तो भी एक एक प्रति लेकर आलमारियोंमें विराजमान करके भगवानकी प्रतिमाकी तरह इनकी नित्य पूजा करते रहना अर्घ चढाते रहना भी तौ आपका एक नित्य कर्म है। इसके सिवाय कभी न कभी इनके पढनेवाले भी आपके यहां होजांयगे वा कहींसे आजांयगे तो इनका रखना सार्थक हो जायगा। अगर कुछ भी न हो तौ एक एक ग्रंथकी हजार हजार प्रति हजार जगह संरक्षित रहनेसे हस्तलिखित ग्रंथोंकी तरह नष्ट न होकर इनका अस्तित्व तौ संसारमें बना रहैगा। यह स्मरण रखियेगा कि धर्मग्रंथोंका अस्तित्व रहनेसे ही यह सर्व साधारणको कल्याणका मार्ग दिखलानेवाला पवित्र जैनधर्म दुनियामें कायम रहसकता है।

समाजका दास—

**पंनालाल बाकलीवाल।**

अथ द्वितीयोऽध्यायः

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥



दशाध्यायपरिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ॥ १ ॥

तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं गृध्रपिच्छोपलक्षितं ।
वंदे गणींद्रसंयातमुमास्वामिमुनीश्वरं ॥ २ ॥

जं सक्कइतं कीरइ जं च ण सक्केइतं च सद्दहणं ।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरट्ठाणं ॥ ३ ॥

तवयरणं वयधरणं संजमसरणं च जीवदयाकरणं ।
अंते समाहिमरणं चउगइदुक्खं णिवारेई ॥ ४ ॥

पढमचउक्के पढमं पंचमे जाण पुग्गलं तच्च ।
छह सत्तमेसु आसव अट्ठमे बंध णादव्वं ॥ ५ ॥

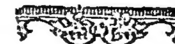
नवमे संवरणिज्जर दहमे मोक्खं विजाणेहि ।
यह सत्ततच्च भणिदं जिनपणिदं दहसुसुत्ते ॥ ६ ॥

श्लोक

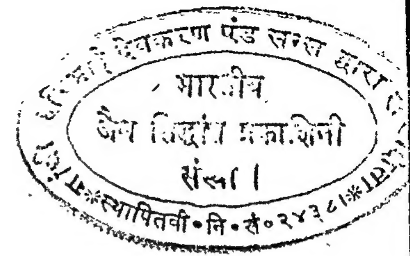
अक्षरमात्रपदस्वरहीनं, संधिविसर्गविवर्जितरेफं ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं, को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥ ७ ॥

शुभमस्तु श्रीरस्तु कल्याणमस्तु ।

समाप्त ।








गांधी हरिभाईदेवकरणजैनग्रंथमाला ।

१

# अर्थप्रकाशिका ।

## प्रथम अध्याय ।

* दोहा *

वंदौं श्रीवृषभादि जिन, धर्मतीर्थकरतार । नमैं जास पद इंद्रशत, शिवमारग रुचिधार ॥ १ ॥
महावीर प्रभु चरमजिन, घाति घातिया च्यार। लहि केवलपद विभु कह्यो, शुद्धधर्म विस्तार ॥ २ ॥

अथ देवाधिदेव परमपूज्य धर्मतीर्थके प्रवर्त्तन करनेवाले, अनंतचतुष्टयादि अनंतगुणरूप अंतरंगविभूतिकरि भूषित, अर इंद्रादिक देव परमभक्तिकरि निर्मापण कीया जो अनुपम विभूति सहित समवसरणादि वहिरंग लक्ष्मी तिसकरि मंडित, वहुरि इंद्रादिक असंख्यात देवनिके समूहकरि वंदनीक, वहुरि अनंतगुणनिके अतिशयनिकरि सहित, अर अष्टादशदोपरहित, जीवनिका परम उपकार करनेवाला, अर लोकअलोकका प्रकाश करनेवाला, अर त्रिकालवर्ती अनंतद्रव्य अनंतगुण अनंतपर्यायनिका युगपत् क्रमरहित एककालमैं उद्योत करनेवाला, अर अनंतमहिमायुक्त, अनंतशक्तिसहित, अर संसारसमुद्रमैं डूवते अनेकप्राणी तिनिकूं हस्तावलंवन देनेवाला, अर परमात्मा परमब्रह्म परमेश्वर परमेष्ठी स्वयंभू शिव

अरहंतादि नामनिकरि विख्यात, अर अशरण प्राणीनिकूं अद्वितीय शरण, अर परमौदारिक देहमैं तिष्ठता, अर सप्तऋद्धिसमृद्ध गौतमादि गणधरमुनीनिकरि सेवनीक है चरणारविंद जाका, अर कंठ ओष्ठ तालवा जिव्हादिक अंगोपांगनिका कंपन स्पर्शनरहित सर्वांगतैं उपज्या, अक्षररहित, समस्त प्राणीनिके पुण्यप्रभावकरि प्रेरचा, आर्य अनार्य समस्तदेशनिके प्राणीनिके ग्रहणमैं आवता, समस्त पापकाघातक ऐसी दिव्यध्वनिकरि भव्यजीवनिका मोह अंधकार दूरिकरता, अर चोसठि चमरनिकरि विराजमान, अष्टप्रातिहार्य विभूपित, सिंहासनतैं च्यार अंगुल अंतरीक्ष विराजमान, भगवान सकलपूज्य परम भट्टारक श्रीवर्द्धमान देवाधिदेव मोक्षमार्गके प्रकाशकरनेके आर्थि समस्तपदार्थनिका स्वरूप सातिशय दिव्यध्वनिकरि प्रगट किया। तिस अवसरमैं निकटवर्ती निर्ग्रंथ ऋपीश्वर समस्तमुनिगणकरि वंदनीक, सप्त ऋद्धिकरि समृद्ध, च्यार ज्ञानके धारक श्रीगौतम नामा गणधरदेव भगवानभाषित अर्थकूं धारणकरि द्वादशांगश्रुतरूप रचना रची। बहुरि श्रीवर्द्धमान स्वामीकूं मुक्तिगये पीछैं गौतमस्वामी १, सुधर्माचार्य २, जंबूस्वामी ३, ए तीन केवली बासठिवर्ष पर्यंत पदार्थनिकी प्ररूपणा करी। बहुरि तिनके पीछे अनुक्रमकरि विष्णु १, नंदिमित्र २, अपराजित ३, गोवर्धन ४, भद्रबाहु ५, ए पांच श्रुतकेवली द्वादशांगके पारगामी भए। तिनका एकसो वर्पपर्यंतका अवसर भया तिस अवसरमैं भगवान केवलीतुल्य समस्तपदार्थनिका प्ररूपण भया। बहुरि विशाखाचार्य १, प्रौष्ठिलाचार्य २, क्षत्रिय ३, जयसेन ४, नागसेन ५, सिद्धार्थ ६, धृतिषेण ७, विजय ८, बुद्धिमान् ९, गंगदेव १०, धर्मसेन ११, ए ग्यारह अंग दशपूर्वके धारक एकादश परमनिर्ग्रंथमुनि अनुक्रमतैं एकसौ तीयासी वर्षमैं भए। ते यथावत् पदार्थनिकी सम्यक् प्ररूपणा करी। बहुरि नक्षत्र १, जयपाल २, पांडुनामा ३, ध्रुवसेन ४, कंसाचार्य ५, ए पंचमहामुनी एकादशांगविद्याके पारगामी अनुक्रमतैं दोयसैबीसवर्ष पर्यंत

यथावत् प्ररूपणा करी। बहुरि सुभद्र १, यशोभद्र २, भद्रबाहु ३, महायश ४, लोहाचार्य ५,ए पंचमहामुनि प्रथम अंगका पारगामी एकसौ आठ वर्षमें अनुक्रमतैं भए। ऐसे कालके निमित्ततैं बुद्धिवीर्यादिकनिकी मंदता होतैं श्रीकुंदकुंदादि अनेक मुनि परमनिर्ग्रंथ वीतरागी अंगके वस्तूनिके ज्ञानी होते भए। तथा उमास्वामी होते भए। ऐसें पापतैं भयभीत, ज्ञानविज्ञानसंपन्न, परमसयमंगुणकरि मंडित, गुरूनिकी परिपाटीतैं श्रुतका अविछिन्न अर्थके धारक, इस कलिकालमैं श्रुतकेवली तुल्य श्रीउमास्वामीनामा परम वीतरागी मुनि भव्यजीवनके परोपकार करनेकौं भगवानका परमागमकी आज्ञातैं तत्त्वार्थसूत्र दशाध्यायरूप रचना करी। बहुरि कालके निमित्ततैं जीवनिकी बुद्धिकी मंदता जानि मोक्षमार्गके प्रवर्त्तनके अर्थि श्रीपूज्यपादस्वामी तत्त्वार्थसूत्रकी सर्वार्थसिद्धि नामा टीका रची। अर श्रीसमंतभद्रस्वामी चौरासी हजार गंधहस्ती नामा वड़ी टीका रची तथा श्रीअकलंकदेव तत्त्वार्थवार्तिकालंकार ताकूं राजवार्तिक कहिए ऐसी सोलह हजार श्लोकनिमैं टीका (रचना) रची। बहुरि श्रीविद्यानंदिस्वामी श्लोकवार्तिकनाम बीसहजार श्लोकनिमैं टीका रची। सो अब इस कलिकालमैं ऐसे संस्कृतग्रंथ पढ़ने समझनेवाले अति अल्प रहि गए। तिन मंदज्ञानी जीवनिकै मोक्षमार्गरूप शास्त्रका किंचित् अर्थ समझनेकूं यह देशभाषामय वचनिका लिखिए है—

* दोहा *

पंच परमपदकौं नमौं, चैत्य चैत्यगृह सार। जैनधर्मवच वंदिकै, करौं मंगलाचार ॥ १ ॥
सूत्रवृत्ति वार्तिक महा—भाष्यग्रंथकर्त्तार। ध्याऊं श्रीगुरुके चरन, करहु सु मम उपगार ॥ २ ॥

* चौपाई *

जयति सुगुरु शिवमगविस्तारे। कर्मकठिननग विविध विदारे ॥
विश्वतत्त्वके जाननहारे। वंदौं तिस गुण होहु हमारे ॥ ३ ॥

मोक्षशास्त्र गंभीर अपारा । ताको लहि फलितार्थ उदारा ॥
अतिसंक्षेपरूप गहि नीका । अर्थप्रकाश लिखूं लघु टीका ॥ ४ ॥

सवैया तेईसा ।

प्रथमअवस्थामें भविजन जे तत्त्वारथके हैं रुचिवान ।
तिनके सुगममार्ग मिलवेंकों होहैं अर्थप्रकाश महान ॥
मिले सुराह उछाह वढै तव पढैं वृहद् व्याख्या हितठान ।
दर्शनज्ञान करैं निज निर्मल धरैं चरन पावैं शिवथान ॥ ५ ॥

सूत्रकर्त्ताका मंगलाचरण ।

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृतां ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वंदे तद्गुणलब्धये ॥ १ ॥

अर्थ—मोक्षमार्गके प्रवर्त्तावनहारा, अर कर्मरूप पर्वतनिकूं भेदनहारा, अर समस्त तत्त्वनिका जाननहारा जो है ताहि तिसके गुणनिकी प्राप्तिकै अर्थि वंदना करूं हूं। इहां तीन विशेषणनि सहित आप्तकी स्तुतिरूप मंगलाचरण कीया। तहां मोक्षमार्गका नेतृत्व विशेषणतैं तो आप्तका जगतके प्राणीनिप्रति परमहितोपदेशकपणाकरि अद्वितीय उपकार प्रतिपादनरूप वर्णन कीया। अर कर्मभूभृद्भेत्तृत्वविशेषणकरि आप्तकै सर्वोत्कृष्ट सामर्थ्यपणा वा निर्दोषपणा तथा वीतरागपणा प्रगट कीया। जातैं इंद्रादिक समस्त देव जाकूं जीति नहीं सक्या, अर जगतके समस्तजीवनिकूं जीति स्वरूपतैं भ्रष्ट करि जडरूप करि नष्ट कीया ऐसा मोहनीय कर्म तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय इनि च्यार कर्मनिका नाश करि अपना जयन-

शील जिन नाम प्रगट कीया। वहुरि विश्वतत्त्वज्ञातृत्व विशेषणकरि समस्त गुणपर्यायनिसहित पदार्थनिका क्रमरहित युगपत् जाननेतैं सर्वज्ञ वीतरागपणा प्रगट कीया। ऐसें सर्वज्ञ वीतराग परमहितोपदेशक तीन विशेषणविशिष्टही आप्त है। सोही शास्त्रकी उत्पत्ति तथा शास्त्रका यथार्थज्ञान तथा आपसमान सर्वज्ञवीतराग करनेका निर्वाध कारण है, तातैं आप्तकूं नमस्कार करना युक्त ही है।

अव इहां कछु अन्य विशेष लिखिए हैं। इस श्लोकमें आप्तकूं नमस्कार करनेतैं तथा मोक्ष अर मोक्षका मार्गके समर्थनतैं प्रथम तो नास्तिकवादी वा शून्यवादीनिका परिहार है, जातैं सर्वज्ञ अर जीवादिक समस्त पदार्थ नास्तिकवादी तथा शून्यवादी नाहीं मानै हैं वहुरि मोक्षतत्त्व कहनेतैं जे चार्वाकमतवाले परलोक तथा जीव तथा मोक्षका अभाव मानै हैं। तिनका परिहार भया। कर्मभूभृतां भेत्तारं इस विशेषणतैं जे शिवमतवाले ईश्वरको सदा मुक्तही कहै हैं, कर्मका नाशकरि मोक्ष होना नाहीं मानें है तिनका परिहार भया। वहुरि मीमांसकादिक ब्रह्मवादी सर्वथा अद्वैतवादका एकांतकरि सर्वजगतकूं एक ब्रह्मरूपी ही विस्तरचा मानैं हैं, और समस्त जीव अजीवादि पदार्थनिका अभावही मानैं हैं, तिनका भी कर्मभूभृतां भेत्तारं विशेषणकरि परिहार कीया। जातैं ज्ञानावरणादि समस्तकर्म हैं ते पुद्गल अजीवरूपही हैं। वहुरि विश्वतत्त्वज्ञातृत्वविशेषणकरि सर्वज्ञका अभाव माननेवाला चार्वाकमत वा मीमांसक मत है तिसका परिहार कीया। वहुरि तद्गुणलब्धये इस वचनतैं नैयायिक, वैशेशिषक मतवाले मुक्तजीवतैं हूं परमात्मा की जुदी जाति मानैं हैं, जीवके परमात्मपदकी प्राप्ति नाहीं मानैं हैं तिनका परिहार कीया। वा मीमांसकमतहीका भेदरूप भट्टमतवाले आत्माकै मोक्ष होना नाहीं मानैं हैं, तिनका परिहार कीया। या प्रकार अन्यमतनितैं भिन्नविशेषण सहित अपने इष्ट आप्तकौं नमस्कार करना युक्तही है। इस शास्त्रविषै मोक्ष-

मार्गका उपदेश है। जो घातियाकर्मका नाशकरि सर्वज्ञ वीतराग परमहितोपदेशक होय सो ही आप्त है। ताहीका प्रवर्त्ताया मोक्षमार्ग प्रमाणसिद्ध है जातें सर्वज्ञ नाहीं होय तो सूक्ष्म, अंतरित, दूरवर्त्ती पदार्थनिकों कौन जानें। तहां सूक्ष्मपदार्थ तो परमाणूकूं आदि लेय हैं। अर अंतरित जे अतीतकालमें होय गये, अर अनागत आगामी कालमें होंहिगें अर दूरवर्त्ती जे मेरुगिरि नरक स्वर्गविमानादि पदार्थ हैं, सो इनि पदार्थनिकूं सर्वज्ञविना यथार्थ कोऊही जाणिनाहीं सकै तदि कैसें यथार्थ उपदेश करै। अर वीतराग नाहीं होय तो रागद्वेषादिककै वशि हुवा यथावत् नाहीं कहि सकै। अर परम हितोपदेशक नाहीं होय तो स्वपरतत्त्वकों जणाय आत्मकल्याणमें कौन प्रवर्त्तावै। साक्षात् उपकार तौ उपदेशतेंही होय है। सिद्धभगवान सर्वज्ञ वीतराग तौ हैं परंतु तिनतें उपदेश संभवै नाहीं यातें परम हितोपदशक नाहीं तातें आप्तपणा अर्हंताजिनहीकै बनै है, सोही सत्यार्थवादी है। जातें सर्वज्ञ आप्तविना छद्मस्थ अन्यवादी एकांती अपनी इच्छातें अनेक प्रकार मिथ्या कल्पना करि वस्तूका अन्यथा स्वरूप कहै हैं। तिनका मत प्रत्यक्षादिप्रमाणकरि वाधित है। केई तौ जीवतत्त्वका अभाव ही कहै हैं। केई जीवकौं ज्ञानादिकगुणतें भिन्न निर्गुण मानै हैं। केई जीवकूं कर्मकी उपाधिरहित सर्वथा शुद्धही मानै हैं। इत्यादि एकांत अभिप्रायतें वस्तु अनंतधर्मनि सहित ताकूं नाहीं जानै हैं। अर जो जीवका सर्वथा अभावही होय तौ मैं सुखी हूं,मैं दुःखी हूं, मैं ज्ञाता हूं मैं या करि या करूंगा, ऐसा विकल्प अचेतन देहकै नाहीं होय। जे बुद्धिपूर्वक क्रिया देखिए है ते समस्तज्ञानस्वरूप आत्माकी है। इंद्रियनिका विषय आत्माविना कौन ग्रहण करै? भिन्न भिन्न कौन जानैं? तातैं आत्माका सद्भाव प्रकट है, सो वालगोपालादिक समस्तके अनुभवमैं आवै है। अर कोई जीवका अस्तित्व मानैं हैं परंतु ज्ञान अर आत्माका अस्तित्व सर्वथा भिन्न मानैं हैं सो आत्माविना ज्ञानका अस्तित्व कैसें सधैगा? अर ज्ञान

विना आत्माका स्वभाव कैसें सधैगा ? तातैं जीवकै अर ज्ञानकै गुणगुणीभावकरि तो भिन्नपणा है जैसे अग्निकै अर उष्णताकै है। अर वस्तुत्वकरि अभेद है, प्रदेशभेद है नाहीं। अर जो गुण अर गुणी सर्वथा प्रदेशनिकरिभी भिन्न होय तो दोऊनिका अभाव होयजाय। बहुरि कोई जीवकूं कर्मउपाधिरहितही कहैं तो प्रत्यक्ष केई तो दरिद्री देखिए हैं, केई लक्ष्मीवान्, केई रोगी, केई निरोगी, केई राजा, केई रंक, केई दुःखी, केई सुखी, केई कुरूप, केई सुरूप, केई पंडित, केई मूर्ख, केई नीचकुली, केई उच्चकुली, ऐसें नाना रचना प्रत्यक्ष देखिये हैं, ते कैसें वनें ? पूर्वोपार्जितकर्मकरिही जीवनिकै जानीजाय हैं। बहुरि जीवकूं सर्वथा शुद्धही कहैं तो दीक्षा, शिक्षा, व्रत, तप, ध्यानादिक समस्त निष्फल होय जाय। तातैं आप्त जो सर्वज्ञ वीतराग तिनिका कह्या आत्माका स्वरूप ही सत्यार्थ है॥ बहुरि एकांती मोक्षका स्वरूपभी अन्यथा कल्पै तहां केई तो ज्ञान, सुख, दुःखका अभावकूं मोक्ष कल्पै है। केई प्रदीपनिर्वाण कहैं हैं। जैसे दीपक बुझि जाय तदि दिशामें नहीं जाय न विदिशामें जाय अभाव होय, तैसें आत्माका अभावकूं मोक्ष मानैं हैं, सो आप्तका उपदेशविना यथार्थ नाहीं जानै हैं। बहुरि मोक्षके उपायप्रतिभी अन्यथा कल्पना करै हैं। केई चारित्र विना ज्ञानमात्रतैंही मोक्ष मानै हैं। केई श्रद्धानमात्रतैंही मोक्ष मानैं हैं। केई चारित्रमात्रतैंही मोक्ष मानैं केई ज्ञानचारित्रतैं, केई दर्शनचारित्रतैं, केई दर्शनज्ञानहीतैं केई दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीन्याका अभावतैंही मोक्ष मानैं हैं, ते एकांतवादी वस्तुका यथावत् स्वरूपकूं जानैं नाहीं। सो इनका यथावत् स्वरूप सर्वज्ञका प्रकाश्या आगमतैं जानना उचित है। सो इस प्रथम श्लोकमैं आप्तका लक्षण कह्या तिसकी निर्बाधासिद्धिके अर्थि श्रीविद्यानंदिस्वामीनें ८००० श्लोकनिमें आप्तमीमांसा रची, अर ३००० श्लोकनिमें आप्तपरीक्षा रची सो तिनमैं आप्तका स्वरूपको निर्णय करि परीक्षाप्रधानी ज्ञानीजननिका

हृदयमें आप्तका निर्णय कराय महान् उद्योत कीया है ॥ अब मिथ्यावादीनिकरि कह्या जो ज्ञानमात्र तेंही मोक्ष होना तथा क्रियाकांडतेंही मोक्ष होना इत्यादि एकांतपक्षका निराकरणके अर्थि भगवान् अरहंत करि कह्या जो मोक्षका उपाय ताहि प्रकट करनेकूं सूत्र कहैं हैं—



सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥

अर्थ--सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र ए तीन्यूं मिले हुए मोक्ष मार्ग हैं। मोक्षकी प्राप्तिका उपाय हैं। इस सूत्र विषें सम्यक् शब्द प्रशंसावाची है सो प्रत्येककै लगावना। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र ए तीन मिले हुए मोक्ष मार्ग कह्या सो इहां मार्गशब्दकै एकवचन कहनेतें तीननिका तीन मार्ग नाहीं है, तीननिका मिल्या हुवा मोक्षमार्ग एक है ऐसा अर्थ जनावनेकूं एकवचन कह्या है। जो पदार्थनिका याथात्म्यस्वरूपका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। अर जिस जिस प्रकारकरि जीवादिक पदार्थ अवस्थित हैं तिस तिस प्रकारकरि नयप्रमाणपूर्वक जाणैं अर संशय विपर्यय अनध्यवसाय इत्यादि दोष रहित जाणैं सो सम्यग्ज्ञान है। पंचप्रकार संसारका कारण जे मिथ्यात्व कषायादिक तिनका अभाव करनेविषैं उद्यमी जो सम्यग्ज्ञानी ताकै कर्मकै ग्रहण होनेकूं कारण जे क्रिया तिनका त्याग सो सम्यक्चारित्र है जातैं संसारीनिका समस्त आचरण कर्मबंधकूं कारण है। अर जिस आचरणतें नवीन कर्मका आस्रव रुकिजाय सोही सम्यक्चारित्र है। अज्ञानपूर्वक आचरणका निषेधकै अर्थि चारित्रकै सम्यक् विशेषण कह्या है। कोऊ कहै ज्ञानका ग्रहण पहली कीया चाहिए, सम्यग्दर्शन जो पदार्थनिका श्रद्धान सो ज्ञानपूर्वकही होय है। बहुरि ज्ञानके अक्षरथोरे दर्शनके अक्षर बहुत तातैं हू अल्पअक्षरवालेकूं पूर्वै कह्या चाहिये। उत्तर--ए दोष नाहीं है। जैसैं मेघपटलकूं दूरि होतैंही सूर्यकाप्रताप अर प्रकाश दोऊ युगपत प्रकट होय हैं, तैसैं दर्शनमोहका

उपशमतें वा क्षयोपशमतें वा क्षयतें आत्माका सम्यग्दर्शनस्वभाव प्रकट होय तिसही कालविषैं आत्माकै कुमति, कुश्रुति–ज्ञानका अभावरूप मतिज्ञान श्रुतज्ञान प्रकट होय है। तातें सम्यग्दर्शनकै अर सम्यग्ज्ञानकै कालभेद नाहीं है, युगपत् होय हैं। बहुरि ज्ञानकूं अल्पाक्षरकरि प्रधान कह्या तोहू अल्पाक्षरतें पूज्यपणा प्रधान है अर दर्शन पूज्य है, जातें सम्यग्दर्शन होतें संतें कुज्ञानकै सम्यग्ज्ञानपणा प्रकट होय है, तातें सम्यग्दर्शनकै पूज्यपणातें सम्यग्दर्शनकूं प्रथम कह्या है, अर ज्ञानकूं मध्यमें कह्या सो सम्यग्ज्ञानपूर्वकही सम्यक्चारित्र होय है। अर अज्ञानीका चारित्र बंधका कारण है तातें चारित्र पीछें कह्या है। अब आदिमें कह्या जो सम्यग्दर्शन ताका लक्षण निर्देशके अर्थि सूत्र कहैं हैं—

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं ॥ २ ॥

अर्थ–तत्त्वार्थनिका जो श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है॥ तत्त्वशब्द सर्वादिकनिमें भावसामान्यवाची है, तातें जो पदार्थ जैसें अवस्थित है तैसें ताका होना सो तत्त्व है। अर जाकूं "अर्यते" कहिए निश्चय करिए सो अर्थ है। तत्त्वरूप जो निश्चय सो तत्त्वार्थ है। भावार्थ-जो अर्थ जिस स्वभावकरि अवस्थित है ताका तिसस्वभावकरिकें ग्रहण होना-निश्चय होना सो तत्त्वार्थ है। तत्त्वार्थनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है, सो सम्यक्त्व दोय प्रकार है। एक सरागसम्यक्त्व, एक वीतरागसम्यक्त्व। तहां प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्य है लक्षण जाका ऐसा सरागसम्यक्त्व है। तहां रागादिकनकी उत्कटताका अभाव सो प्रशम है। इहां उत्कटताका 'अनंतानुबंधीसंबंधी' अर्थ है। संसार देह भोगनतें भयभीतता सो संवेग है। सर्व प्राणीनिविषैं मैत्रीभाव सो अनुकंपा है। जीवादिक पदार्थ यथायोग्य अपने स्वभावकरि जैसें आग-

मविषैं अस्तिरूप हैं तैसैं अंगीकार करना सो आस्तिक्य है। अर केवल निजात्मस्वरूपकी विशुद्धता सो वीतरागसम्यक्त्व है ॥ आगैं कहै हैं जो जीवादिक पदार्थनिका सम्यक् श्रद्धानतैं सम्यग्दर्शन कैसैं उपजै है इस हेतुतैं सूत्र कहैं हैं—

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ ३ ॥

अर्थ—जो सम्यग्दर्शन स्वभावतैं ही उपजै अर अन्यके उपदेशकी अपेक्षा नाहीं करै सो तो निसर्गज सम्यक्त्व है। अर जो परके उपदेशतैं भया जो अर्थज्ञान, तातैं उपजै सो अधिगमज है। ऐसैं सम्यक्त्व दोय प्रकार है ॥ इहां कोऊ कहै निसर्गज सम्यग्दर्शनविषैं पदार्थनिका ज्ञान है कि नाहीं? जो ज्ञान है तदि तो अधिगमज ही भया कछु भेद नाहीं रह्या। अर जो पदार्थनिका ज्ञान नाहीं है तौ पदार्थनिकूं जानेविना कैसैं श्रद्धान होय? तिसकूं उत्तर कहैं हैं—सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिविषै अंतरंग हेतु जो दर्शनमोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम सो तो दोऊ ही सम्यक्त्वमैं समान है। ताकूं होतैं जो बाह्य परके उपदेशका निमित्त विना होय ताकूं निसर्गज कहिए। बहुरि परोपदेशपूर्वक होय सो अधिगमज है। जैसैं पूर्वकृतकर्मका उदयके निमित्ततैं सिंहमैं क्रूरता, शार्दूलमैं शूरवीरता, स्यालमैं कायरता, सर्पमैं दुष्टता स्वभावहीतैं है, किसीका उपदेशतैं नाहीं तातैं नैसर्गिकी कहिए है तैसैं दर्शनमोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशमतैं ही स्वपरतत्त्वका श्रद्धान होय सो निसर्गज सम्यग्दर्शन है। अथवा जैसैं देवकुरु, उत्तरकुरु, भोगभूमीविषैं बाह्य पुरुषका उद्यमादि प्रयत्नविनाही सुवर्ण उत्पन्न होय है, तैसैं बाह्य उपदेशादिकविनाहीं जीवादिकनिका श्रद्धान होय सो निसर्ग्गज है। अर जैसैं सुवर्ण पाषाण है सो सुवर्ण निकाशनेका विधि उपायका जाननेवाला पुरुषका प्रयोगतैं सुवर्णरूप होय सो तैसैं

अधिगमज है। इहां सूत्रमें तत् शब्द कह्या है सो पूर्व सूत्रविषें कह्या जो सम्यग्दर्शन ताका ग्रहण करनेके अर्थि है॥ अब तत्त्व कहा है? इस हेतुतें सूत्र कहै हैं—

जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वं ॥ ४ ॥

अर्थ—जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष ए सप्त तत्त्व हैं॥ कोउ कहै तत्त्व एकही कहना युक्त है एकहीके अनेक भेद हैं सप्त कहना युक्त नाहीं ताकूं उत्तर कहैं हैं—यद्यपि तत्त्वसामान्य अनंतपर्याय रूप एकही है। तथापि जीव अजीव ऐसे दोय हैं इनतें बाह्य कोऊ नाहीं तातें दोयही हैं। अथवा शब्द अर्थ ज्ञान ऐसें तीन भेदकै बाह्य कोऊ नाहीं ऐसें संख्यात असंख्यात अनंत है॥ परंतु शिष्यका अभिप्रायके वशतें तत्त्वकी निरूपणा है तातें अतिसंक्षेपही कहैं तो बड़े बुद्धिमानहीके समझिमें आवै अर अतिविस्ताररूप कहैं तो बहुत कालमैंभी ग्रहण नहीं होय तातें मध्यमक्रमकरि सातही कहे। जातें इस मोक्षशास्त्रविषें मोक्षका प्रकरण है तातें मोक्ष तो अवश्य कह्या चाहिए। अर सो मोक्ष कोनकै होय? जीवकै होय, तातें जीव ग्रहण कीया। अर जीवकै मोक्ष होय सो पूर्वै जो जीव कहूं बंधते बंधनै प्राप्त भया होय ताहीकै छूटना मुक्त होना संभवै सो जीव अर अजीव दोऊनिके परस्पर मिलनेतें होय है तातें अजीवग्रहण किया। संसारका प्रधानकारण आस्रव, बंध हैं तातें आश्रव, बंध ग्रहण कीए। अर मोक्षका प्रधानकारण संवर निर्जरा हैं तातें संवर निर्जराकूं ग्रहण कीए। ऐसें सामान्यमें गर्भित थे तोऊ प्रधान जाणि तत्त्व सप्त कहे। चेतनालक्षण जीव है। अर चेतनागुण जिनमें नाहीं ऐसे पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ए पांच अजीव तत्त्व हैं। शुभ अशुभ कर्मनिके आगमनका द्वाररूप आस्रव है। आत्मा अर कर्म इन दोऊनिके प्रदेशानिका परस्पर प्रवेश करना सो बंध है। आस्रवद्वारनि-

का रुकना निरोध होना सो संवर है। एकदेश कर्मका क्षय होना सो निर्जरा है। समस्त कर्मनिका वियोग होना सो मोक्ष है। इनिका विशेषवरनन आगैं करसी। अव ए कहे जे सम्यग्दर्शनादिक तथा जीवाजीवादिक तिनका संव्यवहारविशेषमैं जो व्यभिचार तिसके दूरि करनेकूं सूत्र कहे हैं।

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥ ५ ॥

अर्थ—जीवादि पदार्थनिका तथा सम्यग्दर्शनादिकनिका नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव इन चारनिकरि न्यास कहिये निक्षेप है। इहां नामशब्दकी दोय तरह निरुक्ति करिये हैं। "नीयते अर्थो अनेन इति नाम" नीयते कहिए सन्मुख करिये है अर्थ जाकरि सो नाम है। अथवा अर्थकूं प्राप्त होइए जाकरि सो नाम है। अथवा नयति कहिये अर्थकूं सन्मुख करै सो नाम है। जिसकूं सुणतैंही उसका अर्थ सन्मुख हो जाय सो नाम है। गुण जाति द्रव्य क्रिया रहित वस्तुमैं अपना पुरुषार्थकरि अन्यकी अपेक्षारहित वस्तु का अपनी इच्छातैंही संज्ञा करना सो नाम निक्षेप है। कोऊ कारणकी अपेक्षातैं होई सो नामनिक्षेप नाहीं कहावै है। जिस वस्तुमैं नाम, रूप, गुण, जाति, द्रव्य, क्रिया तो नहीं होय अर लोकमैं प्रवृत्तिके अर्थि अपनी इच्छातैं संज्ञा करना सो नामनिक्षेप है। जैसैं किसी पुरुषका नाम इंद्रराज है। तहां इंद्रकी गुण, जाति, क्रिया एकहू नाहीं पावै अर मातापिता इंद्रराज नाम धारि दीया तहां नाम निक्षेप कहिये। अथवा किसीकूं चतुर्भुज वा धनपाल तथा देवदत्त, जिनदत्त, हाथीसिंह इत्यादिक नाम गुण, जाति, द्रव्य, क्रिया विनाही लोक कहै हैं सो नामनिक्षेप है। अर धवलगुणके धारककूं धवल कहिए तहां गुणद्वारै नाम है। मनुष्य, देव, गौ, अश्व, हस्ती इत्यादि जातिद्वारै नाम हैं। कुंडल पहरे होय ताकूं कुंडली कहिए दंडालिये होय ताकूं दंडी कहिये, धनाढ्यकूं धनी कहिये ए द्रव्यद्वारैं नाम हैं। अर पूजनकरतेकूं

पूजक कहिये, नृत्य करतेकूं नर्त्तक कहिए ऐसें क्रियाद्वारें नाम हैं इनकूं नामनिक्षेप नाहीं कहिए। बहुरि काष्ठ पाषाण माटी चित्रकर्मादिविषैं तथा सतरंजके रोणानिमैं हस्ती घोटकादिक तदाकार, वा अतदाकारमैं सो यो है ऐसे स्थापन करना सो स्थापना है। जैसैं पाषाणादिकनिका तदाकार प्रतिबिंब वा अक्षतपुष्पादिक अतदाकारनिविषैं यह जिनेंद्र है चंद्रप्रभ है तथा इंद्र है ऐसा स्थापन करना, तथा यो जीव है वा सम्यग्दर्शन है वा ज्ञान है ऐसैं स्थापन करना सो स्थापना निक्षेप है। इहां कोऊ कहै की नाम अर स्थापना तो एकही भया जैसैं नामकै अनुकूल गुणरहितका नाम करना सो नामनिक्षेप है। तैसैंही काष्ठपाषाणादिकनिका तदाकार अतदाकारमैं यो इंद्र है ऐसा नाम करना सोही स्थापना है। नाम नाहीं किया तिस विषै स्थापनाभी नाहीं होय है तातैं नाम अर स्थापना एकही है भिन्न नाहीं। तिसकूं कहै हैं—नाममैं अर स्थापनामैं अत्यंत भेद है। किसीका नाम इंद्रकह्या वा जिन कह्या तिसमैं इंद्रपणाका वा जिनपणाका आदर नाहीं अर अनुग्रहकी वांछा नाहीं। अर धातुपाषाणादिकनिमैं स्थापना किया तिसकूं साक्षात् इंद्र ही मानै हैं तथा जिन ही मानै हैं। जिनेंद्रका प्रतिबिंबकी स्थापनातैं अपना उपकार होना वांछै हैं। स्थापनानिक्षेपमैं तो साक्षात् वेही हैं ऐसा मानैं, कछु भेद नाहीं मानैं, स्तवन करैं पूजाकरैं ध्यान करैं अर नामतैं अन्य प्रयोजन नाहीं, केवल व्यवहारकै अर्थि नाम धरया है। ऋषभ ऐसा नाम किसीका होय तहां कछु पूजादिक नाहीं। अर स्थापना होय ताकूं साक्षात् पापका क्षय करनेवाला ऋषभजिनेंद्र मानि पूजा, स्तवन, ध्यान करैं ऐसा भेद है। बहुरि जिसकी स्थापना करनी होय तिसका आकारादिरूपस्थापना सो तदाकार स्थापना है। याकूं सद्भावस्थापना कहिये हैं। अर आकारादिरहित स्थापना सो अतदाकार स्थापना है। याकूं असद्भाव स्था- १३

पना कहिये हैं । कोऊ कहै इस पंचमकालमैं अरहंतपरमेष्ठीका अतदाकार स्थापन करना कि नाहीं करना । ताका उत्तर—इस कालमैं अन्यमतका देवानिकी अनेक प्रकार अनेक विपरीत रूप स्थापना होगगई जिनके शस्त्रादिक ग्रहण अर वक्रता अर तीव्ररागनै लीयां ऐसी विपरीत, परिणामनिकूं विकार करनेवाली स्थापना है अर अब कोई अतदाकार स्थापनाकूं आगममैं कही जाणि चंडिकादिक देवी, तथा लिंगादिरूप शिव भैरवादिक, तथा पत्थर मांटी इत्यादिकानिमैं स्थापना कल्पना करि कहै हमारैं एही अरहंत हैं ऐसे जानि अरहंत मानि पूजन ध्यान करने लागि जाय तौ धर्मव्यभिचार होइजाय मार्ग भ्रष्ट होइ जाय तातैं ज्ञानी जन इस कालमैं तदाकारस्थापनाहीका अधिकार किया है ॥ बहुरि कोऊ कहै जो अरहंत प्रतिमा किस अर्थ पूजिए हैं तथा अरहंत भगवान् तो मोक्ष गए तहां सिद्धस्थानमैं हैं धातुपाषाणका प्रतिविंबमैं आवै नाहीं वा पूजा चाहैं नाहीं, वा किसीका उपकार अपकार करैं नाहीं, पूजन स्तवन अभिषेक करैं तामैं राग करैं नाहीं फिर किस वास्ते पूजिये हैं ? ताका उत्तर—आरंभी गृहस्थ है ताका मन शुद्धात्मस्वरूपकी अवलंबनमैं तो प्रवर्त्तै नाहीं अर निरालंब चित्त ठहरै नाहीं तब आपकै परमात्मभावका अवलंबनके अर्थि वीतरागतासूं परिणाम जोड़नेके अर्थि प्रतिमाकूं साक्षात् अरहंतस्वरूपही संकल्प करि ध्यान, स्तवन, पूजन करै है । तिस अरहंतके स्वरूपमैं अपने परिणाम जुड़नेतैं उस अवसरमैं सांसारिक समस्त संकल्प रुकि, परमात्माका अनुभवन होय है । तिस परमात्मस्वरूपमैं एकाग्रता होनेकरि सुखमैं ज्ञानमैं संपदामैं विघ्नकरनेवाला अंतरायकर्ममैं अनुभाग जो रस सो सूकि जाय है, वा वीतरागभावके प्रसादतैं असातावेदनीयकूं आदि लेय समस्त अशुभप्रकृति जे पूर्वैं बंधी हुई सत्तामैं तिष्ठै थीं तिनका रस नष्ट होजाय है । अर जे पूर्वली बांधी

पुण्यप्रकृति तिनमें रस वधि ( ढि ) जाय है। अर मंदकषायके प्रभावतें शुभ आयुकर्मविना समस्त कर्मप्रकृतिनकी स्थिति घाटि जाय है। सो सिद्धांतमें भगवानका हुकम प्रसिद्ध है जो मंदकषायके प्रभावतें पूर्वे बांधे हुये शुभकर्मनिमें रस वधि ( ढि ) जाय है। अर अशुभकर्मनिमें रस सूकि जाय घटि जाय है, अर स्थिति तीनआयुविना समस्त कर्मप्रकृतिनिका घटि जाय है। अर तीव्रकषायके प्रभावतें कर्मकी समस्त पापप्रकृतिनमें रस वढि जाय अर पुण्यप्रकृतिनमें रस घटि जाय है अर तीनआयुविना समस्त कर्मनिका स्थिति बधि जाय है, तातें भगवान् अरहंतका गुणनिमें अनुराग लीनता सोही अरहंतभक्ति तिसके प्रभावतें दुःखका कारण पापप्रकृतिनिमें रस रुकिजाय तदि समस्त दुःख विनशि जाय हैं, अर सुखके कारण पुण्यप्रकृतिनमें रस बढि जाय तदि स्वर्गादिकनिके सुख तथा राजसंपदा भोगादिक आपहीतें प्रगट होइ हैं। यद्यपि भगवान् अरहंत धातुपाषाणके प्रतिबिंबमें आवें नाहीं अर किसीका उपकार अपकारभी भगवान् वीतराग करें नाहीं तथापि उनका नाम तथा प्रतिविंव अपने शुभपरिणाम वीतरागरूप ध्यान होनेकूं वाह्यनिमित्त है। जातें रागरूप स्त्रीपुरुषनिके अचेतन चित्रामादिक देखनेतें जैसें राग प्रकट होय है तैसें वीतरागप्रातिविंवदेखनेतें वीतरागता प्रकट होय है। तथा इस संसारमें रागद्वेष जीवनिके होय है सो समस्तही केवल अचेतन जे सुवर्ण, रूपा, मणि, माणिक्य, महल, वन, वाग, नगर, ग्राम, पाषाण, कर्दम, श्मशान, वा मनुष्य तिर्यंचनिके देह तथा वचन, राग, रुदन, दुर्गंध, सुगंध, रस, विरस इत्यादिक समस्त अचेतन पुद्गलद्रव्यनिके चिंतवन, श्रवण, अवलोकन, अनुभवतें ही होय है। ए समस्त अचेतन आत्माकैं रागद्वेष उपजानेकूं सहकारीकारण हैं तैसें जिनेंद्रकी परमशांत मुद्रा ज्ञानीनिकैं वीतराग होनेकूं सहकारी कारण है प्रेरक

नाहीं। अर वीतरागतातें अन्य चाहना भव्यनिकै है नाहीं। बहुरि जो जिनेंद्रके अग्रस्थानविषैं जल चंदनादिक जे अष्टद्रव्य उतारणकरि चढाइए हैं सो कछु भगवान भक्षण करैं वा वासना लेवैं ऐसा अभिप्राय नाहीं है। याका ऐसा भाव है–जैसैं वडे मंडलेश्वरराजाका समागम होय तदि उनके उपरि सुवर्ण, रत्न, मोती, वारफेर करि क्षेप दीजिये वा आरती उतारिए है पुष्प अक्षतादिक उतारण करि क्षेपिए सो समस्त आपनी भक्ति है। राजाकैं कछु लेनेका प्रयोजन नाहीं है। तैसैं भव्यजीव भक्तिकरि भरया हुआ त्रैलोक्यनाथ परम मंगलरूप परमेश्वर परमात्मस्वरूप भगवान् अरहंतके प्रतिबिंबकूं देखतां प्रमाण उत्पन्न भया है आनंद जाकै ऐसा निकट भव्यजीव भक्तितैं अर्घ उतारण करि अग्रभूमीमैं क्षेपै है और कछु वांछा नाहीं है॥ सो भक्तिका मार्ग अनादिकालतैं चल्या आवै है नवीन नाहीं भया है। अर जे समस्त आरंभ परिग्रहादिकनिकै त्यागी होय निज आत्मिक परमात्मके रसमैं लीन हैं तिनकै दर्शनपूजनादिकमैं प्रधानता नाहीं है ते परमात्मरूपतैं आराध्यआराधकरूप भेदबुद्धि छांडि परमात्मस्वरूप आत्मानुभवमैं लीन भए तिष्ठे हैं। ऐसैं स्थापनानिक्षेपमैं प्रकरण पाय कथन किया॥

अब द्रव्यनिक्षेपका स्वरूप कहिए हैं जो अनागत परिणामप्रति सन्मुखपणा सो द्रव्यनिक्षेप है जैसे इंद्र बनावनैके अर्थि ल्याया जो पाषाण ताकैं इंद्रकी प्रतिमाकी पर्यायप्रति सन्मुखपणा है तातैं तिस पाषाणकूं इंद्र कहिए हैं। तथा देवपर्यायकै सन्मुख जीवकूं देवद्रव्य जीव कहिए हैं। तथा सम्यग्दर्शनादि परिणतिप्रति सन्मुख भया ताकूं द्रव्यसम्यग्दर्शन कहिए। सो द्रव्यनिक्षेप दोय प्रकार है। एक आगमद्रव्यनिक्षेप, एक–नोआगमद्रव्यनिक्षेप। तहां कोऊ पुरुष जिसका निक्षेप करना होय तिस वस्तुके कथनका आगम जो शास्त्र ताका जाननेवाला होय परंतु जिस अवसरमैं उस शास्त्रका चिंतवनादिमैं

उपयोगरहित होय तिसकूं आगमद्रव्यनिक्षेप कहिए। जैसें कोऊ पुरुष सम्यग्दर्शनके कथनका तथा सामायिकके कथनका वा जीवद्रव्यके कथनका शास्त्रकूं जानता होय अर जिस कालमें उस कथन का शास्त्र के चिंतवनादि व्यापारकरि रहित हुवा अन्यव्यवहारमें युक्त हो रह्या होय तिस कालमें उस पुरुषकूं आगमद्रव्यसम्यग्दर्शन कहिए वा आगमद्रव्यसामायिक वा आगमद्रव्यजीव कहिए ऐसें आगमद्रव्यनिक्षेप कह्या ।

अब नोआगमद्रव्यनिक्षेप तीन प्रकार है—ज्ञायकशरीर १ भावी २ तद्व्यतिरिक्त ३। तिनमें ज्ञायकशरीर हू तीन भेद रूप है—भूत १ भावी २ वर्त्तमान ३ । तहां ज्ञाताका शरीर पूर्वपर्यायमें था तिसकूं छांडि आया सो भूतज्ञायकशरीर है। अर जिस शरीरतें सम्यग्दर्शनादिकका आगमकूं जानें है सो वर्त्तमान ज्ञायकशरीर है । बहुरि जिस शरीरकूं आगें धारण करैगा सो भावीज्ञायकशरीर है। तहां भूतज्ञायकशरीरका भी तीन भेद है। च्युत १ च्यावित २ त्यक्त ३ । जो शरीर अपनी आयुका अंत होतें अपने परिपाकतें छूट्या सो च्युत है । अर जो कदलीका घात ज्यों विषभक्षण करि वा मारण ताडन त्रासनादिक वेदनाकरि तथा रुधिरका शरीरतें निकशानेंकरि तथा भयकरि तथा शस्त्रादिकनिका घातकरि तथा संक्लेश होनेकरि तथा उच्छ्वासके रुकनेकरि तथा आहारका निरोधकरि जाका आयुकर्मके निषेक एकठे छूटनेतें जो मरण भया सो च्यावित है । अर जो संन्यास धारणकरि दर्शन ज्ञान चारित्र तप आराधनाकूं आराधि त्यागव्रतसंयमसहित शरीरकूं त्याग्या सो त्यक्त है। ऐसें ज्ञायकशरीरका स्वरूप कह्या ।

अब नोआगमद्रव्यका दूजा भेद जो भावी सो ऐसा है—जो सम्यग्दर्शनादिकका आगमका जाननेवाला शरीर आगें होइगा सो भावीनोआगमद्रव्यनिक्षेप है । अब तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यनिक्षेप

के दोय भेद हैं। एक कर्म, दूजा नोकर्म। तिनमैं दर्शनमोहका उपशम क्षय क्षयोपशमरूप जो दर्शनमोहके द्रव्यरूपकर्मवर्गणा सो नोआगमद्रव्यसम्यग्दर्शनका कर्मनाम भेद हैं। तथा सामायिक उपरि लगावें तो चारित्रमोहका मंद अनुभागरूप द्रव्यकर्म, सो सामायिकका कर्मनाम भेद है। तथा जीवमैं लगावें तो ज्ञानावरणके मंद अनुभागरूप परमाणू तिंनकूं तद्व्यतिरिक्तका भेद जो कर्म, ताकूं नोआगमद्रव्यकर्म कह्या। बहुरि जो सम्यग्दर्शनादि होनेके बाह्य उपदेशादिक तथा समता होनेके कारण बाह्य द्रव्य ते तद्व्यतिरिक्तका नोकर्मनाम भेद है। ऐसैं द्रव्यनिक्षेप कह्या।

बहुरि भावनिक्षेपके दोय भेद हैं—एक आगमभावनिक्षेप दूजा नोआगमभावनिक्षेप। तहां जिस वस्तुका निक्षेपकरिए तिसके कथनका शास्त्रकूं जाननेवाला पुरुषका उपयोग जिस काल उसमैं लगि रह्या होय तिस पुरुषकूं आगमभावनिक्षेप कहिए। बहुरि जिस वस्तुका निक्षेप करिए तिस पर्यायरूप तिस कालमैं वर्त्तमान होय सो नोआगमभावनिक्षेप है। ऐसैं चार निक्षेप कहे। इहां प्रयोजन ऐसा जो लोकव्यवहारमें केई नामहीकूं भाव समझि जांय तथा नामस्थापनाकूं भावादिक जानैं ताके व्यभिचार दूरिकरि यथार्थ समझावनेके अर्थि यह निक्षेपविधि है। तहां द्रव्यार्थिकनयतैं तो नाम, स्थापना, द्रव्य ए तीन निक्षेप हैं। अर पर्यायार्थिकनयकरि भावनिक्षेप है। अब नामादिककरि विस्तारे जे जीवादिक तिनका स्वरूपज्ञान काहेतैं होय यातैं सूत्र कहै हैं—

प्रमाणनयैरधिगमः ॥ ६ ॥

अर्थ—प्रमाणकरि अर नयकरिके जीवादिक पदार्थनिका ज्ञान होय है। जीवादिकके यथार्थस्वरूपका ज्ञान प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणकरि तथा द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयकरि होय है। तहां प्रमाण दोय हैं। एक

स्वार्थप्रमाण एक परार्थप्रमाण तहां स्वार्थप्रमाण तो ज्ञान स्वरूप है। अर परार्थप्रमाण वचनरूप है। तिनमैं च्यार ज्ञान तो स्वार्थप्रमाण हैं। अर श्रुतप्रमाण है सो ज्ञानरूपभी है वचनरूपभी है । तातैं स्वार्थ परार्थ दोऊरूप हैं। बहुरि श्रुतप्रमाणके विकल्प हैं भेद हैं ते नय हैं। जे नय हैं ते प्रमाणकी सापेक्षारूप हैं। इहां नित्य अनित्यादिक अनेक धर्मनिसहित वस्तु प्रमाणके विषयके भावकूं प्राप्त होइ हैं। बहुरि काहु एक धर्मकी मुख्यता लेय अविरोध साध्य पदार्थनिकूं जाकरि जानिये सो नय है । पदार्थका एक धर्म है सो नयका विषय है सो ही कह्या है "सकलदेश प्रमाणाधीन है" "विकलदेश नयाधीन है" नय है सो श्रुतप्रमाणका विकल्प है अंश है। मति, अवधि, अर मनःपर्यय ज्ञानका विकल्प नय नाहीं है । जातैं वचनके निमित्ततैं उपज्या जो श्रुतज्ञान ताके ही ये विशेष संभवै हैं।

बहुरि जो अधिगम है सो ज्ञानात्मक तथा शब्दात्मक भेदकरि दोय प्रकार है तहां एकवस्तुविषैं अविरोधकरि विधिनिषेधतैं सप्तभंग होय हैं। स्यादस्ति १ स्यान्नास्ति २ स्यादस्तिनास्ति ३ स्यादवक्तव्य४ स्यादस्त्यवक्तव्य ५ स्यान्नास्त्यवक्तव्य ६ स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्य ७ ऐसैं सप्त हैं। तहां वस्तु है सो स्वचतुष्टयकरि अस्तिस्वरूपभी है। जैसैं घट है सो अपने अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकरि अस्तिस्वरूपही है। तहां गुणपर्यायनिका समुदायरूप सो तो द्रव्य है। बहुरि द्रव्यकी संकोचविस्ताररूप अवगाहना है सो क्षेत्र है। अर उत्पत्तितैं लगाय नाशपर्यंत ताका काल है। अर जो गुणपर्यायनिकी अवस्था सो भाव है। ऐसैं अपने स्वरूपचतुष्टयकरि अस्तिस्वरूप है। यह प्रथम भंग है। बहुरि जो वस्तु है सो परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावकरि नास्तिरूप ही है। जैसैं घट है सो पटादिक परद्रव्यनिका चतुष्टयकरि नास्तिरूप ही है। जातैं अपने स्वरूपका ग्रहण परस्वरूपका त्याग सो ही वस्तुकै वस्तुपणा है। जो

अपना अपना प्रतिपक्षीसहित अनेकधर्मका युक्ति आगमतैं विरोधरहित निरूपण करै सो सम्यक् अनेकांत है। अर तत् अतत् स्वभावकरि शून्य कल्पना किया सो मिथ्याअनेकांत है। वहुरि कोऊ कहै अनेकांत है सो नित्य अनित्यादि दोऊ पक्षकूं कहै है तातैं संशयका कारण है तातैं प्रमाण नाहीं ताकूं कहै हैं-संशय तौ जहां दोऊं वस्तुनिका निर्णय नहीं होय तहां होय। जैसे कोऊ अंधकारका अवसरमें दूरितैं देख्या जो यो स्थाणु है कि पुरुष है? ऐसैं जो ज्ञान दोऊनिकूं नहीं छांडै सो संशयज्ञान है जहां दोऊ पक्षका निश्चय नहीं होय तहां संशय होय है। अनेकांतविषै दोऊ पक्षके विषय निश्चित हैं तातैं संशयका कारण नाहीं। वहुरि जो दोऊ धर्मनिकै विरोध होइ तदि संशय होय है। जहां नयनतैं दोऊ धर्म कह्या तहां संशय कैसैं होय ? जैसैं एकपुरुषविषै पिता, पुत्र भ्राता, भागिनेय, मातुल, स्वामी सेवकादि अनेक धर्म पुत्रपितादिककी अपेक्षातैं विरोधकूं नहीं प्राप्त होय हैं। पुत्रकी अपेक्षा पिता ही है, पिताकी अपेक्षा पुत्र ही है, भाईकी अपेक्षा भाई है, भाणजाकी अपेक्षा मामा, मामाकी अपेक्षा भाणजा इत्यादिक अनेक धर्म एक ही पुरुषविषै विरोधकूं प्राप्त नाहीं होय है तातैं संशय कैसैं होय। ऐसैं अनेकांतस्वरूप जो जीवादिकतत्त्वार्थनिका ज्ञान सो प्रमाणनयतैं ही होय है। तातैं प्रमाणनयनिका ही अभ्यास करना। जातैं इस कालमें भी परीक्षामुख प्रमेयकमलमार्त्तंड प्रमेयचंद्रिका प्रमाणपरीक्षा प्रमाणनिर्णय प्रमाणमीमांसा न्यायकुमुदचंद्रोदय अष्टसहस्री आप्तपरीक्षा श्लोकवार्तिक राजवार्तिक आदि अनेकग्रंथ प्रमाणनय समझनेकूं ही हैं। ऐसैं प्रमाणनयकरि जाणे जे जीवादिक, तिनका जाननेका अन्य उपाय दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ॥ ७ ॥

अर्थः—निर्देश १ स्वामित्व २ साधन ३ अधिकरण ४ स्थिति ५ विधान ६ इनि छह अनुयोगनिकरि भी सम्यग्दर्शनादि तथा जीवादिपदार्थनिका अधिगम होय है ॥ तहां निर्देश तो स्वरूपका कहना, स्वामित्व कहिए अधिपतिपणा, साधन कहिए उत्पत्तिका कारण, अधिकरण कहिये अधिष्ठान आधार, कालकी मर्यादा सो स्थिति, विधान कहिये प्रकार ऐसें ए निर्देशादिक कहे, ते जीवादिक तथा सम्यग्दर्शनादिक जाननेका उपाय हैं। इनिका संक्षेपतें उदाहरण सम्यग्दर्शन उपरि कहे हैं—

तत्त्वार्थका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है यो तो निर्देश है। बहुरि सम्यग्दर्शनका स्वामी जीव है तहां सामान्यकरिकै च्यारों ही गतिके सैनी पंचेद्रियजीवकै होइ है। बहुरि सम्यग्दर्शनका साधन कहिए कारण अंतरंग बहिरंग दोय प्रकार है। अंतरंग तो दर्शनमोहका उपशम क्षयोपशम क्षय कारण है अर जिनधर्मका श्रवण तथा जातिस्मरण तथा जिनबिंबदर्शन इत्यादिक बहिरंग साधन हैं। इनिका विशेष सर्वार्थसिद्धिटीकातें जानना। बहुरि अधिकरण हू अंतरंग बाह्य दोय प्रकार है। तहां समग्दर्शनका अंतरंग आधार तो आत्मा ही है अर बाह्य आधार त्रसनाडीमात्र ही क्षेत्र है। बहुरि सम्यग्दर्शनकी स्थितिमैं उपशमसम्यक्त्वकी स्थिति तो उत्कृष्ट वा जघन्य अंतमुहूर्तमात्र है अर क्षायिकसम्यक्त्वकी उत्कृष्टस्थिति संसारीजीवकै तेतीससागर अंतर्मुहूर्तसहित आठवर्ष घाटि दोय कोडिपूर्व अधिक है अर जघन्यस्थिति अंतर्मुहूर्त है। अर मुक्तजीवकै सादि अनंतकाल है। बहुरि क्षयोपशमसम्यक्त्वकी जघन्यस्थिति अंतर्मुहूर्त्त है। उत्कृष्टस्थिति छयासठि सागर प्रमाण है। ऐसें स्थिति कही। बहुरि सम्यग्दर्शन सामान्य एकप्रकार है अर निसर्गज अधिगमज भेदतें दोय प्रकार है। उपशम

क्षयोपशम क्षायिक भेदतैं तीन प्रकार है। ऐसैं इहां संक्षेपतैं कह्या सो यह कथन चौदह गुणस्थान चौदह मार्गणास्थानविषै सविस्तर सर्वार्थसिद्धि आदि विशेषशास्त्रनिमैं कह्या है तहांतैं जानना। तथा ऐसैं ही निर्देशादिक ज्ञानचारित्रविषै तथा जीवादिपदार्थनिविषै आगमके अनुसार लगावना।

इहां निर्देशादिक कहे ते श्रुतप्रमाणके विशेष हैं सो शब्दात्मक तथा ज्ञानात्मक दोऊ ही प्रकार जानना। बहुरि इहां कोऊ अन्यवादी कहैं वस्तुका स्वरूप तो अवक्तव्य है वचनगोचर नाहीं तातैं निर्देश काहेको करिए ताकूं कहिए है—जो तू अवक्तव्य कहै है सो ऐसैं तेरे कहनेतैं ही वक्तव्यपणा आवै है। जैसैं कोऊ कहै मेरै मौनव्रत है ऐसैं कहनेवालेकै मौनव्रत काहेका ? तातैं अवक्तव्यका एकांत कहना अयुक्त है तथा केई स्वामित्व नाहीं मानै ताकूं कहिए है—जो संबंध मानिए तो स्वामीपणा क्यों नहीं मानिए नहीं मानिये तो सर्व व्यवहारका लोप हो जाय। बहुरि साधनकूं नहीं मानैं तो ताकै कछु इष्टतत्त्वका साधन नाहीं संभवै। बहुरि आधाराधेयभाव द्रव्यगुणादिकके प्रसिद्ध ही हैं। बहुरि स्थिति है सो भी प्रमाणसिद्ध है। जो वस्तुकूं सदा क्षणभंगुरही कहै तो पूर्वापर जोडरूप सर्व व्यवहार का लोप होयगा। ऐसैंही विधान जो प्रकार सो प्रमाणसिद्ध है। जो सर्वथा एकप्रकार ही वस्तु मानिये तो प्रत्यक्ष अनेक प्रकार दीखै हैं ताका लोप कैसैं करिए। अर जो प्रत्यक्षकूं हू असत्य मानिए तो शून्यताका प्रसंग आवै, तातैं निर्देशादिकरि जीवादिपदार्थनिका अधिगम करना युक्त है॥ इनि निर्देशादिकनितैं ही जीवादिकनिका अधिगम होय है कि अन्य भी अधिगमका उपाय है ऐसैं पूछे सूत्र कहै हैं—

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥ ८ ॥

अर्थ—सत् १ संख्या २ क्षेत्र ३ स्पर्शन ४ काल ५ अंतर ६ भाव ७ अल्पबहुत्व ८ इनि आठ अनु-

योगनकरिके भी जीवादिक पदार्थनिका अधिगम होय है । तहां सत् शब्दका आस्तित्व अर्थ है। संख्या भेदनिकी गिणतीकूं कहिए है॥ क्षेत्र वर्तमानकालके निवासकूं कहिए है ॥ स्पर्शन कहिए तीन कालमें विचरनेका क्षेत्र है ॥ बहुरि काल कहिए जिस वस्तुकी अपेक्षा जेता काल-परिणाम है सो कहना ॥ बहुरि अंतर विरहकालकूं कहिए ? जो एक परिणामतें दूसरे परिणामकूं जाय फेर तिस ही परिणामकूं आवै ताकै वीच जेता काल रहै सो विरहकाल है ताकूं अंतर कहना ॥ भाव उपशम क्षयोपशमादिक हैं । बहुरि अल्पबहुत्व परस्पर दोयकी अपेक्षाकरि थोरा घनापणाका कहना है ॥ ऐसें इन आठ अनुयोगनिकरि सम्यग्दर्शनादिक तथा जीवादिक पदार्थनिका अधिगम जानना ॥ सो इनका कथन चौदह गुणस्थान चोदह मार्गणास्थाननिमें जैसें सर्वार्थसिद्धि आदिशास्त्रनविषै विशेष कथन है सो तहांतें जानना तथा आगमतें अविरोधरूप सर्ववस्तुपैं लगावना ॥

इहां केई अन्यवादी वस्तुका सर्वथा अभाव ही मानै हैं । कहै हैं—यो समस्त जगत् अविद्याकरि भासै है जगत् कछु वस्तु नाहीं है यह सर्व शून्य है अवस्तु है ऐसें कहै ताकूं कहै हैं-यह शून्यताकूं कहनेवाला जो पुरुष वा आगम सो सत् है कि असत् है? जो सत् है तो शून्य नाहीं ठहर्‍या। जैसे आपकूं सत् मान्या तैसें परकूं भी सत् कहो अर जो तुम शून्यताका कहनेवाला पुरुष वा आगमकूंहू असत् कहो तो तुमारा असत् वचन काहूके अंगीकार करनेयोग्य नाहीं । ऐसें शून्यवादी तथा नास्तिकवादीनिके पक्षका निराकरण सत् कहनेतें किया । बहुरि केई वस्तुकूं सर्वथा अभेदरूप ही कहै हैं। तिनका निषेध भेदनिकी गणनातें जानना। बहुरि केई वस्तुके प्रदेश नाहीं मानै हैं तिनका निषेध क्षेत्र कहनेतें जानना। बहुरि केई वस्तुकूं सर्वथा क्रियारहित मानै हैं तिनका निषेध स्पर्शन कहनेतें जानना।

बहुरि केई वस्तुका कदाचित् सर्वथा प्रलय होना मानै हैं तथा क्षणिकही मानैं हैं तिनका निषेध कालनियम कहनेतें होय है। तथा केई वस्तुकूं क्षणिक ही मानै हैं तिनका निषेध अंतरका नियम कहनेतें होय है। बहुरि केई वस्तुकूं एक ही मानै हैं तथा अनेक ही मानैहैं तिनका निषेध अल्पबहुत्व कहनेतें होय है॥ इहां ऐसा जानना जो वस्तु है सो अनंतधर्मात्मक है ताके द्रव्य, क्षेत्र, काल भावकी अपेक्षा विधिनिषेधतें प्रमाण नय निक्षेप अनुयोगनिकी विधिकरि साधतें संतें यथार्थज्ञान होनेतें अधिगमसम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय है। ऐसें आदिमें कह्या जो सम्यग्दर्शन, ताका लक्षण उत्पत्ति स्वामी विषय न्याय अर अधिगम जो जानना तिनका उपाय कह्या। अर सम्यग्दर्शनका ही संबंधकरि जीवादिकतत्त्वनिका नामादिकनिका वर्णन किया॥ अब सम्यग्ज्ञान विचारनेके योग्य है तातें सम्यग्ज्ञानके भेदनिकूं कहैं हैं —

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानं ॥ ९ ॥

अर्थ—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल ए पांच ज्ञान हैं। इनिका विशेष कथन तो आगैं होयगा तथापि कछु इनिका संक्षेप स्वरूप इहां भी लिखिए हैं। तहां जो पंच इंद्रिय अर मनकरि जो पदार्थकूं जानै सो मतिज्ञान है। बहुरि मतिज्ञान करि निश्चय किया जो पदार्थ तिसकूं अवलंबन करि तिसही पदार्थके संबंधकूं लिए जो अन्य कोई पदार्थ तिसकूं जानै सो श्रुतज्ञान है। अथवा इंद्रिय अर मनकरि निश्चयकिया जो यह घट है ऐसें तो मतिज्ञान भया। बहुरि तिस घटकी जातिके अनेक अनेक देशमें उपजे अनेककालमें उपजे अनेक रूप वर्ण धोला, काला, लाल, पीला अर छोटा, बडा अनेक अवगाहनारूप वा सोनाका, रूपाका, लोहका, काठका, पाषाणका, चित्रामका, पीतलका, तामाका

इत्यादि अनेक प्रकारके पूर्वें नहीं देख्या, नहीं श्रवणकिया, नहीं चिंतवनमें आया ऐसा अपूर्व अनेक प्रकारके घटनिकूं देखते ही जानि जाय जो यह घट है। ऐसैं एक घट नामा अर्थकूं देखि उसके सदृश विसदृश अनेक घटनिकूं जानै सो श्रुतज्ञान है। अथवा जीव अजीव पदार्थनिकूं इंद्रियनिकरि अर मन-करि ग्रहणकिया वहुरि तिनहीकूं सत, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अंतर, भाव, अल्पबहुत्वादि प्रकार करि जाननेमें समर्थ होय सो श्रुतज्ञान है। अथवा घट ऐसैं दोय अक्षर श्रवणकरिकै कर्ण इंद्रियद्वारै मतिज्ञानकरि शब्दरूपमात्र ग्रहण करै सो मतिज्ञान है। वहुरि इस घटशब्दके श्रवणतें वाच्यवाचक संबंधका संकेत करावनेका सामर्थ्यकरि जल भरनेकूं समर्थ ऐसा घटकूं ग्रहण करना सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। वहुरि कोऊ पुरुषका शरीरकै पवनका स्पर्श भया तदि स्पर्शनइंद्रियद्वारै पवनका शीतस्पर्श जान्या सो मतिज्ञान है। फिरि इस पवनका स्पर्शतें ही ऐसा विचार भया जो यो पवन वायुके रोगीकै रोगवृद्धिका कारण है तथा इस पवनतें वर्षाका अभाव होयगा वा वर्षा आवेगी अथवा इस जातिके वृक्ष फलैंगे फूलैंगे वा वृक्षनिके फल फूल नहीं उपजैंगे वा इस पवनतें लोकनिकै रोगनिकी वृद्धि होयगी वा रोग घटि जायगा। इत्यादिक पवनका स्पर्शतें ही अनेक व्यक्तिनिका ज्ञान होना सो अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। ऐसैं श्रुतज्ञानावरणका भेद जो इंद्रियानिंद्रियावरणनामा कर्म ताके क्षयोपशमतें दोय प्रकार श्रुतज्ञान है। इहां ऐसा जानना जो कर्णइंद्रियविना अन्य इंद्रियनिकै द्वारै अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो एकेंद्रियादिक समस्त जीवनकै प्रवर्त्तै है सो तो प्रमाणके कथनमें ग्राह्य नहीं ताका अधिकार नाहीं। अर जो श्रोत्र इंद्रियद्वारै शब्दश्रवणरूप मतिज्ञानके पीछैं अक्षरके अर्थ जाननेरूप मनकै द्वारै शास्त्रका ज्ञान होय सो श्रुतज्ञान, प्रमाणमें प्रधान है। याकरि नामसहित तत्त्वार्थनिका

स्वरूप नीके जान्या जाय है। बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादा लिए रूपी पदार्थकूं प्रत्यक्ष जानै सो अवधिज्ञान है बहुरि मनुष्यक्षेत्रप्रमाण पैंतालीसलाख योजन घनप्रतरक्षेत्र विषै तिष्ठते जीवनिके मनके-विषै सरल वा वक्ररूपचिंतवन किये जे रूपी अर्थ, तिनकूं अवधिज्ञानके जाननेतैं हू अनंतभाग सूक्ष्मतानै लिए जानै सो मनःपर्ययज्ञान है। बहुरि सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकूं प्रत्यक्ष जाणै सो केवलज्ञान है। अब कहैहैं जो "प्रमाणनयैरधिगमः" इस सूत्रमें प्रमाणनयनिकरि अधिगम होना कह्या, तिनमें कितनेक मतवाले इंद्रिय अर पदार्थका जोडरूप संनिकर्षकूं प्रमाण कहैहैं, केई ज्ञानकूं प्रमाण कहैहैं इस हेतुतैं अधिकारमें आए जे मत्यादिक ज्ञान तिनहींकै प्रमाणपणाकी प्रकटताकेअर्थि सूत्र कहैहैं—

तत्प्रमाणे ॥ १० ॥

अर्थ—तत् कहिए जो मत्यादिक ज्ञान कहे तेही प्रमाण हैं अन्य नाहीं हैं। इहां ऐसा-जे केई अन्यवादी संनिकर्षादिकूं प्रमाण कल्पैहैं ते प्रमाण नाहींहैं। जातैं जो इंद्रिय अर पदार्थनिका स्पर्शनकूं संनिकर्ष कहिए हैं तिनमैं मन इंद्रिय अर नेत्र इंद्रिय इनितैं सन्निकर्ष नाहीं होय है अर जो संनिकर्ष प्रमाण मानिये तो सूक्ष्म पदार्थ अर दूरवर्ती पदार्थ अर अंतरित जे पूर्वैं होगए पदार्थ तिनकूं संनिकर्ष प्रमाण ग्रहण करनेकूं समर्थ नाहीं। जातैं संनिकर्ष तो इंद्रिय पदार्थ भिडे स्पर्शैं तादि होय, तादि सूक्ष्म अंतरित दूरवर्ती पदार्थ प्रमाणका विषय नाहीं ठहरै तातैं पूर्वैं कहे जे मत्यादिक पंचज्ञान तेई प्रमाण हैं। ते प्रमाण प्रत्यक्ष परोक्षकरि दोय प्रकार हैं। अर सामान्यविशेषात्मक वस्तु हैं ते प्रमेय हैं। बहुरि इन प्रमाणनिके दोय भेदविषै अन्य समस्त भेद गर्भित हैं। बहुरि इस प्रमाणका फल ऐसा है अज्ञानका अभाव होना अर हेयविषै त्यागभाव उपादेयविषै प्रवृत्तिभाव तथा रागद्वेषके अभावतैं

माध्यस्थभाव होना ते समस्त प्रमाणका फल हैं ॥ बहुरि केई कहैं इंद्रियजनितज्ञानमैं कोऊ प्रकार वाधा हू आवैहै विपरीत भी जाणै है ताकूं प्रमाण कैसें कहिए ? ताका उत्तर—जो सम्यग्ज्ञान है सो प्रमाण है अर मिथ्याज्ञान अप्रमाण है। इहांभी ऐसा जानना मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान अपनेविषयनिमैं हू एकदेश प्रमाण हैं। जैसै ऊगता चंद्रमा पृथ्वीसों लग्या निकटही दीखै तहां चंद्रमापणाकी अपेक्षा प्रमाण है अर पृथ्वीसों लग्या दीखै सो अप्रमाण है। ऐसें प्रमाण अप्रमाण दोऊरूप है। अर अवधि, मनःपर्यय दोय ज्ञान हैं ते अपना विषय जेता है तितनामैं प्रमाण हैं। सिवायमैं अप्रमाण हैं। ए च्यारि ज्ञानकर्मके क्षयोपशमतें हैं। जहां वाधा आवै तहां अप्रमाण हैं जहां वाधा नाहीं तहां प्रमाण हैं। अर केवलज्ञान निर्वाधही है इसके प्रतिपक्षी कर्म नाहीं हैं। बहुरि कोऊ कहै मतिश्रुतके प्रमाण अप्रमाणका व्यवहार कैसें प्रवर्त्तेगा। तहां कहिए है—जाका ज्ञान जिस प्रकरणविषैं निर्वाध होय तहां वाकूं प्रमाणही कहिए अन्यवस्तुमैं अप्रमाणभी होइ तो वाकी मुख्यता नहीं करै ऐसें मुख्य गौणकी अपेक्षा व्यवहार वर्तै है। अर परमार्थतें समस्त वाधारहित केवलज्ञानी सर्वज्ञ ही जानै है सर्वथा निर्वाध तो केवलज्ञान है। वहुरि अन्य वादीनिकरि कल्प्या संनिकर्ष तथा इंद्रिय ते प्रमाण नाहीं हैं। वहुरि सामान्यहीकूं तथा विशेषहीकूं तथा दोऊनिकूं परस्पर अपेक्षारहित प्रमाणका विषय थापै हैं सो निश्चयतें सामान्य तो विशेषविना अर विशेष सामान्यविना कहूं है नाहीं। सो परवादीनिकर कल्पे प्रमाणादिकनिका निराकरण जैनके न्यायग्रंथमें है। इहां ऐसा-जो प्रमाणका स्वरूप संख्या विषय फल इनका अन्यथावादका निराकरण अर स्याद्वादमतकरि प्रमाणका स्थापन इत्यादि विशेषकथन श्लोकवार्तिक वा परीक्षामुख आदि न्यायग्रंथनिमें है तहांतें जानना ॥ इहां सूत्रमें प्रमाणशब्दके द्विवचन

कहनेकरि प्रमाण दोयही हैं ऐसें दोयहीका नियम किया। परंतु दोय कैसें है ? केई तो अनुमान अर उपमानकूं केई अनुमान अर आगमकूं, केई अनुमान अर प्रत्यक्षकूं, केई उपमान अर प्रत्यक्षकूं केई उपमान अर आगमकूं केई आगम अर प्रत्यक्षकूं, केई प्रत्यक्ष परोक्षकूं प्रमाण कहै हैं। तातैं मत्यादिकनिकैं विपर्ययका प्रसंग आवैहै तिनका कहना बाधासहित है सो प्रमेयकमलमार्त्तंड तथा प्रमेयचंद्रिकामैं वर्णन किया है। उनके कहे भेद इन दोयहीमैं गर्भित हैं। तातैं निश्चयके अर्थि सूत्र कहै हैं—

आद्ये परोक्षं ॥ ११ ॥

अर्थ—पंचज्ञाननिमैं आदिके दोय मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान ए परोक्षप्रमाण हैं॥ इहां आद्य शब्दकूं द्विवचनकरिकैं कह्या तातैं मति श्रुत दोऊ ग्रहण करनें मति श्रुत दोऊ ज्ञान हैं सो परोक्षप्रमाण हैं। पर कहिए इंद्रिय अर मन तथा परका उपदेश तथा प्रकाशादिक, परनिमित्तकी सहायताकरि होय तातैं परोक्ष कहिएहै। तथा परद्रव्यनिकरि यामैं अंतर पडै है अर परकी अपेक्षातैं होय है अर अविशद कहिए अस्पष्ट है यातैं परोक्षप्रमाण है। इनकै प्रत्यक्षपणा नाहीं है। बहुरि स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमान ये चारों मतिज्ञानके भेद हैं। तातैं मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान ये परोक्षप्रमाण हैं। बहुरि इन विना जो चक्षुआदिक इंद्रियनितैं बहु आदिकविषयनकूं जानिये हैं ते अवग्रहादिरूप मतिज्ञानकूं सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष भी कहिएहै। जातैं व्यवहारीलोक इंद्रियज्ञानकूंही प्रत्यक्ष जानैं हैं। तथापि परमार्थतैं विचारिए तो पराधीनपणातैं परोक्षही हैं। अब मति श्रुत विना अन्य तीन ज्ञाननिकै प्रत्यक्षपणा जणावै हैं—

प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

अर्थ—अन्यत् कहिए मतिश्रुततैं अन्य—अवधि, मनःपर्यय, केवल ए तीन ज्ञान प्रत्यक्षप्रमाण हैं॥

“अक्ष्णोति” कहिये जाणै सो “अक्ष” कहिए। अक्ष नाम आत्माका है। आत्माप्रति जाका नियम होय आत्माहीका आश्रयकरि उपजै है अन्यका सहाय नाहीं चाहै इंद्रिय प्रकाश उपदेशादिककी सहायविनाही विशेषनिसहित वस्तूका जाननेवाला स्पष्टज्ञान सो प्रत्यक्षप्रमाण है। तहां अवधि अर मनःपर्यय ज्ञान तो विकलप्रत्यक्ष हैं अर केवलज्ञान सकलप्रत्यक्षप्रमाण है॥ अब परोक्षप्रमाणका विशेष जाननेके अर्थि सूत्र कहैं हैं-

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिंताऽभिनिबोध इत्यनर्थांतरं ॥ १३ ॥

अर्थ—मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध ए पांच शब्द अनर्थांतर हैं इनिका अन्य अर्थ नाहीं है मतिज्ञानहीके नाम हैं ॥ आदिविषैं कह्या जो मतिज्ञान ताहीके ए पर्यायशब्द कहिए नामांतर हैं। जातैं ए सर्वही मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमकरि उपज्या जो उपयोग ताके विषय हैं। तहां “मननं” कहिए मानना इंद्रिय अर मनतैं अवग्रहादिरूप साक्षात् जानना सो मति कहिए। बहुरि जो पूर्वै अनुभवमें आया था ताकूं सो यह है ऐसा कालांतरमें यादि आवना सो स्मृति कहिए। जैसैं काहू पुरुषकूं देख्या था सो वर्त्तमानमैं यादि आया जो वह ऐसा है सो स्मृति है। बहुरि संज्ञा नाम संज्ञाका है ताकूं प्रत्यभिज्ञानभी कहिए। वर्त्तमानकालमैं कोऊ वस्तूकूं देखि पूर्वै देख्या ताका स्मरण होय पूर्वका अर वर्त्तमानका जोड़रूप ज्ञान सो प्रत्यभिज्ञान है। सो च्यारप्रकार है। एकत्वप्रत्यभिज्ञान १ सादृश्यप्रत्यभिज्ञान २ तद्विलक्षणप्रत्यभिज्ञान ३ तत्प्रतियोगिप्रत्यभिज्ञान ४ तिनिका उदाहरण ऐसा—जैसैं काहू पुरुषकूं देखिकरि जानी यह पहिलें देख्या था सो ही पुरुष है यो एकत्वप्रत्यभिज्ञान है। बहुरि काहूनें वनविषै गवयनामा तिर्यंचकूं देखिकरि जानी जो यह बलध पहिलें देख्या था तिस सदृश यो गवय है यो सादृश्यप्रत्यभिज्ञान है। बहुरि भैसाकूं देखिकरि जानी जो पूर्वै बलध देख्या

था तातैं विलक्षण यो भैसो है यो तद्विलक्षणप्रत्यभिज्ञान है बहुरि काहू वस्तूकूं निकट देखिकरि अन्यकाहूकूं ऐसा जान्या यो यातैं दूरि है ऐसा जानना सो तत्प्रतियोगिप्रत्यभिज्ञान है। इत्यादि प्रत्यभिज्ञानके अनेक भेद परीक्षामुखादि न्यायग्रंथनिविषै कहे हैं। ते सर्वही प्रमाण हैं॥ बहुरि "चिंतनं" चिंता कहिए जहां यह चिन्ह है तहां चिन्हीभी होयगा इत्यादि चिंतवन करना ताकूं चिंता कहिए याकूं तर्क भी कहिए। व्याप्तिज्ञानकूं तर्क कहिए है। जहां अन्वय व्यतिरेककरि नियम होय सो व्याप्तिज्ञान है। यह याकूं होतै संतैं होइ यो तो अन्वय, अर नहीं होतैं संतैं नहीं होय ऐसा व्यतिरेक ऐसैं दोऊनितैं व्याप्तिज्ञान होय है। जैसैं अग्निकै होतैं संतैंही धूम होय अर अग्निका अभाव होतैं धूम नाहीं होय इत्यादि निश्चय करनेका नाम तर्क है सो प्रमाण है॥ अभिनिबोधनं कहिए सन्मुख लिंगादिक देखि लिंगी आदिका निश्चय करैं सो अभिनिबोध कहिए इसहीकूं अनुमान कहिये हैं। इहां ऐसा जो साधनतैं साध्यपदार्थका ज्ञान होना याकौं अनुमान भी कहिए। साधन कहिए हेतु तातैं साध्य कहिए साधनेयोग्य वस्तु ताका विज्ञान सो अनुमानप्रमाण है॥ तहां साध्यके तीन विशेषण हैं शक्य १ अभिप्रेत २ अप्रसिद्ध ३ तहां जो प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि अबाधितपणाकरि साधिवेकूं शक्य होय सो ही साध्य होय है। जामैं साधनेकी योग्यता नाहीं सो साध्य नाहीं। जैसैं आकाशका फूल साधनेकूं शक्य नाहीं। बहुरि जो वादीके अभिप्रायमैं होय सोही अभिप्रेत साध्य है। अभिप्रेतविना जगतमैं अनेक वस्तु हैं ते साध्य नाहीं। बहुरि जो पहलैंही सिद्ध होय ताकूं कहा साधैगा ? सिद्धका साधन निष्फल है जिसमैं कुछ संदेहादिक होय सो अप्रसिद्ध है सोही साधने योग्य है। ऐसैं साध्यकै सन्मुख जो पूर्वोक्त साधनकरि नियमरूप ज्ञान होय तातैं याकूं अभिनिबोध कहिए ऐसैं स्मृति आदिक च्यार कहे ते सर्व मतिज्ञान हैं सो परोक्षप्रमाण

हैं। वहुरि आगमनामा परोक्षप्रमाण है सो श्रुतज्ञानरूप है वहुरि इहां अन्यवादी अर्थापत्त्यादिक प्रमाण न्यारा मानैं हैं ते सर्व इस मतिज्ञानमैं अंतर्भूत होय हैं ऐसा जानना॥ आगैं इस मतिज्ञानका स्वरूपका लाभविषै निमित्त कहा है ऐसा प्रश्न होतैं सूत्र कहैं हैं—

तदिंद्रियानिंद्रियनिमित्तं ॥ १४ ॥

अर्थ—तत् कहिए सो मतिज्ञान इंद्रिय अर अनिंद्रिय है निमित्त कहिए कारण जाको ऐसा है॥ इंद्रिय पांच अनिंद्रिय मन इनिके निमित्ततैं मतिज्ञान होय है। अंतरंग मतिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होतैं वाह्य इंद्रियमनके निमित्ततैं मतिज्ञान होय है। जातैं आत्माके मतिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशमतैं अपने जोग्य पदार्थकूं जाननेकी शक्ति तो प्रकट भई परंतु वाह्य उपकरणविना जाननेकूं स्वयं समर्थ नाहीं तातैं पदार्थनिके जाननेकूं कारण जे चिन्ह होंय तिनकूं इंद्रिय कहिए। अथवा जो गूढ़ अर्थकूं जनावनेका चिन्ह होय ताकूं लिंग कहिए। इहां आत्मानामा वस्तु गूढ़ है अदृश्य है ताके अस्तित्व जनावनेका चिन्ह ए इंद्रिय हैं इंद्रियनिकी प्रवृत्तितैं आत्मा जान्या जाय है। तातैं इन इंद्रियनिकूं लिंग कहिए। अथवा इंद्रनाम संसारी आत्माका है ताका लिंग कहिये जनावने का चिन्ह से इंद्रिय है। अथवा इंद्र नाम नामकर्मका है नामकर्मकरि रची ते इंद्रिय हैं। वहुरि अनिंद्रियनाम मनका है याकूं अंतःकरणभी कहिए यह अभ्यंतर इंद्रिय है। इहां कोऊ पूछै—इंद्रिय नाहीं सो अनिंद्रिय होय है। मन अनिंद्रिय कैसैं? ताका समाधान—इंद्रियका अभाव सो अनिंद्रिय नहीं है इषत् अर्थमैं "नञ्" जानना। जैसैं काहू कन्याकूं अनुदरा नाम कह्या तो तहां जाकैं उदर नाहीं सो अनुदरा ऐसा अर्थ नहीं लेना जाकैं ईषत् कहिए किंचित् कृश क्षीण उदर होय ताकूं अनुदरा कहिए। तैसे किंचित् इंद्रियकूं अनिंद्रिय कहिए। जातैं अन्य इंद्रि-

यनिकै तो स्थानका अर विषयका नियम है अर मनका कोऊ प्रकट स्थान नाहीं दीसै तथा विषयका नियम नाहीं तातैं अनिंद्रिय कहावै है। अर गुणदोषका विचार स्मरण विषै याकैं इंद्रियनिकी अपेक्षाहू नाहीं है। अर नेत्रादिकनिकी ज्यौं मनका आकार बाह्य देखनेमैं नहीं आवैहै तातैं अंतःकरण है। अब तिसही मतिज्ञानके भेद कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

अवग्रहेहावायधारणाः ॥ १५ ॥

अर्थ—अवग्रह १ ईहा २ अवाय ३ धारणा ए च्यार मतिज्ञानके भेद हैं॥ तहां रूपादिक विषय अर इंद्रियनिका संबंध होतेही जो आदिमैं सामान्य सत्तामात्रका ग्रहण होना है सो दर्शन है अर दर्शन होनेकै अनंतरही जो पदार्थका ग्रहण होना है सो अवग्रह है। बहुरि अवग्रहकरि ग्रहणकिया अर्थमैं जो विशेष जाननेकी इच्छा होय सो ईहाज्ञान है। बहुरि विशेषका निर्णयतैं याथात्म्यरूपनिश्चय होना सो अवाय है। बहुरि निर्णयकीयाकूं विस्मरण नहीं होना कालांतरमैं यथावत् याद रहना सो धारणाज्ञान है। ऐसैं च्यार भेद कहे। इनिका विशेष ऐसा—जो इंद्रिय अर इंद्रियकै ग्रहणजोग्य विषय इनिकै संयोग होतैही जो वस्तुकी सत्तामात्रका ग्रहण सो दर्शन है। जैसैं दृष्टिपडताही वस्तुका प्रकाशमात्र निर्विकल्प ग्रहणमैं आया सो चक्षुर्दर्शन है। ऐसैं ही कर्णादिक च्यार इंद्रियनिकै द्वारै सामान्य विकल्परहित ग्रहण होय सो अचक्षुर्दर्शन है। अर ताकै लगताही जो देख्या हुवा पदार्थका वर्ण संस्थानादिक विशेष ग्रहणमैं आवै सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है। जैसैं नेत्र इंद्रियका ग्रहणमैं आया जो ये श्वेत है बहुरि श्वेत रूप जाण्या पदार्थमैं विशेष जाणवाकी इच्छा जो ये श्वेत है सो बगलांकी पंक्ति होसी ऐसैं जो अवग्रहमैं आया जो श्वेत पदार्थ ताहीमैं विशेष जो बगलांकी पंक्ति जाननेकी इच्छा अथवा ध्वजा देखी थी तिसमैं ध्वजा

जाननेकी इच्छा सो ईहा नामा मतिज्ञानका भेद है। ऐसैंही शब्दादिकनिमैं अन्य इंद्रियद्वारे हू ईहा होय है। बहुरि ईहाकरि जान्याथा तिसका विशेष अवाय आदिका निर्णय होनेतैं जैसा पदार्थ होय तामैं तैसाही नियमरूप निश्चय होना सो अवायज्ञान है। जैसैं बगुलांकी पंक्तिविषै बगुलांकी पंक्तिहीकी जाननेरूप इच्छा थी परंतु ध्वजाका निषेध नाहीं किया था ऐसा तो ईहाज्ञान था। अब ऊंचा नीचा आवना पांखका हलावना इत्यादि क्रिया चिन्हकरि ऐसा निश्चय भया जो या बगलांकीही पंक्ति है अन्य ध्वजादिक कछूही नाहीं ऐसा निश्चयरूप ज्ञानकूं अवाय कहिए हैं। अवायकरि निश्चयकिया जो वस्तु ताका ऐसा दृढज्ञान होय जो कालांतरमैं भूलैं नहीं सो धारणाज्ञान है। अब ए कहे जे अवग्रहादिक मतिज्ञानके भेद ते कौंनके होंय इस हेतुतैं सूत्र कहैहैं—

बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणां ॥ १६ ॥

अर्थ—बहु बहुविध क्षिप्र अनिःसृत अनुक्त ध्रुव ए छह अर छहही याके प्रतिपक्षी कहिए अल्प अल्पविध अक्षिप्र निःसृत उक्त अध्रुव ए छह ऐसैं बारह भए इनिका ज्ञान अवग्रहादिकतैं होय है। बहु शब्द इहां संख्यावाची तथा विपुल कहिए समूहका वाचक है। जैसैं बहुत गायिनमैं खांडी, मुंडी, धौली, काली कावरी अनेक हैं। इनिका समूहकूं ग्रहणकरै सो बहु अवग्रहादिक है १। बहुरि जैसैं सेनामैं हस्ती घोडा ऊंट बलध भैंसा इत्यादिक अनेक जातिका ग्रहण करनेवाला हू बहुविध अवग्रहादिक है। २। शीघ्रतातैं पडता जो जलका प्रवाहादिक ताका ग्रहण सो क्षिप्रग्रहण है। ३। बहुरि जलमैं मग्न जो हस्ती मनुष्यादिक ताका ग्रहण सो अनिःसृत ग्रहण है। ४। बहुरि वचनतैं कह्या विना अभिप्रायतैं जानना सो अनुक्तग्रहण है। ५। बहुरि बहुत काल जैसाका तैसा निश्चल ग्रहण होय वा पर्वतादिक

परिणम्या पुद्गलस्कंध ते दोय तीन आदि समयनिमें ग्रह्या हुवा जेतै व्यक्त ग्रहण नहीं होय तेतै तो व्यंजनावग्रह होय है। वहुरि फेर फेर तिनका ग्रहण होय तव व्यक्त होय तवही अर्थावग्रह होय है। ऐसैं व्यक्तग्रहणतैं पहले तो व्यंजनावग्रह कहिए। वहुरि व्यक्त ग्रहणकूं अर्थावग्रह कहिए। इहां व्यंजनावग्रहका सर्व इंद्रियनिकै प्रसंग आया यातै जिन इंद्रियनकै व्यंजनावग्रह नांहीं संभवै तिनका निषेधकै अर्थि सूत्र कहे हैं—

न चक्षुरनिंद्रियाभ्यां ॥ १९ ॥

अर्थ—नेत्र इंद्रिय अर मन इंद्रिय दोऊनिकर व्यंजनावग्रह नहीं होय है। जातैं नेत्रइंद्रिय अर मन ए दोऊ पदार्थनितैं भिडकरि नाहीं जानै हैं अपने विषयकूं दूरिहीतैं जानैं हैं, याते ए दोऊ इंद्रिय अप्राप्यकारी हैं। जैसैं नेत्र आपके मध्य तिष्ठता अंजनकूं नाहीं जानै है दूरि तिष्ठता पदार्थकूं ही जानै है। अर मन है सोहू दूरि तिष्ठता पदार्थकूं विचारमैं लेहै। ऐसैं नेत्र अर मन ए दोऊ अप्राप्यकारी हैं। यहां कोऊ कहै जैसैं नेत्रइंद्रिय दूरितैं जानै है तैसैं कर्णइंद्रिय हू शब्दकूं दूरिहीतैं सुणै है। तातैं कर्णइंद्रियहूकूं अप्राप्यकारी कहो। ताकूं कहिए है—ऐसैं नाहीं है नेत्र अर मनविना अवर शेष च्यार इंद्रियनिविषै जव अपना अपना विषय आनि भिडै है तव ताकूं जानै हैं। जैसैं जिस ठिकानेतैं शब्द उपजे हैं तहांतैं लगाय केतेक क्षेत्रपर्यंतके पुद्गल शब्दरूप हो जाय हैं। तहां कर्णइंद्रियके समीपवर्त्तीभी पुद्गलस्कंध शब्दरूप होय कर्णइंद्रियतैं भिडै हैं तव सुनिए हैं। ऐसैं कर्णइंद्रिय प्राप्यकारी है। ऐसैंही गंधादिक जानने। गंधद्रव्य जहां तिष्ठै तहांतैं लगाय केतेक क्षेत्रपर्यंतके पुद्गलस्कंध गंधरूप होय परिणमैं हैं। तहां नासिका इंद्रियके समीपवर्त्ती पुद्गलस्कंध गंधरूप होय नासिका इंद्रियतैं भिडैं

ध्रुवपदार्थका ग्रहण होय सो ध्रुवग्रहण है। ६। वहुरि अल्पका ग्रहण वा एकका ग्रहण होना सो अल्पग्रहण है। ७। वहुरि एक प्रकारका घोडा ऊँट बलध मनुष्यादिकानिमैं एकजातिहीका ज्ञान में ग्रहण होना सो एकविध ग्रहण है। ८। वहुरि मंदगमन करता अश्वादिकका ग्रहण सो अक्षिप्र ग्रहण है। ९। वहुरि बाह्य निकलि प्रकट हुवाका ग्रहण सो निःसृतग्रहण है। १०। वहुरि यो घट है ऐसैं कह्या हुवाका ग्रहण सो उक्तग्रहण है। ११। वहुरि क्षणमात्र स्थिति रहता जो वीजली इत्यादिकका ग्रहण सो अध्रुवग्रहण है। १२। ऐसैं अवग्रह वारह प्रकार कह्या तैसैंही बारह बारह प्रकार ईहा अवाय धारणा होय हैं। ते सव मिलि एक इंद्रियद्वारैं अडतालीस भेद भए। तव पांच इंद्रिय छठा मन इनि छहूनिसूं गुणें दोयसैं अठ्यासी भेद होय हैं। अव ए दोयसै अठ्यासी भेद कौनके हैं इस वास्ते सूत्र कहैं हैं-

अर्थस्य ॥ १७ ॥

अर्थ—ए बहु आदिक बारह भेद कहे ते इंद्रियानिके विषयमैं आवता जो अर्थ ताके भेद हैं। ए कहे जे अवग्रहादिक ज्ञान ते इंद्रिय अनिंद्रियकै होयहैं कि किछु विशेष है इस हेतुतैं सूत्र कहे हैं—

व्यंजनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

अर्थ—व्यंजन जो अप्रकट शब्दादिक ताका अवग्रह ही होयहै ईहादिक नहीं होयहैं। इहां ऐसा जो-अर्थावग्रह व्यंजनावग्रह इनि दोऊनिमैं व्यक्तपणा अर अव्यक्तपणा विशेष है सो ही कहिए जैसैं नवा मांटीका सरावाविषैं जलकाकण क्षेपिए तहां दोय तीन आदि कणानिकरि सींच्या जेते आला नहीं होय तेतैं अव्यक्त है तिनकूं व्यंजन कहिए वहुरि सोही सरावा फेरि फेरि सींच्याहुवा मंद मंद आला होय तव व्यक्त होय तैसैंही श्रोत्रादिक इंद्रियनिका अवग्रहविषैं ग्रहण योग्य जे शब्दादिरूप

णवें लक्ष सोलह हजार पद हैं। बहुरि ग्यारमा विपाकसूत्र नामा अंग है तिस विषै कर्मनिका बंध उदय सत्ता अर तीव्र मंद अनुभाग द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा करि इनिका वर्णन है याके एक कोटी चोराशी लक्ष पद हैं। बहुरि बारमां दृष्टिप्रवाद नामा अंग है ताके एकसो आठ कोडी अडसटी लाख छपन्न हजार पांच पद हैं। ताके पंच भेद हैं। प्रथम भेद पंचप्रकार परिकर्म है, दूसरा सूत्र नाम भेद, तीजा प्रथमानुयोग, चौथा चतुर्दशपूर्वगत है। पांचमा भेद पंचप्रकार चूलिका है। तिनमें पहला भेद जो परिकर्म ताके पांच भेद हैं। तिसका पहिला भेद जो चंद्रप्रज्ञप्ति तामें चंद्रमाका गमनादि तथा परिवार आयु अर कालकी हानि वृद्धि देवी विभवादिक ग्रहणादिका वर्णन है। याके छत्तीस लक्ष पचास हजार पद हैं। बहुरि दूसरी सूर्यप्रज्ञप्ति है। तिसविषै सूर्यकी ऋद्धि विभव देवी परिवारादिकका वर्णन है। याके पांच लक्ष तीन हजार पद हैं। परिकर्मका तीजा भेद जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति है। यामें जंबूद्वीपसंबंधी मेरुगिरी क्षेत्र कुलाचल हृद नदी इत्यादिकनिका वर्णन है। याके तीन लक्ष पचीस हजार पद हैं। बहुरि परिकर्मका चौथा भेद द्वीपसागर प्रज्ञप्ति है। तिस विषै समस्त द्वीपसागरनिका स्वरूप अर तहां तिष्ठते भवन वासी व्यंतरज्योतिष्कनिके आवासका वर्णन तथा तहां तिष्ठते जिनमंदिरनिका वर्णन है। याके बावन लक्ष छत्तीस हजार पद हैं। बहुरि परिकर्मका पांचमा भेद व्याख्याप्रज्ञप्ति है। तिस विषै जीव अजीव पदार्थनिके प्रमाणका वर्णन है। याके चोरासी लक्ष छत्तीस हजार पद हैं। बहुरि बारमा अंगका दूजा भेद सूत्र नाम है। तिस विषै मिथ्यादर्शनसंबंधी तीनसै त्रेसठि कुवाद हैं। तिनका पूर्वपक्ष लेयकरि तिनका जीवादिपदार्थनि के ऊपरी लगावनेका वर्णन है। तहां जीव अबंधक ही है, अकर्त्ताही है, निर्गुण ही है, अभोक्ताही है, स्वप्रकाशकही है, परप्रकाशकही है, अस्तिरूपही है, नास्तिरूपही है, इत्यादि

अपेक्षा समानताका वर्णन है। जैसैं द्रव्यकरि धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय समान हैं। क्षेत्रकरि मनुष्यक्षेत्र अर प्रथम नरकका प्रथम इंद्रकविलै अर प्रथमस्वर्गका प्रथम इंद्रक विमान समान हैं। कालकरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी समान हैं। भावकरि केवलज्ञान केवलदर्शन समान हैं। याके एक लक्ष चौसट हजार पद हैं। बहुरि पांचमा व्याख्याप्रज्ञप्ति नामा अंग है। तिसमें जीवके अस्तिनास्ति इत्यादिक साठीहजार प्रश्न गणधरदेव तीर्थंकर भगवानके निकटि कीए तिनका वर्णन है याके दोय लक्ष अठाईस हजार पद । बहुरि छट्ठा ज्ञातृधर्मकथा नामा अंग है तिस विषै तीर्थंकरनिके धर्मकी कथा तथा जीवादिक पदार्थनिका स्वभावका वर्णन तथा गणधरके प्रश्ननिके उत्तरका वर्णन है। इस अंगकूं धर्मकथाहू कहैहैं। याके पांचलक्ष छप्पन-हजार पद हैं । बहुरि सातवां उपासकाध्ययन नामा अंग है तिस विषै ग्यारह प्रतिमा आदि श्रावकव्रत शील आचार क्रिया मंत्रोपदेशादिकका वर्णन है। याके ग्यारह लक्ष सतरह हजार पद हैं। बहुरि आठमा अंतकृद्दशांग नामा अंग है । तिसविषै एक एक तीर्थंकरनिकै वारै दश दश महामुनि तीव्र उपसर्ग सहि कर्मनिका नाश करि संसारका अंत करते भए तिनका वर्णन है याके तेवीस लक्ष अठाईस हजार पद हैं । बहुरि नवमा अनुत्तरोपपादकदशांगनामा अंग है तिस विषै एक एक तीर्थंकरनिके वारै दश दश महामुनि घोर उपसर्ग सहिकरि विजयादिक पंच अनुत्तरविमानमें उत्पन्न भए तिनका वर्णन है। याके बाणवे लक्ष चवालीस हजार पद हैं। बहुरि दशमा प्रश्नव्याकरण नामा अंग है। तिस विषै अतीत अनागत कालसंबंधी लाभ अलाभ सुख दुःख जीवित मरणादि शुभाशुभका केई प्रश्न करैं ताका उत्तर यथार्थ कहनेका उपाय वर्णन हैं। तथा आक्षेपिणी विक्षेपिणी संवेदिनी निर्वेदिनी जे चार प्रकारका कथा तिनिका यामें वर्णन है। याके तिरा-

आत्मप्रवादपूर्व है। तिस विषै आत्मा जो जीवपदार्थ ताके कर्त्ता भोक्ता आदि अनेक धर्मनिका निश्चय व्यवहार अपेक्षा वर्णन है। तहां व्यवहारनयकरि च्यार प्राण वा दश प्राण अर निश्चयनयकरि चैतन्यप्राणकूं धारै है। तीन काल विषै प्राणधारण किया करै है करैगा ताकूं जीव कहिए। व्यवहारकरि शुभाशुभ कर्मको अर निश्चयकरि निजपरिणति को करै है तातैं कर्त्ता कहिये। व्यवहारकरि सत्य असत्य वचन बोलनेतैं वक्ता है निश्चयकरि वक्ता नहीं है। बहुरि दोऊ नयनिकरि बाह्य अभ्यंतर प्राण याकै पाईए, तातैं प्राणी कहिए है। व्यवहारकरि शुभाशुभकर्मकूं अर निश्चयकरि निजस्वरूपकूं भोगवै है तातैं भोक्ता कहिये। व्यवहारकरि कर्मनोकर्मरूप पुद्गलनिकूं पूरण गलन करैहै, तातैं पुद्गल है। निश्चयनयकरि पुद्गल नहीं है। दोऊ नयनिकरि त्रिकालवर्ती सर्व ज्ञेयकूं "वेत्ति" कहिए जानै है, तातैं वेदक कहिए। बहुरि व्यवहारकरि अपने देहकूं वा केवलसमुद्घातकरि सर्वलोककूं अर निश्चयनयकरि ज्ञानतैं सर्वलोककूं "वेष्टि" कहिए व्यापै है, तातैं विष्णु कहिये। बहुरि यद्यपि व्यवहारकरि कर्मके वशतैं संसारविषै परिणमै है, तथापि निश्चयकरि स्वयं आपके दर्शनज्ञानस्वरूपहीकरि भवति कहिये परिणमै तातैं स्वयंभू कहिए। बहुरि व्यवहारकरि औदारिकादि शरीर याकै हैं तातैं शरीरी कहिए निश्चयकरि शरीरी नाहींहै व्यवहारकरि मनुष्यादिपर्यायरूप परिणमै तातैं मानव कहिए। निश्चयकरि मनु कहिए ज्ञान तिसविषै भवति कहिए सत्तारूप है तातैं मानव कहिए। इत्यादि आत्माके स्वभावका कथन है, तातैं आत्मप्रवादपूर्व है। याकै छव्वीस कोटी पद हैं। बहुरि कर्मप्रवादनामा आठमा पूर्व है। तिसविषै ज्ञानावरणादि कर्मनिकी मूलप्रकृति उत्तरप्रकृति उत्तरोत्तरप्रकृति भेद लिए बंध सत्ता उदय उदीरणा उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण उपशम निधत्ति निःकांचितादि अवस्थानिका वर्णन है। तथा चित्तादिकनिकी

एकांतके पक्षपातको दूरिकरि यथार्थस्वरूपका वर्णन है। याके अठ्यासी लक्ष पद हैं। बहुरि बारमा अंगका तीजा भेद प्रथमानुयोग है। तिस विषै चतुर्विंशति तीर्थंकर द्वादशचक्रवर्ती नव नारायण नव प्रतिनारायण नव बलिभद्र इन त्रिसठी उत्तम पुरुषनिका वर्णन है। याके पांच हजार पद हैं। बहुरि बारमा अंगका चौथा भेद पूर्वगत है ताके चोदह भेद हैं। तहां प्रथम उत्पादनामा पूर्व है। तिस विषै जीव पुद्गल कालादिकनिका जिस कालमें जिस क्षेत्रमें जैसे पर्यायनिकरि उत्पाद व्यय ध्रौव्यादि धर्मनिकी अपेक्षाकरि स्वभाव वर्णन कीया है। याके एक कोटी पद हैं। बहुरि दूजा अग्रायणीयपूर्व है। तिस विषै सप्ततत्त्व नवपदार्थ षट्द्रव्य अर सुनय दुर्नयनिका वर्णन है। याके छिनवै लक्ष पद हैं। बहुरि तीजा वीर्यानुवादपूर्व है। तिस विषै आत्मवीर्य परवीर्य उभयवीर्य क्षेत्रवीर्य कालवीर्य भाववीर्य तपोवीर्य अर इंद्रादिककी ऋद्धि तथा नरेंद्र चक्रधर बलदेवादिकनिका वीर्य, लाभ संपत्ति आदिकनिका वर्णन किया है याके सतरि लक्ष पद हैं। बहुरि चौथा अस्तिनास्तिप्रवाद नामा पूर्व है। तिस विषै जीवादिक वस्तुनिके स्व पर द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षाकरि अस्तिनास्ति आदि अनेक धर्मनिविषै विधिनिषेधकरि सप्तभंगकरि कंथचित् शब्दकरि विरोध मेटनेरूप मुख्य गौणकरि वर्णन है। याके साठि लक्ष पद हैं। बहुरि पांचमा ज्ञानप्रवाद नामा पूर्व है। तिसमैं मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल इनि पंचज्ञाननिका अर कुमति कुश्रुत विभंगनिका स्वरूप संख्या विषय फलादिकका वर्णन है। याके एक घाटि कोटि पद हैं। बहुरि छठा सत्यप्रवाद पूर्व है। तिस विषै वचनगुप्तिका अर वचनके संस्कारके कारण अर द्वादश प्रकार भाषा अर वक्ताके भेद अर बहुत प्रकार असत्यके भेद अर दश प्रकार सत्यका प्ररूपणका वर्णन है। याके एक कोटि अर छ पद हैं। बहुरि सातमा

कोटी पद हैं। वहुरि चोदमा त्रिलोकविंदुसार नामा पूर्व है। तिस विषै तीन लोकका स्वरूप षड्विंशति परिकर्म अर आठ व्यवहार च्यारि वीजगणितादिक अर मोक्षका स्वरूप मोक्षका कारणभूत क्रिया अर मोक्षका सुख इनिका वर्णन है। याके साढा वारा कोटी पद हैं। वहुरि वारमा अंगका पांचमा भेद चूलिका है। ताके पांच भेद हैं। जलगता १, स्थलगता २, मायागता ३, रूपगता ४, आकाशगता ५ ऐसें पांच भेद हैं। तहां जलगताचूलिकामें जलका स्तंभन करना जलविषै गमन करना अग्निका स्तंभन करना अग्निमें प्रवेश करना अग्निका भक्षण करना इत्यादिकके कारणरूप मंत्र तंत्रादिका प्ररूपण है। याके दोय कोटी नव लक्ष निवासी हजार दोयसै पद हैं। वहुरि दूजी स्थलगताचूलिकाविषै मेरुपर्वत भूमि इत्यादिकनिमें प्रवेश करना शीघ्र गमन करना इत्यादिक क्रियाके कारणभूत मंत्रतंत्रादिकका प्ररूपण है याके दोय कोटी नव लक्ष निवासी हजार दोयसै पद हैं। वहुरि तीजी मायागताचूलिका है यामें मायामयी इंद्रजालादिविक्रियाके कारण मंत्र तंत्र आचरणादिकका प्ररूपण है याकेहू दोय कोटी नव लक्ष निवासी हजार दोयसै पद हैं। वहुरि चोथी रूपगता चूलिका है। यामें सिंह हस्ति घोडा वैल हरिण इत्यादि रूपके पलटनेका कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादिकका प्ररूपण है। तथा चित्राम काष्ठलेपादिकका वर्णन है। तथा धातु रस रसायनका निरूपण है। याकेहू दोय कोटी नव लक्ष निवासी हजार दोयसै पद हैं। वहुरि पंचमी आकाशगता चूलिका है। यामें आकाशमें गमनादिकका कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादिकका वर्णन है। याकेहू दोय कोटी नव लक्ष निवासी हजार दोयसै पद हैं। ऐसें दृष्टिवाद नामा वारमा अंगका भेद कह्या।

अब अंगवाह्यश्रुतके जे आठ कोडी एक लक्ष आठ हजार एकसो पिचहतरि अक्षर रहे तिनके चोदह

निकै व्रत नियम तपश्चरणादिक है नहीं तातैं देव नारकीनिकै अपना देवनारकका भव पावनाही क्षयोपशमनैं कारण है। तपश्चरण व्रत कारण नाहीं, जातैं भवप्रत्ययअवधिज्ञानकूं भवही प्रत्ययकहिये कारण है। तातैं भवप्रत्ययनाम अवधि देवनारकीनिकै होय है। सो देशावधि है। अर देवनारकीनिकै अवधितैं जानना समस्तनिकै समान नाहीं है। जैसा जैसा क्षयोपशम तैसा तैसा अवधितैं द्रव्य क्षेत्र काल भावका नियमकरि जानना होय है। अर सम्यग्दृष्टीनिकैं ही अवधिज्ञान होय है। मिथ्यादृष्टनिकै विभंग कहावै है। अव क्षयोपशमनिमित्त अवधिज्ञान कौंनकै है यातैं सूत्र कहैं है—

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणां ॥ २२ ॥

अर्थ—अवधिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम है निमित्त जाकूं ऐसा अवधिज्ञान षट्प्रकार है सो शेष जे मनुष्य तिर्यंच तिनकै होयहै। सो अवधिज्ञान समस्त मनुष्य तिर्यंचनिकै नहीं होयहै। सैनी पंचेंद्रियकैही होयहै। अर सम्यग्दर्शनादिक निमित्तकूं होतैंसंतैं कोऊकै अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम होतैं होयहै। तातैं गुणप्रत्यय कहिए है। सो गुणप्रत्यय अवधि छह भेदरूप है। १ अनुगामी, २ अननुगामी, ३ वर्द्धमान, ४ हीयमान, ५ अवस्थित, ६ अनवस्थित। तहां जो अवधिज्ञान अपना स्वामी जीवकै साथिही गमन करै ताकूं अनुगामी कहिए। ताके तीन भेद हैं। १ क्षेत्रानुगामी, २ भवानुगामी, ३ उभयानुगामी।

तहां जिस जीवकै जिस क्षेत्रविषैं अवधिज्ञान उपजा तिस जीवकूं अन्य क्षेत्रमें गमन करतैं साथिही गमन करै सो क्षेत्रानुगामी है। वहुरि जो परभवकूं गमन करते जीवकै परलोकपर्यंत अवधि जाय सो भवानुगामी है। वहुरि जो अवधि अन्य क्षेत्रविषैभी साथि जाय अर अन्यभवविषैभी साथि जाय सो

उभयानुगामी है। बहुरि जो अवधिज्ञान अपना स्वामी जीवकै साथि गमन नही करै सो अननुगामी अवधि है। ताकै तीन भेद हैं १ क्षेत्राननुगामी, २ भवाननुगामी, ३ उभयाननुगामी। तहां जो अन्य क्षेत्रविषै गमन करता जीवकै साथि न जाय सो क्षेत्राननुगामी है। बहुरि जो अन्य भवविषै गमन करता जीवकै साथि नहीं जाय सो भवाननुगामी है। बहुरि जो अन्यक्षेत्रविषै गमन करता जीवकै साथि नहीं जाय वा परभवविषैभी साथि नहीं जाय सो उभयाननुगामी है। बहुरि जो सम्यग्दर्शनादि गुणरूप विशुद्धपरिणामनिकी वृद्धि होनेतैं जिस प्रमाणको लीए उपज्या तातैं वढताही चल्याजाय सो वर्धमान अवधिज्ञान है। बहुरि जो सम्यग्दर्शनादि गुणकी हानि अर संक्लेशपरिणामनिकी वृद्धिके योगतैं जो ज्ञान घटताही जाय सो हीयमान अवधिज्ञान है। बहुरि जो अवधिज्ञान जेते परिणामको लीए उपजै तेताही रहै घटै वधै नहीं सो अवस्थित अवधिज्ञान है। बहुरि जो अवधिज्ञान जेते परिणामको लिए उपजै तातैं घटैभी वधैभी। जैसैं पवनका वेगकरि प्रेर्‍या जल वारवार हानिवृद्धिरूप होय तैसैं अनवस्थित अवधिज्ञान है। ऐसैं गुणप्रत्ययदेशावधिज्ञान है ते छह भेदरूप है। अथवा प्रतिपाती अप्रतिपाती भेदसहित आठ भेदरूप भी हैं। बहुरि आगमविषै देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसा भेद कह्या है। तिनमैं देशावधि छह भेदरूप वा आठ भेदरूप जानना। अर परमावधि सर्वावधि केवलज्ञान उपजै तहां ताई अनुगामी ही हैं। अर परमावधि सर्वावधिका धारक अन्य भव नाहीं धारै तातैं भवांतर का अभावकी अपेक्षा अननुगामी भी कहिए अर ए दोऊ अप्रतिपातीही हैं। केवलज्ञान उपजै तहां तांई छूटै नाहीं। बहुरि परमावधि हैं सो वर्धमानस्वरूपही है हीयमान नाहीं। बहुरि परमावधि सर्वावधि हैं सो चरमशरीरी तद्भवमोक्षगामी संयमी मुनीहीकै होय हैं। अन्य तीर्थंकरादिक गृहस्थ मनुष्य तिर्यंच देव नारकीनिकै नाहीं होय। ४१

इनिकै देशावधिहीकी योग्यता है बहुरि परमावधि सर्वावधि दोऊ गुणप्रत्ययही हैं । उत्कृष्ट संयमादि गुणनितैंही उपजै हैं। अर देशावधिज्ञान गुणप्रत्यय भवप्रत्यय दोऊ प्रकार होय है। बहुरि जो भवप्रत्यय अवधिज्ञान है सो नारकीनिकै देवनिकै चरमभवधारक तीर्थंकरनिकै होय है। सो सर्व आत्माके प्रदेशनिमैं तिष्ठता जो अवधिज्ञानावरण अर वीर्यांतराय कर्मतिनिके क्षयोपशमतैं समस्त अंगतैं उपजैं है। अर गुणप्रत्यय अवधिज्ञान है सो पर्याप्तमनुष्यानिकै तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्ततिर्यंचानिकैं उपजै है सो नाभीकै ऊपरि शंख पद्म वज्र स्वास्तिक मत्स्य कलशादिक शुभचिन्हकरि सहित आत्माके प्रदेशनिमैं तिष्ठता जो अवधिज्ञानावरण तथा वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमतैं उत्पन्न होयहै । बहुरि अवधि नाम मर्यादाका है सो ये अवधिज्ञान द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादा लीए होय है सो इस द्रव्य क्षेत्र काल भावका प्रमाण गोमट्टसारतैं वा राजवार्तिकतैं जानना। ऐसैं अवधिज्ञानका वर्णन किया यहां इतना विशेष जानना। देशावधि, परमावधिका तो क्षयोपशम अपेक्षा बहुत भेद हैं। सर्वावधिका भेद एकही है। आर्यिकानिकैं वा श्राविकानिकैं देशावधिही होय है सर्वावधि, परमावधि नही होय है । अब मनःपर्ययज्ञानका भेदादि कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥ २३ ॥

अर्थ—ऋजुमतिमनःपर्यय अर विपुलमतिमनःपर्यय ऐसैं मनःपर्ययके दोय भेद हैं। मन वचन कायका सरलपणाकरि मनमैं तिष्ठता रूपीपदार्थ तथा परके मनमैं तिष्ठता पदार्थकूं जाणै सो ऋजुमतिमनःपर्यय है। बहुरि सरल तथा वक्ररूप परके मनमें तिष्ठता रूपीपदार्थकूं जानैं सो विपुलमतिमनःपर्यय है । देव मनुष्य तथा तिर्यंच इनि सबनिके मनविषै प्राप्तभया रूपी पुद्गलद्रव्य तथा संसारी जीव द्रव्य तिन समस्त-

समस्तपर्यायनिकूं नहीं जानैं है। इहां सूत्रमैं विषय शब्द नहीं है सो "विशुद्धिक्षेत्र" इत्यादिसूत्रतैं अनुवृत्ति आई है सो जाननी। इहां "द्रव्येषु" ऐसा बहुवचनतैं जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल आकाश ए समस्त द्रव्य ग्रहण करने, तिनके असर्वपर्याय कहिए केईक पर्याय लेने सर्वपर्यायनिसहित इनका विषय नाहीं है। जातैं एकएक द्रव्यके अनंत अनंत त्रिकाल संबंधी पर्याय हैं। इहां कोऊ कहै, धर्मास्तिकायादिक अमूर्तिक द्रव्य हैं सो मतिज्ञानका विषय कैसैं होय यातैं सर्वद्रव्यनिविषै मतिज्ञान प्रवर्त्तै है ऐसैं कहना अयुक्त है। ताकूं कहिए है ए दोष नाहीं है। जातैं अनिंद्रिय कहिए मन नामा अंतरंग करण है द्रव्यमन है तिसका अवलंबनका धारक नोइद्रियावरणकर्मके क्षयोपशमरूप लब्धिपूर्वक उपयोग है। सो अवग्रहादिरूप पहले उपजै है पाछै तत्पूर्वक श्रुतज्ञान सर्वद्रव्यनिविषै आपके योग्य पर्यायनिविषै प्रवर्त्तै है ऐसा जानना। अब याकै अनंतर अवधिज्ञानका विषयनिबंध कहा है यातैं सूत्र कहैं हैं—

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

अर्थ—अवधिज्ञानका विषयका नियम रूपीपदार्थनिविषै है। इहां सूत्रविषै विषयनिबंध शब्दकी अनुवृत्ति पहिले सूत्रतैं लेनी। तथा "सर्वपर्यायेषु" इस पदकी हू पूर्वसूत्रतैं अनुवृत्ति लेणी। बहुरि रूपी कहनेतैं पुद्गलद्रव्य ग्रहण करना पुद्गलकीही कितनेक पर्यायनिकू जानै है अर पुद्गलद्रव्य का संबंधसहित जीवद्रव्यहूकूं जानैं है। मुक्तजीवकूं तथा अन्य अमूर्तिक पदार्थनिकूं नहीं जानैं है। अर अपने क्षयोपशमकै योग्य सूक्ष्म स्थूल रूप परणए तथा दूर क्षेत्र वा निकट क्षेत्रमैं वर्त्तते तथा अतीत अनागत वर्त्तमान कितनेक पर्यायसहित पुद्गलद्रव्यको साक्षात् प्रत्यक्ष जानै है अब मनःपर्ययज्ञानका विषयका नियम कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

का फल प्रकट होना अपना रस देना सो उदय है। उदयतैं भाव होय सो औदयिकभाव हैं ॥४॥ बहुरि जहां कर्मकी अपेक्षा नहीं द्रव्यका आत्मस्वरूपही आत्मपरिणामही जाकूं निमित्त होय सो पारिणामिकभाव हैं ॥ ५ ॥ ऐसें ए जीवके पांच भाव कहे अब इन पंचभावनिके भेद कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमं ॥ २ ॥

अर्थ—औपशमिकभाव दोय प्रकार है। क्षायिकभाव नव प्रकार है। मिश्रभाव अठारह प्रकार हैं। औदयिकभाव इकवीस प्रकार हैं। पारिणामिकभाव तीन प्रकार हैं ऐसें पंचभावनिके त्रेपन भेद हैं। अब उपशमभावनिके दोय भेदनिकूं कहैं हैं—

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

अर्थ—उपशमसम्यक्त्व अर उपशमचारित्र ऐसे उपशमभाव दोय प्रकार है। तहां अनंतानुबंधी क्रोधमानमायालोभ ए चारित्रमोहकी च्यारि अर मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्व अर सम्यक्त्व ए तीन प्रकृति दर्शनमोहनीकी ऐसें सप्तप्रकृतिनका उपशम होनेतें उपशमसम्यक्त्व होय है। अर समस्त चारित्रमोहनीयकर्मकेउपशमतें उपशमचारित्र होय है। कोऊ पूछें अनादिमिथ्यादृष्टीभव्यकै कर्मके उदयकरि कलुपता होतेंसंतें सप्तप्रकृतिनका उपशम होना कैसें होय। ताका उत्तर कहै हैं—जो काललब्ध्यादिककनिकी अपेक्षातें सप्तप्रकृतिनका उपशम होय है सो कौनकै होय, सो कहैंहैं—नरकादि च्यारोंगतिहीमें अनादि वा सादि मिथ्यादृष्टी संज्ञी पर्याप्त गर्भज मंदकपायका धारक ज्ञानोपयोगी जागृत अवस्थामें करणलब्धिविषै उत्कृष्ट जो अनिवृत्तिकरण ताका अंतसमयविषै प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहण होय है। इहां ऐसा जानना जो मिथ्यादृष्टिगुणस्थानतें छूटि उपशमसम्यक्त्व होय ताका नाम प्रथमोपशमसम्यक्त्व है। अर उप- ६९

# अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

दोहा ।

राजैं सहजस्वभावतैं, तजि परभाव विभाव ।
नमो आप्तके परमपद, प्रकटै शुद्धस्वभाव ॥ १ ॥

**औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥**

*अर्थ*—औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक, पारिणामिक ए जीवके पांच भाव हैं । ते जीवके निजतत्त्व हैं॥ जैसैं मलिनजलके विषै कतकादिद्रव्यका मिलापतैं कर्दम मल तो नीचैं बैठिजाय है जल उज्वल होय जाय है तैसैं कारणके वशतैं प्रतिपक्षी कर्मकी शक्तिका उदय नहीं होना आत्माकी विशुद्धता होना सो उपशमभाव है ॥ १ ॥ बहुरि जैसैं कतकद्रव्यके संबंधतैं जाका कर्दम तो नीचे बैठिगया अर जल ऊपरि निर्मल होइ गया तिस जलकूं अन्य पवित्र उज्वल भाजनमैं धारण किया कर्दम निकासि दूरि डारि दिया तिस जलमैं अत्यंत उज्वलता रहै है तैसैं प्रतिपक्षी कर्मका अत्यंत अभाव होतासंता आत्माके भावनिमैं अत्यंत विशुद्धता होना सो क्षायिकभाव हैं ॥ २ ॥ बहुरि जैसैं प्रक्षालनिके वसतैं मथेभये कोदूनिमैं मदशक्तिका कुछ क्षीणपणा कुछ अक्षीणपणा प्रकट होय है तैसैं क्षयोपशमरूप कारणके वशतैं प्रतिपक्षी कर्मके सर्वघातिस्पर्द्धकनिका उदय नहीं होना सो उदयाभावी क्षय अर उपरितन निषेकनिका सत्तामैं उपशम रहना अर देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होना सो क्षायोपशमिकभाव है याहीकूं मिश्रभाव कहिए है ॥ ३ ॥ बहुरि द्रव्य क्षेत्रकाल भावरूप निमित्तके वशतैं विपच्यमान कर्म-

का फल प्रकट होना अपना रस देना सो उदय है। उदयतें भाव होय सो औदयिकभाव है ॥४॥ बहुरि जहां कर्मकी अपेक्षा नहीं द्रव्यका आत्मस्वरूपही आत्मपरिणामही जाकूं निमित्त होय सो पारिणामिकभाव है ॥ ५ ॥ ऐसें ए जीवके पांच भाव कहे अब इन पंचभावनिके भेद कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमं ॥ २ ॥

[illegible]र्थ—औपशमिकभाव दोय प्रकार है। क्षायिकभाव नव प्रकार है। मिश्रभाव अठारह प्रकार हैं। औदयिकभाव इकवीस प्रकार हैं। पारिणामिकभाव तीन प्रकार हैं ऐसें पंचभावनिके त्रेपन भेद हैं। अब उपशमभावनिके दोय भेदनिकूं कहैं हैं—

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

अर्थ—उपशमसम्यक्त्व अर उपशमचारित्र ऐसे उपशमभाव दोय प्रकार है। तहां अनंतानुबंधी क्रोध-[illegible]मायालोभ ए चारित्रमोहकी च्यारि अर मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्व अर सम्यक्त्व ए तीन प्रकृति [illegible]मोहनीकी ऐसें सप्तप्रकृतिनका उपशम होनेतें उपशमसम्यक्त्व होय है। अर समस्त चारित्रमोहनीय-[illegible] उपशमतें उपशमचारित्र होय है। कोऊ पूछैं अनादिमिथ्यादृष्टीभव्यकै कर्मके उदयकरि कलुषता [illegible] प्रकृतिनका उपशम होना कैसें होय। ताका उत्तर कहे हैं—जो काललब्ध्यादिककनिकी अपे-[illegible] प्रकृतिनका उपशम होय है सो कौनकै होय, सो कहैंहैं—नरकादि च्यारोंगतिहीमें अनादि वा [illegible] पर्याप्त गर्भज मंदकषायका धारक ज्ञानोपयोगी जागृत अवस्थामें करणलब्धि-[illegible]करण ताका अंतसमयविषै प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहण होय है। इहां ऐसा जान-[illegible] छूटि उपशमसम्यक्त्व होय ताका नाम प्रथमोपशमसम्यक्त्व है। अर उप-

तिर्यंच पंचेंद्रिय पर्याप्तके उपजे तो जन्म लीएतैं पृथक्त्वदिवस उपरांति उपजै पहली नहीं उपजे। सो समस्तही द्वीपसमुद्रनिविषै जातिस्मरण धर्मश्रवण तथा जिनविंबदर्शन इन तीन कारणनिकरि सम्यक्त्व उपजै है। अर मनुष्यनिमैं हू पर्याप्त अवस्थाहीमै उपजै अर अष्टवर्षप्रमाण अवस्थाकै उपरिही उपजै पहली नहीं उपजे। तिनकै जातिस्मरण तथा धर्मश्रवण तथा जिनविंबदर्शन इन तीन कारणनिकरि सम्यक्त्व उपजै। बहुरि देवपर्याप्तनिकै अंतर्मुहूर्तके ऊपरि उपजै तिनमैं भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी अर सहास्रारपर्यंत द्वादश स्वर्गके कल्पवासीनिकै जातिस्मरण धर्मश्रवण तथा जिनमहिमादर्शन अर अन्य देवनिकी ऋद्धिके देखनेतैं प्रथमसम्यक्त्व उपजै है। अर तेरमा स्वर्गलोकनैं आदिकरि उपरिमैं ग्रैवेयकनिपर्यंत देवनिकै एक देवऋद्धिदर्शनविना तीन कारणनिकरि सम्यक्त्व उपजै है। अर नव अनुदिश अर पंच अनुत्तरवासी देव हैं ते पूर्वजन्मतैं ही सम्यक्त्व लिए उपजै हैं। वहां मिथ्यादृष्टीनिका उत्पाद ही नहीं है। बहुरि अष्टाविंशतिप्रकार मोहनीयका उपशम होनेतैं उपशमचारित्र होयहै। सो उपशमचारित्र ग्यारमैं गुणस्थानमैं ही होय है। अब नवप्रकारके क्षायिकभाव कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥

अर्थ—केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य, बहुरि चकारके कहनेतैं क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र ए नव क्षायिकभाव हैं। तिनमैं ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्मके अत्यंत क्षय होनेतैं ज्ञानदर्शन क्षायिक होय हैं अर दानांतराय नाम कर्मके अत्यंतक्षयतैं अनंतप्राणीनिकै उपकार करनेवाला दिव्यध्वनिकूं आदि लेय क्षायिकअभयदान होय है। बहुरि लाभांतराय का अत्यंतक्षयतैं केवलाहारक्रियाकरिरहित भगवान् केवलीकै शरीरमैं बलाधानका कारण अर अन्य-

मनुष्यनितें असाधारण परमशुभ सूक्ष्म नोकर्मपुद्गल समयसमयप्रति संबंधकूं प्राप्त होय है। तिन पुद्गलनितें औदारिक शरीरका किंचित् ऊन कोटीपूर्ववर्षनिकी स्थिति रहैहै सोही क्षायिक लाभ है। बहुरि भोगांतरायके अत्यंत अभावतें आतिशयवान् पंचवर्णके सुगंधपुष्पनिकी वर्षा तथा चरणारविंदके नीचें दोयसै पचीस कमलनिकी रचना तथा सुगंधधूप मंद सुगंधपवन इत्यादिक अनेकविशेषनिको लिए क्षायिक भोग हैं। बहुरि उपभोगांतरायकर्मके अत्यंतक्षयतें सिंहासन छत्रत्रय वीजना अशोकवृक्ष प्रभा मंडल अतिगंभीर देवदुंदुभी इत्यादि विभूति प्रकट होय, ते क्षायिकउपभोग हैं। बहुरि वीर्यांतरायकर्मके अत्यंतक्षयतें अनंतवीर्य प्रकट होय हैं। बहुरि मिथ्यात्व सम्यङ्मिथ्यात्व सम्यक्त्व अर अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इनि सातप्रकृतिनिका अत्यंतअभावतें क्षायिकसम्यक्त्व प्रकट होयहै। बहुरि समस्तचारित्रमोहके अभावतें क्षायिकचारित्र प्रकट होय है। ऐसें अरहंत नाम परमात्मा के क्षायिक दानादि कहे ते शरीरनामकर्म वा तीर्थंकरप्रकृतिकी सापेक्षातें जानना। इहां कोऊ कहै जो सिद्धभगवानकै भी अभयदानादिकका प्रसंग आवै है। ताका समाधान—जो दानादिलब्धिका प्रतिपक्षी जो अंतरायकर्म ताके अभावतें शक्ति तो प्रकट है ही, परंतु शरीरविना तिनकी प्रवृत्ति होय नहीं, तातें ऐसा जानना जो परम उत्कृष्ट अनंतवीर्य अव्याबाध स्वरूपकरि ही तिनकी तहां प्रवृत्ति है। जैसें केवलज्ञानरूपकरि तीनलोक तीनकालके अनंत द्रव्यगुणपर्यायनिके युगपत् ग्रहण करनेका सामर्थ्यकरि ही अनंतवीर्यकी प्रवृत्ति होय है, तैसें यह भी जानना। अब अष्टादश प्रकारके क्षयोपशमभाव कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः
सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

भाव क्षय कहिए उदयरूप रस दिए विना क्षय होना सो तो क्षय है अर आवली उपरि उदय होने-योग्य जे उपरितन निषेक तिनका सत्तामैं अवस्थितिपणा सो उपशम अर देशघातिस्पर्द्धकानिका उदय सो क्षयोपशम होतें जो भाव सो क्षायोपशमिकभाव हैं। बहुरि गति कषाय आदिक आत्माके औदयिकभाव हैं ते कर्मनिके उदयके वशतें हैं ए नैमित्तिकभाव हैं आत्माका स्वभाव नहीं हैं विभावरूप हैं। बहुरि पारिणामिकभाव हैं ते आत्मद्रव्यका स्वतःस्वभावपरिणाम हैं यामे अन्यकाकारण नाहीं। इहां पंचभावस्वरूप जीवतत्त्वका निर्देश किया सो कर्मबंध उदय अनुदय निर्जरा आदिकी सापेक्षातें आत्माकी अनेक अवस्थारूप परणति है। ऐसैं सात सूत्रनिकरि जीवके पंचभावनिका कथन किया। बहुरि इहां जीवके पांच भाव कहनेतें वेदांतमती आनंदमात्र ब्रह्मका रूप मानैं है। तथा सांख्यमती पुरुषका स्वरूप चैतन्यमात्र मानैं हैं, आत्माको एकांतकरि शुद्ध ही मानैं हैं—ऐसैं अनेक प्रकार मानैं हैं, तिनका इस भावनके कथनकरि निराकरण भया। जातैं सर्वथा शुद्ध ही होय तो संसार बंध मोक्षका उपाय आदिकका कथन सर्व मिथ्या ठहरैं। बहुरि स्याद्वादी जे पंचभावरूप जो आत्माकूं कहे हैं तातें नयके आश्रयतें समस्त कहना कथंचित् प्रकारकरि सिद्ध होय है। तातैं जीवका स्वरूप पंचभावरूप ही प्रमाणसिद्ध है। बहुरि इहां कोऊ तर्क करै जो जीवके पंचभावका कथन नाहीं बनै है जातैं आत्मा तो अमूर्तीक है, ताकूं कहिए हैं—जो आत्मा एकांतकरि अमूर्तीक ही नहीं है। कथंचित् अमूर्तीक है कथंचित् मूर्तीक है, कर्मबंधनरूप पर्यायकी अपेक्षाकरि देखिए तो अनादिकालतैं कर्मपुद्गलनिसौं एक होय रहा है, कोई कालमैं कर्मतैं भिन्न हुवा नहीं तातैं संसारी आत्मा मूर्तीक है अर आत्माका शुद्धस्वरूपकी अपेक्षा देखिए तो यद्यपि क्षीरनीरज्यों कर्मपुद्गल अर आत्मा एक होरह्या है तो हू अपना

चैतन्यस्वभावकरि भिन्न ही है, पुद्गलमय कदाचित् नहीं होय, तातैं अमूर्तीक है। इहां कोऊ फेरि पूछे जो संसार अवस्थामें आत्मा कर्मपुद्गलनितैं एक ही रह्या है तो आत्माका अस्तित्व कैसैं जान्या जाय? ताकूं उत्तर कहे हैं। बंधपर्यायकीअपेक्षातैं आत्माकेपुद्गलतैं एकपणा होतै हू लक्षणके भेदतैं आत्मा अर कर्मपुद्गल भिन्न २ जानेजाय हैं। फेरि पूछैं हैं—जो आत्मा पुद्गलनितैं एक होरह्या है जातैं भिन्न जाननेमें आवै ऐसा लक्षण ही कहो। ऐसा प्रश्न होतैं सूत्र कहै हैं—

उपयोगो लक्षणं ॥ ८ ॥

अर्थ—उपयोग है सो जीवका लक्षण है। सो उपयोग कहा है सो कहै हैं। जातैं चैतन्य है सो आत्माका स्वभाव है अर तिस चैतन्य स्वभावकूं ही जो कहै ऐसा आत्माका परिणाम कहिए परिणमन परणति ताकूं उपयोग कहिए है। जैसैं कटक कुंडल मुद्रिकादि विकार हैं सो सुवर्णस्वभावकूं कहनेवाला सुवर्णहीका परिणमन है, तैसें इंद्रिय अनिंद्रियादिकनिके द्वारे जो परणति है सो सब उपयोग ही है। तथा घटपटादिकनिके आकार वा सुखदुःखादिरूप परिणमन सो समस्त उपयोग ही है। जो उपयोग है सो जीवका निर्बाध लक्षण है, दूषणरहित है। जातैं अव्याप्त अतिव्याप्त असंभवी इन तीन दूषणनि सहित जो लक्षण होय, सो सदोषलक्षण होय है। तिनमें जो लक्षण लक्ष्यका एकदेशमें व्यापै समस्तलक्ष्यमें नहीं व्यापै सो तो अव्याप्तदोष है। जैसैं गौका लक्षण सावलेयपणा कह्या सो सावलेयपणा कोईक गौमें वर्ते है समस्त गौमात्रकूं भिन्न दिखावनेवाला यह लक्षण नहीं, तातैं लक्षण अव्याप्तदोष सहित भया। इहां सावलेयपणा कहा है सो कहैहैं कोऊ बलधके पीठ उपरि जीभसी लंबी होय है, ताकूं सावलेय कहिए है, ताकूं नांद्या भी कहैं हैं। बहुरि जो लक्षण लक्ष्यमें भी व्यापै अर अलक्ष्यमें भी

व्यापै सो अतिव्याप्तदूषण है, जैसें गोका लक्षण सींगसहितपणा कहना सो शृंगसहित तो भैंसा मींढा अनेक होय हैं। बहुरि जो लक्षण लक्ष्यमें संभवै ही नहीं सो असंभवी दोष हैं। जैसें मनुष्यका लक्षण विषाणी कहिए शृंगवाला कहना सो मनुष्यकैं शृंग संभवैं ही नहीं, सो असंभवदोष हैं।

जातें यो उपयोग लक्षण है सो समस्त जीवनिमें पाइए है कोऊ जीवमात्र उपयोगरहित नाहीं, तातें लक्षणकै अव्याप्तदोष होय नाहीं है। बहुरि उपयोग है सो जीवविना अन्य द्रव्यनिमें नहीं पाइए है तातें अतिव्याप्त दोषसहित नाहीं। बहुरि उपयोगलक्षण समस्तजीवनिमें संभवे है। प्रत्यक्षादिप्रमाणकरि बाध्या नहीं जाय है तातें असंभवदोष सहित नहीं है। बहुरि और हू दृष्टांत जानना–जैसें आत्माका लक्षण अमूर्तत्व कहना सो अमूर्तिकपणा तो आकाशादि अन्यद्रव्यमें हू पाइए है यातें लक्ष्य अलक्ष्य दोऊनिमें व्यापनेतें अतिव्याप्त दोषसहित लक्षण भया। बहुरि आत्माका लक्षण रागादिमत्त्व कहिए तो रागादिमानपणा समस्तआत्मामें नहीं। सिद्ध भगवान् रागादिरहित हैं। यातें लक्ष्यका एकदेशमें व्यापनेतें लक्षण अव्याप्तदोषसहित भया। बहुरि लक्ष्यतें विरोधी लक्षण सो असंभवी है। जैसें आत्मा का जडत्वलक्षण कहना सो संभवे नहीं। तातें अतिव्याप्त अव्याप्त असंभव इन तीन दोषरहित आत्माका उपयोगलक्षण ही सत्य है। अब उपयोगका भेद कहनेकूं सूत्र कहेहैं—

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

अर्थ—सो उपयोग दोय प्रकार है–एक ज्ञानरूप, एक दर्शनरूप। तिनमें मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ए पांच ज्ञान अर कुमति कुश्रुत विभंग ए तीन अज्ञान–अथवा मतिअज्ञान श्रुतअज्ञान विभंग अज्ञान इनिके नाम ऐसैं हू हैं ऐसैं अष्टप्रकार ज्ञानोपयोग कह्या। अर चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधि-

दर्शन, केवलदर्शन, ए च्यार दर्शनोपयोगके भेद कहे हैं। इहां कोऊ पूछैं, जो, दर्शनज्ञानविषै भेद कहा है? ताका उत्तर—साकार अनाकारके भेदतैं भेद है। जहां पदार्थका सामान्य सत्तामात्र ग्रहण होय सो दर्शन है जातैं पदार्थकै अर इंद्रियनिकै संबंधके अनंतरही वस्तुका आकारादिविशेष ग्रहणमैं नहीं आवै तातैं दर्शन निराकार है अर जो आकारादिविशेषकूं जानै सो साकार ज्ञान है। अर छद्मस्थकै तो दर्शन पूर्वक ही ज्ञान होय है अर केवली भगवानकै दर्शन ज्ञान युगपत होय हैं। बहुरि दर्शन ज्ञान इन दोऊ उपयोगनिमें ज्ञान प्रधान है। तातैं सूत्रमें पहिलै ज्ञान कह्या है। इहां कोऊ प्रश्न करै जो अवधिज्ञान जैसें अवधिदर्शनपूर्वक होय है, तैसें मनःपर्ययज्ञानहू मनःपर्ययदर्शनपूर्वक होना चाहिए। ताका उत्तर—आगममें ऐसें कह्या है जो मनःपर्ययदर्शनावरणकर्म है नाहीं, आगममैं दर्शनावरणकर्मचतुष्टय-कों ही उपदेश्या है। तातैं आवरणका अभावतैं ताका क्षयोपशमका हू अभाव है, तातैं मनःपर्ययद-र्शनोपयोगका हू अभाव जानना। बहुरि इहां ऐसा उपदेश जानना। जो मनःपर्ययज्ञान है सो अपना विषयविषै अवधिज्ञानज्यों संमुखकरि नहीं प्रवर्त्तै है तो कैसें प्रवर्त्तै है—सो कहैहैं—अपना मन है सो परके मनकी प्रणालिकाकरि अतीत अनागत अर्थनिकूं चिंतवन करै है परंतु देखै नहीं है। तैसें मनःपर्ययज्ञानीहू भूत भविष्यत् पर्यायनिकूं जाणै है अर देखै नाहीं है। अर वर्त्तमानपदार्थ हू मनका विषयमें विशेषाकार करिकैं ही प्राप्त होयहैं। सामान्यपूर्वक प्रवृत्तिका अभाव है तातैं मनःपर्ययदर्शनो-पयोग नहीं हैं। ऐसें दोय सूत्रकरि कह्या जो उपयोगका लक्षण सो जीवकै शरीरतैं भेदकूं साधै है। जैसें उष्णजलमें द्रवपणा अर उष्णपणा जल अग्निका भेदकूं साधै है अथवा जैसें सोनेरूपेका एकपिंड होय तहां पीतता श्वेतता तथा गुरुपणा हलकापणा है सो सुवर्णरूपाके भेदकों साधै है। तैसें इहां हू जीवपुद्ग-

तिनके लक्षण भेदकरि भेद जानना ॥ अब समस्तजीवनिमैं साधारण जो उपयोग ताकरि सहित जे जीव हैं ते दोय प्रकार हैं—

संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

अर्थ—जीव हैं ते संसारी वहुरि मुक्त ऐसें दोय प्रकार हैं। "संसरणं संसारः" ऐसी संसारशब्दकी निरुक्ति है संसरणं कहिए परिभ्रमणरूप होय सो संसार है। याहीकूं परिवर्त्तन कहिए हैं। सो परिवर्त्तन पंचप्रकार है। तहां कर्मनोकर्मरूप पुद्गलनिका ग्रहणत्यजनरूप परिभ्रमण सो द्रव्यपरिवर्त्तन है। वहुरि क्षेत्र कहिए आकाशके सर्वप्रदेश तिनिविषै उत्पत्तिमरणरूप परिभ्रमणरूप परिभ्रमण सो क्षेत्रपरिवर्त्तन है। वहुरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालके समयनिविषै उपजने विनशनेरूप परिभ्रमण सो कालपरिवर्त्तन है। वहुरि त्यौं ही भव कहिए नारकादि सर्व भवनिका आयुके भेदनविषै उत्पत्ति मरण परिभ्रमणरूप सो भवपरिवर्त्तन है। वहुरि भाव कहिए अपने कषाययोगनिके स्थानरूप जे भेद जघन्य मध्यम उत्कृष्ट कर्मनिकी स्थितिबंधरूप, तिनका पलटनेरूप परिभ्रमण सो भावपरिवर्त्तन है। मिथ्यात्वकरि सहित जीव भावसंसारविषै भ्रमता सर्व प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशबंधके जे स्थान हैं ते सर्व ही पाए। ए पंच परिवर्त्तन हैं। इनिका कथन विस्तारसहित अन्य शास्त्रनिविषै कह्या ही है। विस्तारतैं जाननेका इच्छुक तिन ग्रंथनितैं जान हू अर संक्षेपतैं नवम अध्यायमें लिखैंगे तहांतैं जानना। ऐसें पंचप्रकार संसारतैं जीव रहित भए ते मुक्तजीव कहिए। मुक्तजीव हैं ते संसारपूर्वक होय हैं, तातैं संसारीनिका प्रथम ग्रहण जानना ॥ अब संसारीजीवनिके भेद कहनेकूं सूत्र कहे हैं—

समनस्काऽमनस्काः ॥ ११ ॥

अर्थ—संसारी जीव हैं ते मनसहित वा मनरहित दोय प्रकार हैं। जे जीव मनसहित हैं ते संज्ञी हैं मन रहित होंय ते असंज्ञी हैं। जो हितमैं प्रवर्त्तनेकी आहितमैं प्रवृत्तिके निषेधकी शिक्षा ग्रहण करै सो संज्ञी है। बहुरि जो हस्त पाद चामठी लाठी इत्यादिक उठावनेरूप क्रियाकूं होतै ही ऐसें ग्रहण करै जो ये हमारे देवैगा मारैगा इत्यादिक्रियातैं आपके सुख दुःखादिककूं जानै वा जाकूं उपदेश लागे बुलाया आजाय, घेर्यां चल्या जाय सो संज्ञी है अर जाके शिक्षा क्रिया उपदेश आलापका ग्रहण नहीं होय सो असंज्ञी है। जो मन है सो द्रव्य भावके भेदकरि दोय प्रकार है। तहां जो हृदयस्थानविषै अष्टपांखड़ीका फूल्या कमलकै आकार सूक्ष्म पुद्गलका प्रचयरूप तिष्ठै है सो तो द्रव्यमन है। बहुरि द्रव्यमनके पुद्गलनिकै अभ्यंतर मन अनिंद्रियावरणकर्मका क्षयोपशमसहित अंगुलके असंख्यातवें भाग जे आत्माके प्रदेश ते भावमन है। बहुरि समनस्क शब्दकै पूज्यपणातैं सूत्रमें पहिले ग्रहण किया है। जातैं मनसहित जीवकै गुणदोषनिका विचारसहितपणा है, मनरहितकै नाहीं, तातैं समनस्ककूं सूत्रमें प्रथम ग्रहण किया ॥ आगैं संसारीजीवका अन्य हू भेद कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥ १२ ॥

अर्थ—संसारी जीव हैं ते त्रस अर स्थावर ऐसें दोय प्रकार हैं। जीवविपाकी त्रसनाम कर्मके उदयतैं त्रस होय हैं। जीवविपाकी स्थावरनामकर्मके उदयतैं स्थावर होय हैं। कोऊ कहै जो हलन चलन करैं ते त्रस हैं अर अतिशयकरि तिष्ठैं ते स्थावर हैं। ऐसें निरुक्ति करिए है, ताकूं उत्तर कहै हैं— जो हलन चलन अपेक्षाही त्रस होय तो गर्भमें तिष्ठते अंडेनिमें तिष्ठते वा मूर्छित सुप्त भयभीत ए

हलनचलनरहित हैं इनके त्रसपणाके अभावका प्रसंग आवैगा। तथा पवन अग्नि जल इनिकै एकदेशतैं अन्यदेशांतरमें प्राप्ति होना देखिए हैं तिनकैं त्रसपणाका प्रसंग आवैगा। तातैं त्रसस्थावरपणा चलने तिष्ठनेकी अपेक्षा नाहीं हैं त्रस अर स्थावर नामा नामकर्मकी अपेक्षातैं है। इस सूत्रमैंहू त्रसशब्दके पूज्यपणातैं प्रथम ग्रहण किया है॥ अव स्थावरनिका वहुत भेद नहीं हैं यातैं आनुपूर्व्वीकूं उलंघनकरि स्थावरके भेद कहनेकूं सूत्र कहे हैं। जातैं लौकिकमैंहूं सूचीकडाहन्याय प्रसिद्ध है। जो कडाहभी घडना होय अर सूईभी घडना होय तो पहले सूई घड दे कडाह पाछैं घडै। अल्प भेद स्थावरनिकूं कहे हैं—

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥

अर्थ—पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति ये स्थावर नामकर्मके उदयके वसतैं पंच स्थावर हैं। ए पंच स्थावर तिनकै इंद्रियप्राण कायवलप्राण आयुप्राण उछ्वासप्राण ऐसैं ए च्यार प्राण होय हैं। इहां ऐसा विशेप जानना। यद्यपि आत्मा केवलज्ञानस्वभाव है तथापि ज्ञानावरणकर्मके वेढनेतैं ज्ञानका अपकर्ष न होनेतैं सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तजीवकै अक्षरकै अनंतवें भाग ज्ञान रहिजाय है। उस ज्ञानकै आवरण नहीं है। जो उस पर्यायज्ञानकै हू आवरण होय तो आत्मा जडरूप होजाय तदि आत्माका अभाव होजाय। सो द्रव्यका अभाव होय नाहीं, तातैं पर्यायज्ञान निरावरण है। याका आवरण होय तो फिर पर्यायका पलटनाही नहीं होय, तदि समस्त जीव निगोदतैं नाहीं निकासि सकैं॥ अब त्रस कोन हैं यातैं सूत्र कहैहैं—

द्वींद्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

अर्थ—द्वींद्रियकूं आदि लेय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय ऐसें त्रस जीव हैं। तहां द्वींद्रियकै छह प्राण हैं। तिनमें स्पर्शनरसन दोय इंद्रिय अर कायवल वचनवल आयु स्वासोस्वास ऐसें छह प्राण हैं। तींद्रियकै घ्राणइंद्रियकरि अधिक सात प्राण हैं। वहुरि चोइंद्रियकै चक्षुइंद्रियकरि अधिक आठ प्राण हैं। वहुरि पंचेंद्रियतिर्यंचनिविषै असंज्ञीकै कर्णइंद्रियकरि अधिक नवप्राण हैं। वहुरि सैनी पंचेंद्रियकै मनकरि अधिक दशप्राण हैं॥ अब इंद्रियनिकी गणनाका निश्चयकै अर्थि सूत्र कहैहैं—

पंचेंद्रियाणि ॥ १५ ॥

अर्थ—इंद्रियनिकी संख्या पांचही जाननी। केई अन्यमती हीनाधिकसंख्या कहैं सो अयुक्त है। वहुरि ए इंद्रिय हैं ते अपने अपने विषयके ज्ञान उपजावनेविषै कोऊ किसीकै आधीन नाहीं जुदे जुदे एक एक इंद्रिय परकी अपेक्षारहित हैं अहमिंद्रनिकी ज्यों आप आपके समस्तही स्वाधीन हैं ईश्वरताकौं धरैं हैं। वहुरि अपने अपने विषयकूं अंगीकार करैं हैं। अब इंद्रियनिका भेद कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

द्विविधानि ॥ १६ ॥

अर्थ—जे इंद्रिय कहे ते द्रव्येंद्रिय भावेंद्रियकरि दोय प्रकार हैं। अब द्रव्येंद्रियका स्वरूपका ज्ञानकै अर्थि सूत्र कहे हैं—

निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येंद्रियं ॥ १७ ॥

अर्थ—निर्वृत्ति अर उपकरण ऐसें द्रव्येंद्रिय दोय प्रकार हैं। कर्मकरि जो रची वा उत्पन्न करी सो निर्वृत्ति कहिए। सो निर्वृत्ति हू दोय प्रकार है। एक अभ्यंतरनिर्वृत्ति एक वाह्यनिर्वृत्ति। तिनमें उत्सेधांगुलके

असंख्यातवें भागप्रमाण जे विशुद्ध आत्माके प्रदेश तिन प्रदेशनिका जो नेत्रादिक इंद्रियनिका आकार वा प्रमाण वा स्थानरूप जो रचना सो अभ्यंतरनिर्वृत्ति है। बहुरि तिन आत्मप्रदेशनिकै ऊपरि इंद्रियनामकैं धारनेवाला प्रतिनियतस्थान लिए नामकर्मके उदयकरि इंद्रियव्यवस्थाकूं प्राप्त भया जो पुद्गलसमूह सो बाह्यनिर्वृत्ति है॥

भावार्थ—जैसें नेत्रइंद्रियमैं नेत्रइंद्रियावरणकर्म अर वीर्यांतरायकर्मका क्षयोपशमसहित आत्माकै प्रदेश मसूरके आकार रचनारूप होय तिष्ठै हैं सो अभ्यंतरनिर्वृत्ति है अर तिस अभ्यंतर इंद्रियाकार परिणतिरूप आत्मप्रदेशनिविषैं नामकर्मका उदयकरि नेत्रइंद्रियाकार पुद्गलसमूह तिष्ठैं सो बाह्यनिर्वृत्ति है ऐसैंही कर्णइंद्रियावरण अर वीर्यांतरायका क्षयोपशमसहित आत्माकै प्रदेश जवकी नालीकै आकार होय तिष्ठैं सो आत्मप्रदेशनिकी रचना अभ्यंतरनिर्वृत्ति है अर ताकै ऊपरि नामकर्मके उदयतैं कर्णइंद्रियका जवकी नालीकै आकार होय पुद्गलसमूह तिष्ठैं सो बाह्यनिर्वृत्ति है। बहुरि जो निर्वृत्तिका उपकार करनेवाला पुद्गलसमूह सो उपकरण है। ताके हू बाह्य अभ्यंतरकरि दोय भेद हैं। जैसैं—नेत्रनिमें शुक्ल कृष्णमंडलतौ अभ्यंतर उपकरण हैं अर बाफणी डोला ए बाह्य उपकरण हैं। ऐसैंही समस्त इंद्रियनिकैं द्रव्येंद्रियपणा जानना॥ अब भावइंद्रियनिका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

लब्ध्युपयोगौ भावेंद्रियं॥ १८॥

अर्थ—लब्धि अर उपयोग ऐसैं भावेंद्रिय हू दोय प्रकार है। जाकूं होतैं आत्मा द्रव्येंद्रियकी रचनाप्रति प्रवर्त्तनकरै ऐसा ज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशमविशेष ताकूं लब्धि कहिए। बहुरि कर्मका क्षयोपशमरूप लब्धिकै निमित्ततैं आत्माका विषयप्रति परिणमन होना सो उपयोग है। जैसैं किसी जीवकै

सुननेकी शक्ति है, परंतु उपयोग जो चैतन्यका परिणमन सो अन्य हो जाय, अन्यविषयनिमैं लगि रह्या है तो सुनै नाहीं। बहुरि कोऊ जान्या चाहै अर क्षयोपशमशक्ति नाहीं तो जानि नाहीं सकै, तातैं लब्धि अर उपयोग दोऊ मिले विषयका ज्ञानकी सिद्धि होय है। आवरणकर्मका क्षयोपशमतैं जो आत्माकै विशुद्धता सो शक्ति है। तिस क्षयोपशमशक्तिहीकूं लब्धि कहिए हैं। अर आत्मा ज्ञेयपदार्थकै सन्मुख होय तासूं जुडै सो उपयोग है। ऐसैं भावेंद्रियका स्वरूप कह्या। अब कही जे इंद्रिय तिनकी संज्ञा अर आनुपूर्वीक जनावनेकूं सूत्र कहैं हैं—

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १९ ॥

अर्थ—स्पर्शन रसन घ्राण चक्षुः श्रोत्र ए पांच इंद्रियनिके नाम हैं। वीर्यांतराय मतिज्ञानावरणका क्षयोपशम अर अंगोपांगनामा नामकर्मका उदयका लाभ वा आलंबनतैं आत्मा जाकरि विषयकौं स्पर्शै ताकूं स्पर्शन कहिए। ऐसैंही जाकरि अपने विषयकौं आत्मा आस्वादै ताकूं रसन कहिए। जाकरि गंधग्रहण करै ताकूं घ्राण कहिए। जाकरि अवलोकन करै ताकूं चक्षु कहिए। जाकरि श्रवण करै ताकूं श्रोत्र कहिए। ऐसैं ए पांच इंद्रिय हैं। इहां समस्तशरीरमैं व्यापीपणातैं स्पर्शनका आदिमैं ग्रहण किया। अथवा समस्त संसारीनिकै स्पर्शनइंद्रिय पाइए है तातैं स्पर्शनका आदिमैं ग्रहण किया। तिन पाछैं रसन घ्राण चक्षु श्रोत्र इनका ग्रहण क्रमतैं किया सो ए इंद्रिय जीवनिकैं क्रमतैंही होय हैं। जातैं बेंद्रियजीवकैं स्पर्शन रसनही होय अन्य दोय नहीं होय। त्रींद्रियकै स्पर्शन रसन घ्राण एही तीन होय अन्य येरफेर नहीं होय। चौंद्रियकैं स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु इन च्यारहीका ग्रहण होय अन्य नहीं होय। श्रोत्र-इंद्रिय पंचेंद्रियहीकै होय अन्यकै नहीं होय। इनि इंद्रियनिमैं श्रोत्रइंद्रियकैं बहु उपकारीपणो है।

जातैं श्रोत्रइंद्रियका बलतैं उपदेश श्रवण करिकैही हितका प्राप्ति अहितका त्यागकै अर्थि आदर करिए हैं। बहुरि आत्मा पहली श्रोत्रइंद्रियद्वारै उपदेश श्रवण करिकैही वक्तापणाप्रति व्यापार करै है॥ अब इन इंद्रियनिका विषय दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—



स्पर्शरसगंधवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥

अर्थ—स्पर्शन इंद्रियका विषय स्पर्श है। रसनाइंद्रियका विषय रस है। घ्राणइंद्रियका विषय गंध है। चक्षुइंद्रियका विषय वर्ण है। श्रोत्रइंद्रियका विषय शब्द हैं। ऐसैं पांच इंद्रियनिके पंच विषय हैं। अपने अपने विषयकूंही ग्रहण करैहैं अन्य इंद्रियका विषयकूं अन्य इंद्रिय नहीं ग्रहण करैहैं। तहां जाकूं स्पर्शिए अथवा जो स्पर्शन सो स्पर्श है। बहुरि जाकौं आस्वादीए अथवा जो स्वादमात्र सो रस है। बहुरि जाकौं सूंघिए अथवा सूंघना सो गंध है। बहुरि जाकूं देखिए सो वर्ण है। सुणीए अथवा शब्दरूप होय सो शब्द है। ए इंद्रियनिके विषय जाननें। अब इहां कोऊ कहै—जो मन है ताका अवस्थान नाहीं तातैं यो इंद्रिय नाहीं है। ऐसैं मनके इंद्रियपणाका निषेध किया। परंतु यो मन उपयोगकों उपकारक है वा नहीं है? तदि कहैं जो, मन तो उपकारीही है। जातैं मनविना इंद्रियनिका विषयनिमैं अपना प्रयोजनरूप प्रवृत्तिका अभाव है। फिरि कोऊ कहै जो मनकै इंद्रियनिका सहकारीपणामात्रही प्रयोजन है किं अन्यभी है ऐसैं पूछतैसंतै सूत्र कहैहैं—

श्रुतमनिंद्रियस्य ॥ २१ ॥

अर्थ—अनिंद्रिय जो मन ताका विषय श्रुत कहिए श्रुतज्ञानगोचर पदार्थ है सो विषय हैं। श्रुतज्ञानका विषय जौ पदार्थ सो श्रुत हैं, सो श्रुत मनका विषय है। प्राप्त हुवा है श्रुतज्ञानावरणका

क्षयोपशम जाकैं ऐसा आत्माकै श्रवणकीए अर्थका विचारनेमें मनका अवलंबनकरि प्रवृत्ति होय है जातैं कर्णइंद्रियकरि श्रवणमात्र किया सो तो मतिज्ञान है। तिस पूर्वक पदार्थका विचार सो श्रुतज्ञान है॥ अब आदिकै विषै ग्रहणाकिया जो स्पर्शनइंद्रिय ताका स्वामीपणाका निश्चयके अर्थि सूत्र कहैं हैं—

वनस्पत्यंतानामेकं ॥ २२ ॥

अर्थ—पृथ्वीकायकूं आदि लेय वनस्पतिपर्यंतनिकैं एक स्पर्शनइंद्रियही है ॥ अब अन्य इंद्रियनिका स्वामीपणा दिखावनेकूं सूत्र कहैं हैं —

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥ २३ ॥

अर्थ—कृम्यादिकनिकैं एक एक इंद्रिय बधती जानना। लट संख जोंक इत्यादिकनिकै स्पर्शन रसन ये दोय इंद्रिय हैं बहुरि चींटी मत्कुण ( उठकण ) बिछू जूं लीख, कानखजूरा, गोभी इत्यादिकनिकैं स्पर्शन, रसन, घ्राण ए तीन इंद्रिय हैं। बहुरि भ्रमर मक्षिका टीडी डांस मच्छर पतंग इत्यादिकनिकैं स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु ए च्यार इंद्रिय हैं। बहुरि मनुष्य मत्स्य गौ सर्प हँस इत्यादिकनिकैं पांचूही इंद्रिय हैं। संसारीजीव इंद्रियद्वारै तो वर्णन किया ॥ अब मनद्वारै वर्णन करनेकूं सूत्र कहैं हैं—

संज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥

अर्थ—जे मनसहित जीव हैं ते संज्ञी हैं जाकैं ऐसा विचार होय जो यो हित है, यो अहित है इस हित की प्राप्तिमें अर अहितका निषेधमें यो गुण है अर यो दोष है। वा शिक्षा क्रिया आलापका ग्रहण करने-रूप संज्ञा जाकै होय सो संज्ञी है। ऐसैं मनसहित संज्ञी जीव जानना। अब शेष संसारीजीव हैं ते सर्व असंज्ञी जानने तहां चौइंद्रिय ताइं तो समस्त असंज्ञी ही हैं मनरहितही हैं अर पंचेंद्रियनिमें देव नारकी मनुष्य

तो संज्ञीही हैं इनमें असंज्ञी नहीं होय हैं। अर पंचेंद्रिय तिर्यंचनिमें जे मनसाहित हैं ते संज्ञी हैं। अर जे मनरहित हैं ते असंज्ञी हैं। यद्यपि संज्ञीनिमैंहू गर्भअवस्थामें अंडामें शयन करताके मूर्छितके शिक्षा क्रिया आलापादिग्राहीपणा नाहीं है तथापि मनका सद्भावतैं संज्ञीही होय हैं ॥ अब कहैं हैं, जाका पूर्वशरीरका तो अभाव होगया अर नवीनशरीरका ग्रहणके अर्थि सन्मुख जो मनरहित आत्मा ताकैं कर्मका आस्रव काहेतैं होय ? ऐसे पूछें सूत्र कहै हैं—

विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥

अर्थ—विग्रह जो नवीनदेह ताके अर्थि जो गमन ताके विषै कार्मणयोग है। विग्रह नाम देहका है ताके अर्थि जो परभवकूं गमन करै ताकूं विग्रहगति कहिए। अथवा "विरुद्धो ग्रहः विग्रहः" विग्रह नाम रोकनेकाहू है। याहीतैं कर्म पुद्गलका ग्रहण होतैं हू नोकर्मपुद्गलनिके ग्रहणका निरोध है।

भावार्थ—जीव मरणकरि नवीन शरीरका ग्रहणकरनेकूं गमन करै है तदि एक अथवा दोय तथा तीन समय काल लागै है। तिस कालमैं कर्मपुद्गलनिका समयप्रबद्ध तो ग्रहण होय है। अर नोकर्मपुद्गल नहीं ग्रहण होय हैं। बहुरि कार्मणशरीरकूं कर्म कहिए। तिस कार्मणशरीरद्वारै आत्माके प्रदेशनिका सकंप होना सो कार्मणयोग है। सो समस्तकर्म ग्रहण करनेका बीज है॥ अब कहै हैं जो जीव पुद्गल गमन करै सो आकाशके प्रदेशनिकी पंक्तिका क्रमरूप गमन करै हैं कि और तरह करैहै यातैं सूत्र कहै हैं—

अनुश्रेणि गतिः ॥ २६ ॥

अर्थ—जीवनिका तथा पुद्गलनिका गमन आकाशके प्रदेशनिकी श्रेणीरूपही होय है। विदिशारूप गमन नहीं होय है। जीवनिके मरण होतै जो नवीन शरीरके अर्थि गमन होय है सो आकाशके

प्रदेशनिकी श्रेणी पंक्तिरूप उर्ध्व अधः वा तिर्यक् गमन होय है। आकाशके प्रदेशनिकी सूधीपंक्ति विषैही गमन होय है। विदिशानिमें गमन नाहीं है। अर पुद्गलका शुद्ध परमाणु अतिशीघ्र गमनकरि एक समयमें चोदहराजू गमन करै सो सूधाही गमन करै है। इहां कोऊ पूछै—जो जीवका तो अधिकार है, इहां पुद्गलनिका ग्रहण कैसे किया? ताका उत्तर—जो इहां गमनका ग्रहण है सो गमन जीवकैभी है पुद्गलकैभी होय है, तातें दोऊनिका ग्रहण किया है। इहां ऐसा विशेष जानना जो मरण होते नवीनशरीरके अर्थि गमन करै, तिस कालमें आकाशके प्रदेशनिकी सूधी पंक्तीरूपही गमन करनेका नियम है अन्य अवसरमें नहीं अर पुद्गलनिकै हू जो लोकका अंतपर्यंत गमन करनेका अवसर विषैही अनुश्रेणीगतिका नियम है अन्य अवसरमें श्रेणीरूप गमन करनेका नियम नहीं है॥ अब मुक्तजीवनिकी गति विशेष कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

अर्थ—मुक्तजीवनिकी गति वक्रतारहित होय है। मुक्तजीव श्रेणीबद्ध गतिकरि एक समयमें सूधा सातराजू ऊंचा गमनकरि सिद्धक्षेत्रमें जाय तिष्ठैहै। इहां कोऊ कहै, सूत्रमें मुक्तजीवका नाम विना कह्या मुक्तजीवका ग्रहण कैसें किया? ताका उत्तर— अगिले सूत्रमें संसारीका ग्रहण है यातें इस सूत्रमें विनाकह्या मुक्तका ग्रहण करना। संसारीजीवका परलोकके अर्थि गमन मुक्तजीववत् सरलगति है कि मोडाकरि गमन है यातैंसूत्र कहैंहैं—

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

अर्थ—संसारी जीवकी गति च्यार समय पहली मोडासहित है। एक वा दोय वा तीन मोडारूप

है। विग्रह कहिए मोडा लेय सो एक वा दोय वा तीन मोडातांई लेवै। संसारीजीवानिके सरलगति तो एक समयरूप है। जानें सरलक्षेत्रमें उपजनेका कर्मबंध किया होय ताका तो एकसमयमें ही उत्पत्तियोग्य स्थानमें उपजना होय है। जानै एक वक्रता जामें आवै ऐसा क्षेत्रमें उपजनेका कारण कर्म बंध किया होय ताका दूजे समयमें उत्पन्न होना होय है अर जो दोय वक्रताकरि उत्पत्तिस्थानमें उपजे ताके तीजे समयमें उत्पन्न होना होय है वहुरि जाका तीन वक्रताकरि उत्पत्ति स्थानमें उपजना होय ताका चौथे समयमें उत्पन्न होना होय है। जो गति इषु कहिए बाण ताकी ज्यों सरल होय सो एक समयरूप इषुगति है। वहुरि जामें एकवक्रता होय सो पाणिमुक्ता नामा गति दोयसमयमें होय है। वहुरि जामें लांगल जो हल ताकी ज्यों दोय वक्रता होंय सो लांगलिका नाम गति तीन समयमें होय है अर जाकी गोमूत्रिका ज्यों तीन वक्रतारूप गति होय सो गोमूत्रिका नाम गति च्यार समयरूप होय है। सूत्रमें "च" शब्द कह्या ताकरी संसारीजीवकी विग्रह जो वक्रगतिभी है अर बाणकी ज्यों इषुगतिभी है ॥ वहुरि वक्रता जो मोडा ताकरि रहित गतिका कितना काल है ऐसें पूछे सूत्र कहे हैं—

एकसमयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥

अर्थ—नाहीं हैं मोडा जामें ऐसी अविग्रहगति है सो एकसमयका कालमात्र है। याहीकूं ऋजुगति कहिए है। वहुरि जो पुद्गलपरमाणू हू सूधा गमन करै तो अधोलोकतैं ऊर्ध्वलोक पर्यंत एक समयमें शीघ्र गमनकरि चोदह राजू पहुंचैहैं ॥ अब विग्रहगतिमें आहारक अनाहारकका नियमके अर्थि सूत्र कहैं हैं—

एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥ ३० ॥

अर्थ—विग्रहगतिविषै एक समय वा दोय तथा तीन समय अनाहारक है। नोकर्मवर्गणाका आहार

नाहीं है। तहां औदारिक वैक्रियिक आहारक ए तीन शरीर तथा छह पर्याप्तिके योग्य पुद्गलवर्गणाका ग्रहण सो आहार है। अर शरीरके योग्य पुद्गलवर्गणाका नहीं ग्रहण करना सो अनाहारक है, वहुरि कर्मवर्गणाका ग्रहण तो जेतै कार्मणशरीर रहै तेतै हूवाही करैहै। जो एक मोडा लेय उपजै सो एक समय अनाहारक है। वहुरि दोय मोडाकरि उपजै सो दोय समय अनाहारक है। अर जो तीन मोडा लेय उपजै सो तीन समय अनाहारक है। ऐसें गमनविशेषका निरूपण छह सूत्रनिकरि किया॥ अब जो नवीन शरीर ग्रहण करै तिस शरीरकी रचनाका प्रकारके अर्थि सूत्र कहै हैं—

सन्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो नवीन शरीर धारै है ताका जन्म तीन प्रकार है। एक सन्मूर्छन जन्म एक गर्भज जन्म एक उत्पाद जन्म। तहां जो आपके योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भावके विशेषतैं तीन लोकमैं उर्ध्व अधः तिर्यक् सर्वतरफतैं पुद्गलनिका ग्रहणकरि देहके अवयवनिका रचना होना देहका वनना सो सन्मूर्च्छन जन्म है। वहुरि जो स्त्रीके उदरविषै माताका रुधिर पिताका वीर्यका गरण कहिए मिश्रित होना मिलना सो गर्भ है। अथवा माताकरि ग्रहणकिया हुवा आहारका गरण कहिए अंगीकार करना सो गर्भ है। वहुरि जाविषैं प्राप्त होयकरि उपजै ऐसा देव नारकीनिके उपजनेका स्थान सो उपपाद है। ऐसें संसारीजीवनिके जन्मका तीन प्रकार कह्या॥ अब तीन प्रकार जन्मके उपजनेके योनि तिनका विकल्प कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—सचित्त शीत संवृत वहुरि इतर कहिए इनतैं उलटा जे अचित्त उष्ण विवृत वहुरि तीनू-

तीका मिश्र ऐसें योनिके नव भेद हैं। तहां जो जीवनिके उपजनेका योनिरूप पुद्गलसमूह चेतनासहित होय सो सचित्तयोनि है। अर जीवनिके उपजनेके अचेतनपुद्गल होय सो अचित्तयोनि है। बहुरि जीवकी पर्याय उपजनेका सचित्त अचित्त दोऊरूप स्थान होय सो मिश्रयोनि है। बहुरि योनिके शीतस्पर्शरूप पुद्गल होय सो शीतयोनि है। बहुरि उष्ण पुद्गल उपजनेका होय सो उष्णयोनि है। बहुरि शीत उष्ण दोऊ मिले पुद्गलरूपयोनि होय सो मिश्रयोनि है। बहुरि योनिके पुद्गल प्रकट नहीं दीखैं ढके होयसो संवृत योनि है। अर जिस योनिस्थानके पुद्गल उघडे हूए सो विवृतयोनि है। बहुरि कुछ ढके कुछ उघडे होय सो मिश्रयोनि है। इहां कोऊ पूछे योनि अर जन्मविषै भेद कहा है सो कहैं हैं—आधारआधेयका भेदतें भेदहै। इहां योनि तो आधार है अर जन्म आधेय है। जातें सचित्त आदि योनिके आधार आतमा सन्मूर्छनादि जन्मकरि शरीर आहार इंद्रियादिककैयोग्य पुद्गल ग्रहण करैहै। तहां देव नारकीनिकै तो अचित्तयोनिही है। बहुरि गर्भजन्मविषै सचित्त अचित्त दोऊरूप मिश्रयोनि है। बहुरि सन्मूर्छनजन्मविषै सचित्त अचित्त अर मिश्र ए तीन प्रकार योनि होयहै। बहुरि देव अर नारकीनिकैं शीत अर उष्ण ए दोय योनि हैं। बहुरि गर्भजन्मके भेदविषै अर सन्मूर्छनजन्मके भेदविषै शीत उष्ण मिश्र ए तीनों योनि हैं। इहां और विशेष कहेहैं। जो तेजस्कायिक जीवनिविषैं उष्णही योनि हैं। बहुरि देव नारकी, एकेंद्रिय, संवृतयोनिही हैं। विकलेंद्रिय विवृतयोनिही हैं। अर गर्भजानिकै संवृत विवृत दोऊरूप मिश्रयोनि हैं। बहुरि सन्मूर्छन पंचेंद्रिय हैं ते विकलेंद्रियवत् विवृतयोनिमैं उपजैहैं। इहां ऐसा जानना। जो जीवनिके उपजनेका आधारभूत पुद्गलस्कंध का नाम योनि है। ताके सामान्यपनैं नव भेद हैं। विस्तारकरि तिनका चोरासीलक्ष भेद हैं। सो इन नवभेदनिहीके

विशेष हैं ते प्रत्यक्षज्ञानीनिकै ज्ञानरूप दिव्यचक्षुकरि दीखैहैं । अर अन्य छद्मस्थके आगमकरि जाननेमें आवैहैं ॥ अब इनी नवयोनिके भेदनिमें तीन प्रकारका जन्मनिविषैं प्राणीनिका उपजनेका नियम दिखावनेकूं सूत्र कहैं हैं—

जरायुजांडजपोतानां गर्भः ॥ ३३ ॥

अर्थ—जरायुज अंडज पोत ए तीन प्रकारके प्राणीनिकै जन्म गर्भही हैं । जो जालकीज्यौं प्राणीका आच्छादन जिसमें मांस रुधिर व्याप्त होरह्या सो जरायु है। जरायुमें उपजैं ते जरायुज हैं। बहुरि माताका रुधिर पिताका वीर्यही गोलसा होजाय ऊपरी कठिन नखकी त्वक्समान सो अंड है। अर अंडामें उपजें सो अंडज हैं। जाकै ऊपरी कुछहू आवरण नहीं। आवरणविनाही जाका परिपूर्ण अवयव होय योनितें निकसतेंही चलनहलनादि सामर्थ्यसहित होय सो पोत है। बहुरि सूत्रमें जरायुजका आदिमें ग्रहण किया सो जरायुज प्रधान हैं। जातें अंडजनितें अर पोतनितें असाधारण भाषा अर अध्ययनादिक जरायुजनिमें देखिए है। अर चक्रधर वासुदेवादिक महाप्रभाववानहू जरायुजनिमेंही उपजें हैं। अर मोक्षभी जरायुजनिहीकैं होयहै। मनुष्य वृषभादिक जरायुज हैं। हंस कपोतादिक अंडज हैं। सिंहव्याघ्रादिक पोत हैं। इन तीनांनिकै जन्म गर्भतेंही हैं॥ अब उपपादजन्म कौन कौनकै है यातें सूत्र कहैं हैं—

देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥

अर्थ—देवनिकै अर नारकीनिकै उपपाद जन्म है। च्यार प्रकारके देवनिका अर नारकीनिका उपपाद जन्म कह्या सो देवनिकै तो प्रसूतिस्थानमें शुद्ध सुगंध कोमल संपुटके आकार शय्या है। तिस-

में उत्पन्न होय अंतमुहूर्त्तमें परिपूर्ण यौवनवान हुवा जैसें कोऊ शय्यामें सूता जागृत होय आनंद-सहित बैठा होय है तैसें देवनिका उपपादजन्म होय है। अर नारकीनिके उत्पन्न होनेके बिलनिकी छातिनिविषैं मधुछत्ताकी ज्यों अधोमुख उष्ट्रमुखादिकके आकार छोटेमुखनिके उत्पत्तिस्थान हैं तिनमैं नारकी उपजि अधोमस्तक ऊंचे पगतैं महाऊष्मादिक वेदनातैं निकसि विलाप करता भूमिविषै पडै है। ऐसें देवनारकीनिके उत्पत्तिके स्थान उपपाद हैं तहां ही देवनारकीनिका जन्म है ॥ अब अन्य जीवनिकै कौन जन्म है यातैं सूत्र कहैहैं—

शेषाणां सन्मूर्च्छनं ॥ ३५ ॥

अर्थ—गर्भजन्मवाले मनुष्य तिर्यंच अर अन्य उपपादजन्मवाले देवनारकी इनतैं जे शेष एकेंद्रियादि चौ इंद्रिय तांई तथा केई पंचेंद्रिय तिर्यंच इनिकै सन्मूर्छनजन्म है ॥ अब तीन प्रकार जन्मके धारक जे प्राणी तिनकै शुभ अशुभकर्मके फल भोगनेके आधार कौन शरीर हैं? ऐसें प्रश्न होतैं सूत्र कहैहैं—

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥ ३६ ॥

अर्थ—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, ए पंच प्रकार शरीर कर्मके फल भोगनेके आधार हैं। जो उदार कहिए स्थूल होय सो औदारिक है। बहुरि एक अनेक सूक्ष्म स्थूल हलका भारी इत्यादिक विकारकै योग्य होय सो वैक्रियिकशरीर है। बहुरि जो सूक्ष्मपदार्थका निर्णयके अर्थि वा ऋद्धिविशेषका सद्भाव जाननेके अर्थि वा संयमके परिपालनके अर्थि प्रमत्तगुणस्थानधारी रचै सो आहारकशरीर है। बहुरि देहमें तेजका निमित्त सो तैजसशरीर है। बहुरि ज्ञानावरणादिक अष्ट-कर्मनिका समूहरूप कार्मणशरीर है। ऐसें शरीरके भेद पांच कहे ॥ अब कोऊ कहै जैसें औदारिकका

ग्रहण इंद्रियनिकरि होय है तैसें वैक्रियिकादिकनिका ग्रहण काहे तें नहीं होय यातें सूत्र कहे हैं—

परं परं सूक्ष्मं ॥ ३७ ॥

अर्थ—औदारिकतें आगिले आगिले शरीर सूक्ष्म हैं। औदारिकशरीरतें वैक्रियिक सूक्ष्म है। यातें आहारक सूक्ष्म है। यातें तैजस सूक्ष्म है। यातें कार्मण सूक्ष्म है। ऐसें उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं॥ इहां कोऊ कहै जो परंपरें सूक्ष्मशरीर कह्या तो परंपरें प्रदेशनितें हीन होनेका प्रसंग आया। इस दोषके दूरि करनेकूं सूत्र कहें हैं—

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥

अर्थ—इहां प्रदेशशब्दका अर्थ परमाणु है। ए कहे जे शरीर ते तैजसतें पहिले कहे ते असंख्यात असंख्यात गुणाकाररूप परमाणुका पिंड हैं। औदारिकशरीरके जेते परमाणू हैं तिनतैं असंख्यातगुणे वैक्रियिकशरीरविषै परमाणु हैं। वैक्रियिकके परमाणुतें असंख्यातगुणे आहारकविषै हैं। इहां कोऊ आशंका करै जो परं परं शरीरनिमें असंख्यातगुणे परमाणु हैं तो परैं परैं महान् स्थूलपणाका प्रसंग आया, परैं परं सूक्ष्मपणा कहां रह्या ताकूं कहे हैं। जो स्थूलपणा नाहीं आवै है। रुईका समूह और लोहका पिंडकी ज्यों बंधनका विशेष है। यातें बहुत परमाणुपिंडहू सूक्ष्म परिणाम हैं॥ अब पूछे हैं जो तैजस पहली तो ऐसा प्रमाण कह्या तो तैजस कार्मणका प्रदेश समान हैं, कि कुछ विशेष यातें सूत्र कहै हैं—

अनंतगुणे परे ॥ ३९ ॥

अर्थ—आहारकशरीरके परमाणुतें तैजसविषैं अनंतगुणे परमाणु हैं। तैजसतें कार्मणविषै अनंतगुणे परमाणु हैं। इहां कोऊ कहे—तैजसकार्मणदेहसहित आत्माका बहु कठोरतातें वांछितगमन जो अपने

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ४३ ॥

अर्थ—तिस तेजस कार्मण दोऊ शरीरनकूं आदि देयकरि एक जीवके एक कालविषै दोय शरीरभी होंय तीन भी होंय च्यारितांई होंय। ऐसें भाज्यरूप करना। एक कालविषै पंच शरीर नहीं होंय। तहां जीवके विग्रहगतिमें तो तैजस कार्मण ए दोय शरीरही होय हैं। अर मनुष्य तिर्यंचनिकै विग्रहगतिविना अन्य अवसरमें औदारिक तैजस कार्मण ए तीन शरीर जानना। अर देव नारकीनिकै वैक्रियिक तैजस कार्मण ऐसै तीन शरीर जानना। अर कोऊ प्रमत्तगुणस्थानधारी मनुष्यकै औदारिक आहारक तैजस कार्मण ए चार शरीर जानना अथवा कोई मनुष्यकै औदारिक वैक्रियिक तैजस कार्मण ऐसें भी चार शरीर होय हैं। वैक्रियिक अर आहारककै युगपत् संभवनेका असंभव है यातैं युगपत् पंच शरीर नहीं होय हैं॥ फेरिहू तीन शरीरनिका विशेष जनावनेकूं सूत्र कहैहैं—

निरुपभोगमंत्यं ॥ ४४ ॥

अर्थ—अंतका कार्मण शरीर है सो उपभोगरहित है। इहां इंद्रिय द्वारकरि शब्दादिकका ग्रहण सो उपभोग है। उपभोगका अभाव सो निरुपभोग है। सो कार्मणशरीर निरुपभोग है। विग्रहगतिमें इंद्रियका उपलब्धि होतैंहू द्रव्येंद्रियकी रचनाको अभाव है यातैं शब्दादिक विषयका अनुभवका अभावतैं कार्मणशरीर निरुपभोग है। इहां कोऊ तर्ककरै जो तैजसभी निरुपभोग है ताकूं भी कह्या चाहिए? ताका समाधान—तैजस शरीर योगका निमित्त भी नहीं है यातैं तैजस शरीर निरुपभोग है ही यातैं याकूं सूत्रमें नहीं कह्या यो तो विनाकह्या ही निरुपभोग है। तैजस कार्मण शरीरके अंगोपांगभी नाहीं हैं यातैं वचनका वोलना सुनना इत्यादिक नाहीं। तातैं ए दोऊही शरीर निरुपभोग हैं अन्य शरीर

उपभोगसहित हैं ॥ ये जे पंच शरीर कहे तिनका जन्मका नियम कैसें है यातें सूत्र कहे हैं— 

गर्भसन्मूर्च्छनजमाद्यं ॥ ४५ ॥

अर्थ—सूत्रके क्रमतें जो आदिविषै कह्या औदारिक शरीर सो गर्भतें उपजै तथा सन्मूर्च्छनजन्मतें उपजै है। जो गर्भतें उपजै वा सन्मूर्च्छनतें उपजै सो सब औदारिक शरीर जानना ॥ अब औदारिकके अनंतर जो वैक्रियिकशरीर ताके जन्मका नियम कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

औपपादिकं वैक्रियिकं ॥ ४६ ॥

अर्थ—वैक्रियिकशरीर है सो उपपादजन्मविषै उपजै है। देवनारकीनिकै वैक्रियिक शरीर है सो उपपाद जन्मविषैही उपजै है ॥ अब इहां ऐसी आशंका उपजै है जो औपपादिक जन्मविना वैक्रियिक शरीर नहीं उपजता होयगा यातें सूत्र कहै हैं—

लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७ ॥

अर्थ—वैक्रियिकशरीरकै उपजनेकूं ऋद्धिहू कारण है। तपका विशेषतें ऋद्धिकी प्राप्ति सो लब्धि जाकूं प्रत्यय कहिए कारण होय सो लब्धिप्रत्यय है सो तपके प्रभावतें उपपादिकनिविना मनुष्यनिकैहू होयहै। अर तिर्यंचनिहूंकै विक्रिया होयहै ॥ अब पूछैहै जो लब्धिप्रत्यय वैक्रियिकशरीरही है कि ओरभी है? यातें सूत्र कहैहैं—

तैजसमपि ॥ ४८ ॥

अर्थ—तैजसशरीरहू लब्धितें उपजै है। इहां अपि शब्दकरि लब्धिप्रत्ययका संबंध करना सो तैजसभी लब्धिप्रत्यय होयहै ऐसा जानना। इहां विशेष जो तैजसके दोय भेद हैं। एक निःसरणस्वरूप, दूसरा 

अनिःसरण स्वरूप तहां निःसरणतेजस शुभाशुभभेदकरि दोय प्रकार है॥ तिनमैं जो तपश्चरणके धारक मुनिके कोऊ क्षेत्रमें रोग मारी दुर्भिक्षादिककरि लोकनिकूं दुःखी देखि जो करुणा अत्यंत उपजि आवै तदि दक्षिणस्कंधमेंतें तेजसपिंड निकलिकरि द्वादश योजनप्रमाण क्षेत्रके जीवनिका दुःख मेटी आत्मामैं प्रवेश करै सो शुभतेजस है अर कोऊ क्षेत्रके लोकनि ऊपरि अत्यंत क्रोधित होय तदि ऋद्धिके प्रभावतें वामस्कंधतें सिंदूरसमान रक्तवर्ण अग्निरूप आत्माका प्रदेश निकलै सो आदिमैं तो सूच्यंगुलकै असंख्यातवे भाग प्रमाण अर अंतपर्यंत क्रमतें वधता काहलकै आकार निकसि द्वादश योजनप्रमाण समस्त जीवपुद्गलनिकूं भस्मकरि उलटा शरीरमें प्रवेशकरि मुनिकूं दग्धकरैहै सो मुनि तो नरककूं प्राप्त होय हैं। ऐसा तो निःसरणस्वरूप तैजसशरीर है। अर अनिःसरणस्वरूप समस्तसंसारीजीवनिकै देहकी दीप्तिका कारण है सो लब्धिप्रत्यय नहींहै॥ अब वैक्रियिकके अनंतर कह्या जो आहारक शरीर ताका स्वरूपका निर्द्धारके अर्थि सूत्र कहैहै—

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥

अर्थ—यो आहारक शरीर है सो शुभ है, विशुद्ध है, व्याघातरहित है सो प्रमत्तसंयतमुनिहीकै होय है। चंद्रकांतमणिसमान श्वेतवर्ण एकहस्तप्रमाण उच्च समचतुरस्रसंस्थान अतिसुंदर अंगोपांगकूं धरै, शुभरूप सप्तधातु उपधातुरहित परमनिर्मल आहारकशरीर है। आहारकशरीर अन्य पर्वत वज्रादिककरि रुकै नहीं। अन्य किसीका आप रोकै नाहीं तातैं अव्याघात है। आहारक शरीर प्रमत्तसंयमीमुनिकै उत्तमांग जो मस्तक तातैं उत्पन्न होय है। सो कदाचित् लब्धिविशेषका सद्भाव जाननेकै अर्थि कदाचित् सूक्ष्मपदार्थका निर्णयकै अर्थि तथा तीर्थगमन संयमकी रक्षाकै अर्थि केवली भगवान

के निकट जाय सूक्ष्मपदार्थका निर्णयकरि अंतर्मुहूर्त्तमें उलटा वाहुडी ( लौटकर ) संयमीका देहमें आत्मप्रदेश प्रवेश करे है। इहां ऐसा नहीं जानना जो आहारक शरीर रचनेकूं प्रमत्त होय हैं प्रमत्तसंयमी मुनिहीके होय है। इहां इतना विशेष और जानना। जो देवनिकै वैक्रियिकशरीर अनेक होय हैं। जो स्वर्गलोकमें तो देव विद्यमान रहैं अर विक्रियाकरि अन्यशरीर होय अन्य क्षेत्रमें जाय हैं। तथा प्रमत्तसंयतकै आहारक शरीर दूरि क्षेत्र विदेहादिकनिमें जाय है। तथा तैजसशरीर द्वादश योजन जाय है। सो इनि शरीरनिमें आत्मा तो जिसका देहमैंतें निकस्या सोही आत्मा है। जैसैं कोई सामर्थ्यका धारक देव अपना एक हजार रूप कीए परंतु उन हजार देहनिमें अपनेही आत्माके प्रदेश हैं। बीचमें सूच्यंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण देवकै अर वैक्रियिकशरीरकै तांतूकीज्यों जोड वंधि रह्या है। जातें आत्माका खंड तो होय नहीं आत्माके असंख्यात प्रदेश हैं ते एकतरफ वा अनेकतरफ कार्मणशरीरसहित निकसैंहैं जहां मूलशरीर है तहांताई सूक्ष्मप्रदेशनिका वन्या रहैहै। वैक्रियिकशरीर मूल है ताका काल तो जघन्य दश हजार वर्ष है। उत्कृष्ट तेतीस सागर है। अपर्याप्तअवस्थाका अंतर्मुहूर्तकालकरि ऊन है। अर उत्तरवैक्रियिक देहका काल जघन्य तथा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तही है। अर जो तीर्थंकरके जन्ममें वा नंदीश्वरादिकनिके जिनायतननिकी पूजाकूं जाय है तहां वारंवार विक्रिया करचा करे हैं। ऐसें चौदह सूत्रनिकरि पंच शरीरनिका निरूपण किया। इनि पंच शरीरनिके परस्पर संज्ञा स्वलक्षण स्वकारण स्वामित्व सामर्थ्य प्रमाण क्षेत्र स्पर्शन काल अंतर संख्या प्रदेश भाव अल्पबहुत्व इत्यादिकनितें विशेष है सो आगमतें जानना॥ अब लिंगका नियमके अर्थि सूत्र कहे हैं—

अनिःसरण स्वरूप तहां निःसरणतैजस शुभाशुभभेदकरि दोय प्रकार है ॥ तिनमैं जो तपश्चरणके धारक मुनिके कोऊ क्षेत्रमें रोग मारी दुर्भिक्षादिककरि लोकनिकूं दुःखी देखि जो करुणा अत्यंत उपजि आवै तदि दक्षिणस्कंधमैंतें तैजसपिंड निकलिकरि द्वादश योजनप्रमाण क्षेत्रके जीवनिका दुःख मेटी आत्मामैं प्रवेश करै सो शुभतैजस है अर कोऊ क्षेत्रके लोकनि ऊपरि अत्यंत क्रोधित होय तदि ऋद्धिके प्रभावतें वामस्कंधतें सिंदूरसमान रक्तवर्ण अग्निरूप आत्माका प्रदेश निकलै सो आदिमैं तो सूच्यंगुलकै असंख्यातवै भाग प्रमाण अर अंतपर्यंत क्रमतें वधता काहलके आकार निकसि द्वादश योजनप्रमाण समस्त जीवपुद्गलनिकूं भस्मकरि उलटा शरीरमैं प्रवेशकरि मुनिकूं दग्धकरैहै सो मुनि तो नरककूं प्राप्त होय हैं। ऐसा तो निःसरणस्वरूप तैजसशरीर है। अर अनिःसरणस्वरूप समस्तसंसारीजीवनिके देहकी दीप्तिका कारण है सो लब्धिप्रत्यय नहींहे ॥ अव वैक्रियिकके अनंतर कह्या जो आहारक शरीर ताका स्वरूपका निर्द्धारके अर्थि सूत्र कहैहै—

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥

अर्थ—यो आहारक शरीर है सो शुभ है, विशुद्ध है, व्याघातरहित है सो प्रमत्तसंयतमुनिहीकै होय है। चंद्रकांतमणिसमान श्वेतवर्ण एकहस्तप्रमाण उच्च समचतुरस्रसंस्थान अतिसुंदर अंगोपांगकूं धरै, शुभरूप सप्तधातु उपधातुरहित परमनिर्मल आहारकशरीर है। आहारकशरीर अन्य पर्वत वज्रादिककरि रुकै नहीं। अन्य किसीका आप रोकै नाहीं तातैं अव्याघात है। आहारक शरीर प्रमत्तसंयमीमुनिके उत्तमांग जो मस्तक तातैं उत्पन्न होय है। सो कदाचित् लब्धिविशेषका सद्भाव जाननेकै अर्थि कदाचित् सूक्ष्मपदार्थका निर्णयकै अर्थि तथा तीर्थगमन संयमकी रक्षाकै अर्थि केवली भगवान

कै निकट जाय सूक्ष्मपदार्थका निर्णयकरि अंतर्मुहूर्त्तमें उलटा बाहुडी ( लौटकर ) संयमीका देहमें आत्मप्रदेश प्रवेश करै है। इहां ऐसा नहीं जानना जो आहारक शरीर रचनेकूं प्रमत्त होय हैं प्रमत्तसंयमी मुनिहीकै होय है। इहां इतना विशेष और जानना। जो देवनिकै वैक्रियिकशरीर अनेक होय हैं। जो स्वर्गलोकमें तो देव विद्यमान रहै अर विक्रियाकरि अन्यशरीर होय अन्य क्षेत्रमें जाय हैं। तथा प्रमत्तसंयतकै आहारक शरीर दूरि क्षेत्र विदेहादिकनिमें जाय है। तथा तैजसशरीर द्वादश योजन जाय है। सो इनि शरीरनिमें आत्मा तो जिसका देहमैं निकस्या सोही आत्मा है। जैसें कोई सामर्थ्यका धारक देव अपना एक हजार रूप कीए परंतु उन हजार देहनिमैं अपनेही आत्माके प्रदेश हैं। बीचमें सूच्यंगुलकै असंख्यातवे भागप्रमाण देवकै अर वैक्रियिकशरीरकै तांतूकीज्यों जोड वंधि रह्या है। जातें आत्माका खंड तो होय नहीं आत्माके असंख्यात प्रदेश हैं ते एकतरफ वा अनेकतरफ कार्मणशरीरसहित निकसैहै जहां मूलशरीर है तहांतांई सूक्ष्मप्रदेशनिका वन्या रहैहै। वैक्रियिकशरीर मूल है ताका काल तो जघन्य दश हजार वर्ष है। उत्कृष्ट तेतीस सागर है। अपर्याप्तअवस्थाका अंतर्मुहूर्तकालकरि ऊन है। अर उत्तरवैक्रियिक देहका काल जघन्य तथा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तही है। अर जो तीर्थंकरकै जन्ममें वा नंदीश्वरादिकनिके जिनायतननिकी पूजाकूं जाय है तहां वारंवार विक्रिया करचा करै हैं। ऐसें चौदह सूत्रनिकरि पंच शरीरनिका निरूपण किया। इनि पंच शरीरनिकै परस्पर संज्ञा स्वलक्षण स्वकारण स्वामित्व सामर्थ्य प्रमाण क्षेत्र स्पर्शन काल अंतर संख्या प्रदेश भाव अल्पवहुत्व इत्यादिकनितें विशेष है सो आगमतें जानना॥ अब लिंगका नियमकै अर्थि सूत्र कहे हैं—

नारकसन्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥

अर्थ—नारकी जीव तथा सन्मूर्च्छन जीव ए नपुंसकलिंगीही होय हैं। अब जहां अत्यंत नपुंसकलिंगका अभाव तिनका प्रतिपादनके अर्थि सूत्र कहैहैं—

न देवाः ॥ ५१ ॥

अर्थ—देव हैं ते नपुंसकलिंग नही हैं। देवगतिविषै पुरुषवेद तथा स्त्रीवेद दोय वेदही पाइये हैं। इनमें नपुंसक नहीं होयहैं। वहुरि इहां प्रसंग पाय एतो विशेष और जानना। जो भोगभूमिमैं उपजे तथा म्लेछखंडके स्त्रीपुरुष दोयही वेदनैं धारण करैहैं इनिमैं नपुंसक नहीं उपजैहैं ॥ अब अन्यजीवनिकै लिंगनिका नियमके अर्थि सूत्र कहैहैं—

शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—नारकी देव तथा सन्मूर्च्छन इन विना अवशेष रहे जे गर्भज तिर्यंच और मनुष्य ए तीनूं वेदसहित हैं। लिंग स्त्रीलिंग पुरुषलिंग नपुंसकलिंग ए तीन पाईएहैं। सो लिंग सामान्य दोय प्रकार है। एक द्रव्यलिंग एक भावलिंग तहां द्रव्यलिंग तो नामकर्मका उदयतैं भया ऐसा योनि स्तन तथा मेहन वा डाढी मूंछ आदिक शरीरके आकार विशेष हैं। अर भाववेद हैं सो चारित्रमोहनीयका भेद जो नोकषाय नामा जो वेदकर्म ताके उदयतैं विकाररूप आत्माका परिणाम है। इहां स्त्रीवेद तो अंगारेकी अग्निज्यों कामकरि झकझकाट करैहै। अर पुरुषवेद तृणनिकी अग्निज्यों अतिमंद कामकरि व्याप्त है। अर नपुंसकवेद ईंटनिके पजावेकी अग्निज्यों सास्वता प्रज्वलित कामकी तीव्रतासाहित है ॥ अब ए चतुर्गतिसंबंधी प्राणीनिकै अपना अपना पूर्व आयु बंधनकिया ताकूं परिपूर्ण भोगिकरि नवीन शरीरकूं

धारण करैहैं कि और तरैह है यातैं सूत्र कहैहैं—

औपपादिकचरमोत्तमदेहाः संख्येयवर्षायुपोऽनपवर्त्यायुपः ॥ ५३ ॥

अर्थ—औपपादिक कहिए देव नारकी बहुरि चरमोत्तमदेह कहिए चरमशरीरी अर उत्तम देहका धारी ऐसे तद्भवमोक्षगामी अर असंख्यात वर्षनिका आयुका धारक भोगभूमिमें उपजे जीव ए सर्व अनपवर्त्यायु कहिए परिपूर्ण आयुकरि मरण करै हैं। इनका आयु विष शस्त्रादिकके निमित्ततैं नहीं छिदै है। इनिका ए नेम है अन्यका नियम नाहीं है। सोही कहिए हैं इनकै सिवाय कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिकी आयुकी स्थिति घटैभी है। याका उदाहरण—जैसे कोऊ जीव मनुष्य आयुकी स्थिति सौवर्षप्रमाण पूर्वजन्ममें बांधी मनुष्य उपज्या। तहां जो पूर्वे आयुकर्मकी पुद्गलवर्गणाके जितने परमाणु बंधनकीए थे ते समस्त सौ वर्षके जितने समय होय हैं तितने समयनिमें गुणहानिके विभागतैं निषेक रचना भई सो मनुष्यपर्यायमें एक एक निषेक उदय आय निर्जरै हैं। सो क्रमतैं जो एक-एक समयमें आयुका निषेक निर्जरै तदि सौवर्षमें पूर्ण होय। परंतु बावन वर्षपर्यंत तो समय-समय एक एक निर्जरया अर पाछै कोऊ अन्य संक्लिष्ट कर्मके उदयतैं तथा बाह्य विषभक्षणतैं तथा तीव्रवेदना शस्त्रघात रक्तक्षय अतिभय अन्नजलका अवरोध श्वासोच्छ्वासका निरोध इत्यादिक कारणनें अडतालीस वर्षके निषेक एकठे अंतर्मुहूर्तमें निर्जरिजाय उदीरणा होय विनसी जांय। ऐसें कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिका भुज्यमान आयुका उदीरणा होय है। तदि आयुकी स्थिति घटी शीघ्र मरण होय है। जैसें आम्रफल वा पणसफल पालविषै शीघ्र पकैं, तथा आला वस्त्र घामके निमित्ततैं शीघ्र सूकै तैसें जानना। बहुरि च्यार प्रकारके देव अर नारकी अर उत्तम मध्यम जघन्य तीनूं

भोगभूमिके मनुष्य वा तिर्यंच वा कुभोगभूमिया इनिकी तथा तद्भवमोक्षगामी तीर्थंकर चक्रवर्त्यादिकनिकी भुज्यमान आयुकी स्थिति पूर्वोक्त कारणनिकरि छिदै नाहीं। कोऊ पूछै जो पूर्वोक्त कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिका आयु घटना होय है तैसें इहां आयुका वधनाभी होता होयगा। ताका समाधान—जो भुज्यमान आयुका वधना संभवै नहीं। जातैं आयुवंधै है सो पूर्वजन्मके त्रिभागमैं ही आयुकर्मके परमाणूनिका आस्रव आय वंध होनेका जिनागममैं नियम है तातैं भुज्यमान आयु वधै नहीं है॥ ऐसें इस अध्यायमैं जीवतत्त्वका निरूपण है तहां प्रथमही जीवके उपशमकादि पंच भाव कहे तिनके तेपन भेद सात सूत्रमैं कहे। आगै जीवका प्रसिद्ध धर्म देखि उपयोगकूं लक्षण कह्या ताके भेद कहे। आगै जीवके भेद कहे तहां संसारी अर मुक्त अर संसारीमैं संज्ञी असंज्ञी त्रस स्थावर त्रसके भेद द्वींद्रियादिक पंचेंद्रियतांई कहे। वहुरि पांच इंद्रियके द्रव्येंद्रिय भावेंद्रियकरि भेद नाम विषय कहे। वहुरि एकेंद्रियादिक जीवनिकै इंद्रिय पाइए तिनका निरूपण अर संज्ञीजीवनिका, वहुरि परभवकूं जीव गमन करै ताका गमनका स्वरूप कह्या। आगै जन्मके भेद, योनिके भेद अर गर्भज कैसें उपजें देव नारकी कैसै उपजें सन्मूर्च्छन कैसै उपजैं ताका निर्णय है। आगै पंच शरीरनिके नाम कहि अर तिनका सूक्ष्म स्थूलका स्वरूप कहि अर ए कैसै उपजें तिनका निरूपण किया। आगै वेद जिनकै जैसा होय ताकौं कहिकरि जिनकै उदयमरण तथा उदीरणामरण होय तिनका नियम कह्या॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अर्थ—ऐसें तत्त्वार्थका है अधिगम जातैं ऐसा दशाध्यायरूप जो मोक्षशास्त्र तामैं दूसरा अध्याय पूर्ण भया॥ २॥

॥ दोहा॥

है जातैं तत्त्वार्थका, अधिगम सवसुखदाय। मोक्षशास्त्र मंगलमय, नमो द्वितीय अध्याय॥ २॥

## अथ तृतीयोऽध्यायः ।

दोहा ।

अधो मध्य ऊरध सकल जीवनिवास सुदेखि ।
कह्यो वचन नृपपूर जिन, ज्ञानविरागविशेष ॥१॥

अब जीवतत्त्वका वर्णनमें जीवनिका आधारविशेषका प्रतिपादनमें प्रथम अधोलोकका वर्णनके अर्थि सूत्र कहै हैं—

**रत्नशर्कराबालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ १ ॥**

अर्थ—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, महातमःप्रभा ए सात भूमि नीचे नीचे तीन वातवलय अर आकाश इनिकै आश्रय तिष्ठै हैं। तहां ते समस्त पृथ्वी तो घनोदधिवातवलयकै आधार है। अर घनोदधिवातवलय है सो घनवातवलयकै आधार है। अर घनवातवलय है सो तनुवातवलयकै आधार है। अर तनुवातवलय है सो आकाशकै अधार है। अर आकाश आपहीकै आधार है। जातैं आकाश सबतैं वडा है यातैं याकै अन्य आधारकी कल्पना नहीं है। बहुरि रत्नप्रभा नाम प्रथम पृथ्वी है सो एक लक्ष असी हजार योजनकी मोटी है तिसकै मोटाईकै स्कंधमें तीन विभाग हैं। तिसमें सोलह हजार योजन मोटा ऊपरिका खरभाग है। तिसमें चित्रवज्रा वैडूर्य इत्यादिक हजारहजार योजनकी मोटी सोलह पृथ्वी हैं। ऐसैं सोलह हजार योजन मोटा ऊपरिका खरभाग वर्णन किया बहुरि ताकै नीचे पंकभाग है सो चौरासी हजार योजन मोटा है। अर ताकै

नीने अभी हजार योजनका मोटा अव्वहुल भाग है तिनमैं खरपृथ्वीका ऊपरला नीचला एकएक हजार योजन छांडिकरि मध्यकी चोदह हजार मोटी अर एक रज्जु प्रमाण चौडी लंवी पृथ्वीविषै तो किंनर किंपुरुष महोरग गंधर्व यक्ष भूत पिशाच इन सप्तप्रकार व्यंतरदेवनिके अर नाग विद्युत् सुपर्ण अग्नि वात स्तनित उदधि द्वीप दिक्कुमार ऐसैं नव प्रकारके भवन वासिनिके आवास हैं अर पंकभागविषै असुरकुमार अर राक्षसनिकै आवास हैं। अर अव्वहुल भागविषैं प्रथम नरक है तिसमैं नारकी दुःखित हुए वसैहैं। ऐसैं प्रथमपृथ्वीकी मोटाई एक लक्ष असी हजार योजनकी कही। बहुरि एक रज्जुप्रमाण अंतर छांडि नीचे दूसरी शर्कराप्रभापृथ्वी है तिस दूसरी पृथ्वीकी मोटाई बत्तीस हजार योजनकी है। बहुरि एक राजू अंतराल छांडि तीसरी पृथ्वी अठाईस हजार योजनकी मोटी है। बहुरि एक राजू प्रमाण अंतराल छांडि चौवीस हजार योजन मोटी चौथी पृथ्वी है। बहुरि एक राजू प्रमाण अंतराल छांडी वीस हजार योजन मोटी पंचमी पृथ्वी है। बहुरि एक राजू अंतराल छांडी सोलह हजार योजन मोटी छठी पृथ्वी है बहुरि एक राजू अंतराल छांडी अष्ट हजार योजन मोटी सप्तमी पृथ्वी है। ऐसैं पृथ्वीपृथ्वीप्रति सामान्यपनैं एकएक राजूका अंतर है। ऐसैं छहू अंतरालके छह राजू भए। बहुरि सप्तम पृथ्वीके एक राजू नीचे अधोलोकका अंत है। बहुरि इन सातो पृथ्वीनिकी चौडाई लंबाई लोकका अंतपर्य्यंत जाननी। बहुरि जिस पृथ्वीका जैसा नाम है तैसीही ताकी प्रभा है॥ अब इहां जे सात पृथ्वी कहीं तिनिमैं नारकीनिका आवास सर्वत्र है कि कोऊ कोऊ स्थानमें है इसका निर्द्धार करनेकूं सूत्र कहे हैं—

तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमं ॥ २ ॥

अर्थ—तिन रत्नप्रभादिक भूमिनिविषें नरकनिकी इस प्रकार संख्या है। प्रथम पृथ्वीके अब्बहुल-भागविषें तीसलाख बिल ( नरक ) हैं। दूजा पृथ्वीविषें पचीस लक्ष अर तीसरी पृथ्वीविषें पंदरह लक्ष अर चौथी पृथ्वीविषें दश लक्ष अर पांचमी पृथ्वीविषें तीन लक्ष अर छठी पृथ्वीविषें पांच घाटी एक लक्ष अर सातमी पृथ्वीविषें पांच एते नरक कहिए बिल हैं। अनुक्रमकरि सातो पृथ्वीनिका जोड चौरासी लाख बिल हैं। तेई नरक हैं। ते बिल गोल त्रिकोण चौकोर इत्यादिक अनेक आकाररूप केई बिल संख्यात योजनके केई असंख्यात योजनके चौडे लंबे हैं। बहुरि बिलनिके परस्पर बराबर अंतराल विषें तथा ऊपरी नीचे हरेक तरफ पृथ्वीस्कंध हैं। जैसें ढोल जमीनविषें गाडदे तब ढोलकै सब तरफ पृथ्वी रहै। अर ढोलकी पोलारी समान नारकीनिके बिल हैं। तिन एकएक बिल-विषें संख्यात असंख्यात नारकी वसैहैं—

प्रथम पृथ्वीका अब्बहुलभागविषें तेरह प्रस्तर हैं अर दूजी पृथ्वीविषें ग्यारह प्रस्तर हैं तीजी पृथ्वीविषें नव प्रस्तर हैं चौथी पृथ्वीविषें सात प्रस्तर हैं अर पंचमी पृथ्वीविषें पंच प्रस्तर हैं अर छठी पृथ्वीविषें तीन प्रस्तर हैं अर सातमी पृथ्वीविषें एकही प्रस्तर है ऐसें सातो पृथ्वीनिके मध्य उनचास प्रस्तर हैं ते समस्त प्रस्तर नीचै नीचै हैं। तिन प्रस्तरनिविषें इंद्रक श्रेणीबद्ध प्रकीर्णक ऐसें तीन प्रकारके बिल हैं। तहां प्रस्तरके मध्य तो एकएक इंद्रकबिल है अर तिस इंद्रककी चार दिशा चार विदिशानिविषें पंक्तिरूप बिल हैं ते श्रेणीबद्ध हैं। बहुरि दिशाविदिशानिके आठ अंतरालविषें जहां तहां बिल हैं ते प्रकीर्णक हैं। ऐसें तीन प्रकार बिल कहे। तहां प्रथम प्रस्तरके श्रेणीबद्ध बिल चारो दिशानिविषें प्रत्येक उनचास उनचास

हैं अर चारों विदिशानिविषें प्रत्येक अडतालीस अडतालीस विल हैं। तहां प्रथम प्रस्तारके आठ दिशानिकूं श्रेणीवद्धका जोड तीनसैं अठ्यासि विलनिका होय है। आगै नीचैनीचै एकएक प्रस्तरप्रति चारों दिशानिमें अर चार विदिशानिप्रति एकएक श्रेणीवद्ध विल घटते घटते हैं। यातैं एकएक प्रस्तर प्रति आठआठ विल घटती होय हैं। ऐसैं एकएक दिशाप्रति तथा विदिशाप्रति एकएक श्रेणीवद्ध विल घटतें गुणचासमा प्रस्तर सप्तम नरकका है। तामैं दिशानिमैं एकएक श्रेणीवद्ध विल विदिशामैं विलका अभाव ऐसैं पांचही विल हैं। अव इहां समस्त गुणचास प्रस्तारनिकै श्रेणीवद्ध विलनिका जोड नव हजार छसै च्यार होय है अर इंद्रक विल गुणचासही हैं। अव शेष तीयासी लाख निवै हजार तीन मे सेंतालीस प्रकीर्णक विल हैं। वहुरि उनचास इंद्रक कह्या ताका विस्तार ऐसा जानना। जो प्रथम इंद्रक पैंतालीस लक्ष योजनके विस्तारकूं धरै है। सो अढाई द्वीपकी वरावर सूधीमैं नीचै है। आगै नीचै समान अनुक्रमकरि घटता अंतका उनचासमा इंद्रक एक लाख योजन चौडा है। ऐसैं गुणचास इंद्रक तो समस्त संख्यात योजनके हैं अर श्रेणीवद्ध समस्त असंख्यात असंख्यात योजनके हैं। वहुरि प्रकीर्णक विल केई संख्यात योजनके विस्तार लीए हैं। केई विल असंख्यात योजनके विस्तारतैं हैं॥ अव सीमांतादिक नरकविषें पापकर्मके वशतैं प्रगट होता प्राणीनिका कहा लक्षण है इस हेतूतैं सूत्र कहैहैं—

नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

अर्थ—इनि विलनिविषें नारकी जीव हैं ते सदा अशुभतर लेश्या अशुभपरिणाम अशुभदेह अशुभवेदना अशुभविक्रिया सहित हैं। नारकीनिकै अशुभकर्मनिका उदयकरि अत्यंत अशुभलेश्यादिक ही पाइए हैं। पहिली दूजी पृथ्वीके नारकीनिकैं तो कापोतलेश्याही है। वहुरि तीजी पृथ्वीके नारकीनिकै

ऊपरले बिलनिके नारकीनिके कापोत नीचलेनिके नील लेश्या है । चतुर्थ पृथ्वीके नारकीनिके नील लेश्या है । पांचमीवाले ऊपरिकेनिके नील है नीचलेनिके कृष्ण है । छट्ठीवालेनिकै कृष्णही है । सातमी वालेनिके परमकृष्ण है । ऐसें नीचैंनीचै अधिक अशुभलेश्या हैं अर नारकीनिका स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दनिका परिणमन जे परिणाम तेहू क्षेत्रका विशेषतें अति दुखका कारण अत्यंत अशुभ हैं । बहुरि तिनकादेह अशुभ कर्मके उदयतें अत्यंत अशुभ है । अंग उपांग वर्ण स्पर्श रस गंध शब्द अशुभ हैं । हुंडकसंस्थानी हैं । जैसें कोऊ पक्षीका केश पांख उडीजाय तिस समान तिनके शरीरकी आकृति है । महाक्रूर भयके कारण जिनका दर्शन है । जिनका वैक्रियिक शरीर है तोहू मल मूत्र कफ रुधिर नशाजाल राधि वमन सिड्याहुवा मांस केश हाड चाम औदारिक देह संबंधी है तिनतें हू अत्यंत अशुभ नारकीनिके वैक्रियिक पुद्गल हैं । प्रथमपृथ्वीविषै तेरवा पटलमें नारकीनिका देहकी ऊँचाई सात धनुष तीन हाथ छ अंगुल प्रमाण है । बहुरि नीचैंनीचै पृथ्वी पृथ्वीप्रति दूनादूना शरीरकी ऊंचाईका प्रमाण जानना । ऐसें होतें इनकी सप्तमपृथ्वीविषै शरीरकी उंचाई पांचसै धनुष प्रमाण होय है । बहुरि तिनकै अभ्यंतर तो असाता वेदनीयका उदय अर बाह्य उष्ण शीतकी तीव्र वेदना है । तहां पहली पृथ्वीतें लेय चौथी पृथ्वीपर्यंत तो समस्त बिल उष्णही हैं । बहुरि पांचमी पृथ्वीविषैं तीन लक्ष बिल हैं तिनका च्यार भाग कीजे तहां तीन भागके सवादोय लक्ष बिल तो अति उष्णरूपही हैं । अर चौथे भागके पिचोत्तर हजार बिल अति शीतरूप हैं । बहुरि छठी सातमी पृथ्वीविषैं शीत की वेदना है । ऐसें तो शीतकी उष्णकी अतिवेदना है । बहुरि नानाप्रकारकी रोग वेदना तथा क्षुधा तृषाकी वेदना है अर क्षेत्र महा दुर्गंध है । ऐसें अतिवेदना है । तथा तिनके क्रूर सिंह व्याघ्रादिरूपही

अशुभ विक्रिया होय है। ऐसैं नारकीनिकै लेश्या परिणाम देह वेदना विक्रिया नित्य अशुभ ही होय हैं॥ अब कहैं हैं जो नारकीनिके शीतउष्णजनितही दुःख है कि और प्रकारभी होय है यातैं सूत्र कहैहैं—

परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥

अर्थ—नारकी जीव परस्परहू दुःख उपजावै हैं। जैसैं श्वान हैं ते कारणविनाही जातिस्वभावकृत वैरकरि महानिर्दयी भए संतै परस्पर भक्षण मारण छेदनादिककरि परस्पर दुःखकूं उपजावै हैं। तैसैं नारकीहू भवप्रत्यय अवधिज्ञान करि मिथ्यादर्शनकी उदयकरि विभंगावधिज्ञानतैं दुःखके कारणनिकौं दूरहीतें जानि परस्पर दुःख उपजावै हैं। तथा निकट प्राप्तभए नारकी परस्पर अवलोकनमात्रतैंही कोपाग्निकरि प्रज्वलित होय हैं। अर आपहीकरि विक्रियाकरि कीए खड्ग भाला छुरी मुद्गरादि आयुधनिकरि तथा सिंहव्याघ्रसर्पादिरूप धारणकरि परस्पर छेदन भेदन मारणादिकरि दुःखकी उदीरणा करै हैं। तथा क्रोधके भरे वचननिके घातकरि महान् वैर उपजाय लरैहैं। अर जिनका देह परस्पर घातकरि खंडखंड होजाय तोहू पाराकीज्यौं मिलजाय है आयु पूर्णभये विना मरणकूं नहीं प्राप्ति होय हैं। स्थितिपर्यंत बहुत दुःख भोगवै हैं॥ अब नारकीनिकै इतनेही दुःखउत्पत्तिके कारण हैं कि और हू हैं यातैं सूत्र कहै हैं—

संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥

अर्थ—संक्लेशपरिणामनि करि सहित जे असुरकुमार देव तेहू तीसरी पृथ्वीपर्यंतके नारकीनिकै दुःखकी उदीरणा करावैहैं। केई अंबांवरीप जातिके असुरकुमार देव ते तीजी पृथ्वी तांई जाय दुःख उपजावै हैं। नारकीनिमैं परस्पर कलह उपजावै हैं। इहां कोऊ पूछै उनकै कहा प्रयोजन है ताकूं कहिए हैं, जैसैं इहां केई बलध मिंढा भैंसा कूकड, मुर्गा, तीतर इत्यादिकांनैं लडाय कलह देखि हर्ष मानैहैं तैसैंही दुष्ट असुरके

परिणाम जानने। तथा तप्त लोहमय रसका पावना अग्निरूप तप्तायमान लोहमय स्तंभनितें आलिंगन करावना क्रूट शाल्मलीवृक्ष उपरि चढावना उतारना लोहमय घनानिका घात करना वसूलनितें छीलना तप्ततैलमें सींचना लोहमय कडाहेनिमें पकावना भाडमें भुलसाना घाणीनिमें पेलना शूली चढावना शूलनितें बींधना करोतनितें चीरना अंगारानिमें लोटना व्याघ्र सिंह रीछ श्वान स्याल स्याली मार्जार न्योल्या सर्प उंनर काक गीध कंक घूघू शिकरा (वाज) इत्यादिकनिकरि बाधा करनेकरि तथा तप्तवालुकामें विचरण असिपत्रवनमें प्रवेशन वैतरणीनिमज्जनादिकरि महादुःख उपजावना इत्यादि परस्पर दुःख उपजावेहैं। परंतु आयुका अंतविना मरण नहीं होयहै॥ अब नारकीनिकी आयुका प्रमाण कहनेकूं सूत्र कहे हैं—

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

अर्थ—नारकी जीवनिका आयु पहली पृथ्वीविषै एक सागरका है। दूजी पृथ्वीविषै तीन सागरका आयु है। तीजी पृथ्वीविषै सात सागरका आयु है। चौथी पृथ्वीविषै दश सागरका आयु है। पंचमी पृथ्वीविषै सतरह सागरका आयु है। छठी पृथ्वीविषै बाईस सागरका आयु है। सप्तमी पृथ्वीविषै तेतीस सागरका आयु है। ऐसें सातो पृथ्वीविषै नारकीजीवनिकी उत्कृष्ट स्थिति है। ऐसें पृथ्वीपृथ्वीप्रति नारकीनिकी उत्कृष्ट स्थिति सामान्यकरि कही। बहुरि इन सात पृथ्वीनिविषै गुणचास प्रस्तर हैं। तहां प्रस्तरप्रस्तरप्रति नारकीनिका आयुका प्रमाण तथा शरीरका प्रमाणका विशेष है। ते अन्य ग्रंथनितें जानने। नारकीनिका उपजनेका विरहकाल ऐसा जानना। प्रथम पृथ्वीमें उत्कृष्ट विरह चौबीस मुहूर्त्तका दूजी पृथ्वीविषै सप्त दिनरात्रीका तीजीमें एक पक्षका चौथीमें एकमासका पंचमीमें दोय महीनाका छठीमें च्यारि मासका सप्तमीमें छ मासका उपजनेका विरहकाल है। जैसे प्रथम पृथ्वीमें असंख्यात नारकी

अशुभ विक्रिया होय है। ऐसैं नारकीनिकै लेश्या परिणाम देह वेदना विक्रिया नित्य अशुभ ही होय हैं॥ अब कहैं हैं जो नारकीनिकै शीतउष्णजनितही दुःख है कि और प्रकारभी होय है यातैं सूत्र कहैहैं—

परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥

अर्थ—नारकी जीव परस्परहू दुःख उपजावै हैं। जैसैं श्वान हैं ते कारणविनाही जातिस्वभावकृत वैरकरि महानिर्दयी भए संते परस्पर भक्षण मारण छेदनादिककरि परस्पर दुःखकूं उपजावै हैं। तैसैं नारकीहू भवप्रत्यय अवधिज्ञान करि मिथ्यादर्शनकी उदयकरि विभंगावधिज्ञानतैं दुःखके कारणनिकौं दूरहीतैं जानि परस्पर दुःख उपजावै हैं। तथा निकट प्राप्तभए नारकी परस्पर अवलोकनमात्रतैंही कोपाग्निकरि प्रज्वलित होय हैं। अर आपहीकरि विक्रियाकरि कीए खड्ग भाला छुरी मुद्गरादि आयुधनिकरि तथा सिंहव्याघ्रसर्पादिरूप धारणकरि परस्पर छेदन भेदन मारणादिकरि दुःखकी उदीरणा करै हैं। तथा क्रोधके भरे वचननिके घातकरि महान् वैर उपजाय लरैहैं। अर जिनका देह परस्पर घातकरि खंडखंड होजाय तोहू पाराकीज्यौं मिलजाय है आयु पूर्णभये विना मरणकूं नहीं प्राप्ति होय हैं। स्थितिपर्यंत बहुत दुःख भोगवै हैं॥ अब नारकीनिकै इतनेही दुःखउत्पत्तिके कारण हैं कि और हू हैं यातैं सूत्र कहै हैं—

संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥

अर्थ—संक्लेशपरिणामनि करि सहित जे असुरकुमार देव तेहू तीसरी पृथ्वीपर्यंतके नारकीनिकै दुःखकी उदीरणा करावैहैं। केई अंबांबरीप जातिके असुरकुमार देव ते तीजी पृथ्वी तांई जाय दुःख उपजावै हैं। नारकीनिमैं परस्पर कलह उपजावै हैं। इहां कोऊ पूछै उनकै कहा प्रयोजन है ताकूं कहिए हैं, जैसैं इहां केई मलेछ मिंढा भैंसा कूकड, मुर्गा, तीतर इत्यादिकांनैं लडाय कलह देखि हर्ष मानैहैं तैसैंही दुष्ट असुरके

परिणाम जाननें । तथा तप्त लोहमय रसका पावना अग्निरूप तप्तायमान लोहमय स्तंभनितें आलिंगन करावना कूट शाल्मलीवृक्ष ऊपरि चढावना उतारना लोहमय घनानिका घात करना वसूलनितें छीलना तप्ततेलमें सींचना लोहमय कडाहेनिमें पकावना भाडमें भुलसाना घाणीनिमें पेलना शूली चढावना शूलनितें वींधना करोतनितें चीरना अंगारानिमें लोटना व्याघ्र सिंह रीछ श्वान स्याल स्याली मार्जार न्योल्या सर्प ऊंनर काक गीध कंक घूघू शिकरा (बाज) इत्यादिकनिकरि बाधा करनेकरि तथा तप्तवालुकामें विचरण असिपत्रवनमें प्रवेशन वैतरणीनिमज्जनादिकरि महादुःख उपजावना इत्यादि परस्पर दुःख उपजावेहैं। परंतु आयुका अंतविना मरण नहीं होयहै ॥ अब नारकीनिकी आयुका प्रमाण कहनेकूं सूत्र कहे हैं—

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

अर्थ—नारकी जीवनिका आयु पहली पृथ्वीविषै एक सागरका है । दूजी पृथ्वीविषै तीन सागरका आयु है । तीजी पृथ्वीविषै सात सागरका आयु है । चौथी पृथ्वीविषै दश सागरका आयु है । पंचमी पृथ्वीविषै सतरह सागरका आयु है । छठी पृथ्वीविषै बाईस सागरका आयु है । सप्तमी पृथ्वीविषै तेतीस सागरका आयु है । ऐसें सातों पृथ्वीविषै नारकीजीवनिकी उत्कृष्ट स्थिति है । ऐसें पृथ्वीपृथ्वीप्रति नारकीनिकी उत्कृष्ट स्थिति सामान्यकरि कही । बहुरि इन सात पृथ्वीनिविषै गुणचास प्रस्तर हैं । तहां प्रस्तरप्रस्तरप्रति नारकीनिका आयुका प्रमाण तथा शरीरका प्रमाणका विशेष है । ते अन्य ग्रंथनितें जाननें । नारकीनिका उपजनेका विरहकाल ऐसा जानना । प्रथम पृथ्वीमें उत्कृष्ट विरह चौवीस मुहूर्त्तका दूजी पृथ्वीविषै सप्त दिनरात्रीका तीजीमें एक पक्षका चौथीमें एकमासका पंचमीमें दोय महीनाका छठीमें च्यारि मासका सप्तमीमें छ मासका उपजनेका विरहकाल है । जैसे प्रथम पृथ्वीमें असंख्यात नारकी

हैं तिनमें नवा नारकीका जन्म चौवीस मुहूर्त्तमें किसीका होयही होय। अव कौन पृथ्वीतांई कौन जीवका उपजनेका नियम है। सो कहैहैं—तहां असैनी पंचेंद्रिय जीव जो नरकायु बांधै तो प्रथम पृथ्वीविषैही उपजै द्वितीयादिकनिमैं उपजने योग्य कर्म नहीं बांधैहै। वहुरि सरीसृप हैं ते प्रथम द्वितीय दोय पृथ्वीपर्यंत ही जाय भेरुंडादिक पक्षी तीजी पृथ्वीपर्यंत जाय आगैं नहीं जाय। विषधर सर्प च्यार पृथ्वीसिवाय नहीं जाय। सिंह पंचमी पृथ्वीतांई जाय उपजै मनुष्यणी छठी पृथ्वीपर्यंतही जाय अर मत्स्य अर मनुष्य सप्तम पृथ्वीपर्यंत उपजैं वहुरि नारकी देव भोगभूमिया एकेंद्रिय विकलत्रय ए जीव मरिकरि नरकमैं नहीं उपजैहैं ऐसा नियम है। अव नरकतैं निकसि कौन पर्यायमैं जन्म पावै सो कहैहैं। नरकतैं निकस्या जीव मनुष्य तिर्यंचगतिविषै कर्मभूमिका सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्त गर्भजही होय। भोगभूमिमैं तथा असंज्ञी लब्धिपर्याप्तक सन्मूर्छनमैं नहीं उपजै। तथा नरकतैं निकस्या जीव बलभद्र नारायण प्रतिनारायण चक्रवर्ती इनका पद नहीं पावै वहुरि तीसरी पृथ्वीतांईका निकस्या केचित् तीर्थंकर पदधारक होय तो होजाय। वहुरि चौथी पृथ्वीतांईका निकस्या केचित् निर्वाणगमन करैहैं। पांचमी तांईका निकस्या केचित् महाव्रत धारण करैहैं मोक्षगमन नहीं होयहै। छठी तांईका निकस्या केचित् संयमासंयम देशचारित्र ग्रहण करैहैं अर सप्तमी पृथ्वीका निकस्या क्रूर तिर्यंचही होय मनुष्य नहीं होय ऐसैं सप्तभूमिका विस्तारकूं धरैं जो अधोलोक ताका वर्णन तो किया॥ अव तिर्यग्लोक कह्या चाहिए यातैं स्वयंभूरमण समुद्रपर्यंत तिर्यक्प्रचयरूप अवस्थित असंख्यात द्वीपसमुद्र हैं तिनका नामनिर्देशादिकै अर्थि सूत्र कहैहैं—

जंबूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥ ७ ॥

अर्थ—जंबूद्वीपादिक द्वीप अर लवणोदादिक समुद्र ए शुभनामके धारक असंख्यात द्वीप समुद्र हैं।

तहां प्रथम तो जंबूद्वीप अर लवणसमुद्र अर दूजा धातकीखंडद्वीप कालोदधिसमुद्र तीजा पुष्करवरद्वीप पुष्करवरसमुद्र आगें जैसा द्वीपका नाम तैसा समुद्रका नाम जानना। चौथा वारुणीवर द्वीप पांचमा क्षीरवरद्वीप छठा घृतवर सातमा क्षौद्रवर आठमा नंदीश्वरवर नवमा अरुणवर दशमा अरुणभासवर ग्यारमा कुंडलवर बारमा शंखवर तेरमा रुचकवर चोदमा भुजंगवर पंद्रमा कुशवर सोलमा क्रौंचवर इत्यादि स्वयंभूरमणपर्यंत एकराजूके विस्तारमें अढाई उद्धारसागरप्रमाणके जेते समय होंय तितने असंख्याते द्वीपसमुद्र हैं ॥ अब इन द्वीपसमुद्रनिका विस्तार रचना संस्थान इत्यादिकका विशेषका प्रतिपादनकै अर्थि सूत्र कहैहैं—

द्विर्द्विर्विष्कंभाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥

अर्थ—जो प्रथमद्वीपका विस्तार है तातें दुगणा विस्ताररूप प्रथमसमुद्र है। तातें दूणा विस्ताररूप द्वितीयद्वीप है। तातें दूणा विस्ताररूप द्वितीयसमुद्र है। ऐसें पूर्वपूर्वकूं वेढे दूणेदूणे विस्तार लीए वलय कहिए कंकण तथा कडाकी आकृति लिए द्वीपसमुद्र हैं। आदिमें जंबूद्वीपका विस्तार तातें दूणा लवण समुद्र चोडा है। तातें दूणा धातकीखंड द्वीप है। तातें दूणा कालोदधि समुद्र है। तातें दूणा पुष्करवर द्वीप है। ऐसेंही द्वीपतें दूणा चौडा समुद्र है समुद्रतें दूणा चौडा अगिला द्वीप है। याही अनुक्रमतें स्वयंभूरमण समुद्रपर्यंत असंख्यात द्वीप असंख्यातही समुद्र हैं। बहुरि जंबूद्वीपकूं लवणोदधि समुद्र वेढे है। लवणोदधिकूं धातकीखंडद्वीप वेढे है। धातकीद्वीपकूं कालोदधि समुद्र घेरे है ऐसें समस्त द्वीपसमुद्रनिकी रचना है ॥ आगें पूछैहैं जंबूद्वीपका ठिकाना आकार विस्तारका परिमाण कह्या चाहिए जातें अगिले द्वीपसमुद्रनिकाभी विस्तारादिकका ज्ञान होय ऐसें पूछे सूत्र कहैहैं—

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जंबूद्वीपः ॥ ९ ॥

अर्थ—पूर्वे कहे जे द्वीपसमुद्र तिनके वीच जंवूद्वीप है सो सूर्यमंडलके आकार है। ताके बीचि नाभिकीज्यों मेरुपर्वत है। अर एकलक्ष योजन प्रमाण चौडा है। अर तीन लक्ष सोलह हजार दोय सें सत्ताईस योजन तीन कोस एकसौ अठाईस धनुष साडा तेरह अंगुल कुछ अधिक प्रमाण परिधि जंबूद्वीपकी है। वहुरि इस जंबूद्वीपके चौगिरद अष्ट योजन ऊँची अर अर्ध योजनकी नीवसहित वेदी है सो नीचें वारा योजन, मध्यमें अष्ट योजन, उपरि चार योजन चौडी है वज्रमय मूलमें वैडूर्यमणिमय है अंत जाका अर सर्वरत्नमय है मध्य जाका ऐसी वेदी है। ताके पूर्वादिक चार दिशानिमें विजय वैजयंत जयंत अपराजित नामधारक च्यार महान द्वार हैं। ते द्वार च्यार योजन चौडे लंबे हैं अष्ट योजन ऊंचे हैं। तिनमें विजय वैजयंत द्वारमें गुण्यासी हजार वावन योजन पौणाच्यार कोश वत्तीस धनुप सवातीन अंगुल कुछ अधिक अंतराल है। ऐसेंही अन्यद्वारनिकैहू परस्पर अंतर है। वहुरि यो जंबूद्वीप है सो जंवूवृक्षसहित है। उत्तरकुरु भोगभूमिमें ईसानकोणमें अनादिनिधन पृथ्वीकायरूप अकृत्रिम परिवारके वृक्षनि साहित जंवूवृक्ष है। अर तैसेंही देवकुरु भोगभूमिमें नैऋतकोणाविषें शाल्मलीवृक्ष है॥ अव इस जंबूद्वीपविषे पट्कुलाचलनिकरि विभागनें प्राप्त भए सप्तक्षेत्र तिनके नाम कहै हैं—

भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥

अर्थ—तिस जंबूद्वीपविषै भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत, ऐरावत, ए सप्त क्षेत्र हैं। तिनमें हिमवान् पर्वतके अर पूर्व दक्षिण पश्चिम इन तीन वोडि (तरफ)समुद्रके मध्य भरतक्षेत्र जानना योग्य है। तिस भरतक्षेत्रके मध्य पूर्वपश्चिमलंवा विजयार्द्धपर्वत है। सो पचीस योजन ऊँचा अर पचास योजन

चौडा अर सवाछह योजन नीवकों धरैं है। अर श्वेतवर्ण है। अर पूर्वपश्चिम अपनी कोटी तिनकरि पूर्वपश्चिमका समुद्रकूं स्पर्शै है यातें समुद्रपर्यंत लंबा है। बहुरि इस पर्वतके भूमिसूं दशयोजन ऊँचा जाइए तहां दश योजन चौडी पर्वतसमान लंबी दोय विद्याधरनिके वसनेकी श्रेणी हैं। तिनमें दक्षिण श्रेणीविषै तो रथनूपुरादिक पचास नगरी हैं अर उत्तरश्रेणीविषै चक्रवालादिक साठि नगरी हैं। तिन नगरीनिमें प्रज्ञप्त्यादिक विद्याके धरनहारे विद्याधर बसै हैं। तहांसे दश योजन ऊँचा जाइए तहां दशदश योजन चौडी पर्वतसमान लंबी दोय श्रेणी हैं। तिनमें व्यंतरदेव बसै हैं। शक्रके, सोम यम वरुण वैश्रवण नाम लोकपालनिके, आभियोग्य व्यंतरदेवनिके निवास हैं। बहुरि पंच योजन ऊँचा जाइए तहां पर्वतका शिखरतल है सो दश योजन चौडा पर्वतसमान लंबा है तिस उपरि सवाछह योजन ऊंचा पूर्वदिशामें सिद्धायतन कूट है तिस सिद्धायतन कूटपरि पद्मवेदिकाकरि वेष्टित उत्तरदक्षिण एक कोश लंबा अर पूर्व पश्चिम आधा कोश चौड़ा कुछ घाटि एक कोशप्रमाण उंचा अरहंत भगवानका आयतन मंदिर है। पूर्व उत्तर दक्षिण तीन द्वारनिकरि युक्त है। तिस सिद्धायतन कूटतें पश्चिमकी तरफ अष्ट अन्य कूट हैं। तिनकीहू उंचाई चौडाई सिद्धायतनकूटसमान है। तिनमें व्यंतरादिदेवनिके निवास हैं। अर इस विजयार्द्ध पर्वतके दोऊ तरफ भूमिउपरि अनेक फल फूलनिकरि मंडित पद्मवेदीकरि संयुक्त दोय वनखंड हैं। तिस पर्वतके नीचें तमिस्रा अर खंडप्रपाता नामसहित दोय गुफा हैं। दक्षिण उत्तर पर्वतकी चौडाईसमान पचास पचास योजन लंबी हैं अर पूर्वपश्चिम द्वादश योजन चौडी अष्टयोजन ऊंची हैं अर तिन गुफानिकै सवाछह योजन चौडा एक कोश मोटा अष्टयोजन उंचा वज्रमय कपाटयुगल है। अर हिमवान्पर्वततैं पड़ी जे गंगा सिंधु नदी ते इनही गुफाद्वारकी देहलीनीचें होय निकसि करिके

दक्षिणभरतमैं आय भरतक्षेत्रका छह विभाग करि समुद्रमैं प्रवेश करै हैं। विजयार्द्धके उत्तर तीन खंड अर दक्षिण तीन खंड हैं। तहां दक्षिणके तीन खंडानिका मध्य एक आर्यखंड है। अन्य पंच म्लेच्छखंड हैं। अर विजयार्द्धके उत्तरका मध्यखंडके मध्यप्रदेशमैं एक वृषभाचल नाम पर्वत है सो सौ योजन ऊंचा गोल आकार है। या उपरि चक्रवर्ती अपना नाम लिखे हैं। या प्रकार छह खंड रूप भरतक्षेत्र है। बहुरि तैसैंही यथासंभव ऐरावत क्षेत्र जानना। बहुरि हैमवत, हरि, रम्यक, हैरण्यवत, इन च्यारो क्षेत्रनिमैं एकएक नाभिगिरि पर्वत है। ते गोल उंचे एक हजार योजन हैं। तहां क्षेत्रके मध्यप्रदेशमैं नाभिज्यों जानने। ऐसैं छह क्षेत्र तो कहे। अब निषध अर नील कुलाचलके मध्य विदेहक्षेत्र है जिस विषै योगीश्वर आत्मध्यानकरि देहरहित होय हैं, तातैं विदेह ऐसा सार्थक नाम है। इस क्षेत्रमैं सास्वतो मोक्ष मार्ग प्रवर्त्ते है। ताका विशेषज्ञानके अर्थ क्षेत्रनिका विभागादि लिखिएहैं। तहां ऐसा जानना। जो सुदर्शन मेरु है सो भद्रसालवनकै मध्यविषै है। सो भद्रसालवन पूर्व पश्चिम बावन हजार योजन लंबा है। तिसकै बीच दश हजार योजन चौडा गोल सुदर्शन नाम मेरु है। ताकी पूर्वदिशामैं अर पश्चिमदिशामैं बाईस बाईस हजार योजनका चौडा भद्रसाल नाम वन है। ताहीका पूर्वदिशामैं पूर्वविदेह है अर ताकी पश्चिमदिशामैं पश्चिमविदेह है। तहां पूर्वविदेहके मध्य होय सीतानदी पूर्वसमुद्रकूं जाय है। तिसकरि सीताके उत्तर दक्षिण रूप पूर्वविदेहमैं दोय भाग भए। तिन दोऊ दिशामैंही रचना समान है इतना विशेष–जो दाक्षिणके विदेहनिके अंतमैं निषध नामा कुलाचल है। अर उत्तरमैं नीलाचल है अब सीतानदीकी उत्तरकी तरफकी रचना कहिए हैं भद्रसालकी वेदीतैं लेय देवारण्यकी वेदीतांई पूर्वविदेहका क्षेत्र है। तहां च्यार वक्षारपर्वत हैं ते नीलकुलाचलतैं लेय सीतानदीके तटको प्राप्त ऐसैं उत्तर दक्षिण लंबेहैं।

इन वक्षारगिरिनिकी ऊंचाई कुलाचलके निकट च्यारसे योजन अर क्रमतैं बधती सीताके तटकनैं पांचसे योजन है तहां सीताकी तरफही या उपरि जिनभवन है। या प्रकार च्यार वक्षारगिरि जानने। तिन वक्षारगिरिनिकै बीचबीच तीन विभंगानदी हैं। ते विभंगानदी नीलकुलाचलतैं निकसि सीताविषै जाय मिली हैं। ऐसेंही सीतानदीकी दक्षिणकी तरफहू च्यार वक्षार तीन विभंगानदी अर दोऊ तरफ अंतविषै वेदी इन नवनिके बीच आठ विदेहक्षेत्र हैं। सोही दिखाईए हैं। पूर्व भद्रसालकी वेदी ताके आगे विदेह ताके आगे वक्षार ताके आगे विदेह ताके आगे विभंगा ताके आगे विदेह ताके आगे वक्षार ताके आगे विदेह ताके आगे विभंगा ताके आगे विदेह ताके आगे वक्षार ताके आगे विदेह ताके आगे विभंगा ताके आगे विदेह ताके आगे वक्षार ताके आगे विदेह ताके आगे देवारण्यकी वेदी ऐसें चार वक्षार तीन विभंगा एक भद्रसालवनकी वेदी एक देवारण्यकी वेदी इनि नवनिकैं बीच आठ विदेह ऐसें सीतानदीके दोऊ तटसंबंधी सोलह विदेह छह विभंगानदी आठ वक्षारगिरि जानने। अब इनका प्रमाण ऐसें तीन विभंगानदी प्रत्येक सवासै सवासै योजन चौडी अर वक्षारगिरि चार, प्रत्येक पांचसै पांचसै योजन चोडा, अर आठ विदेहक्षेत्र, प्रत्येक बाईससै बारह योजन साढातीन कोश प्रमाण चौडे हैं। इनि सबनिका जोड बीस हजार अठहतरि योजन होय है। भद्रसालकी वेदीतैं लेय देवारण्यकी वेदीताई एता पूर्वविदेह है।

बहुरि पश्चिमकी रचानाभी पूर्ववत् जाननी। तहां सीतोदानदी पश्चिमविदेहके बीचि होइ पश्चिमसमुद्रमें जाय है। ताकरि सीतोदाके उत्तर दक्षिण रूप पश्चिमविदेहमें दोय भाग भए। तहां दोऊ दिशा रचना समान है। इनिका प्रमाणभी पूर्ववत् है। तीन विभंगानदी चार वक्षारगिरि आठ विदेह क्षेत्र

इनि सवनिका जोड बीस हजार अठहतरि योजन है। इहां पश्चिम भद्रसालकी वेदीतैं लेय भूतारण्य-की वेदीतांई एता पश्चिमविदेह है। अर जैसा पूर्वविदेहका अंतमैं समुद्रकी तरफ उनतीससै बाईस योजन प्रमाणका देवारण्य वन है। तैसैंही पश्चिम विदेहका अंतमैं उनतीससै बाईस योजन प्रमाण भूतारण्य नामा वन है। बहुरि भद्रसालवन मेरुसहित अर दोऊ तरफका विदेह अर देवारण्य भूता-रण्य ए दोऊ वन इन सवनिका जोड एक लक्ष योजनप्रमाण जानना। बहुरि सोलह तो पूर्वविदेह अर सोलह पश्चिम विदेह ऐसैं सब बत्तीस विदेहक्षेत्र हैं। तहां क्षेत्रनिकै मध्य पूर्वपश्चिम लंबा एकएक विजयार्द्धपर्वत है। बहुरि नीलाचल निषधाचलतैं निकसि एकएक विदेहक्षेत्रमैं दोय दोय नदी विजया-र्द्धपर्वतकै नीचे होय सीतासीतोदामैं जाय मिलै हैं। तातैं एकएक विदेहमैं छहछह खंड भए हैं। तहां कुलाचलकी तरफ तीन खंडनिकै मध्य बीचले खंडमैं वृषभाचल है बहुरि सीता वा सीतोदाके दोऊ-तरफ तीन खंडनिकै मध्य बीचला आर्यखंड है अन्य पांच म्लेच्छखंड हैं। बत्तीस विदेहक्षेत्रानिमैं चौसठि नदी हैं। तिनमैं नीलाचल तैं निकसी बत्तीस नदी तो गंगासिंधु ऐसे नामकूं धारै हैं। अर निषधकुलाचलतैं निकसी बत्तीस नदी रक्ता रक्तोदा नामकूं धारै हैं। या प्रकार विदेहक्षेत्र है। बहुरि इहां अन्य विशेष लिखिए हैं—सुदर्शन मेरुकी च्यार विदिशानिविषै च्यार गजदंत पर्वत हैं। तहां ईशान दिशाविषै मौल्यवान गजदंत पर्वत है ताका वैडूर्यमणीकासा वर्ण है अर अग्निविदिशाविषै श्वेत रूपाकै वर्ण का सौमनस गजदंतपर्वत है अर नैऋत्यविषै तप्तसुवर्णवर्ण विद्युत्प्रभगजदंत पर्वत है अर वायुविदिशाविषै सुवर्णवर्ण गंधमादन गजदंत पर्वत है। ते गजदंत मेरुतैं लेय नीलाचल निषिधाचलतैं जाय मिलै हैं तीसहजार दोयसै नव योजन कुछ अधिक इनिकी लंबाई है अर इनकी उंचाई मेरुकै निकट पांचसै

योजन है। अर कुलाचलनिके निकट चारसै योजन प्रमाण हैं। ऐसैं मेरुके चार विदिशानिविषै चार गजदंतपर्वत कहे। बहुरि सुदर्शनमेरु है सो चित्रापृथ्वीविषै हजार योजन याकी नीव है तहां तो दश हजार निवै योजन अर दश योजनके ग्यारवे भागप्रमाण चौडा है। बहुरि अनुक्रमतें घटता घटता समभूमीविषै दश हजार योजन चौडा है अर अंतविषै एकहजार योजन चौडा है महाशोभायमान एक लक्ष योजनप्रमाण उंचा है। तहां एक हजार योजन तो चित्रा पृथ्वीविषै नीव है। अर समभूमीविषै चौगिरद जो भद्रसालवन तातें अनुकमतें घटता पांचसै योजन उँचा चढि चारो तरफ पांचसै योजन चौडी कटनी है। तिस कटनीविषै चारो तरफ नंदनवन है। बहुरि ताके उपरि ग्यारह हजार योजन तो समान चौडाई लिए पर्वत उंचा गया है। अर ग्यारह हजार योजन उपरि साढा इक्यावन हजार योजनक्रमतें घटता घटता साढा बासठि हजार योजन उंचा चढिए तहां पांचसै योजन सर्व तरफ चौगिरद कटनी है तिस कटनीविषै सर्व तरफ सौमनस नामा वन है। बहुरि तहांतें ग्यारह हजार योजन उँचा समान प्रमाण लिए है बहुरि क्रमतें पचीस हजार योजन घटिजाय है। सो छत्तीस हजार योजन ऊँचा चढिए तहां च्यारसै चोराणवे योजन चौडी चौगिरद कटनी है तिस विषै पांडुक नामा वन है। तिसके बीच नीचै बारह योजन चौडी ऊपरि क्रमते घटि च्यार योजन चौडी रही ऐसी च्यालीस योजन ऊँची वैडूर्य मणिमयी चूलिका है। ऐसे च्यार वन मेरुके हैं तिनकी दिशाविषै च्यारि जिनमंदिर हैं सो च्यारो वनविषैं सोलह जिनमंदिर हैं। अर नंदनवन अर सौमनस वन इन दोऊ वननिविषैं सोलह सोलह बावडी हैं। ते मिष्टजलकरि पूरित अतिमनोहररूप हैं। बहुरि पांडुकवनविषैं महासुंदर च्यारि शिला हैं। तिन ऊपरि तीर्थंकर प्रभुके जन्माभिषेकका सिंहासन है। पूर्वविदेह अर

पश्चिमविदेह अर भरत ऐरावत इन च्यार क्षेत्रनिमैं उपजै तीर्थंकरानिका जन्माभिषेक मेरुका पांडुकवनकी शिलाविषैं इंद्रादिकनिकरि करिए हैं। अब किछु अन्य विशेष लिखिए हैं—मेरुपर्वत है सो समस्त क्षेत्रनितैं उत्तरदिशामैं है। जातैं आगमविषैं सूर्यकै उदयकी अपेक्षा पूर्वादिकदिशा कही हैं। पूर्वविदेह क्षेत्रमैं सूर्यका उदय नीलाचल ऊपरि दीखै है। अर निषधाचल ऊपरि अस्त होता दीखै है। तातैं पूर्वदिशामैं नीलपर्वत है। अर पश्चिम दिशामैं निषिधपर्वत है। अर दक्षिणमैं समुद्र है उत्तरमैं मेरु है बहुरि पश्चिमविदेहमैं निषधपर्वततैं सूर्यका उदय है। अर नीलपर्वत ऊपरि अस्त होय है। तातैं निषधाचल तो पूर्व है। अर नील पश्चिम है। अर दक्षिणमै समुद्र है। अर उत्तरमैं मेरु है। बहुरि उत्तरकुरुभोगभूमिमैं गंधमादन गजदंत ऊपरि सूर्यका उदय है। अर माल्यवान् गजदंत ऊपरि अस्त होय है। तातैं पूर्वमैं गंधमादन और पश्चिममैं माल्यवान् और दक्षिणमैं नील और ऊत्तरमैं मेरु है। बहुरि देवकुरु भोगभूमिमैं सौमनस गजदंत ऊपरि सूर्यका उदय है। अर विद्युत्प्रभ गजदंतउपरि सूर्यका अस्त है। तातैं सौमनस पूर्व है। अर विद्युत्प्रभ पश्चिम है। अर निषध दक्षिण है। अर मेरु उत्तर है। या प्रकार च्यारो तरफतैं मेरुगिरि उत्तरमैं जानना। सो इनका विस्तारकथन तथा विदेहक्षेत्रका अनेक विशेषवर्णन राजवार्तिकग्रंथतैं जानना॥ अब जिन क्षेत्रनिका विभाग भया वे कौन हैं अर कैसैं तिष्ठै हैं इस हेतुतैं सूत्र कहै हैं—

तद्विभाजिनः पूर्वपरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः॥ ११॥

अर्थ—तिन भरतादिक क्षेत्रनिके विभाग करनेवाले पूर्वपश्चिम लंबे ऐसै हिमवान् महाहिमवान् निषध नील रुक्मी शिखरि ए छह कुलाचल पर्वत क्षेत्रनिका विभाग धारण करै हैं। तातैं इनकी वर्षधर संज्ञा

है। भरतक्षेत्र अर हैमवत क्षेत्र अर इन दोऊनिका सीमाविषै पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंबा सौ योजन ऊंचा पचीस योजन भूमीविषै नीव जाकी ऐसा हिमवान नामा पर्वत है। सो भरतक्षेत्रकी चौडाईते दूणा एक हजार बावन योजन अर एक योजनका उगणीसभागमें बारह भाग प्रमाण चौडा है। बहुरि तिस हिमवान पर्वतके पहिली तरफ पूर्वपश्चिम लंबा दक्षिणउत्तर चौडा हैमवत क्षेत्र है।सो इकवीससै पांच योजन पांच कलाका चौडा है। इस विषै मनुष्यनिका शरीर एक कोश ऊंचा होय है एक दिनके अंतराल आंवला प्रमाण आहार करै हैं। कल्पवृक्षनिके दिये नानाप्रकारके भोग भोगवै हैं विनयवान मंदकषाय हैं। बहुरि यातैं परैं महाहिमवान पर्वत है सो पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंबा है। याका बियालीससै दश योजन दश कला प्रमाण चौडा विस्तार है। दोयसै योजन ऊंचा है। यातैं परै हरिक्षेत्र चौरासीसै इकवीस योजन एक कलाका चौडा है। पश्चिमसमुद्रपर्यंत लंबा है। इस विषै मनुष्यनिका दोय कोश प्रमाण ऊंचा काय है। दोय पल्यका आयु है। दोय दिन व्यतीत भए बहेडा प्रमाण आहार लेहैं। यातैं परै सोलह हजार आठसै बीयालीस योजन दोय कला प्रमाण चौडा पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंबा च्यारिसै योजन ऊंचा निषधपर्वत है यातैं परै तेतीस हजार छहसै चौरासी योजन च्यार कला प्रमाण विदेहक्षेत्र है। पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंबा है। यातैं परै सोलह हजार आठसै बीयालीस योजन दोयकला प्रमाण चौडा पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंबा च्यारिसै योजन ऊंचा नीलपर्वत है। यातैं परै आठ हजार च्यारसै इकईस योजन एककला प्रमाण चौडा पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंबा रम्यकक्षेत्र है। यामैं मनुष्यनिका हरिक्षेत्रवत् रचना है। यातैं परै च्यार हजार दोयसै दस योजन दश कलाका चौडा पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंबा दोयसै योजन ऊंचा रुक्मीपर्वत है। यातैं परै दोय हजार एकसौ पांच

योजन पांच कला प्रमाण चौडा पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंबा हैरण्यवत नाम क्षेत्र है। यामैं मनुष्यनि की हिमवतक्षेत्रवत् रचना है। यातैं परै एक हजार बावन योजन बारह कला प्रमाण चौडा सौ योजन ऊंचा पूर्वपश्चिम समुद्रपर्यंत लंबा शिखरीपर्वत है। यातैं परैं ऐरावत नामा क्षेत्र भरतक्षेत्रवत् है। ऐसें षट्कुलाचलनिकरि क्षेत्रनिका सात विभाग होयहैं॥ तिन षट्कुलाचलनिका वर्णविशेष प्रतिपादनके अर्थि सूत्र कहै हैं—



हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥

अर्थ—हिमवान कुलाचल हेममय कहिये सुवर्णमय पीतवर्णका है। महाहिमवान पर्वत अर्जुनवर्ण कहिये रूप्यमय है। निषधपर्वत तरुणसूर्यके समान तप्तसुवर्णमय है। नीलपर्वत वैडूर्यमणिवत् कहिये मयूरकंठके समान वर्णका है। रुक्मिपर्वत रजतमय कहिये शुक्लवर्ण है अर शिखरीपर्वत हेममय कहिये पीतवर्णका है ऐसा जानना॥ अब इन पर्वतनिका और भी विशेष स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥

अर्थ—नानाप्रकारके वर्ण अर प्रभावादिकनिकरि सहित जे मणि तिनकरि इन कुलाचलनिके पसवाडे विचित्र हैं। बहुरि मूलतैं लेय ऊपरितांई समान चौडे हैं। बहुरि सुगंधपुष्पादिकनिके धारक नाना प्रकारके उत्तम वृक्षनिकरि शोभासहित हैं। सर्वही पर्वतनिके दोऊ पार्श्वनिविषैं वेदी हैं॥ अब इन पर्वतानिके ऊपरि तिष्ठते ह्रदनिके कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुंडरीकपुंडरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥

अर्थ—हिमवान कुलाचल ऊपरि पद्मह्रद है। महाहिमवान ऊपरि महापद्म है। निषध ऊपरि तिगिंछि

ह्रद है। नीलऊपरि केसरि ह्रद है। रुक्मी ऊपरि महापुंडरीक ह्रद है। शिखरीके ऊपरि पुंडरीक ह्रद है। ऐसें छह कुलाचलनि ऊपरि छह ह्रद कहे॥ अब इन ह्रदनिके आकारविशेष कहनेकूं सूत्र कहे हैं—

प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कंभो ह्रदः ॥ १५ ॥

अर्थ—इनमें प्रथम जो पद्म नामा ह्रद है सो पूर्वपश्चिम एक हजार योजन लंबा है। अर दक्षिण उत्तर पांचसै योजन चौडा है। वज्रमय याका तल है। बहुरि अनेक प्रकारके मणि तथा सुवर्ण तथा रजत तिनकरि विचित्र इसका तट है। बहुरि च्यार द्वारनिकरि सहित ह्रदसमान लंबी चौडी अर्द्ध-योजन ऊंची पांचसै धनुष चौडी रूपामयी याके वेदी है॥ च्यारूतरफ वनखंडकरि मंडित है। स्फटिकमणिसमान स्वच्छ गंभीर अक्षय जलकरि भऱ्या है॥ अब तिसका ऊंडापना कहनेकूं सूत्र कहे हैं—

दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

अर्थ—पद्मह्रदकी ऊंडाई दश योजनकी है।

तन्मध्ये योजनं पुष्करं ॥ १७ ॥

अर्थ—तिस पद्मह्रदमें एक योजनप्रमाण चौडा लंबा कमल है। ताकै एक कोस लंबा पत्र है। अर दोय कोश चौडा बीचिमें कर्णिका है। अर जलतलतें दोय कोश ऊंचा याका नाल है। अर दोयकोश मोटे पत्र हैं। याका वज्रमय मूल है। अरिष्टमणिमय कंद है। रजतमणिमय मृणाल है। वैडूर्यमणिमय नाल है। सुवर्णसमान पत्र है। तप्तसुवर्णसमान केसर है। नानामणिकरि विचित्र सुवर्णमय कर्णिकायुक्त कमल है। तिस कमलकी ऊंचाईतें अर्द्धउन्नताके धारक एकलक्ष चालीस हजार पंद्रह याके परिवारके कमल हैं। तिन परिवारके कमलनिमें श्रीदेवीके परिवारके देवनिके बसनेके महल मकान

हैं ॥ अब अन्य ह्रदनिका प्रमाण तथा कमलनिका प्रमाण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

तद्द्विगुणा द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

अर्थ—पहिले ह्रदतैं तथा कमलतैं दूनेदूने लंबाई चोडाईरूप अगिले अगिले ह्रद तथा कमल जाननैं तहां पद्मह्रदतैं सर्वप्रकार दूना महापद्म ह्रद है। अर महापद्म ह्रदतैं दूना तिगंछि ह्रद है। ऐसें तीन ह्रद कहे तैसैंही प्रमाण लिए उत्तरके तीन ह्रद हैं। इन ह्रदनिकी लंबाई चौड़ाई ऊंचाई दाक्षिणके तीन ह्रदनिकै समान उत्तरकेनिके जानना। अर इनि ह्रदानिमैं जे कमल हैं तेहू दूणा प्रमाणकूं लीए हैं। पद्म ह्रदमैं एकयोजनका कमल कह्या तातैं दूणा महापद्म ह्रदमैं कमल है सो जलतलतैं दोय कोश ऊंचा है। अर दोय कोश लंबा पत्र है। अर एक योजन मोटा पत्र है। अर एक योजनका कमलके वीचि कर्णिका है। अर ताके परिवारके कमल पद्मह्रदसमानही एकलाख चालीसहजार पनरा हैं। विस्तार दूणा है। यातैं तिगंछि ह्रदका प्रमाण तथा कमलका विस्तार दूणा है। अर उत्तरका इन तीन ह्रदनिकै तुल्य है ॥ अब इनि ह्रदनिकै वीच कमलानिमैं निवास करनेवाली देवी हैं तिनके नाम आयु परिवारके जाननेकूं सूत्र कहै हैं—

तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयःससामानिकपरिषत्काः ॥ १९ ॥

अर्थ—जे ह्रदनिविषैं कमल कहे तिनिमैं छह देवी क्रमतैं वसनेवाली हैं। तिन ह्रदनिमैं कमल हैं ते वनस्पतिकाय नहीं है। पृथ्वीकाय रत्नमय हैं। कमलनिकै आकार हैं। तिन कमलनिकी कर्णिकाकै मध्य अतिनिर्मल उज्ज्वल महल हैं। तिन महलनिमैं निवास करनेवाली अनुक्रमतैं श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी है नाम जिनके ऐसी देवी वसै हैं। तिनका एक एक पल्यका आयु है अर तिष

बड़े कमलके परिवारके कमल हैं तिन विषै तिन देवीनिके सामानिक जातिके पारिषदजातिके देव बसै हैं ॥ अब जिन नदीनिकरि क्षेत्रनिमें विभाग भया तिनके नाम कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

गंगासिंधुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदानारी-
नरकांतासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥

अर्थ—इनि छहों ह्रदनितें निकसि सप्तक्षेत्रनिविषै गमन करें ऐसी चौदह महानदी हैं। तिनके नाम गंगा सिंधु रोहित् रोहितास्या हरित् हरिकांता सीता सीतोदा नारी नरकांता सुवर्णकूला रूप्यकूला रक्ता रक्तोदा ए चौदह नदी छहों ह्रदानितें निकसी हैं। तहां पहला पद्मह्रद अर छठा पुंडरीक ह्रद इनतें तीनतीन नदी निकसी हैं। अर च्यार ह्रदनितें दोयदोय नदी निकसी हैं। अब इन नदीनिका दिशाप्रति गमनका नियम कहै हैं—

द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥

अर्थ—दोयदोयमेंतें जे पहिले नामकरि कहीं ते पूर्वसमुद्रकूं जाय हैं। एक एक क्षेत्रविषै दोयदोय नदी अनुक्रमतें गई हैं तहां दोयदोयमें पहिले नाम करि कही जे गंगा रोहित् हरित् सीता नारी सुवर्णकूला रक्ता ए सात नदी पूर्वसमुद्र प्रति गमन करे हैं। अन्य सप्तनदीनिका गमन जणावनेकूं सूत्र कहै हैं—

शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥

अर्थ—दोय दोयमें जे पाछैं कही ते पश्चिमसमुद्रमें गमन करें हैं। सिंधु रोहितास्या हरिकांता सीतोदा नरकांता रूप्यकूला रक्तोदा ए सात नदी पश्चिमसमुद्रमें गमन करे हैं। इहां ऐसा विशेष

जानना। जो च्यार तोरणद्वार सहित जो पद्मह्रद ताका पूर्वतोरणद्वारकरि गंगा नाम नदी निकसि पांचसै योजन तो पूर्वसन्मुख जाय अपना प्रवाहकरि गंगा नाम कूटनैं स्पर्शनकरि तथा त्रिलोकसारजीमें कहे हैं जो आधा योजन गंगाकूटतैं उलीतरफतैंही दक्षिणकूं मुडिकरि पांचसै तेईस योजन अर एक योजनका उगणीस भागमैं छह भाग प्रमाण पर्वत ऊपरि दक्षिण सन्मुख आय अर सवाछह योजन चौडी अर आधे कोश ऊंडी ऐसी सो योजनतैं कुछ अधिकप्रमाण हिमवान् पर्वततैं गोमुख सिंहाकार प्रनालिकातैं हिमवान् पर्वततैं पचीस योजन परैं दश योजन मोटी काहलाकार धारा भरतक्षेत्रमैं पड़ी सो तहां एकसाठि योजन चौड़ालंबा गंगा नाम कुंड है। ताकी दशयोजनप्रमाण ऊंडाई है वज्रमय जाका तल है तिस कुंडमैं साढादश योजन ऊंचा अष्ट योजन चौडा लंबा एक द्वीप है तिस द्वीपऊपरि श्रीदेवीका गृहप्रमाण महलकरि मंडित श्रीदेवीका मंदिर है। तिस मंदिर ऊपरि कमलासन सिंहासन ऊपरि परमशांतस्वरूप जिनेंद्रका प्रतिबिंब विराजै है तिस प्रतिबिंब ऊपरि हिमवान पर्वततैं पडिकरि तिस कुंडके दक्षिण तोरणद्वारकरिकैं निकसी सो सवाछह योजन चौडी अर्ध योजन ऊंडी क्रमकरि विस्तारकूं प्राप्त होती भुजंगवत कुटिलगामिनी खंडप्रपातनाम विजयार्द्धकी गुफाकरि विजयार्द्धके नीचैं गमन करि विजयार्द्धकूं व्यतीत करि दक्षिणसन्मुख होय दक्षिणभरतका मध्यमैं जाय पूर्वसन्मुख मोडा खाय सवा योजन ऊंडी साडाबासठि योजन चौडा विस्तारकरि मागधद्वारकरि लवणसमुद्रमैं प्रवेश करै है। बहुरि तिसही पद्मह्रदके पश्चिम तोरणद्वारकरि निकसि गंगाकीज्यों पांचसै योजन हिमवान् पर्वत ऊपरि सूधी जाय सिंधुकूटतैं दक्षिणसन्मुख मुडि गंगाकीज्यों सिंधुकुंडमैं पडि तमिस्रागुफाकरि विजयार्द्धकूं छांडि पश्चिमसन्मुख होय दक्षिणभरतके अर्द्धतैं प्रभासतीर्थद्वारकरि लवणसमुद्रमैं प्रवेश करैहै। याका

कुंडादिककी स्वामिनी सिंधुदेवी है। बहुरि तिसही पद्महृदके उत्तरतोरणद्वारकरि रोहितास्या नाम नदी निकसी सो दोयसै छिहत्तरी योजन अर छह कला तो उत्तरके सन्मुख हिमवान् पर्वत ऊपरी गई फेरि साढा द्वादश योजन विस्तार अर एक योजन ऊंडी सो योजन कुछ अधिक लंबी हिमवत् क्षेत्रमें एकसो-वीस योजनप्रमाण विस्तीर्ण अर वीस योजन ऊंडा वज्रमय तलसहित कुंड है, तामें सोलह योजन चौडा लंबा साढा बारह योजन ऊंचा द्वीप है ता ऊपरि श्रीदेवीका गृहप्रमाण मंदिर ताविषै जिनप्रतिबिंब ऊपरि रोहितास्या नामा नदी पडिकरि तिस कुंडका उत्तरतोरणद्वारतें निकसि उत्तरसन्मुख शब्दवद्वैताढ्यपर्वतकी अर्द्ध प्रदक्षिणा देय अर अर्द्धयोजनपरसूं मुडि पश्चिमसन्मुख जाय पश्चिमलवणसमुद्रमें प्रवेश करैहै। सो या नदी निकसी तहां तो साढा बारा योजन चौडी एक कोश ऊंडी है। अर समुद्रमें प्रवेश किया है तहां एकसौ पचीस योजन चौडी अर अढाई योजन ऊंडी है। ऐसें ए तीन नदी हिमवान् पर्वततें निकसी हैं। बहुरि ऐसेंही महापद्म हृदके दक्षिणतोरणद्वारतें निकसी रोहित नदी सो सूधी दक्षिणसन्मुख होय हैम-वत् क्षेत्रमें पडि पूर्वसमुद्रको जाय है। बहुरि महापद्म हृदके उत्तरद्वारतें निकसी हरिकांतानदी हरिक्षेत्र में होय पश्चिमसमुद्रमें प्रवेश करैहै। बहुरि तिगंछ हृदके दक्षिणतोरण द्वारतें निकसी हरित् नदी हरिक्षेत्र में होय पूर्वसमुद्रको जाय है। बहुरि तिगंछ हृदके उत्तरतोरणद्वारतें निकसी सीतोदा नाम नदी सो देवकुरुक्षेत्रमें पडि मेरुके सन्मुख जाय दोय कोशतें ही मेरुतें टलि मेरुकी अर्द्ध प्रदक्षिणा देय विद्युत्प्रभ गजदंतकी गुफामें प्रवेशकरि पश्चिमविदेहके मध्य होय पश्चिमसमुद्रमें गमन करैहै। बहुरि केसरि हृदके दक्षिणतोरणद्वारतें निकसी सीता नाम नदी उत्तरकुरुभोगभूमिमें पडि मेरुके सन्मुख जाय आधयोजनतें मेरुकी अर्द्धप्रदक्षिणा देय माल्यवान गजदंतके नीचें होय पूर्वविदेहमें होय पूर्वसमुद्रमें प्रवेश करैहै।

बहुरि केसरि ह्रदके उत्तरतोरणद्वारतैं निकसी नरकांता नदी रम्यकक्षेत्रकै मध्य होय पश्चिमसमुद्रमै जाय है। बहुरि महापुंडरीक ह्रदके दक्षिणतोरणद्वारतैं निकसी नारी नाम नदी रम्यकक्षेत्रमें होय पूर्वसमुद्रमें प्रवेश करैहे। बहुरि महापुंडरीक ह्रदके उत्तरतोरणद्वारतैं निकसी रूप्यकूलानदी सो हैरण्यवतक्षेत्रमें होय पश्चिमसमुद्रकों जाय है। अर पुडंरीक ह्रदके दक्षिणतोरणद्वारतैं निकसी सुवर्णकूलानदी हैरण्यवतक्षेत्रमें होय पूर्वसमुद्रको जाय है। बहुरि सोही पुंडरीक ह्रदके पूर्वतोरणद्वारतैं निकसी रक्ता नाम नदी सो शिखरीपर्वतऊपरी पांचसै योजन सूधी जाय बहुरि उत्तर सन्मुख होय ऐरावतक्षेत्रमें पडि गंगानदीकीज्यौं पूर्वसमुद्रमैं गमन करैहे। बहुरि पुंडरीक ह्रदके पश्चिमतोरणद्वारकरि निकसी रक्तोदा नाम नदी सिंधुनदीकीज्यौं पश्चिमसमुद्रमैं प्रवेश करैहे। इन सर्वनदीनिके दोऊ तटानिविषै सुंदर फल-पुष्पादियुक्त नानाप्रकारके वृक्षनिका वन है। अब इन नदीनिका निकसना अर परनाली होय पडना अर चौडाई ऊंडाई अर जिनकुंडनिके द्वीपनिऊपरि पडी तिन कुंडनिका द्वीपनिका विस्तार अर मूलतैं निकसि विस्तार ऊंडाई अर समुद्रमें मिली तहांकी चौडाई ऊंडाईका विस्तार विदेहकै मध्य प्राप्त हुई सीतासीतोदा नदीपर्यंत दूणादूणा जानना। इहां जुदाजुदा तथा और विशेषवर्णन ग्रंथ वधनेके भयतैं नही लिखा है। ऐसैं सात क्षेत्रनिमैं चोदह नदी हैं। तहां हिमवत हरि रम्यक हैरण्यवत इनि च्यार क्षेत्रनिमैं मध्यविषै च्यार नाभिगिरि हैं। अर विदेहक्षेत्रकैं मध्यमेरुही नाभिगिरि है। जिन क्षेत्रनिमैं दोयदोय नदी हैं ते तो नाभिगिरिकै सन्मुखजाय आधआध योजन उरैं तैं मुडि नाभिगिरिकी तथा मेरुकी अर्द्धप्रदक्षिणा देय समुद्रमैं गमन करैहैं। ऐसैं पांच क्षेत्रसंबंधी दश नदी जाननी अर भरत ऐरावतविषैं नाभिगिरि नाही हैं। तहां संबंधी च्यार नदीनिका प्रवाहादिक समान हैं॥ अब इन नदीनिका परिवार कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिंध्वादयो नद्यः ॥ २३ ॥

अर्थ—गंगा सिंधु नदी चौदहचौदह हजार परिवारका नदीनिकरि सहित समुद्रमें मिलेहैं। अर आगे रोहित रोहितास्याकी अठाईस अठाईस हजार परिवारकी नदी हैं। हरित हरिकांताकी छपन छपन हजार परिवारकी नदी हैं। सीताकी परिवार नदी एक लाख बारह हजार हैं। अर इतनीही सीतोदाकी परिवारनदी जाननी। अर उत्तरक्षेत्रनिविषें दक्षिणके क्षेत्रनिसमान जाननी ॥ अब कहें जो भरतादिक क्षेत्रनिका तुल्य विस्तार है कि विशेष है तातें सूत्र कहेहैं—

भरतः षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥ २४ ॥

अर्थ—भरतक्षेत्र है ताका पांचसें छवीस ५२६$\frac{6}{19}$ योजन अर एक योजनका उगणीस भागमें छह भाग प्रमाण दक्षिणउत्तर विस्तार है ॥ अन्य क्षेत्रनिका विस्तार विशेषकी प्रतिपत्तिके अर्थि कहेहैं—

तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहांताः ॥ २५ ॥

अर्थ—तिस भरतक्षेत्रतें कुलाचल तथा क्षेत्र दूनादूना विस्ताररूप विदेहक्षेत्रपर्यंत हैं। तहां भरतक्षेत्रतें दूना चौडा एकहजार बावनयोजन बारहकलाका हिमवान् पर्वत है। हैमवतक्षेत्र इकईससे पांच योजन पांचकला है। महाहिमवान् कुलाचल च्यार हजार दोयसे दश योजन दश कलाका है हरिक्षेत्र आठ हजार च्यारसे इकईस योजन एक कला है। निषधकुलाचल सोलह हजार आठसे बीयालीस योजन दोय कला है। विदेहक्षेत्र तेतीस हजार छहसे चोरासी योजन च्यार कला है। ऐसें विदेहपर्यंत दूनादूना विस्तार है ॥ आगें उत्तरके कुलाचल क्षेत्रादिकनिका प्रमाण कहनेकूं सूत्र कहे हैं—

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

अर्थ—उत्तरके ऐरावतादिक नीलपर्यंत भरतादिक दक्षिणके क्षेत्रनिकरि तुल्य जानने योग्य हैं ॥ अब कहे हैं—जो भरतादिक क्षेत्रनिमें मनुष्यादिकनिके सुखदुःखादिकनिका अनुभवादिक तुल्य है कि कुछ विशेष है। यातें सूत्र कहे हैं—

भरतैरावतयोर्वृद्धिन्हासौ पट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां ॥ २७ ॥

अर्थ—भरत ऐरावत इन दोय क्षेत्रनिविषें उत्सप्पर्ण जो बढना अर अवसर्पण जो घटना इनिरूप जो छह काल तिनकरि मनुष्यादिकनिके आयुका प्रमाण कायका प्रमाण भोग उपभोग संपदा वीर्य बुद्ध्यादिकनिका बढना घटना होय है। उत्सर्पिणीमैं दिनादिन बधै हैं। अवसर्पिणीमें घटै हैं। तहां अवसर्पिणी तो सुखमसुखमा १ सुखमा २ सुखमदुःखमा ३ दुःखमसुखमा ४ दुःखमा ५ अतिदुःखमा ६ ऐसें छह प्रकार है। अर उत्सर्पिणीहू अतिदुःखमा १ दुःखमा २ दुःखमासुखमा ३ सुखमदुःखमा ४ सुखमा ५ सुखमसुखमा ६ ऐसें छह प्रकार है। अवसर्पिणीका प्रमाण दशकोडाकोडीसागरका है। सो ही उत्सर्पिणीका प्रमाण दशकोडाकोडीसागरका है। ऐ दोऊ मिलेहुये कल्पकाल हैं तहां सुखमसुखमा च्यार कोडाकोडीसागरप्रमाण है इसकी आदिमैं मनुष्य उत्तरकुरुभोगभूमिका मनुष्यकै तुल्य हैं। तिसकी क्रमतैं हानि होतै दूजा काल सुखमा नामा तीन कोडाकोडीसागरका प्रवर्त्तै है। तिस कालकी आदिमैं मनुष्य हरिवर्षके मनुष्यसमान हैं। मध्यभोगभूमिकी रचना इस कालमैं है। तिसकी क्रमतैं हानि होतै सुखमदुःखमा नामा तीजा काल दोय कोडाकोडीसागरका प्रवर्त्तै है। तिस कालकी आदिमैं मनुष्य जघन्यभोगभूमिकीज्यौं हैमवतक्षेत्र ताके मनुष्यनिकरि तुल्य होय हैं। तिस कालकी क्रमतैं हानि होतै दुःख-

सुषमदुःषमा नामा चौथा काल प्रवर्त्ते है। याका बीयालीस हजार वर्ष घाटि एक कोडाकोडीसागर प्रमाण काल है। तिसकी आदिमें मनुष्य विदेहनिके मनुष्यनिके तुल्य हैं। तिसकालकीहू क्रमतें हानि होतें दुःखमा नामा पंचम काल इकईस हजार वर्षका प्रवर्त्ते है। इस कालकूं क्रमतें व्यतीत होतें अतिदुःखमा नामा काल इकईस हजार वर्षका प्रवर्त्ते है। प्रथम कालकी आदिमें मनुष्यनिका आयु तीन पल्यका अनुक्रमतें घटता अंतमें दोय पल्यका है। द्वितीय कालका आदिमें आयु दोय पल्यका अंतमें अनुक्रमतें घटते एक पल्यका है। तृतीय कालका आदिमें आयु एक पल्यका अंतमें घटते २ एककोटीपूर्वका है। चतुर्थ कालकी आदिमें एककोटीपूर्वका अंतमें अनुक्रमतें एकसोवीस वर्षका पंचमकालकी आदिमें मनुष्यनिका आयु एकसोवीस वर्षका अंतमें क्रमतें घटता वीस वर्षका है। छठा कालकी आदिमें मनुष्यनिका आयु वीसवर्षका अंतमें क्रमतें घटता पनरहवर्षका है ऐसें मनुष्यनिका छह कालसंबंधी उत्कृष्ट आयु कह्या। बहुरि मनुष्यनिका शरीरकी ऊँचाई प्रथमकालकी आदिमें तीन कोस अंतमें दोय कोस द्वितीयकालकी आदिमें दोय कोश अंतमें एक कोश तृतीय कालकी आदिमें एक कोश अंतमें पांचसे धनुष्य ऊँचा है। चतुर्थ कालकी आदिमें पांचसे धनुष्य अंतमें सप्त हस्त ऊंचा है। पंचमकालकी आदिमें सप्त हस्त ऊंचा अंतमें दोय हस्त ऊँचा है। छठा कालकी आदिमें दोय हस्त ऊँचा अंतमें एक हस्त ऊंचा है। ऐसें छह कालमें शरीरकी ऊंचता कही। प्रथम कालमें मनुष्यनिका वर्ण ऊगता सूर्य समान है। दूजामें पूर्णमासीके चंद्रमासमान है। तृतीय कालमें हरित श्यामवर्ण है। चतुर्थकालमें पंचवर्ण हैं। पंचमकालमें कांतिहीन मिश्र पंचवर्ण हैं। छठामें—धूमवत् स्यामवर्ण है। ए छह कालमें शरीरका वर्ण कह्या।

अब इनके आहार कहे हैं। प्रथम कालमें तीन दिन गए चौथे दिन बदरीफलकै प्रमाण आहार ग्रहण करे हैं। द्वितीय कालमैं दोय दिन गए पाछैं बहेडा प्रमाण आहार ग्रहण करै हैं। अर तृतीय कालमैं एक दिन गया पाछैं आमला प्रमाण भोजन करै हैं। अर चतुर्थकालमैं रोजीना एकवार पंचमे कालमैं बहुतवार अर छठाकालमैं अतिप्रचुरवृत्तिकरि भोजन करै हैं। ऐसैं मनुष्यनिकै छह कालमें आहारको क्रम कह्या। अर तीजा कालतांई इस भरतक्षेत्रमैं भोगभूमि प्रवर्त्तै है। अर चतुर्थ पंचम कालमैं कर्मभूमि प्रवर्त्तै है। अर अवसर्प्पिणीका पंचमकालका तीन वर्ष साढा आठ महीना अवशेष रहे कल्कीका निमित्ततैं प्रभातकालमैं धर्मका नाश होयगा मध्यान्ह कालमैं राजाका नाश होयगा अर अपराह्न कालमैं अग्निका नाश होयगा। तीठा पाछैं छठा कालमैं मनुष्य नग्न रहैंगे मत्स्यादिकनिका आहार करैंगे। जातैं पुद्गलनिका लूखापणातैं तो अग्निका नाश होयगा। अर मुनि श्रावकादिकका अभावतैं धर्मका नाश होयगा। अर असुरपतिका कोपतैं राजाका नाश होयगा। ऐसैं दुखम जो पंचमा काल ताका स्वरूप कह्या। अब अतिदुःखमा नामा छठा काल इकवीस हजार वर्षपर्यंत प्रवर्त्तैगा। इसकालमैं मनुष्य नरकतिर्यंच गतिके आएही उपजैहैं अर नरक तिर्यंचगतिहीमैं जाय उपजैहैं। अर इस छठे कालमैं मनुष्य मत्स्यादिकनिका आहार करैहैं नग्न रहे हैं। तिस छठा कालका अंतमैं आर्यखंडमैं संवर्त्तक नाम पवन चले है। सो पवन पर्वत वृक्ष भूम्यादिकको चूर्ण करती दिशाका अंततांई आर्यखंडमैं परिभ्रमण करै है। तिस पवन करि आर्यखंडके जीव मरणको प्राप्त होय हैं। अर कितनेक विजयार्द्धके वा गंगासिंधुकी वेदीके निकटवर्त्ती मनुष्य तिर्यंच जीव विजयार्द्धके वा गंगासिंधुकी वेदीके क्षुद्रबिलनिमैं प्रवेश करैहैं। अर कितनेक देव विद्याधर दयावान होय मनुष्य युगलादि बहुत जीवानिनैं बिल गुफादिक-

निर्गें प्रवेश करावै हैं। ऐसें छठा कालका अंतमें सात सात दिन पर्यंत पवन अति शीतल क्षार विष कठोर अग्निरज धूम इनकी गुणचास दिनपर्यंत वृष्टि होय हैं। तदि तिन वर्षानिकरि अवशेष जन नष्ट होय हैं। अर विषकी अर अग्निकी वर्षाकरि पृथ्वी एकयोजनपर्यंत नीचातांई कालका प्रभावतें चूर्ण होय है। इसकूं प्रलयकाल कहै हैं। और जो एकांती महाप्रलय मानै हैं सो नहीं जानना। बहुरि उत्सर्पिणीकालका प्रवेश होय है। तिसका प्रथम कालकी आदिमें मेघवर्षें हैं। ते सातसात दिन पर्यंत जल दुग्ध घृत अमृत रसानें वर्षें हैं। तदि तिन वर्षानिकरी भूमि उष्णता छांडि सचिक्कणता कांतिमानतानें धारण करै है। अर वल्ली वृक्ष औषधादिक प्रकट होय हैं तदि नदीतीर गुफादिकमें तिष्ठते जीव भूमिका शीतल सुगंधगुणकरि खैंचे हुए निकसिकरि क्रमतें भूमिविषें विचरैंगे ते नग्न रहैंगे मृत्तिकाका आहार करैंगे। ऐसें उत्सर्पिणीका प्रथमकाल इकईस हजार वर्ष प्रमाण व्यतीत होय चुकै तदि उत्सर्पिणीका दुःखमा नाम द्वितीय काल इकईस हजार वर्षका प्रवर्तै है। तिस द्वितीय कालका एक हजार वर्ष बाकी रहे सोलह कुलकर होय हैं। ते कुलकर कुलका आचार अग्निसें अन्नादिक [illegible] अन्नादिक क्रिया प्रगट करै हैं। बहुरि बियालीस हजार वर्ष घाटि एक कोडाकोडीसागरप्रमाण तीसरा काल प्रवर्तै है। तिसमें तीर्थंकरादिक तिरेसठिशलाका पुरुष प्रगट होय हैं। बहुरि उत्सर्पिणीके चौथा कालमें जघन्यभोगभूमि, पांचमामें मध्यभोगभूमि, छठामें उत्कृष्टभोगभूमि ऐसें उत्सर्पिणीके छहौं काल बहुरि अवसर्पिणीका पहला दूजा तीजामें भोगभूमि चोथामें पांचमामें कर्म[illegible] [illegible] कृष्णपक्षशुक्लपक्षकीज्यों निरंतर प्रवर्तै हैं॥ अब कहै हैं अन्य भूमिविषें कैसी [illegible]

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

अर्थ—तिन भरत ऐरावत क्षेत्रनितैं अन्य जे क्षेत्र हैं ते अवस्थित हैं। जैसीकी तैसी ही रचना रहै है। जेसैं भरत ऐरावत क्षेत्रमैं काल पलटै है। आयुकायादिक घटै बधै हैं। तैसैं नहीं घटै बधै हैं॥ अब अन्यक्षेत्रनिमैं आयु अवस्थित कैसे रहै है यातैं सूत्र कहै हैं—

एकद्वित्रिपल्योपमास्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥ २९ ॥

अर्थ—हैमवत क्षेत्रके मनुष्यनिका आयु एक पल्यका है। हरिक्षेत्रके मनुष्यनिका आयु दोय पल्यका है। देवकुरुके मनुष्यनिका आयु तीन पल्यका है। इन तीन भोगभूमिमैं कायका प्रमाण एककोश दोय कोश तीन कोश ऊंचा है। अर आहार जघन्य भोगभूमिमैं एकदिनके अंतर, मध्यमैं दोय दिनके अंतर, उत्कृष्टमैं तीन दिनके अंतर है। इनिकै मल मूत्र पसेवादिक नहीं हैं। रोग नहीं मरणके अवसरमैं वेदना नहीं। पुरुषकूं उवासी स्त्रीकूं छींक मरण समयमैं आवै है। अन्य वेदना नहीं होय है। बालवृद्धपणाका क्लेश नहीं है। व्रतसंयम नहीं है। केईकनिकै सम्यक्त्व होय है। कलहादिक दुःख नहीं है पृथक्त्व अपृथक्त्व दोऊ प्रकारकी विक्रिया करै हैं। मरण भए पीछे देह कपूरवत् विलाय जाय है। मरे पीछैं सम्यग्दृष्टी तो सौधर्म ईशान स्वर्गमैं देव होय हैं। मिथ्यादृष्टि भवनत्रिकमैंहू उपजे हैं। भोगभूमिके तिर्यंचनिकाहू मरणकरि देवलोकमैं उपजना है। परस्पर ईर्षा वैरभावरहित हैं। तिर्यंच हैं ते च्यार अंगुल ऊंचे महामिष्ट तृण अमृत समान भक्षण करै हैं। जहां तावडा शीत गरमी आताप नहीं। मणिमयी भूमिका है। वर्षा नहीं होय है। जहां स्वामी सेवक नहीं। छह कर्मके क्लेशकरि जीविका नहीं है। कल्पवृक्षनिके दीए मनोवांछित भोजन वस्त्र आभरण

वाजिंत्र महल पात्र वादित्र समस्त भोग उपभोग की सामग्री भोगे हैं। व्यभिचारादिक निंद्यकर्म जहां नहीं हैं। विकलत्रयादिक जीव नहीं हैं। जहां तिर्यंच महाभद्रपरिणामी वैरविरोधरहित स्थलचर नभचरही हैं। जलचर नहीं हैं। ऐसे भोगभूमिका वर्णन किया॥ अब उत्तरक्षेत्रनिकी अवस्थितिके अर्थि सूत्र कहे हैं—

तथोत्तराः ॥ ३० ॥

अर्थ—जैसे दक्षिणके क्षेत्रनिकी रचना है तैसेही उत्तरके क्षेत्रनिमें है। तहां हैरण्यवतकी रचना हैमवतक्षेत्रके तुल्य है। अर रम्यकक्षेत्रकी रचना हरिक्षेत्रके तुल्य है। अर उत्तरकुरुकी रचना देवकुरुके तुल्य है। ऐसें उत्कृष्ट मध्यम अर जघन्य इन तीन भोगभूमिका दोयदोय क्षेत्र हैं। पंचमेरुसंबंधी तीस भोगभूमि हैं॥ अब विदेहकी अवस्थिति कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

अर्थ—पंचमेरुसंबंधी पांच विदेहक्षेत्रनिविषै मनुष्यनिका आयु संख्यात वर्षका है। तहां दुःखमसुखम कालकी आदिमें जो रीति है सो शास्वती रहैहै। अर मनुष्यनिका पांचसे धनुषका काय है। नित्य आहार करै हैं। उत्कृष्ट आयु कोडीपूर्वका है। जघन्य आयु अंतर्मुहूर्त्तका है। इहां पूर्वका प्रमाण ऐसा जानना। चोरासी लक्ष वर्षका एक पूर्वांग होय है। चोरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व होय है। सो कर्मभूमिमें उत्कृष्ट आयु कोडीपूर्वकी है॥ अब आगें कह्या जो भरतक्षेत्रका विस्तार ताकूं प्रकारांतरकरि कहैहैं—

भरतस्य विष्कंभो जंबूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जंबूद्वीप एकलक्ष योजन प्रमाण है ताका एकसो निवे भागकी जेतामें एकभागमात्र भरतक्षेत्रका विस्तार है। पूर्वें जो भरतक्षेत्रका पांचसो छबीस योजन छ कला प्रमाण विस्तार कह्या सो जंबूद्वीपका

१४० दशवें भाग है। दिशानिके च्यार कलशनिकी उंचाई अर मध्यकी चौडाई लक्ष लक्ष योजनकी है। अर मध्यमेंसूं अनुक्रमतैं नीचे ऊपरि दोऊतरफ घटता गया है सो पींदा अर मुख प्रत्येक दश हजार योजनका चौडा है। अर विदिशाके च्यार प्रत्येक ऊंचे दश हजार योजन हैं अर मध्यमैं उदरहू दश हजार योजनका है। वहुरि मध्यतैं नीचै वा ऊपरि क्रमतैं घटता एक हजार योजन चौडा है। अर आठ अंतरालनिमें तिष्ठते एक हजार कलश एक हजार योजन ऊंडे अर मध्यमैं चौडे हैं। अर मध्यतैं ऊपरि नीचैं घटेहैं सो पींदा अर मुख एकसौ योजन प्रमाण है। वहुरि इन समस्त एक हजार आठ कलशानि की अपनी अपनी ऊंचाईका तीनतीन भाग करिए तहां नीचला त्रिभागविषैं तो पवन है। अर मध्यका त्रिभागविषैं जल अर पवन दोऊ हैं। अर ऊपरला त्रिभागविषै केवल जलही भरया है। तहां शुक्लपक्षमैं तो पातालनिका मध्यभागविषै पवन वधैहै। सो दिनप्रति जल ऊंचा वधै है अर कृष्णपक्षमैं पवन नीचैं वैठैहै। तातैं जल दिनप्रति घटै है। ऐसैं लवणसमुद्रका वर्णन है। वहुरि ए पातालकलश लवणसमुद्रहीमें है। अन्य समस्तसमुद्रनिमैं नहींहैं। अर समभूमिसैं लवणसमुद्रकाही जल ऊंचा है अन्य समुद्रनिका जल समभूमितैं उंचा नहीं है बरावरी है। वहुरि अन्य समस्तसमुद्र एक हजार योजनके ऊंडे दोऊ तटनितैं समान उंडाई हैं। वहुरि लवणसमुद्रका जल लवणसमान क्षाररसमय है। अर कालोदधि अर पुष्कर अर अंतका स्वयंभूरमण इन तीन समुद्रानिका जल है सो जलके स्वादरूपही है। अर चौथा वारुणीवरका जल मदिराका रसरूप है। पांचमा क्षीरवरसमुद्र दुग्धके स्वादरूप है। अर छठा घृतवर घृतके स्वादरूप है। ऐसैं सातसमुद्र तो भिन्न स्वादरूप कहे। अर इनतैं अन्य असंख्यात समुद्र हैं तिनके जलका इक्षुरसके समान स्वाद है। वहुरि कच्छमच्छादिक जलचर जीव हैं ते लवणसमुद्र अर कालोदधिसमुद्र अर स्वयं-

भूरमण इन तीन समुद्रनिमें ही हैं। अन्य असंख्यात समुद्रनिमें नहीं हैं। अर समस्तसमुद्र हजार योजन प्रमाण समान ऊंडे हैं॥ अब आगें लवणोदधिके अनंतर धातकीखंड नाम दूसरा द्वीप है तहां संबंधी रचना कहनेकूं सूत्र कहे हैं—

द्विर्धातकीखंडे ॥ ३३ ॥

अर्थ—धातकीखंडद्वीपविषैं भरतादिक्षेत्र दोयदोय हैं। धातकीखंड नाम दूसरा द्वीप है सो लवणसमुद्रको कडाकी ज्यों वेढिकरि च्यार लक्ष योजन चौडा तिष्ठै है। जो जंबूद्वीपसमान खंड करिए तो लवणसमुद्रका चौईस होय धातकीखंडका १४४ कालोदधिका ६७२ पुष्करका २८८० ऐसें विस्तार जानना ताकी दक्षिणउत्तरदिशामें दोय इष्वाकार पर्वत हैं। द्वीपप्रमाण च्यारि लाख योजन लंबे हैं। ते लवणोदधि कालोदधिकी वेदीकूं स्पर्शे हैं। ते इष्वाकार च्यारसै योजन ऊंचे हैं। सो योजन ऊंडे हैं। एक हजार योजनप्रमाण चौडे हैं। तिनकरि द्वीपमें दोयभाग भया। तहां पूर्वभागके मध्य विदेहविषैं अचल मेरु है। सो इन मेरुगिरिनिकी प्रत्येक एक हजार योजन नींव अर चौरासी हजार योजन उन्नता है तहां समभूमिविषैं तो भद्रसाल वन है। तातैं पांचसै योजन ऊपरि नंदनवन है अर साढे पचपन हजार योजन ऊपरि सौमनसवन अर अठाईस हजार योजन ऊपरि पांडुक वन ऐसें च्यार वन हैं। ऐसें दोय मेरुपर्वत इनकी चूलिका चालीस हजार योजन ऊंची पन्नाके वर्ण है। बहुरि इन दक्षिण इष्वाकारतें लगाय दोय तरफ भरतक्षेत्र हैं। बहुरि हिमवानपर्वत इत्यादि ऐरावतक्षेत्रतांई रचना है सो इष्वाकार तांई गयी है बहुरि उत्तर इष्वाकारके दोऊ तरफ ऐरावतक्षेत्र है। ऐसें चोदह क्षेत्र बारह कुलाचल हैं। इनकी रचनाका दृष्टांत ऐसा है जैसें पृथ्वी ऊपरि गाडीका पहा धरि देखिए तिस पहाका आरासमान

गमन नहीं है। उपपादसमुद्धात वा मरणांतिकसमुद्धात विना अन्यका गमन नहीं है। बहुरि ऐसैंही द्वीपतैं समुद्र दूना समुद्रतैं द्वीप दूना ऐसैं दूणा दूणा विस्तार रूप होतैंही अष्टमा नंदीश्वर नामा द्वीप है। ताका चोडाई एकसो तरेसठि कोडि चौरासी लाख योजनप्रमाण है। अर दोय हजार बहतरि कोडी तेतीस लाख चोपन हजार एकसो निवै योजन अर एक कोशतैं कुछ अधिक इस द्वीपकी परिधिका प्रमाण है। इस द्वीपका अतिमध्यभागविषै च्यारौं दिशानिविषै च्यार अंजनगिरिनाम पर्वत हैं। अंजनवर्ण स्याम हैं। सो एक हजार योजन तिनकी भूमिविषै नीव है अर समभूमितैं चौरासी हजार योजन उंचे हैं। अर तिनका मूलमैं मध्यमैं अर अग्रभागमैं समानविस्तार लीए चौरासी हजार योजनही उच्चताके समान चौडे हैं। ढोलके आकार हैं। तिनकी च्यारौं दिशानिमैं एक लक्ष योजन क्षेत्र छांडि एकएक अंजनगिरिकी च्यार दिशामैं च्यार बावडी हैं। ते एकलक्ष योजन लंबी अर चौडी अर हजार योजन ऊंडी चोकोर हैं। ऐसैं च्यार अंजनगिरि संबंधी सोलह बावडी हैं। इनि बावडीकै च्योगिरद चार वन हैं। अशोकवन सप्तपर्णवन चंपकवन आम्रवन ते च्यारौं वन बावडी-समान एक लक्ष योजन लंबे हैं। अर पचास हजार योजन चौडे हैं। बहुरि तिन बावडीनिके मध्यविषै एकएक दधिमुख नाम पर्वत है। ते हजार योजन भूमिमैं नींवसहित हैं। अर दश हजार योजन ऊंचा तथा मूलमैं मध्यमैं ऊपरि समान विस्तार लीए दश हजार योजनका चौडा हैं। गोल हैं ढोलके आकार हैं। सुवर्णमय हैं। तिनके उपरिम भाग श्वेत रूपामय हैं। याहीतैं इनिकूं दधिमुख संज्ञाकरि कहिए हैं। ऐसैं सोलह दधिमुख पर्वत हैं। बहुरि इन एकएक बावडीकी च्यारौं कोणनिकै समीप च्यारि रतिकर पर्वत हैं। ते एक हजार ऊंचे अर मूलमैं मध्यमैं उपरिम भागविषै सर्वत्र एक हजार योजनके विस्तार

चौडे हैं। अढाईसै योजनकी पृथ्वीविषैं नीव है। ढोलके आकार हैं। सुवर्णमणिरूप हैं। ऐसें चौसठि रतिकर हैं। तिनमें अभ्यंतर कोणमें तिष्ठते बत्तीस रतिकर पर्वतविषैं देवनिके क्रीडा करनेके स्थान हैं। अर बाह्य दोयदोय कोणनिमें तिष्ठते तिनि ऊपरि अरहंत भगवानके आयतन हैं। ऐसेंही च्यार दिशानिके च्यार अंजनगिरि अर सोलह दधिमुख अर बत्तीस रतिकरनिके ऊपरि मध्यभागविषैं जिनमंदिर हैं। ऐसें नंदीश्वरद्वीपमें बावन जिनमंदिर हैं। आगें नवमा अरुणवर अर दशमा अरुणभास द्वीपसमुद्र हैं। बहुरि ग्यारमा कुंडलवरद्वीप है। ताका मध्यविषैं कुंडलगिरि पर्वत चौफेर द्वीपका अर्द्धभागकूं वेढें वलयाकार सुवर्णवर्ण पचहत्तरि हजार योजन ऊंचा है। मूलमें दश हजार दोयसे बीस योजन चौडा है। ऊपरि च्यार हजार दोयसे चालीस योजन ऊंचा चौडा है। ताकी च्यारोंदिशामें च्यार जिनमंदिर हैं। कुंडलवर द्वीपको वेढें कुंडलवर समुद्र है। बहुरि बारमा शंखवर नामा द्वीपसमुद्र हैं। आगें तेरमा रुचकवर नाम द्वीप है। ताका मध्यविषैं वलयाकार चौगिरद रुचक नामा पर्वत है सो सुवर्णवर्ण है चौरासी हजार योजन ऊंचा है। चौरासी हजार योजनही नीचें ऊपर मध्यमें बराबर समान चौडा है। तिस गिरिके ऊपरि च्यारो दिशानिमें च्यार जिनमंदिर हैं। बहुरि इस पर्वत ऊपरि अनेक कूट हैं। तिनमें अनेक देवीनिका निवास है। ते देवी तीर्थंकरप्रभूनिके गर्भजन्मकल्याणकमें माताकी अनेक प्रकारकरि सेवा करै हैं॥ आगें कहैं जे मानुषोत्तरके अभ्यंतर मनुष्य ते दोय प्रकार हैं यातैं सूत्र कहैं हैं—

आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

अर्थ—आर्य अर म्लेच्छ इस भेदतें दोय प्रकार मनुष्य हैं। ते आर्य दोय प्रकार हैं ऋद्धिप्राप्त आर्य, १४५

१९

अनृद्धिप्राप्त आर्य। तिनमैं ऋद्धिप्राप्त आर्य तो जिनकै अष्टप्रकार ऋद्धिनिमैंतैं कोऊ ऋद्धि उपजी ते ऋद्धिप्राप्त आर्य हैं। अर जिनकों ऋद्धि नहीं उपजी ते अनृद्धिप्राप्त आर्य हैं। तिनमैं अनृद्धिप्राप्त आर्यके पंच भेद हैं। क्षेत्रआर्य १, जातिआर्य २, कर्मआर्य ३, चारित्रआर्य ४, दर्शनआर्य ५। तहां काशी कोसलादि आर्यदेशनिविषैं उपजै ते क्षेत्रआर्य हैं। इक्ष्वाकुवंश भोजवंशादिकविषै उपजे ते जाति आर्य हैं। वहुरि कर्मआर्य तीन प्रकार हैं। सावद्यकर्म आर्य, अल्पसावद्यकर्म आर्य, असावद्यकर्म आर्य। तहां सावद्यकर्मार्य छह प्रकार हैं। असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प, वाणिज्य। जे खड्गादिक आयुद्ध धारणकरि जीविका करैं सो असिकर्म आर्य हैं वहुरि द्रव्यका आवंदि अर खरच लिखनेमैं निपुण ते मषिकर्म आर्य हैं। अर हल दांतला इत्यादिक खेतीके उपकरणनिकरि खेतीकरि जीविका करणमें प्रवीण सो कृषिकर्म आर्य हैं। आलेख्य गणितादिक बहत्तरि कलामैं प्रवीण ते विद्याकर्मार्य हैं। वहुरि धोवी नाई कुंभार लुहार सुनार इत्यादिक शिल्पकर्म आर्य हैं। वहुरि चंदनादि गंध घृतादि रस शाल्यादि धान्य कर्पासवस्त्रादिक मुक्ताफल माणिक्यादिक नानाप्रकार द्रव्यनिके संग्रह करनेवाले वहुत प्रकार वणिक्कर्म आर्य हैं। ए छहू अविरतमैं समर्थपणातैं सावद्यकर्म आर्य हैं। अर विरताविरतपरिणत जे श्रावक ते अल्पसावद्य कर्मार्य हैं। अर सकलसंयमी जे साधु ते असावद्यकर्म आर्य हैं। वहुरि चारित्र आर्य दोय प्रकार हैं। अभिगतचारित्रार्य, अनभिगतचारित्रार्य। विनाउपदेशही चारित्रमोहका उपशम क्षय क्षयोपशमतैं आत्माकी उज्ज्वलतातैंही चारित्रपरिणामकूं ग्रहणकरैं ऐसे उपशांतकषायगुणस्थान धारनेवाले तथा क्षीणकषायी ते अभिगतचारित्रार्य हैं। वहुरि अंतरंगमैं चारित्रमोहके क्षयोपशमतैं वाह्यमैं उपदेशके निमित्ततैं संयमरूप परिणाम धारैं सो तो अनभिगत

चारित्रआर्य हैं। बहुरि दर्शनआर्य दशप्रकार हैं। तिनका आज्ञामार्गादि दश भेद हैं। ऐसें तो अनृद्धिप्राप्तार्य पंचप्रकार कह्या। अब ऋद्धिप्राप्तार्य अष्ट प्रकार हैं। बुद्धि क्रिया विक्रिया तप बल औषध रस क्षेत्र ए भेद हैं। तिनमें बुद्धिऋद्धि अष्टादश प्रकार है। केवलज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि, पदानुसारिणी, संभिन्नश्रोतृत्व, दूरादास्वादनसमर्थता, दूरदर्शनसमर्थता, दूरस्पर्शनसमर्थता, दूरघ्राणसमर्थता, दूरश्रोतृसमर्थता, दशपूर्वित्व, चतुर्दशपूर्वित्व, अष्टांगनिमित्तज्ञता, प्रज्ञाश्रमणत्व, प्रत्येकबुद्धता, वादित्व। तहां केवलज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान इनिका स्वरूप तो पहिले अध्यायविषें वर्णन है तहांतें जानना। बहुरि जैसें संवारे क्षेत्रविषें कालादिकका सहायतें बोया एक बीज अनेक कोटी बीजका देनेवाला होता है। तैसें नोइंद्रियावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमकी आधिक्यता होतें एक बीजपदकूं ग्रहणकरनेतें अनेकपद अनेक अर्थका जानना सो बीजबुद्धिऋद्धि है। बहुरि जैसें कोष्ठाध्यक्षकरि कोष्ठमें स्थापे न्यारेन्यारे प्रचुरधान्य बीजादिक ते बहुतकालतक कोठेमें जितनेके तितने धरे रहें घटें बढें नाहीं परस्पर मिलें नाहीं जिसकालमें संभालें तिसकालमें तैसेंही पावें तैसें ही परके उपदेशकरि ग्रहण किए जे बहुत शब्द अर्थ बीज तिनका बुद्धिमें जैसेके तैसें अवस्थान रहै। एक अक्षर तथा अर्थ घटै बधै नाहीं आगें पाछें अक्षर होय नाहीं सो कोष्ठबुद्धिऋद्धि है। बहुरि जो ग्रंथकी आदिका वा मध्यका वा अंतका एकपदपरतें श्रवणकरि समस्तग्रंथ वा अर्थका निश्चय करना सो पदानुसारित्वऋद्धि है। बहुरि चक्रवर्तीका कटक बारह योजन लंबा नव योजन चौंडा पडै है। तिस विषैं गज घोडा ऊंट बल मनुष्यादिकनिके नानाप्रकारके अक्षर अनक्षरात्मक एक काल जानें युगपत् उपजे शब्दनिकूं तपोविशेषके बलका लाभतें सर्व जीवके प्रदेशविषें श्रोत्रेंद्रियावरणकर्म-

बहुरि भूमितें च्यार अंगुल ऊंचे आकाशविषें जंघा उठाय शीघ्रतातें बहुत सैंकडा योजन गमन करनेमें समर्थ सो जंघाचारण है। ऐसैंही तंतुचारण पुष्पचारण पत्रचारण श्रेणीचारण अग्निशिखाचारण इत्यादिक चारणर्द्धि हैं। ते पुष्पफलादिक ऊपरि गमन करतैंहू पुष्प फल अंकुर पत्र अग्नि इत्यादिकनिके जीवनके बाधा नहीं होय ते समस्त चारणर्द्धि हैं। बहुरि पर्यंकासन बैठा कायोत्सर्गकरि खडेतैं पगके उठावने मेलने विना आकाशमें गमन करनेमैं कुशल ते आकाशगामित्वऋद्धिके धारक हैं। बहुरि विक्रियर्द्धि अनेक प्रकार है। अणिमा महिमा लघिमा गरिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशित्व वशित्व अप्रतिघात अंतर्धान कामरूपित्व इत्यादिक विक्रियार्धि हैं। तहां अणुमात्र शरीर करना सो अणिमा ऋद्धि है। तहां कमलके छिद्रविषें प्रवेशकरि तहां बैठि चक्रवर्तीकी विभूति रचैं ऐसा सामर्थ्य है ।१। बहुरि मेरुतैंभी महान शरीर करनेका सामर्थ्य सो महिमा ऋद्धि है।२। बहुरि पवनतैंहू लघुतर शरीर करनेका सामर्थ्य सो लघिमा ऋद्धि है।३। वज्रतैंहू अतिभारी शरीर करनेका सामर्थ्य सो गरिमा ऋद्धि है।४। बहुरि भूमिमैं तिष्ठिकरि अंगुलीके अग्रकरि मेरुकी शिखर तथा सूर्यविमानादिक स्पर्शनका सामर्थ्य सो प्राप्तिऋद्धि है।५। बहुरि जलविषैं भूमिकीज्यौं गमनका सामर्थ्य अर भूमिविषें जलकीज्यौं उन्मज्जन निमज्जन करनेका सामर्थ्य सो प्राकाम्य ऋद्धि है।६। बहुरि त्रिलोकका प्रभुपणा रचनेका सामर्थ्य सो ईशित्व ऋद्धि है।७। बहुरि देव दानव मनुष्यादिकनिके वशीकरण करनेका सामर्थ्य सो वशित्व ऋद्धि है।८। बहुरि पर्वतादिकनिकै मध्य आकाशकीज्यौं गमनागमन करनेका सामर्थ्य सो अप्रतिघात नामा ऋद्धि है।९। अदृश्य होनेकी सामर्थ्य सो अंतर्धान ऋद्धि है ।१०। बहुरि युगपत् अनेक आकार रूप करनेका सामर्थ्य सो कामरूपित्व ऋद्धि है।११। ऐसैं अनेक प्रकार

विक्रियारिद्धि है। बहुरि सप्त प्रकार तप रिद्धि है। तहां जो एक उपवास वा वेला तेला पंचोपवास पक्षोपवासादिकनिविषैं कोऊ योगका आरंभ भया तौ मरणपर्यंत उपवासनितें हीन पारणा नहीं करै। बहुरि कोऊ कारणतें अधिक उपवास होजाय तौ वातें मरणपर्यंत कमती उपवासकरि पारणा नहीं करै। ऐसा सामर्थ्य प्रकट होना सो उग्रतपनामर्द्धि है ॥ १ ॥ बहुरि महान उपवासादि करतेंहू मन वचन कायका बल बधताही रहै। दुर्गंधरहित मुख रहै। अर कमलादिककी सुगंधवत् सुगंध निश्वास नीसरैं। अर शरीरकी महान दीप्ति प्रगट होजाय सो दीप्तितप ऋद्धि है ॥ २ ॥ बहुरि तप्तायमान लोहके कडाहमें पडा जलके कणकी ज्यों आहार सूकि जाय मल रुधिरादिक रूप नाहीं परिणमै ऐसें आहार करतेंहू जिनके नीहार नहीं होय सो तप्तऋद्धि है ॥३॥ बहुरि सिंहनिक्रीडितादि महानतपके करनेमें तत्पर सो महानतप ऋद्धि है ॥ ४ ॥ बहुरि वात पित्त श्लेष्म सन्निपाततें उपज्या ज्वर कास स्वास नेत्रशूल कोढ प्रमेहादिक अनेक प्रकारके रोग तिनिकरि संतापित हैं देह जिनका तोभी अनशन कायक्लेशादिक तपतें नहीं छूटते अर भयानक श्मशान पर्वतके शिखर गुफा दराडा कंदरा शून्यग्रामादिकविषै दुष्ट राक्षस पिशाचनिके प्रवर्तें वेतालरूप विकार होतेंहू अर कठोर स्यालनीनिके रुदन तथा निरंतर सिंह व्याघ्रादिक दुष्ट जीवनिके भयानक शब्द जहां निरंतर प्रवर्तें ऐसें भयंकर स्थाननिविषै निर्भय भए वसैं सो घोरतप ऋद्धिका प्रभाव है ॥५॥ बहुरि पूर्व कहे रोग तिनकरि युक्त हुए अर अतिभयंकर स्थानमें वसतेंहू तपके योग बधावनेमें तत्पर सो घोरपराक्रम ऋद्धिके धारक हैं ॥ ६ ॥ बहुरि बहुत कालतें ब्रह्मचर्यके धारक मुनिनिके अतिशय रूप चारित्र मोहनीय कर्मका क्षयोपशमतें नष्ट भएहैं खोटे स्वप्न जिनके ते घोरब्रह्मचर्य ऋद्धिके धारक हैं ॥७॥ ऐसें सप्त प्रकार तपरिद्धि है इनिके स्मरणमात्रतें कोटि विघ्न विनाशनें प्राप्त 

होय अप्रमाण शक्तिके धारक होय हैं ॥ बहुरि पंचमी मन वचन कायके भेदकरि बलर्द्धि तीन प्रकार है। बहुरि मनःश्रुतज्ञानावरण वीर्यांतरायका क्षयोपशमका प्रकर्ष होतैं अंतर्मुहूर्त्तमैं समस्त श्रुतका अर्थका चिंतवनका सामर्थ्य जिनकै होय ते मनोबलर्द्धिके धारक हैं॥१॥ बहुरि मन इंद्रियावरण अरजिह्वाश्रुतावरण वीर्यांतरायके क्षयोपशमके अतिशय होतै अंतर्मुहूर्त्तमैं सकलश्रुतके उच्चारण करनेका सामर्थ्य होय वा निरंतर उच्च स्वरतैं उच्चारण करतेहू स्वेद नहीं उपजै अर कंठ स्वरभंग नहीं होय सो वचनबल ऋद्धि है ॥२॥ बहुरि वीर्यांतरायका क्षयोपशमतै असाधारण कायका बल प्रकट होतै मासिक चतुर्मासिक वार्षिक प्रतिमायोग धारतेहू शरीर खेदरूप नहीं होय सो कायबल ऋद्धि है ॥ ३ ॥ ऐसैं तीन प्रकार बलर्द्धि कही। बहुरि आगैं अष्टप्रकार औषधर्द्धि है सो कहैहैं। आमर्ष, क्ष्वेल, जल, मल, विट्, सर्वौषधि, आस्याविष, दृष्टिविष। तहां असाध्य भी रोग होय तो जिनके हस्तचरणादिकके स्पर्श होतेही सर्व रोग जाय सो आमर्षौषधिनामर्द्धि है ॥ १ ॥ बहुरि जिनका थूक लाल कफादिकनिके स्पर्शतैंही रोग मिटि जाय सो क्ष्वेलौषधिनामर्द्धि है ॥ २ ॥ बहुरि जिनके देहका पसेवरजके स्पर्शतें रोग मिटि जाय सो जलौषधिनामर्द्धि है ॥ ३ ॥ बहुरि जिनके कर्ण दंत नासिका नेत्रनिका मल ही समस्त रोगनिके निराकरण करनेकूं समर्थ होय सो मलौषधिनामर्द्धि है ॥ ४ ॥ बहुरि जिनका विट जो मल तथा मूत्रही औषधरूप होय सो विडौषधिनामर्द्धि है ॥५॥ बहुरि जिनका अंग उपांग नख दंत केशादिकही स्पर्श भए समस्त रोगनिकूं हरै सो सर्वौषधिनामर्द्धि है॥ ६ ॥ बहुरि तीव्र जहरका मिल्याहुवा आहार जिनके मुखमैं ग्रासभया विषरहित होजाय तथा जिनके वचनतैंही विषकरि व्याप्त जीवनिका विष मिटिजाय ते आस्याविषर्द्धिके धारक हैं ॥७॥ बहुरि जिनके देखनेथकी महान् विषधारी जीवनिका विष

जाता रहै। तथा काहूके जहरकी लहरी चढी होय तिसका विष उतरिजाय सो दृष्टयविषर्द्धि है॥ ८॥ ऐसें अष्टप्रकार ओषधर्द्धि कहा। बहुरि सप्तमी रसर्द्धि है सो छह प्रकार है। जो प्रकृष्ट तपके बल का धारक योगी कदाचित् क्रोधी होयकरि कहै जो तू मरिजा तो तत्काल विष चढिकरि मरिजाय सो आस्यविषर्द्धि है॥ १॥ बहुरि कदाचित् क्रोधरूप दृष्टिकरि देखें तो विष चढिकरि मरिजाय सो दृष्टिविषर्द्धि है॥ २॥ ऐसी सामर्थ्य है तोऊ वीतरागी मुनि क्रोधादिककूं नहीं प्राप्त होय हैं। बहुरि जिनका हस्त में प्राप्तभया विरसहू भोजन क्षीररसरूप होय परिणमै तथा जिनका वचन दुर्बलनिकों क्षीरकाज्यों पुष्ट करै सो क्षीररसर्द्धि है॥३॥ तैसेंही मिष्टरसरूप परिणमनेतें मधुस्रावीनामर्द्धि है॥४॥ तैसेंही घृतरसरूप परिणमनेतें. घृतस्रावीनामर्द्धि है॥ ५॥ तैसेंही अमृतरसरूप परिणमनेतें अमृतस्रावी नामर्द्धि है॥ ६॥ तहां ऐसे छह प्रकार रसनामर्द्धि कही। बहुरि अष्टमी क्षेत्रर्द्धि दोय प्रकार है। एक अक्षीणमहानसर्द्धि अर एक अक्षीणालयर्द्धि तहां लाभांतरायका प्रकर्ष क्षयोपशमका अतिसंयमवान मुनि तिसको जिस भाजनमें तें भोजनदेय तिस भाजनमें ते जो चक्रवर्तीका समस्त कटकभोजन करै तोहू तिस दिनमें भोजनसामिग्री नाहीं घटै सो अक्षीणमहानसर्द्धि है। बहुरि ऋद्धि कर सहित मुनि जिस स्थानकमें बैठे तिसमें देव, राजा, मनुष्यादिक बहुत आय बैठें तो हू सकडा नहीं होय परस्पर बाधा नहीं होय सकें सो अक्षीणमहालयर्द्धि है। ऐसें अष्ट प्रकार ऋद्धि जिनकै प्राप्त होय ते ऋद्धिप्राप्त आर्य हैं। ऐसें आर्यनिके भेद कहे।

बहुरि म्लेछ दोय प्रकार हैं। अंतर्द्वीपज १ अर कर्मभूमिज २ तहां अंतर्द्वीपज हैं ते लवणसमुद्रकी आठ दिशा अर अष्टदिशानिकै बीच अष्ट अंतरालमें सोलह तो ए हैं। अर हिमवान् शिखरी कुलाचल अर दोय विजयार्द्ध इन च्यार पर्वतनिकै दोऊ ओरके अष्टअंतके विषै आठ ऐसें चोईस अंतर्द्वीप

हैं। ते जंबूद्वीपकी वेदीतैं च्यारो दिशानिमैं तिर्यक् पांचसै योजन समुद्रमैं जाय तहां सौ योजनके विस्तार लिए च्यार दिशाके द्वीप हैं। अर च्यार विदिशाके वेदीतैं पांचसै योजन परे द्वीप हैं ते पचावन योजनके विस्तार हैं। अर आठ दिशानिके अंतरालके द्वीप हैं ते लवणसमुद्रका वेदीतैं पांचसै पचास योजन परें जाइए तहां पचास योजनकै विस्तार हैं। अर पर्वतके अंतके अष्ट द्वीप हैं ते लवणसमुद्रकी वेदीतैं छहसै योजन दूर हैं। अर पचीस योजनके विस्तार हैं। तिनमैं पूर्वदिशाकै द्वीपमैं एक जंघा वाले एक टंगे उपजैहैं पश्चिम दिशा के द्वीपमें पूछवाले मनुष्य उपजे हैं। उत्तरदिशाके द्वीपविषै वचनरहित गूंगा उपजे हैं। दक्षिणदिशाविषै सींगवाले मनुष्य उपजे हैं। बहुरि च्यार विदिशाके द्वीपनिविषै क्रमतैं सूश्यासमान कर्णवाले अर शांकलीसमान कर्णवाले अर कर्णप्रावरण कहिए एककानकूं विछायलैं एक कानकूं ओढि लैं ऐसे अर लंबकर्ण ऐसे ऊपजे हैं। बहुरि अष्ट अंतर्दिशानिमैं घोडाकासा मुख सिंहकासा मुख भैंसाकासा मुख सूकरकासा मुख व्याघ्रसारिखा मुख घूगूसारिखा मुख काककासा मुख बानरसारिखा मुख ऐसे मनुष्य उपजै हैं। बहुरि शिखरीपर्वतके अंतके सन्मुख द्वीपनिमैं मेघसारिखे बिजुलीसारिखे मुख हैं। अर हिमवानपर्वतके दोऊ अंत विषै मत्स्यमुख कालमुख मनुष्य हैं। बहुरि उत्तर विजयार्द्धपर्वतके दोऊ अंतविषै हस्तीसमान मुख अर दर्पण समान मुखवाले मनुष्य हैं। बहुरि दक्षिणविजयार्द्धके उभय अंतरविषै गोसमान मुख अर मीढासमान मुखके धारक हैं। बहुरि इनमैं एक जंघावाले इकटंगे हैं ते मृत्तिका जो मांटी ताका आहार करै हैं अर गुफानिमैं वसै हैं। अर अन्य हैं ते वृक्षनिके फल फूलनिका आहार करै हैं। अर वृक्षनिकै नीचैं वसै हैं। अर समस्त अंतर्द्वीपके मनुष्यनिका एक एक पल्यका आयु है। बहुरि ते चोवीस अंतर्द्वीप जलतैं एक योजन ऊंचे हैं। जैसैं लवणसमुद्रमैं अंतर्द्वीप अडतालीस हैं दोऊ तटसंबंधी तैसेंही कालोदधिसमुद्र-

में अडतालीस जानना। ऐसें समस्त छिनवै अंतर्द्वीपनिमें कुभोगभूमिया मनुष्य हैं । बहुरि कर्मभूमिके म्लेछ शक यवन शबर पुलिंदादिक अनेक जाति हैं। बहुरि एकसो सत्तरि कर्मभूमिके क्षेत्र हैं तिनमें एकसौ सत्तरि तो आर्यखंड हैं। अर आठसै पचास म्लेछखंड हैं तिनके निवासी म्लेछही हैं ॥ अब कर्मभूमि कौन हैं इस प्रश्नतें सूत्र कहे हैं—

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥ ३७ ॥

अर्थ—पांच भरतक्षेत्र पांच एरावतक्षेत्र अर देवकुरु उत्तरकुरु विना पांच विदेहक्षेत्र इनिमें कर्मभूमि हैं। जातें पंचमेरुसंबंधी पंच भरत पंच ऐरावत अर पंच विदेह हैं तिनमें विदेहके एक मेरुसंबंधी वत्तीस भेद हैं तातें विदेहसहित एकसौ साठि क्षेत्र हैं। ऐसें सब मिलि कर्मभूमिके एकसो सत्तरि क्षेत्र हैं। अर एक मेरुसंबंधी हिमवत हरिक्षेत्र रम्यकक्षेत्र हिरण्यवतक्षेत्र अर देवकुरु उत्तरकुरु ऐसें छह भोगभूमिके क्षेत्र हैं। सब भोगभूमि पंचमेरु संबंधी तीस हैं तिनमें दश जघन्य दश मध्यम दश उत्कृष्ट हैं। तिनमें दशप्रकारके कल्पवृक्षनिकरि दीए भोगभोगतें संक्लेश रहित सुखरूप तिष्ठे हैं। अब कोऊ पूछै जो कर्मभूमिके एकसो सत्तरि क्षेत्र कहे सो कर्मका आश्रय तो तीन लोकका क्षेत्र है इनिकूंही कर्मभूमिका क्षेत्र कैसें कह्या। ताकूं कहिए है। जो सप्तम नरक पहुंचनेका पापकर्म अर सर्वार्थसिद्धि जावनेका शुभकर्म इन क्षेत्रविषें ही उपार्जन होय है। तथा असि मषि कृषि शिल्प वाणिज्य पशुपालन ए छह कर्मभी इनि क्षेत्रनिविषेंही हैं तथा देवपूजा गुरुउपासना स्वाध्याय संयम तप दान ए छह प्रकार प्रशस्तकर्म इनि क्षेत्रनिविषेंही हैं। तातें इनकूं कर्मभूमि कहिए हैं ॥ अब समस्तभूमिविषै मनुष्य निकी स्थितिके जनावनेकूं सूत्र कहे हैं—

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमांतर्मुहूर्त्ते ॥ ३८ ॥

अर्थ—मनुष्यनिकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यकी है जघन्य अंतर्मूहूर्तकी है। मध्यके अनेक भेद हैं। मुहूर्त्तका प्रमाण दोय घडीका है। अर दोय घडीके अभ्यंतर होय सो अंतर्मुहूर्त्त है। अब पल्यका कहा प्रमाण है तातैं प्रकरण पाय प्रमाणकी विधिका प्ररूपण करै हैं। तहां प्रमाण दोय प्रकार है। एक लौकिक, दूजा अलौकिक। तहां लौकिक मान छह प्रकार है। मान, उन्मान, अवमान, गणितमान, प्रतिमान, तत्प्रतिमान, ऐसैं छह प्रकार है। तिनका दृष्टांत कहिए हैं। पाई माणि इत्यादिकरि अन्नादिकका प्रमाण करिए सो पाई माणीकूं मान कहिए। वहुरि तुला जो कांटा ताखडी इत्यादिकरि प्रमाण करिए ताकूं उन्मान कहिए। वहुरि हस्तकी चलू इत्यादिकरि प्रमाण करिए सो अवमान है। वहुरि एक दोय तीन च्यार इत्यादिकरि प्रमाण करिए सो गणितमान है वहुरि गुंज रत्ती मासा तोला इनिकूं प्रतिमान कहिए। वहुरि तुरंग घोडादिकानिका मोल सो तत्प्रतिमान कहिए ऐसैं लौकिक मान छह प्रकार कह्या। वहुरि लौकिकमानकूं अन्य प्रकारहू कहैहैं। तिनमें गज हस्त वांस इत्यादिकनिकरि मापा अवमान है। वहुरि मल्लनिका शरीरका वल का वा तिर्यंचनिका वलका हीन अधिक अपेक्षासे प्रमाण कहना सो प्रतिमान है। तथा मणिमाणिक्यादिकानिकी दीप्तिकरि मोलका प्रमाण करिए जो इस मणिकी एती दीप्ति है वा इस रत्नकी दीप्ति जितने क्षेत्र ऊपरि व्यापै तितना प्रमाण सुवर्णका पुंज याका मोल है। तथा इस रत्नके स्वामीकै जितना धनकरि संतोष आजाय तितनाही याका मोल है ऐसैही इस घोडेकी ऊंचाई जितनी तितना प्रमाण सुवर्णका ढेर पुंज देना याको यो मोल है। इत्यादिक औरहु तत्प्रतिमान जानना। वहुरि लोकोत्तर मान द्रव्य क्षेत्र काल भावके भेदतैं च्यार प्रकार है।

तहां जघन्य द्रव्यका प्रमाण परमाणु है अर उत्कृष्ट समस्तद्रव्यका समुदाय है। अर क्षेत्रमानविषै जघन्य तो आकाशका एक प्रदेश है उत्कृष्ट समस्त आकाश है। अर कालप्रमाणविषै जघन्य एक समय उत्कृष्ट तीन कालके समयनिका समूह है। पुद्गलका परमाणु मंदगतिकरि एक आकाशके प्रदेशतें दूजे प्रदेशमें जाय तहां जेता वार लागै सो ताकूं समय कहिए है। सो कालकी अतिसूक्ष्मताको धरैहै। बहुरि भावमानविषै जघन्य सूक्ष्मनिगोदिया लब्धि अपर्याप्तका अक्षरके अनंतवें भाग पर्याय नाम ज्ञान है। अर उत्कृष्ट जिनेंद्रभगवानका केवलज्ञान है। अर जघन्य अर उत्कृष्टके मध्य बीचके जितने भेद हैं तितने मध्यमप्रमानके हैं। बहुरि द्रव्यमान दोयप्रकार है। एक संख्यामान अर दूजा उपमामान। तिनमें संख्यामानके तीन भेद हैं। संख्यात, असंख्यात, अनंत। तिनमें संख्यात तो एक प्रकार अर असंख्यात तीन प्रकार है। १ परीतासंख्यात, २ युक्तासंख्यात, ३ असंख्यातासंख्यात। बहुरि अनंतहू तीन प्रकार है १ परीतानंत, २ युक्तानंत, ३ अनंतानंत। ऐसे सप्तभेद भए। इनके प्रत्येक जघन्य मध्य उत्कृष्ट भेद करिए तब इकईस भेद संख्याप्रमाणके भए। तहां संख्यातका प्रमाण जाननेके अर्थि जंबूद्वीप प्रमाण लक्ष योजन चौडे लंबे अर गोल अर एक हजार योजन ऊंडे ऐसे च्यार कुंड कल्पना करिए। तिनके नाम ऐसे हैं। अनवस्थाकुंड १ शलाकाकुंड २ प्रतिशलाकाकुंड ३ महाशलाकाकुंड ४। तिनमें अनवस्थाकुंडकूं सरसूंनिकरि भरिए अर ऊपरि शिखा चढाइए। तिस शिखासहितकुंडमें केती सरसूं मावै सो प्रमाण कहैहैं। लक्ष योजन प्रमाण कुंडका जो एक योजन ऊंडा एक योजन चौडा एक योजन लंबा चौकोर खंड करिए तो ७५०००००००००० सात लाख पचास हजार कोटी खंड होय। सो इस मेक योजनके कुंडमें सरसूं भरिए तो केती मावै सो कहैहैं। इस एक योजनके पांचसे पांचसे

८

व्यवहार योजन होय हैं। अर एक योजनके चार कोश होय हैं। एक कोशके दोय हजार धनुष होय हैं। एक धनुषके च्यार हाथ होय हैं। एक हस्तके चोईस अंगुल होंय। एक अंगुलके आठ यव होंय। एक यवकी आठ चोकोर सरस्यूं होय। ए समस्त राशि घनरूप है सो इनका तीन तीन जायगां मांडि परस्पर गुणाकार करना। जैसैं जो क्षेत्र च्यार कोश लंबा च्यार कोश चौडा च्यार कोश ऊंचा होय ताका एक कोश चौडा एक कोश लंबा एक कोश ऊंचा खंड करिए तो च्यारके अक्षरकों तीन जायगां मांडि परस्पर गुणिए तो चोसठी खंड होय। ऐसैं तीन तीन जायगां मांडि परस्पर गुणाकार कीए चौकोर सरसूं होय तिस नव चौकोर सरस्यूंकी गोल सोलह सरसूं होय हैं। ऐसैं करतै जंबूद्वीपसमान जो कुंड ताकै विषै इतने अंकप्रमाण सिरसूं मावैहैं। १९७९११२०९२९९९६८००००००००००००००००००००००००-०००००००० । बहुरि इस कुंड ऊपरि जो शिखा जाय है सो परिधिकै ग्यारवै भाग प्रमाण ऊंची जायहै। तिस शिखाकी सिरसूंका प्रमाण ऐसा जानना। १७९९२००७४५४५१६३२३६३६३५३५३५३५३५-३५३५३५३५३५३५३५३६ ४/११। अब कुंडकी सिरसूंका प्रमाण अर शिखाकी सिरसूंका प्रमाण मिलाइए है सो एता होय है। १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ एता प्रमाण अनवस्थाकुंडकी सरसूंका भया। एकबार अनवस्थाकुंड पूर्ण भरया तब एक सरसूं शलाका नाम दूसरा कुंडविषै क्षेपी। बहुरि तिस अनवस्थाकुंडकै मध्यवर्त्ती जे समस्त सरसूं तिनकौं मति कहिए बुद्धिका विचार तिंहकरि ग्रहण करै अथवा देव ग्रहण करिकै एक द्वीपविषै एक समुद्रविषै बहुरि एक द्वीपविषै एक समुद्रविषै ऐसैं सरसों क्षेपतैं जहां परिपूर्ण होय तिह द्वीपसों वा समुद्रसों लगाय पहिले भए जे द्वीप वा समुद्र जंबूद्वीपर्यंत तिन सवनिका प्रमाणकै समान अर ऊंडा हजार योजनका ऐसा कुंड करना सो कुंड तिन पूर्वोक्त-

प्रकार गोल सरसूंनिकरि भरना तदि शलाका कुंडमें एक सरसूं और नाखणी। फिर उस अनवस्थाकुंडकी हू सरसूं आगले द्वीपसमुद्रनिमें एक एक क्षेपतें उस कुंडकी सरसूंभी जिस द्वीप वा समुद्रमें पूर्ण होजाय तितना द्वीपसमुद्रप्रमाण कुंड एक हजार योजन ऊंडा फिर शिखासहित सरसूंकरि भरना तदि तीजी सरसूं शलाकाकुंडमें फेर क्षेपिए ऐसें करते करते अनवस्थाकुंडका प्रमाण वधता जाय अर एक एक अनवस्थाकुंड भरणेका समस्यारूप एक एक सिरसूंनिका प्रमाण कह्या था तितने कोश लंबा च्यार कोश चौडा च्यार कोश ऊंचा होय ताका एक कोश चौडा एक अनवस्थाकुंड होजाय तदि शलाकाकुंड शिखासहित भरिजाय तदि एक सिरसों प्रति शलाकाकुंडविषै क्षेपिए। बहुरि तिस शलाकाकुंडकूं रीता करि पूर्वोक्तप्रकारकरिही वधता वधता व्यासको लीए अनवस्थाकुंड करि करि भरीए तव येक येक सिरसों शलाकाकुंडविषै गेरिये ऐसें करते करते दुसरीवारभी शलाकाकुंड भरे तव येक सिरसों और प्रतिशलाका कुंडमें निक्षेपण करना। येसेंही येक येक वार शलाका कुंड रीता करि करि भरीये तव एक सिरसों प्रति शलाकाकुंडविषै क्षेपते जाइए ऐसें प्रतिशलाकाकुंडविषै क्षेपते जाईए ऐसें प्रतिशलाकुंडभी भरिजाय तव तक एक सिरसों महाशलाकाकुंडमें क्षेपिए। बहुरि तिस प्रतिशलाकाकुंडकूं रीता करि पूर्वोक्तप्रकार अनवस्थाकुंडनिके भरण करि तो शलाकाकुंडको अर शलाकाकुंडनिके भरण करि प्रतिशलाकाकुंडको एक एक वार भरि एकएक सिरसों महाशलाकाकुंडमें गेरते जाइए ऐसें जब महाशलाकाकुंड भरिजाय तिह कालविषै च्यारोंही कुंड भरिजाय हैं। तहां जो अंतका अनवस्थितकुंडविषै जेते प्रमाण लीए सिरसों शिखासहित भरिगए तिह प्रमाण जघन्यपरीतासंख्यात जानना। इसमें एक घटाए उत्कृष्ट संख्यातका प्रमाण जानना। अब जघन्य परीतासंख्यातका एक-

एक करि विरलन नाम जुदाजुदा विखेरीए अर तिस परीतासंख्यातका एकएक ऊपरी देय परस्पर गुणन करीए जो महाराशी उपजै सो जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण उपजै है। जैसैं च्यारकों विरलन करिए तव च्यार जायगां मांडिए। १,१,१,१। तिसके ऊपरी च्यारकौ दीजिए। ४/१। ४/१। ४/१। ४/१। इनकौ परस्पर गुणन करिए तव दोयसै छप्पन होंय। ऐसैंही जहां जघन्य परीतासंख्यातकौ एकएक जुदा करिए अर तितनेही प्रमाण जघन्य परीतासंख्यातकी राशिकौ परस्पर गुणैं जो महाराशि होय सो जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण होय है। यहही आवलीका प्रमाण है। जातैं जघन्य युक्तासंख्यात समःयनिकै समूहकूं आवली कहै हैं। इसमैं एक घटाईये यह उत्कृष्ट परीता संख्यात जानना। बहुरि जघन्य युक्तासंख्यातके प्रमाणको जघन्य परीता संख्यात करिही गुणिये तदि जघन्य असंख्यातासंख्यातका प्रमाण जानना। इसमैं एक घटाइये सो उत्कृष्ट युक्तासंख्यातका प्रमाण है। अब जघन्य को असंख्यातासंख्यातका तीन राशिरूप स्थापन करिये। तहां विरलनराशिकूं तो येकयेक भिन्नभिन्न वखेरिये। अर तिस येकयेक ऊपरि दोय राशी मांडि परस्पर गुणन करिये। जब समस्तराशिका गुणन हो चुकै तदि शलाका राशिमैंसूं एक घटादीजिये। जैसैं च्यारि प्रमाणराशिको शलाका विरलन देय तीन जायगां स्थापन करिये तहां विरलन राशिको येकयेक बखेरिये ऊपरि देय राशिको ४ ४, ४, ४, च्यार जायगां विरलन तथा ताकै ऊपरि देय परस्पर गुणिये तब दोयसै छपन्न होय। तादि शलाका राशि च्यारिकीमैंतैं येक घटाइये तदि शलाकामैं तीन रह्या। बहुरि दोयसै छपन्नकौ दोयसै छपन्न जायगां वखेरिये अर दोयसै छपन्न दोयसै छपन्न जायगां परस्पर गुणिये तव जो महाराशि उपजै तदि शलाकाराशिमैं तैं येक और घटाइये। तदि शलाकाराशिमैं दोय रहे। फेरि जो महा-

राशि उपजी ताकौ विरलन करि तितनीही जायगां तिस महाराशिकौ परस्पर गुणन करिये तदि जो महाराशि उपजै तदि शलाका राशि दोय था तामैं एक और घटाइये शलाका राशि में एक रह्या। अर जो महाराशि उपजै ताकौ विरलन करि ताके ऊपरि तितनाहीं देय राशि स्थापन करि परस्पर गुणन किये जो महाराशि होय सो च्यारकी राशिका शलाकात्रयका प्रमाण होय है । ऐसें जघन्य असंख्यातकौं शलाका विरलन देय रूप स्थापन करि विरलन देयका अनुक्रमकरि शलाकाराशि संपूर्ण होजाय जब जो कुछ महाराशि उपजै ताकौ फेरि शलाका विरलनदेय रूप स्थापनकरि विरलनकूं वखेरि देयराशिकूं देयशलाकाराशिमैंतैं येकयेक घटाता जाइए तदि दूजीवारहू शलाका पूर्ण होजाय तदि जो महाराशि आवै सो तिस प्रमाण तीसरा शलाका विरलनदेयका क्रमकरि शलाका पूर्ण होय । ऐसें शलाकात्रय निष्ठापन हुआ पाछें जो कुछ महाराशि उपजे मध्यम असंख्यातासंख्यातप्रमाण तिस विषै धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य एक जीवद्रव्य लोकाकाश अलोकाकाश इन च्यारोंनिका प्रदेशनिका प्रमाण अर लोकाकाशके प्रदेशनिका प्रमाणतैं असंख्यातगुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिजीवनिका प्रमाण बहुरि तातैं हू असंख्यात गुणा प्रत्येकवनस्पतिजीवनिका प्रमाण ऐसें छह राशि मध्य असंख्यातासंख्यातप्रमाणविषै मिलाइ दीजिये तिनकूं मिलाय जो मध्यम असंख्यातासंख्यातरूप प्रमाण होय ताका फिर शलाकात्रय स्थापन करना। ऐसें एकवार वा दोय वार वा तीन वार शलाका विरलनदेयके क्रमकरि शलाकात्रय पूर्ण होजाय तदि जो मध्यम असंख्याता संख्यातका जो महाराशि उपजै तिस विषै उत्सर्पिणी अवसर्पिणी मिलकरि भया जो कल्पकाल ताका समय अर तातैं असंख्यात लोकगुणा स्थितिबंधाध्यवसायस्थान तातैं असंख्यात लोक गुण अनुभागबंधा-

ध्यवसायस्थान तातैं असंख्यातलोकगुणा योगनिके उत्कृष्ट अविभागप्रतिच्छेद ए च्यार राशि प्रक्षेपण करिए। अब एहू च्यार राशिकों मिलाय जो प्रमाण भया ताको पूर्वोक्त प्रकार शलाकात्रय निष्ठापन करिये ऐसैं करते जो प्रमाण होय सो जघन्यपरीतांनत जानना। यामैं येक घटाइये सो उत्कृष्ट असंख्यातका प्रमाण जानना। बहुरि तिस जघन्य परीतानंतको एकएक करि विरलन करि येकयेक प्रतितिसही जघन्यपरीतानंतकों देइ तिनकौं परस्पर गुणैं जो महाप्रमाण होय सो जघन्य युक्तानंत जानना सो यह अभव्यसमान है। अभव्यजीवनिका एता प्रमाण है यामैं एक घटाये उत्कृष्ट परीतानंत होयं है। बहुरि जघन्य युक्तानंतका वर्ग करिये जघन्ययुक्तानंतकों जघन्ययुक्तानंतकरि गुणिए तदि जघन्य अनंतानंत होय है यामैं येक घटाय उत्कृष्ट युक्तानंत होय है। बहुरि जघन्यअनंतानंतके प्रमाणकों पूर्वोक्त शलकात्रय निष्ठापन करिये। विरलन देयके अनुक्रमकरि येक शलाका दोय शलाका वा तीन शलाका पूर्ण करि जो मध्य अनंतानंतरूप महाराशिभया तिसमैं ये तीन राशिका प्रक्षेप करिये। जीवराशिकै अनंतवै भाग सिद्धराशिका प्रमाण अर तातैं अनंतगुणा पृथिव्यादिचतुष्टय अर प्रत्येकवनस्पति अर त्रसराशि इन तीन राशिकरि न्यून संसारीजीवनिकी राशि सोही निगोदराशि है। अर तातैं प्रत्येक वनस्पतिकरि अधिक जो निगोदराशि सोही वनस्पतिराशि, बहुरि जीवराशितैं अनंतगुणा पुद्गलराशि अर तातैं अनंतगुणा कालके समयनिका प्रमाणरूप कालराशि, तातैं अनंतगुणा अलोकाकाशके प्रदेशनिका प्रमाण रूप अलोकाकाशराशि, ए छह अनंत रूपराशि मिलावना। इनि छहो राशिको मिलाय जो राशि भया ताका पूर्वोक्तप्रकार शलाकाविरलनदेयके क्रमकरि वर्गित संवर्गित करि बहुरि दूजा तीजा शलाका पूर्ण करि जो मध्य अनंतानंत प्रमाण भया तामैं धर्मद्रव्य

अर अगुरुलघुके अगुरुलघुगुणके अविभागप्रतिच्छेद मिलाय बहुरि इस राशिकों शलाकात्रय पूर्ववत् निष्ठापन करिये जो कोऊ मध्य अनंतानंत प्रमाण भया तिसकूं केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदनिमें घटाय जो केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद रहे तिनमें ज्यूंका त्यूं पूर्वोक्तराशि मिलाइये सो उत्कृष्ट अनंतानंत है। यामें येक घटेताईं मध्य अनंतानंत है। जातें उत्कृष्ट अनंतानंत केवलज्ञानप्रमाण है। अर जो केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदनिमें पूर्वोक्तराशि घटाए विना मिलादीजिए तो केवलज्ञानतें अधिकप्रमाण होजाय सो है नाहीं तातें घटाय मिलाया है। ऐसें संख्याप्रमाणके इकवीस भेद वर्णन कीए। इहां और जानना ॥

श्रुतका संख्यात विषय है। अवधिका असंख्यात विषय है। केवलज्ञानका अनंत विषय है। अब अष्टप्रकार उपमाप्रमाणकूं संक्षेपकरि कहैहैं। पल्य १, सागर २, सूच्यंगुल ३, प्रतरांगुल ४, घनांगुल ५, जगत् श्रेणी ६, जगत्प्रतर ७, घनलोक ८, ऐसें अष्टप्रकार उपमाप्रमाण है। अब पल्यके जाननेका विधान कहैहैं। पल्य तीन प्रकार है व्यवहारपल्य १, उद्धारपल्य २, अद्धापल्य ३। तिनमें पहली व्यवहारपल्यका प्रमाणकूं कहैहै। येक योजन चौडा येक योजन ऊंडा नीचा येक योजन लंबा येसा गोल वडा योजनप्रमाण खाडा करना। तिसमें सातवा जन्मयुक्त जो उत्तम भोगभूमिका गाडर (भेड) ताके जन्मतें सप्तदिनमांहि ग्रहे जो रोम तिनके अग्रभाग तिनकरि खाडा भरिये। सो ऐसा जानना। चौडाई येक योजनकी ताका वर्ग करिये ताकूं दश गुणाकरि ताका वर्गमूल काढिये सो सूक्ष्मपरिधि कहिये तारतम्यपरिधि होयहै। सो इहां येकयोजनका वर्गहू येक भया ताकूं दशगुणा किये दशभया दशका वर्गमूल तीन अर येक का छठाभाग भया ३ १/६ ताकूं समच्छेद विधानकरि जोडे उगणीसका छठा भाग भया १९/६ येसें इस येक

योजनप्रमाण कुंडकी सूक्ष्म परिधिका प्रमाण होयहै। बहुरि विष्कंभका चौथाभागतैं परिधिको गुणैं क्षेत्रफल भया ॥ बहुरि याके वेधनो ऊंडाई येक योजनप्रमाण तिंहकरि गुणैंभी तितनाही भया ऐसैं इस कुंडका घनरूप समस्त सूक्ष्मक्षेत्रफल उगणीसका चोवीसमा भाग प्रमाण भया। बहुरि यह कह्या जो प्रमाणयोजनरूप सूक्ष्मक्षेत्रफल ताके व्यवहारयोजनादि कैसें करने सो कहैहैं। येक प्रमाण योजनरूप क्षेत्र ताके पांचसै व्यवहारयोजन होयहैं। सो इहां घनरूप क्षेत्रका गुणाकार भागहारहू घनरूपही होयहै। जातैं एक प्रमाणयोजनकी लंबाईमैं पांचसै खंड भया। अर लंबा एक एक खंडका पांचसै चौडाईमैं खंड भया बहुरि इन खंडनिका येकयेकका पांचसै पांचसै ऊंचाईमैं खंड भया। यातैं तीन जायगां मांडिये तदि गुणेहुये व्यवहार योजन होंय। बहुरि येक व्यवहारयोजनका सात लाख अडसठि हजार अंगुल अर येक अंगुलके आठ यव अर येक यवके आठ तिल येक तिलके आठ लीख येक लीखके आठ कर्मभूमियाके रोम येक कर्मभूमियाके रोमका आठ जघन्यभोगभूमियाके रोम येक जघन्यभोगभूमियाके रोमके आठ मध्यभोगभूमियाके रोम मध्यभागभूमियाके येकरोमका आठ उत्तमभोगभूमियाके रोम। इनका त्रैराशिक करिये घनरूप राशि है। तातैं सबनिकूं तीनतीन बार मांडि परस्पर गुणियै। ॥ ५००, ५००, ५००, ७६८०००, ७६८०००, ७६८०००। ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८, ८। इन सबनिकों परस्पर गुणिये ते पैतालीस अक्षर व्यवहारपल्यके होयहैं। ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००००००००००००००० ॥ इस व्यवहारपल्यके रोमनिकों एकसौ वर्ष एकसौ वर्ष गए एकएक रोम तिन रोमानिमैं सों ग्रहण करिए। ऐसैं ग्रहण करते सर्व रोम समाप्त जितने कालकरि होंय तावन्मात्र कालके जेते समय होंय सो व्यव-

द्धारपल्यके समयनिकी संख्या होय है। सो एकरोमका ग्रहणविषै सौवर्ष होय पूर्वोक्त रोमनिके ग्रहणविषै केते वर्ष होंय। ऐसे त्रैराशिक करि बहुरि एकवर्षके तीनसैं साठि दिन एक दिनके तीस मुहूर्त अर मुहूर्त्त के तीन हजार सातसैं तिहत्तरि उछ्वास एक उछ्वासकी संख्यात आवली एक आवलीके जघन्ययुक्ता-संख्यातप्रमाण समय होंय तितना व्यवहारपल्यका काल है। आगे उद्धारपल्यके कालकों दिखावै हैं— जो व्यवहारपल्यविषै जे रोम कहे तिन विषै एकएक रोमके असंख्यात वर्षके समयनिके समान खंडरूप कीजिए तब उद्धारपल्यके रोमनिका प्रमाण होय। तिन रोमखंडनिके एकएककूं एकएकसमयमें ग्रहण करते सर्व रोमखंड जेते कालकरि समाप्त होंय सो उद्धारपल्यका काल जानना। उद्धारपल्यके कहे जे रोम तिनका असंख्यातवर्षनिके समयनिका गुणाकरि दीजिए जेता प्रमाण होय तेता प्रमाण अद्धा-पल्यके समयनिका जानना इहां असंख्यात वर्षके समय कह्या सो मध्यम असंख्यातका भेद सर्वज्ञदृष्ट है ऐसा जानना। जो व्यवहारपल्यकरि तो रोमनिकी संख्या वर्णन करी है अर उद्धारपल्यकरि द्वीप-समुद्रनिकी संख्याका वर्णन है। जातैं पचीस कोडाकोडी उद्धारपल्यके जेते समय हैं तेते जंबूद्वीपकूं आदि लेय स्वयंभूरमणपर्यंत द्वीपसमुद्र जानना। बहुरि अद्धापल्यकरिकैही समस्तकर्मनिकी स्थितिका वर्णन जानना। और भी पल्यकरि जिनका प्रमाण कह्या ते अद्धापल्यतैं हैं। बहुरि दश कोडि उद्धारप-ल्यका उद्धारसागर है। अढाई उद्धारसागर प्रमाण द्वीपसमुद्र हैं। उद्धारसागरका द्वीपसमुद्रकी गिणती होमैं प्रयोजन है। अर दशकोडाकोडी अद्धापल्यका एक अद्धासागर है। बहुरि अद्धापल्यके जेते अर्द्ध-च्छेद होंय तितना जायगां अद्धापल्यके प्रमाणकों मांडि परस्पर गुणिए सो सूच्यंगुलके प्रदेशनिका प्रमाण है। एक अंगुल लंबे एक प्रदेश चौडे एक प्रदेश ऊंचे क्षेत्रप्रमाण है। अर सूच्यंगुलके प्रदेशके

प्रमाणका वर्ग करिए सो प्रतरांगुलके प्रदेशनिका प्रमाण है। सो एक अंगुल चौडे एक अंगुल लंबे एक प्रदेश ऊंचे क्षेत्रका प्रमाण है। अर प्रतरांगुलके प्रदेशनिकूं सूच्यंगुलके प्रदेशनिकरि गुणिए ते घनांगुलके प्रदेशनिका प्रमाण है। सो एक अंगुल लंबे एक अंगुल चौडे एक अंगुल ऊंचे प्रदेशनिका प्रमाण है। बहुरि पल्यका अर्द्धच्छेदका असंख्यातवां भागप्रमाण घनांगुल मांडि परस्पर गुणिए सो जगतश्रेणी होयहै। सो सात राजूप्रमाणलंबे अर एक प्रदेश चौडे ऊंचे आकाशके प्रदेशनिकी पंक्तिकूं जगतश्रेणी कहिएहैं। बहुरि जगतश्रेणीका वर्गकूं जगत्प्रतर कहिएहैं। सो सातराजू लंबा चौडा क्षेत्रके प्रदेशनिका प्रमाण जानना। बहुरि सातराजू लंबे चौडे ऊंचे क्षेत्रकूं जगतघन कहिए वा घनलोक कहिए हैं। ऐसें उपमाप्रमाण अष्टप्रकार कह्या। जो विशेष जाणनेका इच्छुक होय सो त्रिलोकसारादिकनितैं जानहु। तथा इनका अनेकस्थान अल्पबहुत्व चौदहधारानितैं जानहु। ऐसें प्रसंग पाय प्रमाणका वर्णन किया। बहुरि योजनके प्रमाणकी उत्पत्ति ऐसें जानहु। अनंत पुद्गलद्रव्यके परमाणुनिका स्कंध तो एक अवसन्नासन्न होय है। तातैं आठआठ गुणे बारह स्थान जानने। सन्नासन्न, त्रुटिरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, उत्तमभोगभूमियाका बालका अग्रभाग त्योंही मध्यभोगभूमियाका, जघन्यभोगभूमियाका, कर्मभूमियाका, लीख सिरसों यव अंगुल ए बारह हैं। ऐसें अंगुल भया सो उत्सेध अंगुल है। याकरि नारकी तिर्यंच मनुष्य देवनिका देह तथा अकृत्रिमजिनप्रतिमाका देहका प्रमाण कीजिए हैं। तथा देवनिका नगर मंदिर मापिए हैं। बहुरि उत्सेधांगुलतैं पांचसै गुणा प्रमाणांगुल होय है। सो अवसर्पिणीकालका प्रथम चक्रवर्ती का अंगुल है। बहुरि जिस कालमैं जैसा मनुष्य होय ताका अंगुल होय सो आत्मांगुल है। तहां प्रमाणांगुलकरि तो द्वीप समुद्र पर्वतादिक तथा द्वीपसमुद्रका वेदी विमान नरकके प्रस्तार आदिक अकृत्रिम वस्तूका विस्तार

आयामादिकका प्रमाण है। सो सर्व प्रमाणांगुलकरि वर्णन जानना । बहुरि छह अंगुलका एकपादहोय बारह अंगुलका एक वितस्ति होय दोय वितस्तिका एक हस्त होय । दोय हातका एक इषु होय गज होय। दोय गजका एक धनुष होय । दोय हजार धनुषका एक कोश होय। च्यार कोशका एक योजन होय। ऐसें लौकिक अलौकिक मान कह्या॥ जैसें उत्कृष्ट मध्य जघन्य स्थिति मनुष्यनिकी कही तैसेंही तिर्यंचनिकी आयु कहैहैं—

तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

अर्थ—तिर्यंच जीवनिकीभी आयुकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यकी अर जघन्य स्थिति अंतमुहूर्त्त है। मध्यके नानाभेद हैं। इहां विशेष कहैहैं-शुद्ध पृथ्वीकाय जीवनिका बारह हजार वर्षका आयु है। अर कठोर पृथ्वीकायका बाईस हजार वर्षका आयु है। जलकायके जीवनिका सात हजार वर्षका आयु है। वायुकायके जीवनिका तीन हजार वर्षका आयु है। अग्निकायके जीवनिका तीन दिन रात्रिका आयु है। ऐसें एकेंद्रिय जीवनिका उत्कृष्ट आयु कह्या। बहुरि त्रेंद्रिय जीवनिका आयु उत्कृष्ट द्वादशवर्षप्रमाण है। त्रींद्रियजीवनिका उत्कृष्ट आयु गुणचास दिनका है चतुरिंद्रियका आयु छहमहीनाका उत्कृष्ट है। पंचेंद्रिय जलतिर्यंचनिका आयु उत्कृष्ट कोटीपूर्वका है। बहुरि सरीसृप ( गोधा ) नकुलादिकनिका नवपूर्वांगका आयु है। बहुरि उरग जे सर्प तिनका उत्कृष्ट आयु बीयालीस हजार वर्षका है। पक्षीनिका उत्कृष्ट आयु बहत्तरि हजार वर्षका है। चतुष्पदनिका उत्कृष्ट आयु तीन पल्यका है। अर समस्त तिर्यंचनिका जघन्य आयु अंतर्मुहूर्त्तका है। ऐसें तीसरा अध्यायमें अधोलोकका वर्णन तथा मध्यलोकमध्ये द्वीपसमुद्रादिकनिका वर्णन किया।

अब इहां कोई अन्यवादी ऐसैं कहै हैं जो इस जगतका कोऊ ईश्वर कर्त्ता है । जातैं कर्त्ताविना कोऊही सत रूप वस्तु होय नहीं । ताकूं पूछिये । ईश्वरकूं कौन किया । ईश्वरहू सत् वस्तु है याका कर्त्ताहू कह्या चाहिए । अर जो कहोगे याका कर्त्ताहू अन्य है । तो वाकूं कौन किया । ऐसैं अनवस्था नामा दोप आवैगा । वहुरि और पूछैहैं जो पहली सृष्टि रचना नहीं थी । तो सृष्टिबाहिर ईश्वर कहां था अर कौन स्थानमैं वैठि जगतकूं रच्या अर ईश्वर आप जगत्विना निराधार अर बहोत कालसै विद्यमान आप तो कहां तिष्ठता अर इस जगतकूं रचि कर कहां स्थापन किया। अर किसीके अधार कहोगे, तो वह कौनके आधार, उसका अन्य आधार कहोगे तो उस अन्यका कौन आधार ऐसैं अनवस्था नामा दोप आवैगा । अर जो या कहोगे निराधारमैं अनादिनिधनमैं तर्क नहीं तो सृष्टिका कर्त्तापना कहना वनै नहीं । ऐसैं तो समस्त पदार्थनिकूंही अनादिनिधन कहै हैं।जाके मतमैं सृष्टिकूं करी हुई मानैं ताके मतमैंही दोप आवैगा। वहुरि ईश्वर एक, जगत् नानात्मक, सो एक होइ नानात्मक जगतकी रचनामैं कैसैं समर्थ होय ? वहुरि ईश्वर शरीररहित अमूर्तिक तातैं शरीरादिक मूर्तिक उत्पन्न होनेयोग्य नहीं। अमूर्तिकतैं मूर्तिक कैसैं होय। वहुरि अन्य करणादि सामग्रीविना लोककूं कैसैं रच्या। जातैं उपादानकारणविना कोऊ वस्तुकी रचना नहीं देखिए हैं। जैसैं मृत्तिकाविना समर्थ कुंभकार घटकी रचना करनेकूं नहीं समर्थ है। अर जो या कहोगे पहली सामग्री बनाय पाछैं जगतकूं रच्या तो पूछिये उस सामग्रीकूं काहेतैं रची । अर सामग्रीकूं अन्य सामग्रीकरि रची कहोगे तो अन्य सामग्रीकों काहेतैं रची ऐसैं अनवस्था दोप आवैगा। अर जो या कहोगे जगतके रचनेयोग्य समग्री तो स्वभावहीतैं सिद्ध है तो लोकहू स्वतःसिद्ध माननेका प्रसंग आवैगा । वहुरि जैसैं लोकका कर्त्ताकों स्वतःसिद्ध

मान्या तैसैं लोककूं स्वतःसिद्ध माननेका प्रसंग आवै है । बहुरि या कहोगे ईश्वर समर्थ है सो सामग्रीविनाही इच्छामात्रकरि लोककूं रचै है । तो ऐसैं इच्छामात्र युक्तिरहित तुमारा कहना कौनकै श्रद्धान करनेयोग्य है । इच्छामात्र करनेकी कल्पना औरहू करो कौन रोकै है । इच्छामात्र कह्या तहां विचार काहेका रह्या । बहुरि ईश्वर कृतार्थ है कृतकृत्य है कि अकृतार्थ है । जो कृतार्थ कहिए करनेयोग्य अर्थ करि लिया अन्य कुछ करनेयोग्य बाकी जाकै नहीं रह्या ऐसाकूं कृतार्थ कहिए है । तो जगतकूं रचनेकी इच्छा ईश्वरकै कैसैं उपजी ? अर जो अकृतार्थ कहोगे तो अकृतार्थ होयगा सो समस्तजगतकूं रचनेकों कुंभकारकीज्यों समर्थ नहीं होय । जातैं अकृतार्थ कुंभकार एक घटकूं रचि कृतार्थपणा अपनैं मानै समस्त जगतकूं करना तो अकृतार्थकै बनैगा नहीं । तैसैं ईश्वरकूं अकृतार्थही मानोहो तो अकृतार्थपना होतैं तो एकएक वस्तुकरि खेदित क्लेशित होता अनंत पदार्थनिकूं कैसैं पूर्ण करैगा । तातैंहू जगतका कर्त्तापणा ईश्वरकै नहीं संभवैहै । बहुरि ईश्वरकूं अमूर्त्तिक कहै हैं । अर निष्क्रिय कहै हैं अर व्यापी कहै हैं सो ऐसा ईश्वर जगत्कूं कैसैं रचै । जातैं अमूर्त्तिकतैं तो मूर्त्तिक उत्पन्न होय नहीं । अर जो निःक्रिया कहिये क्रियारहित होय ताकै रचनेकी क्रिया कैसैं बनै । बहुरि जो व्यापी समस्तमें व्याप रह्या ताकै लोकका रचना कैसैं बनै समस्तमें अनादिहीका व्याप्त होरह्या । बहुरि ईश्वरकूं विक्रियारहित निर्विकार कहैं ताकैं रचनेकै अर्थि विकारी होना नहीं संभवै । बहुरि ईश्वर सृष्टिकूं कहा फल चाहता रची । ईश्वर तो कृतकृत्य है ताकै धर्म अर्थ काम मोक्ष इन च्यारों पदार्थनिमें कुछ करना बाकी नहीं रह्या तदि सृष्टिकूं रची कहा ? फल चाह्या प्रयोजनविना तो मूर्खहू नहीं प्रवर्त्तै है । अर जो या कहोगे ईश्वरकै सृष्टि रचनेमें कुछ प्रयोजन तो नहीं परंतु विना

तो नहीं रह्या। बहुरि जैसें सूर्य एक है तो ताका प्रतिबिंब अनेक पात्रनिमैं सदृशही दीखै है। जिस दिन ग्रहण होयगा अर सूर्यकी कोर दक्षिणदिशाकी लुप्त भई होयगी तो समस्त पात्रनिमैं दक्षिणकी कोरही लुप्त भई भासैगी अन्य प्रकार नहीं दीखै। तैसैं ब्रह्म एकही है तो समस्तपदार्थनिमैं एकरूपही दीख्या चाहिए। जगत तो मनुष्य पशु पक्षी वा केई दुःखी केई सुखी केई रंक केई राजा केई जड केई चेतन ऐसैं नानारूप कैसैं भासै है। जो एक ब्रह्मस्वरूपही होय तो चांडाल अर ब्राह्मणादिकनिका भेद नहीं रहैगा। बहुरि जो समस्त जगत ब्रह्मरूपही है तो जप ध्यान आराधन दर्शन कौनका अर ध्यानादिक करनेवाला कौन रह्या। एक ब्रह्मही रह्या तब दीक्षा शिक्षा गुरुशिष्यादिकका भेदका लोप भया। बहुरि कहोगे जो ऐ भेद दीखैहैं सो अविद्यामाया है। तो पूछै हैं—या अविद्या ब्रह्मसैं जुदी है कि एक है। जो अविद्याकूं वा मायाकूं जुदी कहेगा तो ब्रह्म अर अविद्या दोय ठहर्‌या तादि ब्रह्मकै अद्वैतपणा कहां रह्या। अर ब्रह्म कों एक कहैगा तो ब्रह्म अविद्यारूप भया मायारूप भया असत्य भया। बहुरि अविद्याकूं अवस्तु कहोहो जो अविद्या तो कुछ वस्तुही नहीं। तो यह कैसैं कहो जो अविद्यातैं जगत नानारूप दीखैहै ब्रह्म सिवाय कुछ नहीं। अर वस्तुकै कार्यकारणपणा कैसैं भया। बहुरि सब जगत ब्रह्मही है तो अविद्या अर माया ए कौनकै भया ब्रह्महीकै भया तब ब्रह्म कहना मानना तुमारे अभिप्रायतैंही असत्य भया। बहुरि अद्वैतशब्दही द्वैतपनाविना होय नहीं। जातैं कोऊ वस्तु होयगा ताका निषेधभी होयगा द्वैतविना ही द्वैतपणाका निषेध कैसे किया। अर जो कहोगे हम तो समझायबेकूं अद्वैत कह्या है। जातैं जगतमैं जीव भ्रमतैं द्वैत मानि राख्या है इनिका निषेधकूं कह्या है। जो द्वैतका निषेध करोहो सो सतका करोहो कि असतका करोहो। जो सतका करो तो झूंठा भया।

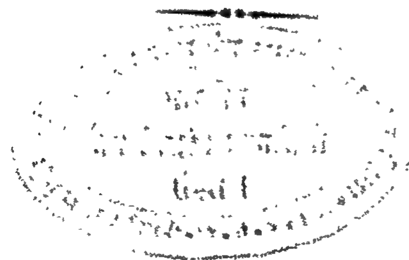
अर असत्का निषेध संभवै नाहीं। ऐसे इनिका विधिनिषेध श्लोकवार्तिकमें तथा अष्टसहस्रीमें है। अर ईश्वरवादकवाद आप्तपरीक्षादिक ग्रंथनिमें है तहांतें जानना इहां तो प्रकरण पाय दिग्मात्र दिखाया है। ऐसे नरकभूमि बिल लेश्या आयु द्वीप समुद्र पर्वत ह्रद नदी मनुष्य तिर्यंचनिका आयु इत्यादिक वर्णन करि तीसरा अध्याय समाप्त किया ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ३ ।

ऐसे तत्त्वार्थका है अधिगम जामें ऐसा दशाध्यायरूप मोक्षशास्त्रमें तीसरा अध्याय समाप्त भया ॥ ३ ॥

दोहा।

है जामें तत्त्वार्थका अधिगम शिवसुखदाय। मोक्षशास्त्र मंगलमयी नमूं तृतिय अध्याय ॥ ३ ॥



# अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

दोहा ।

वंदनकरि पद आप्तका, सुनि आगम उपदेश ।
स्वस्वरूपके कथनमैं, रहै न भ्रमतमलेश ॥ १ ॥

केई प्रकरणमैं देवशब्द कह्या परंतु यह नहीं जाण्या जो देव कितने हैं कौन हैं इसके निश्चयके आर्थि सूत्र कहैहैं—

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥

अर्थ—देवगतिनामकर्मके उदयतैं देवनिका च्यारि निकाय है। निकाय नाम समूहका है। भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष, वैमानिक ऐसैं देवनिके च्यार समूह हैं॥ अब इनकैं लेश्याका जाननेकूं सूत्र कहैहैं—

आदितस्त्रिषु पीतांतलेश्याः ॥ २ ॥

अर्थ—आदितैं लेय भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क इन तीन निकायनिंविषै पीतपर्यंत लेश्या हैं। कृष्ण नील कापोत पीत ए च्यार लेश्या हैं॥ अब तिन देवनिके अंतर्भेद दिखावनेकूं सूत्र कहैहैं—

दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपन्नपर्यंताः ॥ ३ ॥

अर्थ—भवनवासीनिके दश भेद, व्यंतरनिके अष्टभेद, ज्योतिष्कदेवनिके पांच भेद, कल्पवासिनिके द्वादश भेद ऐसैं कल्पोपपन्न जे स्वर्गनिवासी तिन पर्यंत भेद हैं॥ अब इन देवनिमैं विशेष हैं तिनके जाननेकूं सूत्र कहैहैं—

इंद्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥ ४ ॥

अर्थ—देवनिविषैं एकएक निकायमें दश दश भेद हैं। इंद्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशत्, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य, किल्विषिक, ऐसें भेद हैं। तहां अन्य देवनिविषै नहीं पाइए ऐसी अणिमा महिमादिक अनेक ऋद्धिनिकरि परम ऐश्वर्यकूं प्राप्त होय सो इंद्र है। जैसें इहां राजा आज्ञा ऐश्वर्यकरि प्रवर्ते। बहुरि जिनका स्थान आयु वीर्य परिवार भोगादिक इंद्रके समान होय एक आज्ञा ऐश्वर्य नहीं होय जातें आज्ञा ऐश्वर्य तो इंद्रकाही होय है ते सामानिक देव हैं। इंद्र इनकूं पिता गुरु उपाध्याय तुल्य बडे गिणे है। बहुरि मंत्री पुरोहित समान तो शिक्षा करनेवाले अर पुत्रसमान प्रीतिका पात्र जिनकूं देखनेकरि वचनालापकरि पुत्रसमान इंद्रके मनके आनंद उपजे ऐसे तेतीस देव ते त्रायस्त्रिंशत् हैं। बहुरि जे इंद्रकी बाह्य अभ्यंतर मध्य जे तीन प्रकारकी सभा तिनमें तिष्ठनेयोग्य सभानिवासी देव हैं ते पारिषद देव हैं। बहुरि जे इंद्रकी सभामें पाछे खडे रहनेवाले शस्त्रधारण किए जे देव हैं ते आत्मरक्षक हैं। यद्यपि देवनिकै किछु घातादिक नहीं है तथापि ऋद्धिविभवकी महिमाके अर्थि है। बहुरि कोटपालतुल्य होय अमार्गकी प्रवृत्तिका निषेधक लोकपाल है। बहुरि पयादा अश्व वृषभ रथ हस्ती गंधर्व नर्तकी ए सात प्रकार इंद्रकी सेनाके देव ते अनीक कहिए। बहुरि नगरनिवासी समान प्रीतिका कारण प्रकीर्णक देव हैं। बहुरि दासादिकनिकै समान हस्ती घोडादिक वाहन वणि सेवा करैं ते आभियोग्य देव हैं। बहुरि दूर तिष्ठनेवाले इंद्रादिकनिकै सन्मानादिकके अधिकारी नहीं बाहिर दूरि ही खडे तिष्ठ रहैं ते किल्विषिक देव हैं॥ इस सूत्रमें "एकशः" कहने करि एकएक निकायमें दश दश भेद हैं परंतु व्यंतर ज्योतिषीनिमें आठ आठ ही भेद हैं। यातैं सूत्र कहै हैं—

त्रायस्त्रिंशल्लोकपालवर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः ॥ ५ ॥

अर्थ—व्यंतर अर ज्योतिष्क देवनिमैं त्रायस्त्रिंशत् अर लोकपाल ए दोय भेद नहीं हैं आठही हैं ॥ अब इंद्रनिका नियम कहैहैं—

पूर्वयोर्द्वींद्राः ॥ ६ ॥

अर्थ—पहली दोय निकायनिके भेदनिमैं दोय दोय इंद्र हैं। दशप्रकारका भवनवासीनिमैं चमर वैरोचनादिक दोयदोय इंद्र हैं यातैं वीस इंद्र हैं। व्यंतरनिके अष्टभेदनिमैं किन्नर किंपुरुषादिक षोडश इंद्र हैं ॥ अब देवनिकै कामसेवनका नियम कहैहैं—

कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥ ७ ॥

अर्थ—इहां प्रवीचार नाम मैथुनसेवनका है। भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क अर सौधर्म ईशान स्वर्गके देव अर इनिकी अंगना इनिकैं मनुष्यनिके समान संक्लेशकर्मकरि कायथकी मैथुनसेवन है ॥ अब ऊपरिके देवनिकै कैसैं है सो कहैहैं—

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥ ८ ॥

अर्थ-पहिले सूत्रमैं कहे देव तिनतैं अवशेष रहे जे सनत्कुमारादिक देव तिनकैं स्पर्श रूप शब्द मनकै विषैही मैथुन है। सनत्कुमार माहेंद्रके देवानिकै मैथुनकी इच्छा उत्पन्न भई जाणि देवी नजीक प्राप्त होयहैं। तहां देवीनिका अंगका स्पर्शमात्रतैंही प्रीतिनैं प्राप्तहोयहैं अर कामकी इच्छा मिटि जायहै अर देवीनिकैहू तृप्ति होयहै। वहुरि ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठ इन च्यार स्वर्गनिके देवनिकै देवांगनानिके स्वभावतैंही सुंदरशृंगार आकार विलास चतुर मनोज्ञ वेष रूप लावण्य इनिके अवलोकनमात्रतैंही परमसुख

होयहै। बहुरि शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रारके देव हैं ते देवांगनानिके मधुरगीत कोमलहास्य कोमल-वचन भूषणनिके शब्दश्रवणादि रूप अमृतपानकरि परमप्रीतिकूं प्राप्त होय हैं। बहुरि आनत प्राणत आरण अच्युत इन च्यार स्वर्गनिविषै देव हैं ते अपनी देवांगनानिका मनविषै ही संकल्पमात्र करनेतैं परमसुखकूं प्राप्त होय हैं॥ अब सोलह स्वर्गनिके ऊपरि अहमिंद्रनिके कैसें सुख है इसके निश्चयके अर्थि सूत्र कहै हैं—

परेऽप्रवीचाराः ॥ ९ ॥

अर्थ—इहां "पर" शब्दके कहनेकरि कल्पातीत समस्त देवनिका संग्रह भया यातैं अच्युत स्वर्गके ऊपरि नवग्रैवेयिकनिके तीनसै नव ३०९ विमान अर नव अनुदित विमान अर पंच अनुत्तर विमान इनमें वसनेवाले अहमिंद्र हैं तिनकै काम सेवन नाहीं। तहां देवांगना नाहीं। विषयवेदनाके अभावतैं वेदनारहित स्वाभाविक परमसुख निरंतर भोगवै हैं॥ अब भवनवासी देवनिकी विशेष संज्ञा कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥ १० ॥

अर्थ—भवननिमें वसै हैं तातैं इनकूं भवनवासी कहिए है। भवनवासीनिमें असुरकुमार नागकुमार विद्युत्कुमार सुपर्णकुमार अग्निकुमार वातकुमार स्तनितकुमार उदधिकुमार द्वीपकुमार दिक्कुमार ऐसें दश विशेषसंज्ञा नामकर्मकरि कीनी जानना। बहुरि कोऊ श्वेतांबरादिक कहै जो देवनिकरि 'असंति' कहिए सुरा ताकै भक्षणकरि ते असुर हैं ऐसें कहै सो नहीं। ए कहना तो देवांको अवर्णवाद है इसमें मिथ्यात्वका बंध होय है। ते सौधर्मादिकनिके देव महाप्रभाववान हैं। इनके ऊपरि हीनदेव मनकरिकैं प्रतिकूलपणा नहीं विचारै हैं। जो एता विशेष है। जो नागेंद्र अर वैरोचन ए इंद्र अपनी पृथ्व-

गैसंपदाकरि परिणाममैं ऐसा मद करै हैं जो हमारैं सौधर्म ईशान इंद्रसौं कोनसी संपदा घटै है हम भी उनके तुल्य ही हैं ऐसी परिणामनिमैं इर्षा है सो अभिमानकी अधिकतातैं ऐसी इर्षा करै ही हैं। वहुरि सौधर्मादिक देवनिकैं विशिष्ट शुभकर्मका उदयकरि विभव है। सो अरहंतपूजा तथा भोगानुभवन इत्यादिकमैं लीन हैं। इनकैं परकी दाराहरणादिक वैरका कारणही नहीं। तातैं असुर हैं ते सुरनिकरि युद्ध नाहीं करै हैं। वहुरि समस्त देवानिकै वाल यौवनादिक अवस्था नहीं पलटै हैं। उपज्या जिस अवसरतैं मरणपर्यंत एकसी थिर अवस्था रहै है। तातैं अवस्थाकरि कुमार नहीं हैं। इनिकै कुमार समान उद्धतवेष भाषा आभरण आयुध वस्त्र गमन वाहन राग क्रीडन हैं तातैं कुमार कहिए है। अव इनका भवन कहां है सो कहै हैं। इस जंबूद्वीपकी दक्षिणदिशामैं असंख्यात द्वीपसमुद्रनिकूं व्यतीतकरि रत्नप्रभापृथ्वीका पंकभागविषैं असुरकुमारनिका चमर नाम इंद्रके चौंतीस लाख भवन हैं। अर चौसठि हजार सामानिक देव हैं। तेतीस त्रायस्त्रिंशत् देव हैं। वहुरि सोम यम वरुण कुवेर ए च्यार लोकपाल हैं। तीन सभा हैं तिनमैं पहली सभामैं अठाईस हजार देव हैं। मध्यकी सभामैं तीस हजार वाह्य सभामैं वत्तीस हजार देव हैं। अर सात सेना हैं। महिषनिकी घोडेनिकी रथनिकी हाथीनिकी पयादनिकी गंधर्वनिकी नृत्यकारिणीनिकी। तिन एकएक सेनामैं सातसात कक्षा हैं। पहिली कक्षा चौसठि हजार देवनिकी दूजी यातैं दूणी तीजी यातैं दूणी ऐसैं सप्त जायगां दूणीदूणीकी इक्यासी लाख अठाइस हजार प्रमाण महिषनिकी सेना भई। इनिकूं सप्तकरि गुणिए तदि पांच कोटीअडसठी लाख छिनवै हजार देव सातौं सेनाके भए। ऐसैंही वैरोचनादिक इंद्रनिकैं सेनाका प्रमाण जानना। इनि सात प्रकारकी सेनामैं एकएक सेनाधिपति महत्तर देव हैं। नृत्यकारणीकी सेनामैं महत्तरी देवी

है। अर प्रकीर्णक देव नगरनिवासी समान प्रीतिके पात्र असंख्यात हैं। बहुरि छप्पन हजार देवी हैं तिनमें सोलह हजार वल्लभिका अर पांच पट्टदेवी हैं। अर पट्टदेवी आठ हजार विक्रिया करें हैं। ऐसें ही वैरोचनादि इंद्रनिकै समस्त दश भेदनिमें भवन परिवारादिक त्रिलोकसारादिग्रंथनितें जानना। बहुरि रत्नप्रभा पृथ्वीका पंकभागविषै असुरकुमारनिके भवन हैं अर नागकुमारादिक नव जातिके भवन खरभागविषैं हैं। बहुरि केई भवन जघन्य हैं ते तो संख्यातकोटी योजनके हैं। उत्कृष्टभवन असंख्यात योजनके विस्ताररूप हैं चौकोर हैं। तीनसै योजनकी उंचाई लिए हैं। भवनकी भूमिसूं लेय छातीपर्यंत तीनसै योजनकी उंचाई है। अर एकएक भवनके मध्यविषैं एक योजन ऊँचा पर्वत है तिस पर्वत ऊपरि जिनेंद्रमंदिर हैं ऐसें दश जातिके भवनवासीनिके सात कोटी बहत्तरी लाख भवन हैं। अर सात कोटी बहत्तरी लाखही जिनचैत्यालय हैं। अष्टगुणरूप ऋद्धिनिकरि सहित हैं। नाना-मणिमय भूषणनिकरि जिनका दीप्तिसंयुक्त अंग हैं। अर दशप्रकारके चैत्यवृक्ष जिनप्रतिमाकरि विराजित हैं। अपने तपके प्रभावकरि सुखरूप भोग भोगते तिष्ठै हैं। जिनकैं मलमूत्र रुधिर चाम हाड मांस आदिककरि वर्जित दिव्य देह है। तिनमें असुरकुमार देवनिकैं एक हजार वर्ष गए आहारकी इच्छा उपजै तो मानसिक आहार मन चलतप्रमाण कंठमें अमृत झरै है। वेदना व्यापै नाहीं। अर पंद्रह दिन व्यतीत भए उच्छ्वास होय है। अर अन्य नागकुमार सुपर्णकुमार द्वीपकुमार इन तीन-निकै आहारकी इच्छा साढाबारह दिन गए होय अर साढाबारा मुहूर्त्त गए उच्छ्वास होय अर उदधिकुमार विद्युत्कुमार स्तनितकुमार इन तीनकैं बारह दिन गए आहारकी इच्छा अर बारह मुहूर्त्त गए उच्छ्वास होय है। अर दिक्कुमार अग्निकुमार अर वातकुमार इन तीनकै आहारकी इच्छा

साढा सात दिनमें अर उच्छ्वास साढा सात मुहूर्त्तनिमैं होय है। बहुरि देहकी उंचाई असुरकुमार-निकैं पचीस धनुषकी अन्य नव जातिकेनिकैं दश धनुष है । समस्त भवन महासुगंध महारमणीक महा उद्योतरूप हैं॥ अव व्यंतरनिकी संज्ञा कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

व्यंतराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥ ११ ॥

अर्थ—विविध कहिए नानादिशांतरनिमैं इनका निवास है तातैं व्यंतर कहिए है। सो सामान्यसंज्ञा है। अर नानाकर्मके उदयकरि इनका ए आठ विशेषसंज्ञा हैं। ते किन्नर किंपुरुष महोरग गंधर्व यक्ष राक्षस भूत पिशाच ऐसैं आठ हैं। कितने अज्ञानी कहैहैं जो किन्नरान् कामयन्ते इति किन्नराः। किंपुरुषान् कामयंते इति किंपुरुषाः, पिशिताशनात् पिशाचाः ऐसैं निरुक्तिकरि ऐसा विपरीत अर्थ करैं जो कुत्सित नरनिकूं इच्छा करैं ते किन्नर कहिए अर कुत्सित पुरुषां सों कामसेवन करैं ते किंपुरुष हैं। अर पिशित जो मांस ताके भक्षणतैं पिशाच हैं। सो ऐसा कहना देवनिका अवर्णवाद है। मिथ्यादर्शनके बंधका कारण है। पवित्र वैक्रियिक देहका धारक देव कदाचित् भी अशुचि औदारिक मनुष्यनिका देहतैं कामसेवन नहीं करै, मांसभक्षण देवनिकैं कदाचित् नहीं है। देवनिकैं मानसिक आहार है कवलाहार नहीं है। अर लौकिकमैं प्रवृत्ति सुनिए देखिए है सो पूर्वजन्मके संस्कारतैं क्रीडा सुखकैं निमित्त है पूर्वजन्मका संस्कार खोटा होय तातैं खोटी क्रीडामैं प्रवृत्ति है। तिनमैं किंनरनिका हरितवर्ण है। किंपुरुषनिका धवलवर्ण है। महोरगनिका श्यामवर्ण है। गंधर्वनिका हेमवर्ण है। यक्षनिका श्यामवर्ण है। राक्षस भूत पिशाच श्यामवर्ण हैं। इनिकैं जिनप्रतिमाकरि सहित अष्टप्रकारके चैत्यवृक्ष हैं ते मानस्तंभादिक सहित हैं। बहुरि इन अष्टभेदनिमैं दोयदोय इंद्र हैं। एकएक इंद्रके च्यार हजार सामानिक देव हैं। च्यार पट्ट-

देवी हैं। सोलह हजार अंगरक्षक हैं। तीन सभा हैं। अभ्यंतरसभामें आठसै देव, मध्यममें हजार देव, बाह्यमें बारासै देव, अर एकएक इंद्रके सातसात प्रकार सेना हैं। हस्ती, घोडा, पयादा, रथ, गंधर्व, नृत्यकारिणी, वृषभ एकएकमें सातसात कक्षा हैं। पहली कक्षा अठाईस हजारकी फिर दूणीदूणी सातमी कक्षामें हस्ती सतरालाख बाणवै हजार भया। सात कक्षानिका मिल्या हुवा पैंतीस लाख छप्पन हजार हस्ती भया। ऐसैंही प्रमाण लिया घोडा पयादा रथादिकनिकी सेना हैं। ऐसैं इनकै समस्त इंद्र सोलह तिनकै सेनादिक ऋद्धि जाननी। बहुरि इनका आवास इस जंबूद्वीपतें तिर्यक् दक्षिणदिशाविषैं असंख्यात द्वीपसमुद्रनिकूं उलंघन करिकैं अर खरपृथ्वीका भागविषैं किंनरेंद्रका असंख्यात हजार भवन हैं। ऐसैंही उत्तरदिशाविषैं किंपुरुष इंद्रका विभवपरिवार है। ऐसैंही सत्पुरुष गीत रतिपूर्ण भद्रस्वरूप काल नामइंद्रका दक्षिणभागमें आवास है। तैसैंही महापुरुष महाकाय गीतयश मणिभद्र अप्रतिरूप महाकाल ए उत्तरके अधिपति तिनका उत्तरमें निवास है तथा पंकभागविषैं दक्षिणदिशामें राक्षसनिका इंद्र भीम नामका असंख्यात नगर हैं। बहुरि उत्तरदिशाविषैं महाभीम नाम राक्षसेंद्रका असंख्यात नगर हैं। बहुरि इन व्यंतरनिके नगर अनेक पृथ्वीऊपरि बहुत द्वीपनिमें हैं। जंबूद्वीपप्रमाण बडे हैं। अनेक वन उपवन महल मंदिर दरवाजे कोट पडकोटनिसहित अनेक रचना हैं। बहुरि व्यंतरनिका आवास पृथ्वीऊपरि द्वीप पर्वत समुद्र देश ग्राम नगर तिक चौहटा गृहांगण रस्ता गली जलके निवाण (घाट) नाग वन वृक्षकुल्यादिकविषैं असंख्यात विचरै हैं॥ अब तृतीयनिकायकी संज्ञा कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥ १२ ॥

अर्थ—सूर्य १ चंद्र २ ग्रह ३ नक्षत्र ४ प्रकीर्णकतारा ५ ऐसैं पंचप्रकार ज्योतिष्क देव हैं। इनिका

ज्योति उद्योतरूप स्वभाव है यातैं ज्योतिष्क ऐसी सामान्यसंज्ञा है सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक-तारा ए विशेषसंज्ञा हैं। इहां सूर्याचंद्रमसौ इनिकी भिन्नाभिन्न विभक्तिकरि इनका प्रधानपणा जणाया है। इनिकैं प्रभावादिक विशेष हैं। सूर्यका पहली ग्रहण अल्पस्वरपणातैं है । जिस शब्दमैं स्वर अल्प होय सो पहली कह्या जाय है जैनेंद्रमैं वाकी अच्संज्ञा है । इनिमैं चंद्रमा इंद्र है सूर्य प्रतींद्र हैं। इनिके आवास मध्यलोकमैं हैं। इस समभूमिभागतैं सातसै नवै योजन ऊपरि समस्त ज्योतिष-निके नीचे तारा विचरै हैं। तिन तारनितैं दशयोजन ऊंचे सूर्यजातिके देव हैं, अर सूर्यनितैं असी योजन ऊंचा जाईये चंद्रमा भ्रमै हैं। चंद्रमातैं तीन योजन ऊपरि नक्षत्र हैं। तिनतैं तीन योजन ऊंचे जाय बुधदेव हैं। तिनतैं तीन योजन ऊंचे शुक्र देव हैं । तिनतैं तीन योजन ऊंचे बृहस्पति हैं। तिनतैं च्यार योजन ऊंचे मंगल हैं। तातैं च्यारि योजन ऊंचे शनैश्चर हैं। ऐसैं यो ज्योतिर्गणनिका विषय-रूप आकाश एकसो दश योजनकी ऊंचाईमैं है। जातैं समभूमितैं सातसैनिवैं योजनके ऊपर नवसै योजन पर्यंत एकसौ दश योजन मोटा ज्योतिषी देवनिका पटल हैं। अर तिर्यक् असंख्यात द्वीप-समुद्र प्रमाण चौडालंवा घनोदधिपवनपर्यंत तिष्ठैहै। बहुरि एक योजनका इकसठि भागकी जेतीमैं छप्पन भागप्रमाण चंद्रमाका विमान है। अर एक योजनका इकसठिभागकी जेतीमैं अडतालीस भाग प्रमाण सूर्यका विमान है। शुक्रका विमानका व्यास एककोशप्रमाण है। बृहस्पतिका किंचित् न्यून एककोशप्रमाण है। अर बुध मंगल शनैश्चरका विमान अर्द्धकोश विस्तार है। बहुरि तारानिका विमान जघन्य है सो तो एककोशका चतुर्थभागप्रमाण विस्तार है। अर उत्कृष्ट एककोशका तारानिका तथा नक्षत्रनिका विमानका विस्तार है। अर ए समस्त विमाननिका आकार जैसैं कोऊगोला सवतरफतैं

घटता अनन्ता सो लोकादिकनिका गोला बीचिमें चीरिए तब ऊपरि विस्ताररूप अर नीचे क्रमतें घटता होय ही। अर विमाननिका विस्तारतें आधा ऊंचाईका प्रमाण है। अरविस्तारतें तिगुणितें कुछ अधिक परिधि है। बहुरि राहुको विमान चंद्रमाका विमानके नीचें गमन करे है। अर केतुको सूर्यविमानके नीचें गमन करे है। अर राहुकेतुका विमान किंचित् न्यून एक योजनके विस्तार है। बहुरि राहुका विमानका ध्वजादंडके ऊपरि च्यारि प्रमाणांगुलका अंतर छांडि चंद्रमाका विमान है। अर केतुका विमानका ध्वजादंडके ऊपरि च्यार प्रमाणांगुलका अंतर छांडि सूर्यका विमान है। चंद्रमाका विमान दिनप्रति अपना विस्तारके सोलवें भाग कृष्ण वा शुक्ल होय है। सो राहुका विमानकी गति विशेषकरि होय है। बहुरि चंद्रविमानकूं अर सूर्य विमानकूं सोलह सोलह हजार देव लेकर चले हैं। ते पूर्वमें च्यार हजार देव सिंहके आकार हैं। दक्षिणदिशामें हस्तीके आकार च्यार हजार देव हैं। पश्चिममें वृषभके आकार च्यार हजार देव हैं। उत्तरमें तुरंगाकार च्यार हजार देव बसे हैं। बहुरि अन्य ग्रहनिके विमानका वाहक आठ हजार देव हैं। नक्षत्रविमानके च्यार हजार देव हैं। ताराविमानके दोय हजार देव विमानकूं वहनेवाले हैं। बहुरि सूर्यके बारह हजार किरण उष्ण कठोर हैं। चंद्रमाके शीतल बारह हजार किरण हैं। शुक्रके अढाई हजार किरण हैं। प्रकाशकरि उज्ज्वल हैं। और ग्रहादिक मंदकिरण हैं मंदप्रकाशसहित हैं। बहुरि इहां कोऊ कहै—ज्योतिषीदेवनिकै गमनका कारणविना गमन कैसें होय? ताका उत्तर—गतिमें रत आभियोग्य देव हैं तिनकै कर्म गमनकरिकैही पचे हैं। कर्मकी विचित्रता है। तप्तासमान सुवर्णवर्ण सूर्यविमान है। निर्मल कमलतंतुके वर्ण चंद्रविमान है। रूपावर्ण शुक्रका विमान है। मोतीसमान बृहस्पतिविमान है। कनकमय बुधविमान है। तप्तायमान सुवर्णवर्ण शनैश्चरविमान है।

ताया सुवर्णसमान मंगलविमान है ॥ ज्योतिषीनिका गमनविशेष जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ १३ ॥

अर्थ—ज्योतिषी देव मेरुकी प्रदक्षिणारूप निरंतर मनुष्यलोकमैं गमन करैं हैं मेरुकूं ग्यारहसै इकईस योजन तिर्यक् छांडिकरि तारागणादिक विचरैंहैं। अढाई द्वीपमैं अर दोय समुद्रमैं मनुष्यनिका क्षेत्र है। तिनमैं जंबूद्वीपमैं दोय चंद्रमा, लवणसमुद्रमैं च्यार हैं। धातकी द्वीपमैं वारह हैं, कालोदधिमैं बीयालीस हैं। पुष्करार्द्धमै बहत्तरी हैं। ऐसैं पंचस्थान ऊपरी एकसौ बत्तीस चंद्रमा भए। इतनेही सूर्य हैं। बहुरि जंबूद्वीपमैं छत्तीस ध्रुवतारा हैं। लवणसमुद्र ऊपरी एकसौ गुणतालीस, धातकीमैं एक हजार दश, कालोदधिऊपरी इकतालीस हजार एकसौ वीस, पुष्करार्द्ध ऊपरि त्रेपन हजार दोयसै तीस ध्रुवतारा हैं। बहुरि एक चंद्रमासंबंधी एक सूर्य अर अठासी ग्रह अठाईस नक्षत्र अर छासठि हजार नवसे पिचहत्तरी कोडाकोडी तारा हैं। एता परिवारसहित समस्त चंद्रमा जानना। कह्या जे जंबूद्वीप-विषै दोय सूर्य दोय चंद्रमा इनका गमन करनेका क्षेत्रकूं चार क्षेत्र कहिए हैं। तहां एकसो असी योजन तो द्वीपविषैं अर तीनसै तीस योजन अर सूर्यका बिंवका प्रमाणकरि अधिक लवणसमुद्रविषैं गमनका क्षेत्र है। ऐसैं पांचसै दश योजन साधिक इनका चार क्षेत्र हैं। यामैं सूर्यके गमन करनेकी एकसो चौरासी गैली हैं। तहां विंवप्रमाण तो एक गैलीकी चौडाई है। अर गैलीप्रति दोयदोय योजनका अंतर ऐसैं एकसो तीयासी अंतर जाननें। इनका गमनकरि जंबूद्वीपमैं अभ्यंतर परिधिमैं गमन करै सो प्रथम गैली कहिए। अर लवणसमुद्रमें तीनसै तीस योजनपरै जो गैली सो अंतकी बाह्य परिधि है। प्रथम अभ्यंतर वीथीविषै तिष्ठता सूर्यके दक्षिणायनका प्रारंभ है। अर अंतर्बाह्य वीथीविषै तिष्ठता

मार्गके उत्तरायणका प्रारंभ होयहै। बहुरि कर्कराशिविषै सूर्य प्राप्त होय तब अभ्यंतर वीथीविषै भ्रमण करै है। अर मकरराशिविषै सूर्य प्राप्त होय तब बाह्यवीथीविषै भ्रमण करैहै। सूर्य ज्योंज्यों बाह्यवीथीकूं प्राप्त होय त्योंत्यों शीघ्र गमन करैहै। अर जैसें जैसें अभ्यंतरवीथीकूं प्राप्त होय तैसेंतैसें मंद गमन करैहै। जब अभ्यंतर परिधिमें गमनका प्रारंभ करैहै तदि अठारह मुहूर्त्तका दिन बारह मुहूर्त्तकी रात्रि होय है। अर बाह्य परिधिमें सूर्य भ्रमण करैहै तदि बारह मुहूर्त्तका दिन अठारह मुहूर्त्तकी रात्रि होयहै। बहुरि चंद्रमाकी वीथी पंद्रह हैं। बहुरि इहां इनके गमनके चार क्षेत्रकी चौडाई पांचसै दश योजन प्रमाण कह्या तिसमें एकसो चौरासी वीथी सूर्यकी हैं। तिनमें जंबूद्वीपसंबंधी चारक्षेत्र एकसो असी योजनमें जंबूद्वीपकी वेदीका व्यास च्यार योजनका है। तातें द्वीप ऊपरि एकसो छिहत्तरी योजन अर वेदी ऊपरि च्यार योजनका लवणसमुद्रके ऊपरि तीनसै तीस योजन है। तिनमें सूर्यका बिंब तो अडतालीस योजनका इकसठवां भागविषै अर दोय योजनको अंतराल इनकूं मिलाय एकसो सतारिका इकसठिवां भाग प्रमाण दिनप्रति परिधिको अंतराल जानना सो द्वीप ऊपरि बासठि उदय हैं अर वेदीसंबंधी दोय अर लवणसमुद्रसंबंधी एकसो अठारह हैं। ऐसें एकसो चौरासी उदय कहे। बहुरि भरतक्षेत्रके निवासीनिकूं त्रेसठि उदय तो निषधपर्वत ऊपरि दीसै हैं। अर चोसठिवीं पैंसठिवीं वीथीविषै तिष्ठता सूर्य हरिक्षेत्र ऊपरि उदय दीसैहै। अर छ्यासठिवीतें लगाय अंतपर्यंत वीथीनिविषै तिष्ठता सूर्य लवणसमुद्रके ऊपरि उदय होता भरतक्षेत्रके निवासीनिकूं दीसैहै। बहुरि मेरुगिरिके मध्यतें लगाय यावत लवणसमुद्रका छठा भागपर्यंत सूर्यका आताप फैलै है। जंबूद्वीपका आधा क्षेत्र पचास हजार योजन तामें द्वीप चार क्षेत्र एकसो असी योजन घटाए गुणचास हजार आठसै बीस योजन प्रमाण तो अभ्यंतर वीथी मेरुगिरिका

मध्यपर्यंत उत्तरदिशाविषै आताप फैलैहै। बहुरि लवणसमुद्रका व्यास दोय लाख योजनका ताका छवां भाग तेतीस हजार तीनसै तेतीस योजन अर एकका तिसरा भागप्रमाण यामैं द्वीपका चारक्षेत्र एकसो असी योजन मिलाए तेंतीस हजार पांचसे तेरह योजन अर एकका तिसरा भागप्रमाण दक्षिणदिशा विषै आताप फैलैहै। ऐसैंही अन्य वीथीनिविषै जानना। बहुरि नीचैं अठारहसै योजन चित्रापृथ्वीपर्यंत फैलैहै। बहुरि ऊपरि सौ योजनपर्यंत आताप फैलैहै। बहुरि चंद्रमाका आयु एक पल्य अर एक लक्ष वर्षका है। सूर्यका आयु हजार वर्ष अधिक पल्यका अर शुक्रका आयु सौ वर्षसाहित पल्यका अर बृहस्पतिका आयु एक पल्यका बुध मंगल शनैश्चरका आध पल्यका अर तारानिका आयु अर नक्षत्रनिका उत्कृष्ट आयु पावपल्यका अर जघन्य आयु पल्यका अष्टम भागप्रमाण है। बहुरि चंद्रमा अर सूर्य इनिकै चारचार पट्टराणी हैं। अर एकएक पट्टदेवीकै च्यारच्यार हजार परिवारकी देवी हैं। अर एकएककैं एतीही विक्रिया है। अर ज्योतिषीनिकी देवांगनाकी आयु अपनेअपने स्वामी देवकी आयुतैं अर्द्धप्रमाण है॥ गतिमान् ज्योतिषीनिकरिही कालका विभाग है ऐसैं दिखावनेकूं सूत्र कहैहैं—

तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

अर्थ—तिन ज्योतिषी देवनिके गमनकरि किया कालका विभाग है। लव, पल, घडी, मुहूर्त्त, दिनरात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन संवत्सरादिक कालका विभाग ज्योतिषीदेवनिकरि किया प्रकट होयहै। काल है सो दोय प्रकार है निश्चयकाल, व्यवहारकाल। सो निश्चयकाल तो पंचम अध्यायमैं वर्णन करसीही। निश्चयकालका जनावनेवारा व्यवहारकाल है॥ अब मनुष्यक्षेत्र जो अढाईद्वीप तातैं बाहिर ज्योतिषी देवनिका स्थिरपणाका नियम कहैहैं—

अर्थ—मनुष्यलोकके बाहिर असंख्यात द्वीपसमुद्रनि ऊपरि ज्योतिषी देवनिका विमान अवस्थितही हैं गमनरहित हैं। इहां कोऊ कहै इनका अवस्थान अढाई द्वीपबारै कैसैं है। ताहि कहैहैं—मानुषोत्तरपर्वततैं पचास हजार योजनपरैं जाय ज्योतिषीनिके विमाननिका प्रथम वलय है। तहां एकसो चवालीस चंद्रमा हैं। आगैं एक लक्ष योजन क्षेत्रपरैं जाय एकएक वलय है। अर वलयवलयप्रति च्यारच्यार चंद्रमा अधिक हैं। ऐसैं बाह्य पुष्करार्द्ध द्वीपविषैं आठ वलय कहिए परिधि हैं। तहां चंद्रमा सूर्य परिवार अवस्थित हैं। बहुरि पुष्करवर समुद्रविषैं वेदीतैं पचास हजार योजनपरैं जाय प्रथम वलय है। सो प्रथमवलयविषैं दोयसै अठासी चंद्रमा हैं। आगैं एक लाख योजनपरैं जाय दूसरा वलय है तहां दोयसै बाणवैं चंद्रमा हैं। ऐसैं एकएक लाख योजनपरैं जाय एकएक वलय है। एकएक वलयप्रति च्यार चंद्रमा अधिक हैं। ऐसैं पुष्करवरसमुद्रविषैं बत्तीस वलय हैं। बहुरि तातैं दूना वारुणीवर द्वीपविषैं चौसठिवलय हैं तहां वेदीतैं पचास हजार योजनपरैं जाय पहला वलय है सो पहला वलयविषैं पांचसै छिहत्तरि चंद्रमा हैं। आगैं एकएक लाख योजन क्षेत्रपरैं जाय एकएक वलय है अर वलयप्रति च्यार च्यार चंद्रमा अधिक हैं। समस्त वलयविषैं चंद्रमा सूर्य अपने परिवारसहित तिष्ठे हैं अवस्थित हैं। इहां ऐसा जो पुष्करवरसमुद्रमें बत्तीस वलय हैं। तातैं वारुणीवर द्वीपविषैं दूणा वलय हैं चौसठि हैं पुष्करवर समुद्रके पहले वलयविषैं दोयसै अठ्यासी चंद्रमा तातैं दूणा वारुणीवर द्वीपके पहले वलयविषैं पांचसै छिहत्तरी चंद्रमा हैं। ऐसैंही वारुणीवर समुद्र तथा क्षीरवर द्वीपादिक विषैं दूनादूना वलय अर बाकी अनुक्रमकरि चंद्रमा सूर्यकी संख्याकी वर्णनाका परिमाणादिक लोकका अंतमें स्वयंभू- १८७

रमणसमुद्रपर्यंत ज्योतिर्लोक स्थिर तिष्ठैहै ऐसैं ज्योतिषीनिका वर्णनपर्यंत तीन निकायका वर्णन किया ॥ अब चतुर्थनिकायकी सामान्यसंज्ञा कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

वैमानिकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—जिनमैं तिष्ठते जीवनिकूं पुण्यवंत विशेषपणाकरि मानैं सत्कार करैं ते विमान हैं। विमाननिमैं उत्पन्न भए ते देव वैमानिक हैं। ते विमान चौरासी लाख सत्याणवै हजार तेईस हैं। अर एक-एक विमान बहुत योजनके विस्तार हैं। तहां विमानतीन प्रकार हैं। १ इंद्रक, २ श्रेणीबद्ध, ३ प्रकीर्णक। तिनमैं श्रेणीबद्ध विमान तो एकएक असंख्यात योजनकाही है। अर इंद्रक संख्यात योजननिकेही हैं। अर प्रकीर्णक केई असंख्यात योजनके केई संख्यात योजनके विस्तारकूं धरै हैं। तिनमैं उत्तम मंदिर कल्पवृक्ष वन बाग बावडी नगरादिक अनेक रचना पाइएहै। तिनमैं मध्यस्थानमैं तिष्ठता इंद्रकविमान है। अर पूर्वादि च्यारो दिशानिविषै पंक्तिरूप तिष्ठै हैं ते श्रेणीबद्ध हैं। बहुरि च्यारो दिशानिकै बीचि अंतरालरूप विदिशानिविषै जहां तहां विखरे पुष्पकी ज्यों तिष्ठैं ते प्रकीर्णक विमान हैं ॥ अब वैमानिकनिमैं भेद दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

अर्थ—वैमानिकदेवनिमैं कल्पोपपन्न अर कल्पातीत ऐसैं दोय प्रकार हैं। जहां इंद्र सामानिकादि दशप्रकार कल्पना संभवै है। ते षोडशस्वर्ग कल्प कहावै हैं। अर जिनमैं इंद्रादिक कल्पना नहीं समस्तदेव समान हैं ते ग्रैवेयकादि कल्पातीत हैं वहांके देव अहमिंद्र हैं ॥ अब इनका अवस्थान विशेष जनावनेके अर्थि सूत्र कहै हैं—

बीचि प्रकीर्णक हैं। बहुरि असंख्यात योजनानिका अंतराल छांडि तीजा पटल है तिसके बीचि विमल नामा इंद्रकविमान है। अर च्यार दिशामैं साठिसाठि श्रेणीबद्ध विमान हैं। अर दिशानिके अंतरालेनिमें प्रकीर्णक विमान हैं। ऐसैं असंख्यात असंख्यात योजनका अंतराल छांडि ड्योढ राजूकी ऊंचाईमें इकतीस पटल हैं। अर पटलपटल प्रति एकएक दिशाप्रति एकएक श्रेणीबद्ध घटता गया है। सो तहां इकतीसमा पटलमें दिशानिके श्रेणीबद्ध बत्तीस बत्तीस रहे हैं। अर इंद्रकविमानका विस्तारहू पटलपटलप्रति सत्तरि हजार नवसै सडसठि योजन अर तेईस योजनका इकतीसमा भागप्रमाण ऊपरि घटता घटता है।

भावार्थ—सौधर्मका प्रथम इंद्रक पैंतालीस लक्ष योजनका है। अर त्रेसठिमा पटल अनुत्तरविमान सर्वार्थसिद्धिनामा इंद्रक एक लक्ष योजनप्रमाण विस्तारनैं लीया है। तातैं चवालीस लक्ष योजन बासठि स्थानानिमें क्रमतें घटा है। तातैं पटलप्रति सत्तरि हजार नवसै सडसठि योजन अर तेईस योजनका इकत्तीसवां भाग प्रमाण इंद्रक प्रति हानिचय है। ऐसैं ड्योढ राजूका ऊंचाईमें इकतीस पटलरूप सौधर्म ऐशान कल्प हैं। तहां पटलपटलप्रति तीन दिशाके श्रेणीबद्ध अर इंद्रक अर पूर्व दक्षिण दिशाके श्रेणीबद्धनिके बीचि अर दक्षिण पश्चिम इन दोय तरफके श्रेणीबद्धनिकै बीचि जे प्रकीर्णक हैं इनमें तो सौधर्म इंद्रकी आज्ञा प्रवर्तै है। अर उत्तरदिशाका श्रेणीबद्ध अर पश्चिम उत्तर बीचि अर उत्तर पूर्वके बीचि जे प्रकीर्णक तिनमें ईशान इंद्रकी आज्ञा प्रवर्तै है। ऐसैं इकतीस पटलके पूर्व दक्षिण पश्चिमका श्रेणीबद्ध अर इंद्रक अर दोय दिशाके प्रकीर्णकनिमें सौधर्मकी आज्ञा है। अर उत्तरके श्रेणीबद्ध अर प्रकीर्णकनिमें ईशान इंद्रकी आज्ञा है। सौधर्म इंद्रके बत्तीस लाख विमान हैं। तिनमें

इकतीस इंद्रक हैं। अर तेतालीससैं इकहत्तरि श्रेणीबद्ध हैं। अर इकतीस लाख पिचाणवे हजार पांच सैं अठाणवै प्रकीर्णक हैं। अर ऐशान स्वर्गके इंद्रकैं चोदहसै सत्तावन श्रेणीबद्ध अर सत्ताईस लाख अठाणवै हजार पांचसै तेतालीस प्रकीर्णक हैं। ऐसैं समस्त अठाईस लाख विमाननिमैं ईशानेंद्रकी आज्ञा प्रवर्तै है। अब इंद्र कहां वसे हैं सो कहै हैं—तिस सौधर्म स्वर्गका इकतीसमा पटलके मध्य प्रभा नामा इंद्रक विमान है तिसकी दक्षिणदिशासंबंधी बत्तीस श्रेणीबद्ध विमाननिकी पंक्ति तिस विषै अठारमां श्रेणीबद्ध विमान है। तिसके स्वस्तिक वर्द्धमान विश्रुत नाम धारक तीन कोट हैं। तिनमैं बाह्य कोटमैं वसनेवाली सेना है। अर सभानिवासी देव हैं। अर मध्यम प्राकारमैं निवास करनेवाले त्रायस्त्रिंशत् देव हैं। अभ्यंतर प्राकारमैं निवास करनेवाला देवनिका राजा सौधर्मेंद्र है। तिसके विमानके च्यारि दिशानिमैं च्यार नगर हैं। तिनका कांचन अशोक मंदिमस्तार गल्व ए नाम हैं। अर तेतीस त्रायस्त्रिंशदेव हैं। चोरासी हजार आत्मरक्षक देव हैं। तीन सभा हैं। सप्त सेना हैं। चोरासी हजार सामानिक देव हैं च्यार लोकपाल हैं। अष्ट पट्टदेवी हैं। चालीस हजार वल्लभिका देवी हैं। पट्टदेवी अर वल्लभिका देवी प्रत्येक पांचपल्यका आयुके धारे हैं। अर एकएक देवी सोलह हजार परिवारकी देवीनिकरि वेष्टित हैं। अर येकयेक पट्ट-देवी अर येकयेक वल्लभिका सोलह हजार देवीनिके रूप विक्रिया करनेकूं समर्थ है। तिनके सौधर्मेंद्रकी अभ्यंतर समिता नामा सभा बारह हजार देवनिकी है। तिनका पंच पल्यका आयु है। अर चंद्रा नामा मध्यमकी सभा चोदह हजार देवनिकी है। तिनका च्यार पल्यका आयु है। अर जातुनामा बाह्यसभा तिनमैं सोलह हजार देव हैं। तिनका तीन पल्यका आयु है। अभ्यंतर सभाके देवनिकै एकएककै सातसै देवी हैं। तिनका अढाई पल्यका आयु है। अर मध्यकी सभाका एकएक देवकै छहसै देवी हैं तिनका दोय

पल्यका आयु है। वाह्य सभाके एकएक देवके पांचसै देवी हैं। तिनका ड्योढ पल्यका आयु है। अर तितनीही देवीनिका रूप विक्रिया करनेकूं समर्थ हैं। बहुरि आठ महापट्टदेवीनिकै अभ्यंतरसभामैं सातसै देवी मध्यममैं छहसै, अर वाह्यसभामैं पांचसै देवी हैं। ए तीन सभाकी समस्त देवी अढाई पल्यकी आयुकूं धरैंहैं। बहुरि पयादा अश्व गज वृषभ रथ नृत्यकी गंधर्व नाम धारक सप्त सेना हैं। तिन सेनाके देवनिका एक पल्यका आयु है। अर इन सेनामैं एकएक महत्तरी है। तिनकाहू आयु एक पल्यका है। तिनमैं वायु नामा पयादनिकी सेनानिकी महत्तरी है। सप्त कक्षानिकरि सहित पयादनिकी सेना है। तहां पहली कक्षामैं चोरासी लाख पयादा हैं। दूसरीमैं यातैं दूणा तीसरीमैं यातैं दूणा ऐसैं सप्त कक्षा दूणीदूणी जाननी। ऐसैंही सप्त सेनाका प्रमाण सप्तकक्षासहित जानना। हरिनाम घोडाकी सेनाका महत्तर है। ऐरावत नाम हस्तीनिकी सेनाको महत्तर है। दामयष्टि वृषभाकी सेनाको महत्तर है। माथली नाम रथानिका महत्तर है। नीलांजना गणिकानिकी सेनाकी महत्तरिका है। अरिष्टयशस्क नाम गंधर्वसेनाको महत्तर है। सो या संख्या विक्रियाकरि होय है। इंद्रकी लार विक्रियातैं इतना रूपकरि सेवा करै हैं। अर स्वाभाविक तो इनि एकएक सेनाके छहसै २ देव हैं इन सैनाके देवनिकै छहसै छहसै देवी हैं। अर एकएक देवी छह देवीनिकी रूपकी विक्रिया करनेकूं समर्थ है। अर आधपल्यका आयु हैं। अर तिन एकएककै दोयसै देवी हैं। अर एकएक देवी विक्रियाकरि अपना छह रूप करनेकूं समर्थ है। अर्द्ध पल्यकी जिनकी आयु है। बहुरि इंद्रकै बालक नाम अभियोग्य देव है। ताको एक पल्यकी आयु है। अर जम्बूद्वीप प्रमाण वाहन विमान रूप विक्रिया करनेकूं समर्थ है। तिसकै छहसै देवी है। एकएक देवी है। एकएक देवी छसै रूपविक्रिया करनेकूं समर्थ है। अर्द्धपल्यकी जिनकी आयु है। बहुरि पूर्वदिशामैं

स्वयंप्रभविमानविषै सोमनामा लोकपाल है। ताका अढाई पल्यका आयु है। अर ताकै च्यार हजार सामानिक देव हैं। तिनका अढाई पल्यका आयु है। अर ताकै च्यार हजार देवी हैं। तिनका अढाईपल्यका आयु है। अर च्यारोंही लोकपालनिकै च्यार च्यार महापट्टदेवी हैं। तिनका अढाईपल्यका आयु है। अर सोमकै अभ्यंतर ईशा नामा पचास देवनिकी सभा है। तिनका सवापल्यका आयु है। अर दृढा नाम मध्यकी सभा च्यारिसै देवनिकी है। तिनका सवापल्यका आयु है। चतुरंत नाम बाह्य सभा पांचसै देवनिकी है तिनका सवापल्यका आयु है। बहुरि दक्षिणदिशाविषै वरज्येष्ठ विमानमें यमनाम लोकपाल है। ताकै सामानिकादि समस्त विभव सोमतुल्य है। बहुरि पश्चिम दिशाविषै अंजनविमानविषै वरुण नाम लोकपाल है। ताका पोणा तीन पल्यका आयु है। इसकै ईशा नाम अभ्यंतर सभामें साठि देव हैं। तिनका ड्योढ पल्यका आयु है। अर दृढा नाम मध्यकी सभा पांचसै देवनिकी है। तिनका देशोन ड्योढ पल्यका आयु है। अर चतुरंत बाह्य सभा छहसै देवनिकी है तिनका कुछ अधिक ड्योढ पल्यका आयु है इन तीनूंही सभाके देवनिकै देवीनिकी आयु अपने भर्त्तारतें अर्द्धप्रमाण है। और इनकी विभूति सोमतुल्य है। बहुरि उत्तर दिशाविषै वल्गु विमानमें वैश्रवण लोकपाल है। तीन पल्यका जाका आयु है। इसकी अभ्यंतर सभाकै सत्तरि देव हैं। मध्यसभा छसै देवनिकी अर बाह्य सभा सातसै देवनिकी तिनकी सवापल्यकी आयु है। इनिकी देवीनिकी अर्द्धप्रमाण आयु है। और विभव सोमलोकपालतुल्य है। अर इन च्यारि लोकपालनिकै एकएककै साढातीन कोटि अप्सरा हैं। सौधर्म इंद्रका नृत्य गान वादित्रका बडा समाज है। ऐसैं राजवार्तिकजीमैं लिख्या है। बहुरि सौधर्मादिकनिकै एकएक विमानमें एकएक जिनमंदिर कोटीनिविभूतिकरि संयुक्त है। बहुरि इंद्रका नगरकै बाह्य अशोकवन सप्तच्छदवन चंपकवन

आम्रवन हैं। एक हजार योजन लंबा पांचसै योजन चौडा तिन बननिमैं एक चैत्यवृक्ष है। तिनकी च्यारोंदिशानिमैं पल्यंकासन जिनेंद्रकी प्रतिमा है तिनको मैं बंदना करूंहूं। बहुरि अमरावती पुरके मध्य इंद्रका आवासगृहकी ईशानादिशामैं सुधर्मा नाम इंद्रका आस्थानमंडप है। सो आस्थानमंडप सौ योजन लंबा पचास योजन चौडा पचेतरी योजन ऊंचा है तिस सुधर्मा नाम आस्थान मंडप का जो सभागृह ताकै पूर्व उत्तर दक्षिण दिशाविषै द्वार हैं तिन द्वारनिका अष्ट योजन विस्तार है। अर षोडश योजन ऊंचे हैं। तिस सभाके वीच इंद्रके बैठनेका सिंहासन है। तिसही सिंहासनके अग्रभागविषै अष्ट महादेवी-निका आसन है। तिन देवीनिका आसनतैं बाह्य पूर्वादिदिशाविषै सोम यम वरुण कुबेर इनके आसन हैं॥ वहुरि इंद्रका सिंहासनतैं अग्नि दाक्षिण नैऋत्य दिशाविषै त्रायस्त्रिंशत् देवनिके तेतीस आसन हैं। बहुरि पश्चिमदिशाविषै सेनापतिनिके सात आसन हैं। बहुरि चौरासी हजार सामानिक देवनिमैं बीया-लीस हजारके आसन तो वायुदिशामैं हैं। अर बीयालीस हजारके आसन ईशान दिशाविषै हैं। इनतैं वाह्य आत्मरक्षक देवनिका चारो दिशानिमैं चौरासी हजार चौरासी हजार भद्रासन हैं॥

तिस आस्थानमंडपके अग्रभागमें मानस्तंभ है। सो एक योजन चौडा छत्तीस योजन ऊंचा पीठकरि सहित गोल बारह धारानिकरि संयुक्त जानना। मानस्तंभ एक योजन चौडा तब याकी बारह कोशकी परिधि भई तामैं एकएक कोशकी धारा जानना। तिस मानस्तंभविषै एक कोश लंबे पाव कोश चौडे रत्ननिकी सांकलके लटकते रत्नमय करंड कहिए पिटारे हैं। तिन पिटारेनिविषै तीर्थंकर देवनिके पहरनेके योग्य आभरण भरे हैं। इंद्र तिनमैंसों काढि तीर्थंकर देवके तांई आभरण पहुंचावे है। मानस्तंभ छत्तीस योजन ऊंचे है। तिनमें नीचे पोणा छह योजन मानस्तंभमें पिटारे नहीं पाईए। अर ऊपरि सवाछह योजनमें पिटारे

नहीं है। थंभनिमैं षोडश योजनकी ऊंचाईविषै छींकाकीन्यों लटकते एक कोश लंबे पाव कोश चौडे रत्न-मय पिटारे पाइए हैं। बहुरि सौधर्मके मानस्तंभके रत्नमय करंडकनिविषै भरतक्षेत्रसंबंधी तीर्थंकरनिके आभरण हैं अर ईशान स्वर्गके मानस्तंभनिविषै ऐरावतक्षेत्रसंबंधी तीर्थंकरनिके आभरण हैं। सानत्कुमारके मानस्तंभनिविषै पूर्वविदेहसंबंधी तीर्थंकरनिके अर माहेंद्रमैं पश्चिमविदेहसंबंधी तीर्थंकरनिके आभरण हैं। तातैंही ये मानस्तंभ देवनिकरि पूजनीक हैं। इस मानस्तंभके निकटही आठ योजन चौडा आठ योजन लंबा ऊंचा उपपादगृह है। तिस उपपादगृहमैं दोय रत्नमय शय्या पाईए है। इहां इंद्रका जन्मस्थान है। अर इस उपपाद गृहके निकटही बहुत शिखरनिकरि संयुक्त जिनमंदिर है। बहुरि और विशेष त्रिलोकसारादि ग्रंथतैं जानना। बहुरि इकतीसमा पटलमैं जो प्रभाविमानतैं उत्तरश्रेणीविषै बत्तीस विमान रूप उत्तरश्रेणीका अठारहमा विमान तामैं ऐशान नाम इंद्र वसै है। तिसकै परिवार वर्णन सौधर्मवत् जानना। ईशान इंद्रके अठाईस लाख विमान हैं। तेतीस त्रायस्त्रिंशद्देव हैं। बहुरि असी हजार सामानिक देव हैं। तीन सभा हैं। सप्त अनीक कहिए सेना है। असी हजार आत्मरक्षक हैं। च्यार लोकपाल हैं। बहुरि श्रीमती सुसीमा वसुमित्रा वसुधर्मा जया जयसेना अमला प्रभा ए अष्टमहादेवी हैं। तिनकी सप्त-पल्योपम आयु है। बहुरि बत्तीस हजार वल्लभिका हैं। तिनका सप्तपल्यका आयु है। अभ्यंतर समिता नाम सभा दश हजार देवनिकी है। तिनका सप्तपल्यका आयु है। चंद्रमा नाम मध्यमसभा बारह हजार देवनिकी है। तिनका छह पल्यका आयु है। जातु नाम बाह्यसभा तामैं चौदह हजार देव हैं तिनका पंच पल्यका आयु है। लघु पराक्रम नाम पयादनिकी सेनाको महत्तर है। अमितगति नाम अश्वनिकी सेना को महत्तर है। वृषकांत नामा वृषभानीक महत्तर है। पुष्पदंत नामा गजनिकी सेनाका महत्तर है।

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपंचदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

अर्थ–तीन सात नव ग्यारह तेरह पंद्रह इनकरि सात सागरमैं मिलाय अनुक्रमतैं छह युगलनिविषै आयु जानना। सोही कहिए है–ब्रह्मब्रह्मोत्तरमैं दश सागर कुछ अधिकप्रमाण उत्कृष्ट आयु है। लांतव-कापिष्ठविषै चोदह सागर प्रमाण कुछ अधिक है। शुक्रमहाशुक्रस्वर्गमें सोलह सागर कुछ अधिक है। शतार सहस्रार स्वर्गविषै अठारह सागर कुछ अधिक है। आनतप्राणत स्वर्गविषै बीससागर प्रमाण आयु है। आरण अच्युत दोय स्वर्गके देवनिका आयु बावीस सागर प्रमाण है। इहां सूत्रमैं "तु" शब्द है सो सहस्रारपर्यंत कुछ अधिक सहित जानना आगैं अधिक प्रमाण नहीं है॥ आगै कल्पातीतकी स्थिति कहनेकूं सूत्र कहे हैं—

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥

अर्थ–आरण अच्युत स्वर्गके ऊपरि प्रथम ग्रैवेयकविषै तेईससागर प्रमाण आयु है। बहुरि ऊपरिऊपरि ग्रैवेयकविषै एकएक सागरप्रमाण आयु वधै है। सो नव ग्रैवेयकमैं इकतीस सागर प्रमाण आयु है। अर अनुदिशविमाननिमैं बत्तीस सागर आयु है। अर विजयादिक विमाननिमैं तेतीस सागर आयु है। इहां सर्वार्थसिद्धिमें उत्कृष्टही आयु है जघन्य आयु नहीं है॥ देवनिका उत्कृष्ट आयु तो कह्या अब जघन्य आयु कहनेकूं सूत्र कहे हैं—

अपरा पल्योपममधिकं ॥ ३३ ॥

अर्थ–सौधर्म ऐशानके देवनिका जघन्य आयु एक पल्यतैं कछु अधिक है॥ अब याकै ऊपरि जघन्य स्थिति कहनेकूं सूत्र कहे हैं—

परतः परतः पूर्वा पूर्वानंतरा ॥ ३४ ॥

अर्थ—पूर्वले पूर्वले स्थानमें जो उत्कृष्ट आयु है सो ऊपरके ऊपरके स्थानविषै जघन्य आयु है । सौधर्म ऐशानविषै जो दोय सागरतें अधिक आयु है। सो सानत्कुमार माहेंद्रमें जघन्य आयु है। अर सात सागर अधिक उत्कृष्ट आयु है सोही ब्रह्मब्रह्मोत्तरमें जघन्य है। ऐसें ऊपरि समस्त स्थाननिमें जानना। इहां प्रसंगपाय एता विशेष और जानना । जो जहां जेता सागरका आयु होय है तितना हजार बरस व्यतीत भए आहार मानसिक ग्रहणकी इच्छा उपजे है । अर जेता सागरकी आयु होय तितना पक्ष गया उच्छ्वास होय है। जैसें सौधर्म ऐशानमें दोय सागरका आयु है । अर दोय हजार बरस गए मानसिक आहार होय है। अर दोयपक्ष व्यतीत भए श्वासोच्छ्वास होय है॥ आगें नारकीनिकी उत्कृष्ट स्थिति तो कही थी अब इहां नारकीनिका प्रकरण नहीं है तोहू थोरे अक्षरनिकरि कह्या जाय यातें जघन्यस्थिति कहै हैं—

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥

अर्थ—नारकीनिकैहू द्वितीयादिक पृथ्वीमें ऐसैंही "च" शब्दकरि स्थिति जाननी। जो रत्नप्रभामें नारकीनिकी उत्कृष्टस्थिति एक सागरकी है। सो शर्कराप्रभामें एक सागर जघन्यस्थिति है। बहुरि शर्कराप्रभामें जो तीन सागरकी उत्कृष्टस्थिति है। सो वालुकाप्रभामें तीन सागर जघन्यस्थिति जाननी। ऐसें सप्तमपृथ्वीपर्यंत जाननी ॥ अब प्रथमपृथ्वीके नारकीनिकी जघन्य स्थिति कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां ॥ ३६ ।

अर्थ—प्रथमपृथ्वी जो रत्नप्रभा तिसविषै नारकिनिका जघन्य आयु दश हजार वर्षका है॥ अब भवनवासीनिकी जघन्यस्थिति कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

भवनेषु च ॥ ३७ ॥

अर्थ—भवनवासीनिविषेहू जघन्यस्थिति दश हजार वर्षकी है॥ अब व्यंतरनिहूका जघन्यु आय कहैहैं—

व्यंतराणां च ॥ ३८ ॥

अर्थ—व्यंतरदेवनिकाहू जघन्य आयु दश हजार वर्षका है॥अब व्यंतरानिका उत्कृष्ट आयु कहा है?सोकहै हैं-

परा पल्योपममधिकं ॥ ३९ ॥

अर्थ—व्यंतरनिका उत्कृष्ट आयु एकपल्य कछु अधिक है॥ अब ज्योतिष्कनिका आयु कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥

अर्थ—ज्योतिपी देवनिका उत्कृष्ट आयु एक पल्य कछु अधिक है॥अब ज्योतिषीनिकी जघन्यस्थिति कहैहैं—

तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

अर्थ—ज्योतिपी देवनिका जघन्य आयु पल्यके अष्टम भागप्रमाण है। इहां इतना विशेष जानना। चंद्रमाका आयु एक पल्य एक लाख वर्षका है। सूर्यका आयु एक हजार वर्षकरि अधिक एक पल्यका है। शुक्रका आयु सौवर्ष अधिक एक पल्यका है। वृहसपतिका आयु एक पल्यप्रमाण है। शेष जे बुधादिक ग्रह तिनका उत्कृष्ट आयु अर्द्धपल्यका है। नक्षत्रनिका उत्कृष्ट आयु अर्द्धपल्यका है। तारकानिका आयुका प्रमाण पल्यका चतुर्थभाग है। अर नक्षत्रनिका अर तारकानिका जघन्य आयु पल्यके अष्टम भाग प्रमाण है। और सूर्यादिकानिका जघन्य आयु पल्यके चौथे भाग प्रमाण है॥ अव लौकांतिक देवनिकी आयु कहैहैं—

लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषां ॥ ४२ ॥

अर्थ—बहुरि समस्त लौकांतिक देवनिका आयु अष्टसागरप्रमाण है। ते समस्त शुक्ल लेश्याके

धारक हैं एक हस्त प्रमाण ऊंचा शरीर है। ऐसें इहां च्यार निकायनिके देवनिका वर्णन किया। सो ए-
देव अति उत्तम हैं इन सबनिका उत्तम मनुष्यनिकासा आकार है। एक मस्तक दोय नेत्र दोय कर्ण
एक नासिका एक मुख दोय हस्त एक हृदय दोय पग समस्त अति सुंदर आकार अंग उपांग अति म-
नोहर उत्तम संस्थानके धारक मल मूत्र हाड मांस चाम रुधिरादिक सप्त धातु सप्त उपधातु रहित महा
सुगंध वैक्रियिकशरीर अणिमा महिमादि अनेक शक्तिनिकरि युक्त रोगरहित पसेवरहित मलरहित
जिनका शरीर है। अर केश वधनेका संस्काररहित वाफणी भंवारा मस्तकके केशादिक चाहिए तहां
स्वयमेव स्वाय पुद्गल परिणमे हुए केशनिके आकारकूं धारण करैहैं केशनिका वधना घटना नहींहै।
तहां जरा (बुढापा) नहीं आवै है। जिसदिन उपज्या तिसदिनतें मरणपर्यंत एक दशा रहै है। बलवीर्य
रूपसंपदा वधै घटै नहीं है आहारकी इच्छा मनमेंही उपजैहै। जब कंठविषै अमृत स्रवैहै तातैं तत्काल तृप्त
होय हैं। कवलाहार नहींहै। मानसिक आहारकी च्यारि निकायके देवनिकै है। ऐसें च्यारि अध्यायमें
जीवतत्त्वका वर्णन किया। सो जीव एकरूपहू है अर अनेकरूपहू है सो इसका कथन राजवार्त्तिक
श्लोकवार्त्तिकतैं जानना इहां जो सामान्य लिखिए तो संशय दूरि होय नहीं। अर विशेष लिखिए तो
ग्रंथ बहुत वधिजाय अर मंदज्ञानी जे हैं ते नही समझैं तिनको बडा कठिन होजाय। तातैं वाचनेमें
मंदता रहि जाय यातैं जहां जैसा प्रयोजन आवैगा तहां तैसा लिख्या जायगा।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः।

ऐसें तत्त्वार्थका है अधिगम जातैं ऐसा दशाध्यायरूप जो मोक्षशास्त्र तामैं चौथा अध्याय समाप्त भया॥

दोहा— है जामैं तत्त्वार्थका अधिगम शिवसुखदाय। मोक्षशास्त्र मंगलमयी नमूं चतुर्थ अध्याय॥ ४॥

## अथ पंचमोऽध्यायः ।

दोहा ।

रहै अजीव प्रपंचतैं, सदा स्वछंद अफंद ।
गहि अप्पा पर नहिं चहैं, नमो आप्त निर्द्वंद्व ॥

अब सम्यग्दर्शनका विषयपणाकरि कहे जे जीवादिक पदार्थ तिनमैं अब अजीव पदार्थके विचारका अवसर आया तिसकी भेदसंज्ञा कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

**अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥**

अर्थ—धर्म अधर्म आकाश पुद्गल ए च्यार द्रव्य अजीव ऐसे काय हैं। इनि च्यारि द्रव्यनिकै अजीव-पणा अर कायपणा दोऊरूप पावैहैं। जातैं द्रव्य छह हैं। तिनमैं आत्माकै तो कायपणा तो है परंतु अजीवपणा नाहीं। अर कालनामा द्रव्य है ताकै अजीवपणा है अर कायपणा नहीं। अर धर्म अधर्म आकाश पुद्गलकै अजीवपणा अर कायपणा दोऊ हैं। जिस द्रव्यमैं चेतनपणा नहीं तिसकै अजीवपणा कहिए है। अर धर्म अधर्म आकाश पुद्गल इनकै चेतनपणा नहीं तातैं अजीव हैं। अर प्रदेशनिका बहुतपणातैं इन च्यारि द्रव्यनिकै कायपणा है। परंतु जीवपणा नहीं। अर जीवद्रव्यभी बहुप्रदेशी है यातैं जीवकैभी कायपणा है परंतु अजीवपणा नहीं। तातैं अजीव ऐसे काय तो च्यारिही द्रव्य हैं। यहां जो अवयवसहितपणा सोही कायपणा है। अर कालद्रव्यके एकएक प्रदेशरूप भिन्न भिन्न हैं तातैं काय-पणा नहीं है। बहुरि गमनरूप परिणमते जीव पुद्गल तिनकों एकई काल गमनकूं सहकारीकारण धर्मद्रव्य

है। बहुरि थिति रहते जीव पुद्गल तिनकौं स्थित रहनेकूं कारण अधर्मद्रव्य सहकारी कारण है। बहुरि समस्त द्रव्यनिकूं अवकाश देनेकूं कारण आकाश द्रव्य है। बहुरि तीनकालविषै अनेक परमाणुनिका मिलन बिछुरन शक्तियुक्त पुद्गल द्रव्य है॥ अब इनिका विशेष कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

द्रव्याणि ॥ २ ॥

अर्थ—धर्मादिक कहे ते द्रव्य हैं। त्रिकालविषैं अपने गुणपर्यायनिकौं द्रवै प्राप्त होय तातैं द्रव्य कहिए। जातैं द्रव्यका लक्षण तीन प्रकारकरि परमागमविषै कह्या है। एक तो द्रव्यका लक्षण सत् है जातै सत्ता कै अर द्रव्यकै भिन्नपणा नहीं है तातैं सत्स्वरूपही द्रव्यका लक्षण है। अर एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य द्रव्य का लक्षण है। द्रव्य है सो उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप है। जो एक जातिमें विरोधरहित क्रमतें होती जो भावनिकी परिपाटी तिस विषै पूर्वस्वभावका जो विनाश सो समुच्छेद है। अर उत्तरस्वभावका प्रगट होना सो उत्पाद है। अर पूर्वभावका उच्छेद होतें अर उत्तरभावका उत्पाद होतेंहू जो अपनी जातिका नहीं छोडना सो ध्रौव्य है। सो समस्त द्रव्यनिमें उत्पाद विनाश ध्रुवपणा पाइए है। कोऊ द्रव्यहू काहू समयमैंहू उत्पाद व्यय विना नहीं है समयसमय परिणमे है। पूर्वपरिणतिका अभाव होना सोही उत्तर परिणतिका उत्पाद है। जातें पूर्वकी परिणतिका नाश विना उत्तर परिणति होय नहीं अर उत्तर परिणतिका उत्पादविना पूर्वपरिणतिका विनाश होय नहीं। अर पूर्व उत्तर दोऊ परिणति होतेंहू द्रव्यका नाश भया नहीं अर नवीन उपज्या नहीं तातें द्रव्य ध्रौव्य है शाश्वत है। तातें द्रव्यका उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण है। अर गुणपर्यायवान्‌पणाहू द्रव्यका लक्षण है। द्रव्यकूं गुण कदाचित् कोऊ पर्यायमेंहू नहीं छोडै द्रव्यका स्वभाव रूप गुण है अर क्रमतें होय ते पर्याय हैं। गुण अर पर्याय दोऊ द्रव्यकौं

नहीं छांडैहैं। द्रव्य है सो गुणपर्यायरूप है ॥ अब जीवकैंहू द्रव्यपणा है सो कहे हैं—

जीवाश्च ॥ ३ ॥

अर्थ–जीव हैं तेभी द्रव्य हैं। जीवभी गुणपर्यायवान् हैं तातैं जीव हैं तेहू द्रव्य हैं। बहुरि पूर्वे कहे जे धर्म अधर्म आकाश पुद्गल अर आगैं कहैंगे जे काल ए पांचों अजीवद्रव्य हैं। अर इहां कह्या जीवद्रव्य अर कालद्रव्यतिनकरि सहित ए छह द्रव्य जानने ॥ अब इन द्रव्यनिके विशेष कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

अर्थ—ए कहे जे धर्मादिक द्रव्य ते नित्य हैं अर अवस्थित हैं अर अरूपी हैं। ए धर्मादिक द्रव्य हैं तिनका गतिहेत्वादिक तो विशेषलक्षण है। अर अस्तित्वादि सामान्यलक्षण है। ते द्रव्यार्थिकनयकरि किसही कालमैं विनाशकूं प्राप्त नहीं होयगें तातैं नित्य हैं। जिस स्वभावकरि द्रव्य तिष्ठै हैं तिस स्वभावका नाश नहीं है तातैं नित्य हैं। ए धर्मादिक द्रव्य हैं ते अपनी छह की संख्याकूं नाहीं छांडे हैं पांच नहीं होंय सात नहीं होंय तातैं अवस्थित हैं। अथवा धर्म अधर्म लोकाकाश अर एक जीव इनके तुल्य असंख्यात प्रदेश हैं। अर अलोकाकाशकै अर पुद्गलकै अनंतप्रदेशीपणा है। अर कालकै एकप्रदेशीपणा है सो अपने प्रदेशनिकी संख्याकूं नहीं छांडे हैं तातैंहू अवस्थित हैं। द्रव्यविषै विशेषलक्षण है ताकूं द्रव्य छांडै नहीं। चेतन हैं ते अचेतन नहीं होय हैं। अचेतन हैं ते चेतन नहीं होय हैं। अमूर्तिक हैं ते मूर्त्तिक नहीं होयहैं। मूर्त्तिक हैं ते अमूर्त्तिक नहीं होय हैं। तातैं अवस्थित हैं। बहुरि अरूपी कहिए रूपादि रहित हैं अमूर्तिक हैं। इहां रूपके निषेधतैं ताके सहचारी जे रस गंध स्पर्श इनकाहू निषेध जानना। ऐसैं धर्मादिक द्रव्य अरूपी हैं ऐसैं कहनेतैं पुद्गलकैंभी अरूपीपनाका प्रसंग आवै है ताकैं निषेधके अर्थि

निषेध सूत्र कहै हैं—

रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्य हैं ते रूपी हैं। यद्यपि रूप शब्दके अनेक अर्थ हैं तोहू इहां परमागमकरि कह्या मूर्त्तिक द्रव्यकूं रूपी जानना। इहां रूपी कहनेकरि जे रूपतैं अविनाभावी जे स्पर्श रस गंध तिनकरि सहितहू ग्रहण करना। बहुरि इहां "पुद्गलाः" ऐसा बहुवचन है सो पुद्गलके अणुस्कंधादि भेदकरि बहुतप्रकारता जनावै है ॥ अब कोऊ पुद्गलकी ज्यों धर्मादिक द्रव्यनिकैंहू बहुतपणा जाणै तो ताके निषेधकूं सूत्र कहै हैं—

आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥

अर्थ—धर्म अधर्म आकाश ए एकएक द्रव्य हैं। इहां धर्म अधर्म आकाश इन तीन द्रव्यनिकों एकएक कहनेतैंही जीव पुद्गल काल इन तीन द्रव्यनिकै अनेकपना आया। सो आगमकै अनुकूल जीवद्रव्य अनंतानंत हैं। तिनतैं अनंतगुणे पुद्गलद्रव्य हैं। कालद्रव्य असंख्यात हैं। धर्म अधर्म आकाश द्रव्यकी अपेक्षा एकएकही है। क्षेत्र अपेक्षा भाव अपेक्षा असंख्यात हैं अनंत हैं ॥ अब कहे जे एकद्रव्य तिनका विशेषकै अर्थि सूत्र कहै हैं—

निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥

अर्थ—धर्म अधर्म आकाश ए तीन द्रव्य हलन चलन क्रियाकरि रहित हैं। बाह्य अभ्यंतर निमित्तके वशतैं जो एक क्षेत्रतैं त्यागि अन्य क्षेत्रमें गमन करै सो क्रिया है। सो अभ्यंतर तो द्रव्यमें क्रियारूप परिणमनशक्ति अर बाह्य अन्य पदार्थनिका घात प्रेरणा इन दोऊ कारणनितैं पदार्थका क्षेत्रांतरमें गमन तथा अंगुलीनिका संकंपना रूप क्रिया होय है सो धर्म अधर्म आकाश तथा आगै कहैंगे कालद्रव्य ए

नहीं छांडेहैं। द्रव्य है सो गुणपर्यायरूप है ॥ अब जीवकैंहू द्रव्यपणा है सो कहै हैं—

जीवाश्च ॥ ३ ॥

अर्थ—जीव हैं तेभी द्रव्य हैं। जीवभी गुणपर्यायवान् हैं तातैं जीव हैं तेहू द्रव्य हैं। बहुरि पूर्वैं कहे जे धर्म अधर्म आकाश पुद्गल अर आगैं कहैंगे जे काल ए पांचों अजीवद्रव्य हैं। अर इहां कह्या जीवद्रव्य अर कालद्रव्यतिनकरि सहित ए छह द्रव्य जानने ॥ अब इन द्रव्यनिके विशेष कहनेकूं सूत्र कहैंहैं—

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

अर्थ—ए कहे जे धर्मादिक द्रव्य ते नित्य हैं अर अवस्थित हैं अर अरूपी हैं। ए धर्मादिक द्रव्य हैं तिनका गतिहेत्वादिक तो विशेषलक्षण है। अर अस्तित्वादि सामान्यलक्षण है। ते द्रव्यार्थिकनयकरि किसही कालमैं विनाशकूं प्राप्त नहीं होयगें तातैं नित्य हैं। जिस स्वभावकरि द्रव्य तिष्ठै हैं तिस स्वभावका नाश नहीं है तातैं नित्य हैं। ए धर्मादिक द्रव्य हैं ते अपनी छह की संख्याकूं नाहीं छांडै हैं पांच नहीं होंय सात नहीं होंय तातैं अवस्थित हैं। अथवा धर्म अधर्म लोकाकाश अर एक जीव इनके तुल्य असंख्यात प्रदेश हैं। अर अलोकाकाशकै अर पुद्गलकै अनंतप्रदेशीपणा है। अर कालकै एकप्रदेशीपणा है सो अपने प्रदेशनिकी संख्याकूं नहीं छांडै हैं तातैंहू अवस्थित हैं। द्रव्यविषै विशेषलक्षण है ताकूं द्रव्य छांडै नहीं। चेतन हैं ते अचेतन नहीं होय हैं। अचेतन हैं ते चेतन नहीं होय हैं। अमूर्तिक हैं ते मूर्त्तिक नहीं होयहैं। मूर्त्तिक हैं ते अमूर्त्तिक नहीं होय हैं। तातैं अवस्थित हैं। बहुरि अरूपी कहिए रूपादि रहित हैं अमूर्तिक हैं। इहां रूपके निषेधतैं ताके सहचारी जे रस गंध स्पर्श इनकाहू निषेध जानना। ऐसैं धर्मादिक द्रव्य अरूपी हैं ऐसैं कहनेतैं पुद्गलकैंभी अरूपीपनाका प्रसंग आवै है ताकैं निषेधकै अर्थि

निषेधक सूत्र कहै हैं—

रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्य हैं ते रूपी हैं। यद्यपि रूप शब्दके अनेक अर्थ हैं तौहू इहां परमागमकरि कह्या मूर्त्तिक द्रव्यकूं रूपी जानना। इहां रूपी कहनेकरि जे रूपतैं अविनाभावी जे स्पर्श रस गंध तिनकरि सहितहू ग्रहण करना। बहुरि इहां "पुद्गलाः" ऐसा बहुवचन है सो पुद्गलके अणुस्कंधादि भेदकरि बहुतप्रकारता जनावै है॥ अब कोऊ पुद्गलकी ज्यों धर्मादिक द्रव्यनिकैंहू बहुतपणा जाणै तौ ताके निषेधकूं सूत्र कहै हैं—

आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥

अर्थ—धर्म अधर्म आकाश ए एकएक द्रव्य हैं। इहां धर्म अधर्म आकाश इन तीन द्रव्यनिकौं एकएक कहनेतैंही जीव पुद्गल काल इन तीन द्रव्यनिकै अनेकपना आया। सो आगमके अनुकूल जीवद्रव्य अनंतानंत हैं। तिनतैं अनंतगुणे पुद्गलद्रव्य हैं। कालद्रव्य असंख्यात हैं। धर्म अधर्म आकाश द्रव्यकी अपेक्षा एकएकही है। क्षेत्र अपेक्षा भाव अपेक्षा असंख्यात हैं अनंत हैं॥ अब कहै जे एकद्रव्य तिनका विशेषके अर्थि सूत्र कहै हैं—

निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥

अर्थ—धर्म अधर्म आकाश ए तीन द्रव्य हलन चलन क्रियाकरि रहित हैं। बाह्य अभ्यंतर निमित्तके वशतैं जो एक क्षेत्रकौं त्यागि अन्य क्षेत्रमें गमन करै सो क्रिया है। सो अभ्यंतर तौ द्रव्यमें क्रियारूप परिणमनशक्ति अर बाह्य अन्य पदार्थनिका घात प्रेरणा इन दोऊ कारणनितैं पदार्थका क्षेत्रांतरमें गमन तथा प्रदेशनिका सकंपपना रूप क्रिया होय है सो धर्म अधर्म आकाश तथा आगे कहेंगे कालद्रव्य ए

ज्योंही निष्क्रिय हैं। अर इनकै निष्क्रियपणा कहनेतैं ही जीव पुद्गलकै क्रियावंतपणा जानना ॥ कोऊ कहै है–जो "अजीवकायाः" इस प्रकार कहनेतैं द्रव्यनिकै प्रदेशनिका अस्तित्वमात्रपणा तौ जान्या परंतु संख्या नहीं जानीं। यातैं प्रदेशनिकी संख्या जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानां ॥ ८ ॥

अर्थ–धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य अर एक जीवद्रव्य इनकै एकएककै असंख्यात प्रदेश हैं ते समान हैं। जेता क्षेत्रकूं अविभागी पुद्गलपरमाणु रोकिकरि तिष्ठै है तितना क्षेत्रकूं रोकै सो प्रदेश है। ऐसैं असंख्यात कहिये है। तिनमें धर्मद्रव्य अर अधर्मद्रव्य ए दोऊ निष्क्रिय हैं सो आकाशका लोकाकाशमें असंख्यात प्रदेशनिकूं व्यापकरि निश्चल तिष्ठै हैं। अर एक जीवहू प्रदेशनिकरि धर्म अधर्म द्रव्यकै समान है सो यह अपने प्रदेशनिके संकुच जानेका अर विस्तीर्ण होनेका स्वभाव है यातैं नाम कर्मकरि रच्या जो छोटा बड़ा शरीर तिसकूं अवगाह्य कर तिष्ठै है। अर जिस अवसरमें केवली होय लोकपूरण समुद्घात करै है तिस समयमें मेरुगिरिके नीचे चित्रा अर वज्राकाण्डपटलनिकै बीचि आत्माका मध्य अष्टप्रदेश तिष्ठै हैं। अर अन्य समस्त असंख्याते प्रदेश ऊपरि नीचें तिर्यक् समस्त लोकाकाशकूं व्याप्त होय हैं ॥ आकाशके प्रदेशनिकी संख्या कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

आकाशस्यानंताः ॥ ९ ॥

अर्थ–आकाशद्रव्यकै अनंतप्रदेश हैं जेता आकाश क्षेत्रकूं अविभागी पुद्गलपरमाणु रोकै ताकूं एक प्रदेश कहिए है। यद्यपि आकाश अखंड एकद्रव्य है तोहू परमाणुकरि मापिए तौ अनंतपरमाणु प्रमाण होयहै याहीतैं अनंतप्रदेशी कहिए है। अर केई अन्यमती आकाशद्रव्यकूं सर्वथा निरंशही मानैं सो

अनुभव है। जातैं आकाशक्षेत्रमें अनेकपदार्थ भिन्नभिन्न तिष्ठैहैं। जैसें यह ग्राम है यातें मठ आगें है। वापिका याकै पाछै है ऐसा देशविभाग प्रत्यक्ष हैही तातें आकाशमें विभाग कैसें नही मान्याजाय। इहां अनंत कह्या सो अलौकिकप्रमाणका विशेष है। अर अनंत ऐसा प्रमाणकूं सर्वमतके मानैहैं। केई लोक धातुकूं अनंत मानैहैं। केई प्रकृतिकै अर पुरुषकै अनंतपणा कहैहैं। केई दिशाकूं कालकूं आत्माकूं आकाशकूं अनंत मानैहैं। तातें अनंत हैही। बहुरि स्याद्वादमतमें आकाशकूं द्रव्यअपेक्षा एक कहैहैं तोऊ विभाग कल्पनाकरि अंशसहित हैही॥ अब पुद्गलनिकै प्रदेशप्रमाण कहैहैं—

संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानां॥ १०॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्यकै प्रदेश संख्यातहू हैं असंख्यातहू हैं "च" शब्दकरि अनंतभी हैं। जातें शुद्ध पुद्गलद्रव्य तौ अविभागी एक परमाणु है। परंतु पुद्गलपरमाणुनिमें मिलन विछुरन शक्ति है तातें केई स्कंध दोय परमाणुका केई तीन च्यार इत्यादिक संख्यातका कोऊ असंख्यातका कोऊ अनंत परमाणुका स्कंध है। अब इहां कोऊ आशंका करै जो लोक तौ असंख्यातप्रदेशी है यामें अनंतानंत परमाणुका स्कंध कैसें तिष्ठै। ताकूं उत्तर कहैहैं-सूक्ष्म परिणमनतें अर अवगाहनासामर्थ्यतें यो दोष नहीं आवैहै। परमाणुआदिक सूक्ष्मभावकरि परिणमे हुए एकएक आकाशका प्रदेशमें अनंतानंत तिष्ठैहैं यातें विरोध नाहीहै। ऐसा एकांत नहीहै जो अल्प आधारविषें महान द्रव्य नहीं तिष्ठै। प्रचयका विशेषतें अल्पक्षेत्रविषें बहुतनिका अवस्थान देखिए है जैसें चंपाका पुष्पकी डोडी तौ अल्प है। अर तामें सूक्ष्मसंचयरूप परिणमनतें गंधका अवयव एते निकसैहैं तिन करि समस्त दिशा व्याप्त होजाय है। ऐसेंही केतकीका पुष्प तौ अल्प है अर तामें सुगंध परमाणु एते निकसैहैं तिनकरि कोशन पर्यंत सुगंध चलीजाय। तथा

विलका फल तथा छाणा (कंडे) तथा आला काष्ठ इन विषै प्रचयविशेषतैं एते पुद्गलस्कंध हैं जो अग्निकरि बालिए तो धूमरूप होय समस्त दिशानिमें भरि जांय तैसैं अल्पहू लोकाकाशमें अनंतानंत जीव अनंतानंत पुद्गलनिका अवस्थान है यामें विरोध नहीं है॥ अब पुद्गलकै प्रदेशवर्णन कीया तो परमाणुहू पुद्गल है याकैहू प्रदेशका प्रसंग आया यातैं परमाणुके प्रदेशका निषेधके अर्थि सूत्र कहै हैं—

नाणोः ॥ ११ ॥

अर्थ—अणु जो परमाणु ताकै प्रदेश नहीं हैं। जातैं परमाणुकै प्रदेशमात्रपणाही है। जैसैं आकाशका एक प्रदेशके भेदका अभाव है यातैं अप्रदेशपणा है। तैसैं परमाणुकेहू प्रदेशमात्रपणातैं प्रदेशभेदका अभाव है बहुरि परमाणुतैं अन्य कोऊ सूक्ष्म पदार्थ नाहीं तातैं परमाणुकै प्रदेशनिका भेद न होय तातैं स्वयमेव परमाणु अप्रदेश है। अर जो अणुकैहू प्रदेश होय तो याकै अणुपणा नहीं होय। इहां कोऊ कहै है जो अणुकै अप्रदेशपणातैं गधाका सींगकीज्यों अभाव आया सो अभाव नहीं है। जातैं प्रदेशमात्र है परमाणुकूं गधाका सींगकीज्यों अप्रदेश नहीं कहा है। अब कोऊ या कहै जो परमाणुकै आदि मध्य अंत है कि नहीं है। जो है तो प्रदेशवानपणा परमाणुकै आया। अर जो आदि अंत मध्य नहीं तो गधाका सींगकीज्यों अभाव आया। सो नहीं है। जैसैं विज्ञानकै आदि मध्य अंत नहीं है तोऊ विज्ञानका अस्तित्व हैही तैसैं परमाणुका अस्तित्वभी है ही॥ अब धर्मादिक द्रव्यनिका आधार जनावनेकूं सूत्र कहैहैं—

लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥

अर्थ—धर्मादिक द्रव्यनिका लोकाकाशमें अवगाह है। आकाशनाम द्रव्य पर्यंतरहित अनंतानंत है। तिनकै

मध्यविषैं जितना आकाशमैं धर्मादिक द्रव्य पाइए सो लोकाकाश है। जहां छह द्रव्य अवलोकन किए सो लोकाकाश है। अर बाहिर सर्वतरफ अनंतानंत केवल आकाश है ताकूं अलोकाकाश कहिए है। अर लोकका क्षेत्र तीनसै तियालीस राजूप्रमाण असंख्यात है। सो यो लोकाकाश धर्मादिक द्रव्यनिका आधार है। अब कोऊ आशंका करै—जो धर्मादिकनिका लोकाकाश आधार है तो आकाशका अन्य कौन आधार है। ताकूं उत्तर कहै है—जो आकाशद्रव्यकै अन्य आधार नाहीं, यो तो आपके आधारही आप है। इसतैं अन्य कोई बडा महान् द्रव्य नाहीं जाकै आधार आकाश तिष्ठै। तातैं सर्वतरफ अंतर-हित आकाश सो आपकै आधारही आप है। अर जो आकाश आपकै आधार आप नहीं होय तो अनवस्था दोष आवै। बहुरि एवंभूतनयकी अपेक्षा करि तो समस्त द्रव्य अपने २ आधार हैं ए आ-धाराधेयपणा कहना व्यवहारनय करि है। अब इहां कोऊ आशंका करै—जो आकाशकूं आधेय कह्या अर ताकै आधार धर्मादिक द्रव्य कह्या तब कूंडेमें बेरकीज्यों पूर्वे आकाश तिष्ठथा पाछे धर्मादिक याकै आधार तिष्ठे। तदि इनकै संयुक्त होय लोकमें तिष्ठनेतैं अनादिपणाका अभाव आया नवीन संसर्ग ठहरया तातैं आधाराधेयपणा कहना सदोष भया। ताका उत्तर—जो तुम दोष दिया सो नहीं है। जो संयुक्त होय सिद्ध नहीं भए तिनकैहू आधाराधेयपणा देखिए है। जैसे शरीर अर हस्त इनकी युगपत् उत्पत्ति होतैंहू हस्तकै आधार शरीर है। जातैं शरीरकै अर हस्तकै उत्पत्ति पहली, पाछै नहीं है अर पहली भिन्न भिन्न थे, पाछै युक्त होय सिद्ध भए नहीं हैं। तोहू शरीरकै आधार हस्त है हस्तकै आधार अंगुली है अंगुलीकै आधार नख है। तैसे आकाश अर धर्मादिक द्रव्य इनकै अनादिपारिणामिक योग-पणाकी सिद्धि होतें पहली पाछै ऐसा भेद नहीं होतेंहू आकाशकै अर धर्मादिक द्रव्यनिकै आधाराधे-

गपणा सिद्ध है, तातें यो एकांत नहीं है, जो युतसिद्धकैही आधाराधेयपणा होय अर अयुतसिद्धकै नहीं होय। अयुतसिद्ध तो जैसें स्तंभमें सार अर युतसिद्ध जैसें कुंडमैं वेर दोऊनिकै आधाराधेयपणा प्रगट देखिए है तातें अनेकांतके प्रभावतें यो उलाहनो नहीं है॥ अब धर्म अधर्म द्रव्यका अवगाह लोकमैं कैसें है यातें सूत्र कहैहैं—

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

अर्थ–धर्मद्रव्य अर अधर्मद्रव्य ए दोय द्रव्य समस्त लोकाकाशके प्रदेशानिमें व्याप्यकरि तिष्ठै हैं। जैसें तिलनिमें तेल व्यापि रह्या है तैसें धर्म अधर्म दोऊ द्रव्य लोकाकाशके समस्त प्रदेशनिमें व्याप्यकरि तिष्ठै हैं तातें इनकैं अभिव्यापक आधार है। जैसें गृहका एक देशमैं घट तिष्ठै, तैसें इनका लोकमैं अवस्थान नहीं है। वहुरि कोऊ कहै। जो लोकाकाशका प्रदेशानिमें धर्म अधर्म द्रव्यका प्रदेश विरोध रहित कैसें तिष्ठै है। एक प्रदेशमैं तिनके प्रदेश कैसें समावै हैं? ताका उत्तर–जो जल भस्म खांड इत्यादिक मूर्तिक द्रव्यही एक क्षेत्रमें विरोधरहित तिष्ठै हैं तो अमूर्त्तिक धर्म अधर्म आकाश इनिकै कैसें विरोध होय।

भावार्थ–एक घडा जल करिकै भर्‍या हुआ तामैं भस्म क्षेपिए तो एकघट भस्म मा(समा)जाय वा खांडका घडा माजाय वहुरि लोहकी सूई माजाय ऐसा देखिए है। जो स्थूल मूर्तिक द्रव्यही परस्पर अवकाशदान देय हैं तो अमूर्त्तिक अवकाशदान कैसें नहीं देवै। वहुरि भेदसंघातपूर्वक आदिसहित जिनके संबंध होय ऐसे अतिस्थूल स्कंध तिनमें केईकनिकै प्रदेशानिकै तिष्ठनेमें विरोध है। अर धर्मादिक द्रव्यनिकै तो आदिमान संबंध नहीं पारिणामिक अनादिसंबंधहै इनिकै कैसें परस्पर विरोध होय॥ अब पुद्गलनिकै अवगाहनविशेषके जाननेकं सूत्र कहैहैं—

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

अर्थ—लोकाकाशका एकप्रदेशतैं लगाय असंख्यातप्रदेशनिपर्यंत अनेकप्रकार पुद्गलनिका अवगाह है। एक परमाणुका एक आकाश प्रदेशविषै अवगाह है। अर दोय परमाणु खुलीवा बंधीको एकप्रदेशमें वा दोय प्रदेशमें अवगाह है। तीन परमाणु खुली वा बंधीका एकप्रदेशमें अवगाह है वा दोयमें वा तीनमें अवगाह है। ऐसें संख्यात असंख्यात अनंत प्रदेशनिका स्कंधका एक लोकाकाशका प्रदेशमेंभी अवगाह है। अर दोय तीन इत्यादि संख्यात असंख्यात प्रदेशनिमेंहू अवगाह जानना। द्रव्यनिमें यह अवगाहनशक्ति है जातैं परस्पर अवकाश दान देहैं जैसें एक घरमें अनेक प्रकाश वर्त्तै है तहां क्षेत्रका विभाग नहीं है। अर एकक्षेत्रमें अवगाह होनेतें तिन प्रकाशनिकै एकपणाहू नहीं है। तैसें एक लोकाकाशका प्रदेशमें अनंत पुद्गलपरमाणुनिका स्कंध सूक्ष्मपरिणमनशक्तितें तिष्ठै है अर एक नहीं होजाय है। बहुरि द्रव्यनिका स्वभाव है सो प्रेरया नहीं किया जाय है जो ऐसें होहु ऐसें मति होहु। यातैं अवगाहन स्वभावपणातैं एक प्रदेशविषैं बहुत स्कंधनिका तिष्ठना विरोधकूं नहीं प्राप्त होय है। बहुरि आगै जो परमागम तामेंभी ऐसैं कह्या है।

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो ।
सुहुमेहिं बादरेहिं अणंताणंतेहिं विविहेहिं ॥ २ ॥

अर्थ—यो लोक समस्त सर्वतरफतैं सूक्ष्म अर बादर नानाप्रकारके अनंतानंत पुद्गलकायकरि गाढा गाढा भर्‍या है। तातैं आगमप्रमाणतैंहू निश्चय करना योग्य है॥ अब जीवनिका अवगाह कैसे है यातैं सूत्र कहै हैं—

असंख्येयभागादिषु जीवानां ॥ १५ ॥

अर्थ—लोकका असंख्यातभागादिकमें जीवनिका अवगाह है। इहां लोकशब्दकी पूर्वसूत्रतें अनुवृत्ति है। तिस लोकाकाशका असंख्यातभाग कीजे सो एक असंख्यातवां भागहू असंख्यात प्रदेशप्रमाण है। तिस एक असंख्यातवां भागमें एक जीवकी अवगाहना तिष्ठैहै वा दोय असंख्येय भागमें वा तीन च्यार इत्यादिक असंख्येय भागमें एक जीवकी अवगाहना है जातें जघन्य अवगाहनाका धारक सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव ताका शरीरहू असंख्यात प्रदेश प्रमाण अवगाहनाकूं धारै है तातैं लोकका असंख्येय भागादिकमें एक जीवकी अवगाहना कही। यद्यपि अवगाहना नाना जीवनिकी जघन्यतें लेय उत्कृष्ट पर्यंत एकएक प्रदेश अधिक पाइए है तोहू वे लोकके असंख्यातवें भागही कहावै हैं। अर नाना जीव तो समस्त लोकमें हैं कोऊ प्रदेश जीवविना नहीं है॥ अब कोऊ कहै जो एक जीवकी अवगाहना लोकाकाशका असंख्यातवां भागमें कैसे है एक जीवका लोकप्रमाण प्रदेश है तातैं सर्व लोकमें व्याप्त चाहिए, ताकूं उत्तररूप सूत्र कहैहैं—

प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—जीवका प्रदेश लोकाकाशके समान है तोहू दीपककीज्यों संकोच विस्तार होनेतें जैसा आधार होय तिस प्रमाण होय तिष्ठैहै। यद्यपि आत्माका अमूर्तिक स्वभाव है अर लोकाकाश तुल्य प्रदेशी है तोहू अनादिकालतें कर्मतें एकक्षेत्रावगाहरूप होय कथंचित् मूर्तिकपणाकों धारण करैहै। तातैं कर्मके वशतें बहुरि कैसा जो छोटा बडा शरीर नामकर्मतैं है जैसा शरीरका आधार होय तैसें संकोच विस्तारकूं प्राप्त होवैहै। जैसे दीपक छोटे बडे भाजनमें धरिए तिस प्रमाणही प्रकाश संकोच विस्तारकूं प्राप्त होय।

छोटे बडे शरीरमें जितना आत्माका लोकप्रमाण प्रदेश हैं ते घटै बधै नाहीं है। अब कोऊ कहै जो आत्माका प्रदेश संकोच होतें कहांताईं संकुचै। ताकूं कहै हैं—सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवकै अंगुलके असंख्यातवें भाग अवगाहना है ताके भी असंख्यातप्रदेश हैं तिस प्रमाणतें जीवकी अवगाहना घटै नाहीं है। अब कोऊ कहै है—जो धर्मादिक द्रव्यनिकै नानापणा मति कहो जातें देश संस्थान काल दर्शन स्पर्शन अवगाहनादिक करि अन्यद्रव्यनितें अभेद है। सोही कहै हैं—जिस देशमें धर्मद्रव्य तिष्ठै तिस क्षेत्रमेंही अन्यद्रव्य तिष्ठै हैं तातें देश भिन्न नहीं है। अर जो धर्मको संस्थान आकार सोही अन्यद्रव्यनिको है तातें संस्थान भिन्न नहीं है। अर तीन कालमें धर्मादिक समस्त द्रव्यनिकी तुल्य प्रवृत्ति है तातें कालहू अभिन्न है अर प्रत्यक्षज्ञानी भगवान् जिस क्षेत्रमें धर्मद्रव्य देख्या तिसहीमें अन्यद्रव्य देखे तातें दर्शन अभिन्न है। अर धर्मादिक समस्त द्रव्य सर्वात्मस्वरूपकरि परस्पर स्पर्शनहू करै हैं तातें अवगाहनभी अभिन्न है सर्वगतपणातें अरूपीपणा द्रव्यपणा क्षेत्रपणा इनकरि भी भिन्न नहीं है। तोहू धर्मादिक पलटि परस्पर एक नहीं होजाय हैं प्रदेशनिकरि भेद है स्वभावकरि भेद है लक्षणकरि भेद है। यातें जैसें रूप रसादिकनिकै तुल्य आधार होतें हू लक्षणका भेदतें भेद है॥ तैसें भिन्नलक्षण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

अर्थ—जीव पुद्गलनिकै गति उपकार धर्मद्रव्यकृत है अर स्थिति उपकार अधर्मद्रव्यकृत है। जीव पुद्गल एक क्षेत्रतैं अन्य क्षेत्रमें गमनक्रिया करै हैं। तहां गमन करनेकी शक्ति तो जीव पुद्गलहीकी है सो तो अंतरंग कारण है। अर बहिरंगसहकारी अविनाभूतकारण धर्मद्रव्य है। जो जीव पुद्गल गमन करै तो धर्मद्रव्य सहकारीकारण है अर नहीं गमन करै तो प्रेरणा नहीं करै है। परंतु धर्मद्रव्यका सहाय

विना गमन नहीं होय सकै तातैं अविनाभूत सहकारीकारण है जैसें मच्छीके गमन करनेकी शक्ति तो आपहीमें है परंतु बहिरंग सहकारी अविनाभूत कारण जल है। यद्यपि मच्छी गमन नहीं करै तो जल प्रेरणा नहीं करै है तथापि जलका सहायबिना गमन नहीं करि सकै तातैं मच्छीनिकै गमन करनेकूं जल सहकारीकारण है। ऐसें धर्मद्रव्य जीव पुद्गलके गमनकूं सहकारीकारण है। बहुरि ऐसेंही गमनपूर्वक स्थिति करते जीव पुद्गलनिकूं अधर्मद्रव्य अविनाभूतसहकारी कारण है। जैसें ग्रीष्ममें गमन करते पथिकनिकै वृक्षकी छाया सहकारी अविनाभूतकारण है। इहां पूछे हैं—जो भूमि जलादि पदार्थही गति स्थितिका उपकारविषै समर्थ हैं धर्म अधर्म द्रव्यनिका कहा प्रयोजन है। तहां कहिए है—भूमि जलादिक तो कोई कोई द्रव्यको एक एक प्रयोजनविषै अनुक्रमतें गमनादि उपकार करनेमें समर्थ हैं। अर धर्म अधर्म द्रव्य हैं ते समस्तही जीवपुद्गलनिका एकैकाल गति स्थितिको साधारण आश्रय हैं बहुरि एककार्यकौं अनेककारण मानें हैं तहां दोष नाहीं। इहां तर्क—जो धर्म अधर्म द्रव्य काहूके देखनेमें आए नहीं तातें धर्म अधर्म द्रव्य ही नहीं है। ताका समाधान—जो इनका नेत्रनिकरि देखना नहीं यातैं अभाव मति कहो। ए परोक्ष पदार्थ हैं। नेत्रादिक इंद्रियनिके ग्रहणमें नहीं आवनेतैं अभाव कैसें कहोहो। सर्वही मतमें प्रत्यक्ष पदार्थ परोक्षपदार्थ मानिए है। जो इंद्रियनिका ग्रहणमें नहीं आवनेतैं अभाव मानोगे तो समस्त स्वर्ग नरक परलोक पुण्य पाप ईश्वरादिक समस्तका अभाव मान्याजायगा। बहुरि हमारे स्याद्वादीनिके मतमें भगवान सर्वज्ञ वीतराग प्रत्यक्ष देखिकरि कह्या है तातें सर्वज्ञके प्रत्यक्ष होनेतें धर्मादिक द्रव्य प्रत्यक्षभी हैं ही तिनके कहनेसे प्रमाणभूत उपदेशतें परोक्षज्ञानीहू अंगीकार करे हैं। बहुरि ए धर्म अधर्म द्रव्य परोक्ष है अनुमेय है। तिनका अनुमानके ज्ञानकरि अस्तित्व निश्चय कीजिए है। जीव पुद्गलके गति स्थिति-

कूं ए निमित्त हैं। बहुरि अणअणविषै तिनके गति आदिका भेद है तातैं तिनके हेतुकभी भिन्नपणा भासिए है। इस सूत्रका विशेष जाननेका इच्छुक हैं ते राजवार्त्तिक श्लोकवार्त्तिकतैं जानहु॥ अब आकाशद्रव्यका उपकार दिखावनेकूं सूत्र कहैं हैं।

आकाशस्यावगाहः ॥ १८ ॥

अर्थ—अवगाहनानिकों अवकाशदान देना आकाशद्रव्यका उपकार है। इहां उपकार शब्दकी पूर्वके सूत्रतैं अनुवृत्ति जाननी। जीवादिक अवकाश देनेयोग्य द्रव्यनिकों अवकाशदान देना आकाशद्रव्यका उपकार है। इहां तर्क—जे जीवपुद्गलादिक क्रियावान हैं तिनकों तो अवकाशदान देना युक्त है परंतु धर्मादिक द्रव्य तो नित्यसंबंधरूप हैं निःक्रिय हैं तिनकूं अवकाशदान देना आकाशकै कैसैं संभवै? ताका समाधान—जो गति स्थिति क्रियासहित जे जीवपुद्गल द्रव्य हैं तिनकी अपेक्षा तो आकाशके अवकाश देना मुख्य उपकार है। अर धर्मादिकनिकी अपेक्षा गौण है उपचारतैं अवकाशदान देना कहिये। बहुरि तर्क—जो आकाशका अवकाश दान देना गुण है तो मूर्त्तिक द्रव्यनिकै परस्पर प्रतिघात (रुकना) अयुक्त है अर परस्पर घात देखिए है। वज्रपातादिकनिकरि पाषाणादिकनिका घात देखिए है। भींतिकरि गवादिकनिका घात देखिए है तातैं आकाशकै अवकाशदान देना कैसैं बनै? ताका उत्तर—पुद्गलनिका परिणमन स्थूलसूक्ष्मादि अनेक प्रकार है। तिनमें स्थूलपुद्गलनिकै परस्पर प्रतिघात है ते स्थूलपुद्गल परस्पर अभिघात करै हैं सूक्ष्म नाहीं करै हैं सूक्ष्मकै परस्पर प्रवेशका सामर्थ्य है स्थूलपुद्गल परस्पर रोकै है। यामैं आकाशका दोष नाहीं है रुकना भिड़ना परस्पर पुद्गलनिका सामर्थ्य है। सूक्ष्मपुद्गल हैं ते परस्पर अवकाशदान देवैही हैं। बहुरि इहां ऐसा—जो अवगाह गुण तो

[illegible] है जातें आकाश सबनें बडा है तातें प्रधानपणें अवकाश दान देना याहीका गुण है। [illegible] गुणकरि अवकाश देयहै। बहुरि इहां कोऊ कहै—अलोकाकाशविषै अवगाह करनेवाला [illegible] नाहीं तहां अवकाशदानभी नाहीं सो तहां आकाशकै अवकाश देना कैसें कहिए? ताका उत्तर—जहां कोई अवगाह करनेंवाला नाहीं तो अवकाशका काहा दोष? आकाशका अवगाह देना तो गुण बिगडा नहीं। जो द्रव्यका स्वभाव है ताकूं द्रव्य छांडै नहीं है जैसें अवगाह करनेवाला [illegible] अभाव होतेंभी जलका अवगाहनपणाका अभाव नहीं होय है तैसें अलोकाकाशकै अवकाशदान सामर्थ्यकी हानि नहीं है॥ अब पुद्गलकृत उपकार दिखावनेकूं सूत्र कहैहैं—

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानां ॥ १९ ॥

अर्थ—शरीर वचन मन प्राणापान कहिए उच्छ्वासनिश्वास ए समस्त पुद्गलकृत उपकार जीवनिकै हैं। शरीर है सो समस्त वचनादिकका आधार है तातें प्रथम कहा। औदारिकादि शरीर हैं सो तो पुद्गलमय हैही। इहां कोऊ कहै—शरीरनिकौं पौद्गलिक कहा सो तो ठीक परंतु कार्मणशरीर तो निराकार है सो निराकारकै पुद्गलपणा कैसें होय? आकारवान औदारिकादि शरीरनिकैंही पुद्गलपणा युक्त है। ताकूं कहिए—जो कार्मणशरीरहू निराकार नहीं है आकारवानही है सूक्ष्म पुद्गलमयही है तातें नेत्रादिकनिकै ग्रहणमैं नहीं आवनेंतें निराकार नहीं है मूर्तिमान है यातें पौद्गलिकही है जातें मूर्त्तिक पदार्थके निमित्ततें कर्मनिका उदय आवता देखिए है। जैसें गुड [illegible] मदिरा बनै है सो मदिरा मूर्त्तिक है ताकै निमित्ततें [illegible] ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय कर्मका उदय आवै है। तथा निम[illegible] [illegible] इत्यादि मूर्त्तिक

द्रव्यनिके संबंधतें उदय होते देखिए हैं तातें कार्मणशरीरहू मूर्तिक पुद्गलमयही है ऐसा निश्चय करना। बहुरि वचन दोय प्रकार है एक भाववचन एक द्रव्यवचन। तहां मतिश्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होते अर अंगोपांग नाम कर्मके लाभका निमित्ततें आत्माकै बोलनेकी शक्ति होय सो भाववचन है। सो पुद्गलकर्मके निमित्ततें भया तातें पौद्गलिक है। बहुरि तिस बोलनेका सामर्थ्य सहित आत्माके कंठ तालु जिह्वा इत्यादिक स्थाननिकरि प्रेरे जे शब्दरूप पुद्गलस्कंध सो द्रव्यवचन है सोहू पुद्गलतें उपज्या पुद्गलमयही है। श्रोत्रेंद्रियके विषय हैं तातें पुद्गलतें अन्य नहीं।

अब इहां कोऊ शंका करै—जो वचनकूं पुद्गल कहो हो तो अन्यपुद्गलनिकीज्यों फिरहू ग्रहणमें क्यों नहीं आवै? वचन उपजत होय एकवारही श्रोत्रइंद्रियका ग्रहणमें आवै है निरंतर ग्रहणमें नहीं आवै है। ताकूं कहिए है—जैसें बिजुलीके पुद्गल चक्षुइंद्रियके ग्रहणमें आइकरिके फेरि समस्त दिशामें बिखरिजाय है फेरि नहीं दीखै है। तैसें वचनरूपहू पुद्गलस्कंध कर्णइंद्रियका ग्रहणमें आय समस्त तरफ बिखरि जाय तब फेरि ग्रहणमें नहीं आवै है। कर्णइंद्रिय शब्दहीकूं ग्रहण करै रूपादिककूं नहीं ग्रहण करै। जिस इंद्रियका जो विषय होय तिसकूं नियमकरि ग्रहण करै अर परका ग्रहण नहीं करै। अब कोऊ या कहै शब्द है सो नेत्र इंद्रियका ग्रहणमें क्यों नहीं आवै? ताकूं कहिए है जैसें घ्राण इंद्रिय गंधहीकूं ग्रहण करै है रसादिककूं ग्रहण नहीं करै है। अर रसना इंद्रिय रसहीकूं ग्रहण करै है रूपादिककूं ग्रहण नहीं करै। तैसें चक्षु इंद्रियहू रूपहीकूं ग्रहण करै है शब्दादिककूं नहीं ग्रहण करै है। अब कोऊ या कहै जो शब्द अमूर्तिक है जातें जो आकाश ताका गुण है सो नहीं। कैसें अमूर्तिक नहीं? ताका उत्तर कहै है—जो शब्द अमूर्तिक होय तो मूर्तिमान श्रोत्र इंद्रिय तिनकरि कैसें ग्रहण किया जाय। अमूर्तिक होयगा तो इंद्रियनिके

मूर्त्तीकै नहीं आवेगा। अर अमूर्तिक होयगा सो मूर्तिमानकरि प्रेरणाकूं नहीं प्राप्त होयगा। अर शब्द है सो मूर्तिक पवनकरि आकाशमें तृणादिकीज्यों प्रेरया हुवा अन्य दिशामें तिष्ठते पुरुषनिके ग्रहणमें आवे है। तथा शब्दकरि पुष्पमालाकी दीवालभीति फाटिजाय है। घावफाटिजाय है गर्भपतन होजाय है तातें शब्द मूर्तिकही है। जो अमूर्तिक होय तो मूर्तिक करि कैसें प्रेरणाको प्राप्त होय। बहुरि शब्द है सो मूर्तिक करि रुकै है। नालीमें शब्द रुकै है भीतितें शब्द रुकै है जो अमूर्तिक होय तो मूर्तिक करि कैसें रुकै। बहुरि मन दोय प्रकार है द्रव्यमन अर भावमन। तहां ज्ञानावरण वीर्यांतरायके क्षयोपशमतें पाया जो गुणदोषके विचारस्मरणकी शक्तिरूप लब्धि तथा उपयोग सो तो भावमन है। सो पुद्गलकर्मके क्षयोपशमतें भया तातें पौद्गलिक है। बहुरि तिस भावमनसहित आत्माके अंगोपांग नाम कर्मके उदयतें गुणदोषके विचारस्मरणका उपकारी हृदयस्थानविषै सूक्ष्मपुद्गलनिका प्रचयरूप द्रव्यमन है ते पुद्गलमय ही है। बहुरि वीर्यांतराय ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम अर अंगोपांग नामा नामकर्मका उदयकी है अपेक्षा जाकै ऐसा आत्मा ताकरि ऊंचा लीना जो कोष्ठतें पवन सो तो उच्छ्वासलक्षण प्राण कहिए। बहुरि तिसही आत्माकरि बाहिरका पवन अभ्यंतर किया सो निःश्वास है ताहि अपान कहिए है। ए दोऊही पुद्गलमय हैं मूर्तिक हैं हस्तादिकरि रुकते देखिए हैं। शरीरविषै पवनका संचार है सो आत्माका उपकारी है। शरीरमैं श्वासोच्छ्वास आदि चेष्टा आत्माका अस्तित्व जनावै है। या प्रकार शरीरादिक हैं ते पुद्गलमय जानना इनकरि जीवका उपकार है। बहुरि इहां उपकारशब्दका अर्थ भला करनाही नहीं लेना कछु कार्यका निमित्त होय तिसकूं उपकारी कहिए है॥ आगे और पुद्गलकृत उपकार कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥

अर्थ—सुख दुःख जीवन मरण एभी उपकार पुद्गलका किया जीवकै है। बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावका निमित्ततैं सातावेदनीयका उदयतैं आत्माकै प्रसन्नताई प्रीतिरूप होना सो सुख है। तथा असातावेदनीयका उदयतैं आत्माका संक्लेशरूप परिणाम सो दुःख है। बहुरि आयुनामकर्मकै उदयतैं भवमें स्थित रहना जीवकै उच्छ्वासनिश्वासादिक क्रियाका विच्छेद नहीं होना सो जीवित है। बहुरि जीवितका उच्छेद होना सो मरण कहिए। ए जीवनिकै होय हैं सो पुद्गलके निमित्ततैं होय हैं तातैं पुद्गलका उपकार कहिए। बहुरि इहां अन्य विशेष लिखिए है। तहां केई अन्यमती ऐसैं कहैहैं जो सुख दुःख तो देहकैही होयहै आत्मा तो सुख दुःखतैं रहित है। तथा केई कहैं आत्मा तो सर्वथा नित्य है अमर है मरैही नाहीं। तथा केई आत्माकौं अनित्यही कहैहैं। इत्यादिक एकांत कल्पना करैहैं तिन सबनिका निराकरण इस सूत्रतैं जानना। जातैं सुख दुःखका संवेदन तो जीवकै है। पुद्गल अचेतन जड है ताकै सुखदुःखका संवेदन नहीं संभवै है। बहुरि उच्छ्वासनिश्वासादि प्राणनिका उच्छेद नहीं होना सो जीवना अर प्राणनिकै उच्छेदकरि शरीर छूटि अन्य शरीरकी प्राप्ति होना सो मरना है। सो यहां अन्यमती जो आत्माकूं नित्यही वा अनित्यही एकांतरूप कल्पना करैहैं तिनके मतमैं निर्बाध कथन नाहीं बनैहै। जातैं सर्वथा नित्य मानैं ताकै सुखदुःख जीवनमरणादिक परणति नहीं बनि सकै है। तातैं वस्तुका स्वरूप नित्यानित्यात्मक मानैं तिसहीकै निर्बाधकथन सिद्ध होयहै। बहुरि सूत्रमें उपग्रह शब्दके ग्रहणकरि पुद्गलका पुद्गलभी उपकार करैहै। जैसैं कतकफल जलका उपकार करैहै भस्मादिक कांस्यादिकको उपकार करैहै। अब आत्माकृत उपकारकूं कहैहैं—

परस्परोपग्रहो जीवानां ॥ २१ ॥

अर्थ— जीवनिकै परस्पर उपकार है। स्वामी सेवकका उपकार वित्तादिक देनेकरि करैहै। स्वामीका हित कहनेकरि अर अहितका निषेधकरि सेवक स्वामीका उपकार करैहै। दोऊ लोकके फलका देनेवाला उपदेशकरि वा उपदेशके अनुष्ठान आचरण करावनेकरि आचार्य शिष्यका उपकार करैहै। अर शिष्य हैं ते आचार्यनिकै अनुकूल प्रवृत्तिकरि आचार्यनिका उपकार करैहैं॥ अब कालकृत उपकार दिखावै हैं—

वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥

अर्थ— वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ए कालद्रव्यकृत उपकार हैं। धर्मादिक द्रव्यनिकै वर्तना आदिक कालके निमित्ततैं होइ है सोही दिखाइये है। धर्मादिक द्रव्य हैं ते आपही आपने उपादानकारणकरि अपने पर्यायनिके उत्पादरूप वर्तें हैं। सो तिस वर्तनाका बाह्य निमित्त चाहिए। जातैं बाह्य उपकार निमित्तविना अंतरंग परिणति होयनाहीं सो तहां तिनकी बहिरंग निमित्त काल है। तहां तिस वर्तनाका ग्रहण है सोही कालका चिन्ह है। सब द्रव्यनिके वर्तावनेवाला काल द्रव्य है। याहीकरि कालका निश्चय कीजिये है। यह वर्तना है सो कालद्रव्यका अस्तित्व जनावे है। जातैं गौण है सो मुख्यविना होइनाहीं। बहुरि इस वर्तनाकूं वर्तावार लगै है सो व्यवहार काल है बहुरि जो द्रव्य अपने स्वभावकूं नहीं छांडिकरि पर्यायका स्वपरकरि पलटना सो परिणाम है। तहां धर्मादिक द्रव्यनिकै अगुरुलघुगुणका अविभाग प्रतिच्छेदरूप अनंत परिणाम है। तहां ते हानि वृद्धि सहित हैं। अतिसूक्ष्म स्वरूप है। बहुरि जीवकै औपशमिककरि भावरूप परिणाम है। तथा शांति कषाय क्रोधादिक परिणाम है। अर पुद्गलकै वर्णादिक परिणाम है तथा घटादिक अनेक रूप है। [illegible]

पर्यायनिकूं परिणाम कहिए कैसी है पर्याय जो पूर्व अवस्थाकूं छांडि दूसरी अवस्थारूप होना । बहुरि एकक्षेत्रतें अन्यक्षेत्रविषै गमन करना सो क्रिया है। सो क्रिया जीव पुद्गल दोयहीकै होय है। बहुरि जाकूं बहुतकाल लागै ताकूं परत्व कहिए। अल्प कालका होय ताकूं अपरत्व कहिये । ऐसें द्रव्यके वर्तना आदि कहे ते कालके निमित्ततें होय हैं अन्य द्रव्यनिकूं यह कालका उपकार है। धर्मादिक द्रव्यनिके पर्याय समयसमय पलटै हैं सो इस पलटनिकों समय जो काल सोही निमित्त है तातें ऐसा कहिए जो द्रव्यनिका पर्याय वर्तै है ताका वर्तावनेहारा कालद्रव्य है। बहुरि यहां कोऊ कहै—जो वर्तनाहीका भेद परिणामादिक है तातें एक वर्तनाही कहना था तिनका जुदाजुदा ग्रहण अनर्थक है। ताका समाधान—जो अनर्थक है नाहीं। यहां कालके दोय प्रकार सूचनेके अर्थि विस्तार कहा है। काल दोयप्रकार है एक निश्चयकाल एक व्यवहारकाल। तहां निश्चयकाल तो वर्त्तनालक्षण है। अर परिणामादिक है ते व्यवहार कालभी जानिए है। जीव पुद्गलके परिणामनकरि व्यवहारकाल प्रकट होय है सो यह व्यवहारकाल तीन प्रकार है। भूत, वर्तमान, अनागत। बहुरि परमार्थकाल जो निश्चयकाल ते लोकाकाशके एकएकप्रदेशनिविषै भिन्नभिन्न असंख्यात कालाणुद्रव्य हैं ते परमार्थकाल हैं ते कालाणु परिणतिरूप वर्तै हैं। परद्रव्यके परिणतिरूप नाहीं वर्तै हैं आप आपनी परिणतिरूपही वर्तै हैं सो परद्रव्य तौ बाह्यनिमित्त होय है। तिनकी वर्तना सर्वद्रव्यनिके परिणमनप्रति निमित्त है॥ अब पुद्गलके गुण कहै हैं—

स्पर्शरसगंधवर्णवंतः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

अर्थ—पुद्गल हैं ते स्पर्श रस गंध वर्ण गुणनिकरि सहित हैं। कोमल, कठोर, हलको, भारी, शीत, उष्ण,

[illegible], आठ ए अष्टप्रकार स्पर्श है। बहुरि खाटो, मीठो, कडवो, कषायलो, चिरपरो ए पंचप्रकार रस है। बहुरि सुगंध, दुर्गंध, ऐसैं दोय भेदरूप गंध है। बहुरि कृष्ण नीले रक्त पीत श्वेत ए पंच-प्रकार वर्ण है। ऐसैं बीस भेद हैं। इन एकएकका एक दोय तीन च्यार संख्यात असंख्यात अनेक भेद हैं। अर अविभागप्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा अनंतभेद हैं। ए स्पर्श रस गंध वर्ण जिनकै होय ते पुद्गल हैं। समस्त पुद्गलनिविषै ए च्यारों गुण निश्चय करना। इहां केई अन्यमती कहै हैं—जो पृथ्वी आदिके परमाणु जातिभेदरूप हैं पृथ्वी आदिकनिके परमाणु जुदीजुदी जातिके हैं कदाचित् परस्पर एक होय नहीं ऐसैं कहै हैं। तहां पृथ्वीके परमाणुमें तो स्पर्श रस गंध वर्ण ए चार गुण हैं। अर जलविषै गंधविना तीनगुण कहै हैं। अग्निविषै गंध रस दोऊ नाहीं हैं। स्पर्श वर्ण दोयही गुण हैं। पवनविषै गंध रस रूप ए तीन गुण नाहीं है एक स्पर्शगुणही है। ऐसैं कहै हैं सो अप्रमाण है। जातैं पृथ्वी जल अग्नि पवनके पर-माणु जातिभेदरूप नहीं हैं। एक पुद्गलही पृथिव्यादि अनेक प्रकार परिणमे है। सबनिमें स्पर्श रस गंध वर्ण ए च्यार गुण हैं। गुणनिकी हीनता कोई पुद्गलमैंभी नहीं है। पृथ्वीतैं जल होना जलतैं पृथ्वी होना इत्यादि जातिसंकर देखिए है। पृथ्वी जो पाषाण तथा काष्ठतैं अग्नि प्रगट होय है। अग्नितैं कज्जल तथा भस्मादिक पृथ्वी प्रगट होय है। चंद्रकांत मणि पृथ्वी है। तातैं जल प्रगट होते देखिए है। जलतैं मोती तथा लवण ए पृथ्वी उपजती देखिए है। पृथ्वी जो जव नाम अन्न ताके भक्षणतैं वायु उपजती देखिए है ऐसैं पृथ्वी जलादिक ए समस्त पुद्गलद्रव्यहीके विकार हैं सबही चारो गुणनिकरि सहित हैं सो आगम [illegible] सिद्ध है। ऐसैं पुद्गलद्रव्यका गुण तौ कह्या। आगैं पुद्गल द्रव्यके पर्यायनिकूं कहै हैं—

शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवंतश्च ॥ २४ ॥

अर्थ—शब्द बंध सूक्ष्म स्थूल संस्थान भेद तम छाया आतप उद्योत इनि पर्यायनिसहित हैं ते पुद्गल द्रव्य हैं। तहां शब्द दोय प्रकार है। एक भाषात्मक एक अभाषात्मक। तिनमें भाषात्मकहू दोय प्रकार है। एक अक्षररूप एक अनक्षररूप। तिनमें अक्षररूप तो शास्त्रादिककरि प्रगट किया संस्कृत वा देशभाषारूप आर्य म्लेच्छनिकै व्यवहारका कारण है। अर अनक्षररूप द्वीन्द्रियादिकनिकी तथा अतिशयरूप ज्ञानके प्रकाशनेकूं कारण केवलीकी दिव्यध्वनि सो ए समस्तही भाषा पुरुषके प्रयत्नतें भई प्रायोगिक हैं। बहुरि अभाषारूप शब्द है सोभी दोय प्रकार है। एक प्रायोगिक, एक वैस्रसिक। पुरुषके यत्नतें उपजै सो प्रायोगिक कहिये है बहुरि पुरुषके यत्नकी अपेक्षारहित स्वाभाविक होय सो वैस्रसिक है। सो मेघगर्जनादिकका है। अर प्रायोगिक च्यार प्रकार है। तत, वितत, घन, सौषिर। तिनमें चर्मके तननादि उपजे नगारे ढोल मृदंगादिकके शब्द ते तत कहिए। बहुरि तांति तारके वीणा सहतार तमूरा इत्यादिकतें करी उपज्या शब्द ताकूं वितत कहिये है। बहुरि ताल घंटादिकके हलावनेकरि उपजा सो घन है। बहुरि बांसुरी शंख आदिकनें उपज्या सो सुषिर है। ऐसें शब्दके भेद कहे। बहुरि बंध दोय प्रकार है। वैस्रसिक अर प्रायोगिक। तहां जो पुरुषके यत्नकी अपेक्षारहित होय सो वैस्रसिक है। सो वैस्रसिक दोय प्रकार है। एक आदिमान एक अनादिमान। तिसमें स्निग्ध रूक्षादि गुणनिके निमित्ततें बिजुली उल्कापात बादला इंद्रधनुष आदिमान वैस्रसिक बंध कहिए। बहुरि धर्म अधर्म आकाश इत्यादिकनिकै अनादि बंध है। वा पुद्गलनिमें महास्कंधादिकनिकै अनादि बंध है। बहुरि पुरुषके प्रयत्नतें बंध सो प्रायोगिक है। सो दोय प्रकार है। एक अजीवविषय एक जीवाजीवविषय। तहां लाखकै अर काष्ठकै

सचिक्कण, रूक्ष ए अष्टप्रकारका स्पर्श है। बहुरि खाटो, मीठो, कडवो, कपायलो, चिरपरो ए पंचप्रकार रस है। बहुरि सुगंध, दुर्गंध, ऐसें दोय भेदरूप गंध हैं। बहुरि कृष्ण नील रक्त पीत श्वेत ए पंचप्रकार वर्ण हैं। ऐसें वीस भेद हैं। इन एकएकका एक दोय तीन चार संख्यात असंख्यात अनेक भेद हैं। अर अविभागप्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा अनंतभेद हैं। ए स्पर्श रस गंध वर्ण जिनकैं होय ते पुद्गल हैं। समस्त पुद्गलनिके ए च्यारों गुण निश्चय करना। इहां केई अन्यमती कहैहैं—जो पृथ्वी आदिके परमाणु जातिभेद रूप हैं पृथ्वी आदिकनिके परमाणु जुदीजुदी जातिके हैं कदाचित् परस्पर एक होय नहीं जुदेही रहैहैं। तहां पृथ्वीके परमाणुमें तो स्पर्श रस गंध वर्ण ए चार गुण हैं। अर जलविषै गंधविना तीनगुण कहैहैं। अग्निविषै गंध रस दोऊ नाहींहैं। स्पर्श वर्ण दोयही गुण हैं। पवनविषै गंध रस रूप ए तीन गुण नाहीं है एक स्पर्शगुणही है। ऐसें कहैहैं सो अप्रमाण है। जातें पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणु जातिभेदके रूप नहीं हैं। एक पुद्गलही पृथिव्यादि अनेक प्रकार परिणमे है। सबनिमें स्पर्श रस गंध वर्ण ए च्यार गुण हैं। गुणनिकी हीनता कोई पुद्गलमें भी नहींहै। पृथ्वीतें जल होना जलतें पृथ्वी होना इत्यादि जातिसंकर देखिए हैं। पृथ्वी जो पाषाण तथा काष्ठतें अग्नि प्रगट होय है। अग्नितें कज्जल तथा भस्मादिक पृथ्वी प्रगट होय है। चंद्रकांत मणि पृथ्वी है। तातें जल प्रगट होते देखिएहै। जलतें मोती तथा लवण ए पृथ्वी उपजते देखिए है। पृथ्वी जो जव नाम अन्न ताके भक्षणतें वायु उपजती देखिए है जातें पृथ्वी जलादिक ए समस्त पुद्गलद्रव्यकेही विकार हैं सबंही चारों गुणनिकरि सहित हैं सो आगम अनुमान करि सिद्ध है॥ ऐसें पुद्गलद्रव्यका गुण तो कह्या आगें पुद्गल द्रव्यके पर्यायनिकूं कहैहैं—

शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवंतश्च ॥ २४ ॥

अर्थ—शब्द बंध सूक्ष्म स्थूल संस्थान भेद तम छाया आतप उद्योत इनि पर्यायनिसहित हैं ते पुद्गल द्रव्य हैं। तहां शब्द दोय प्रकार है। एक भाषात्मक एक अभाषात्मक। तिनमें भाषात्मकहू दोय प्रकार है। एक अक्षररूप एक अनक्षररूप। तिनमें अक्षररूप तो शास्त्रादिककरि प्रगट किया संस्कृत वा देशभाषारूप आर्य म्लेच्छनिकै व्यवहारका कारण है। अर अनक्षररूप द्वींद्रियादिकनिकी तथा अतिशयरूप ज्ञानके प्रकाशनेकूं कारण केवलीकी दिव्यध्वनि सो ए समस्तही भाषा पुरुषके प्रयत्नतें भई प्रायोगिक हैं। बहुरि अभाषारूप शब्द है सोभी दोय प्रकार है। एक प्रायोगिक, एक वैस्रसिक। पुरुषके यत्नतें उपजै सो प्रायोगिक कहिए है बहुरि पुरुषके यत्नकी अपेक्षारहित स्वाभाविक होय सो वैस्रसिक है। सो मेघगर्जनादिकका है। अर प्रायोगिक च्यार प्रकार है। तत, वितत, घन, सौषिर। तिनमें चर्मके तननादि उपजे नगारे ढोल मृदंगादिकके शब्द ते तत कहिए। बहुरि तांति तारके वीणा सहतार तमूरा इत्यादिकतें कर्यौ उपज्या शब्द ताकूं वितत कहिए है। बहुरि ताल घंटादिकके हलावनेकरि उपजा सो घन है। बहुरि बांसुरी शंख आदिकतें उपज्या सो सौषिर है। ऐसें शब्दके भेद कहे। बहुरि बंध दोय प्रकार है। वैस्रसिक अर प्रायोगिक। तहां जो पुरुषके यत्नकी अपेक्षारहित होय सो वैस्रसिक है। सो वैस्रसिक दोय प्रकार है। एक आदिमान एक अनादिमान। तिसमें स्निग्ध रूक्षादि गुणनिके निमित्ततें बिजुली उल्कापात बादला इंद्रधनुष आदिमान वैस्रसिक बंध कहिए। बहुरि धर्म अधर्म आकाश इत्यादिकनिकै अनादि बंध है। वा पुद्गलनिमें महास्कंधादिकनिकै अनादि बंध है। बहुरि पुरुषके प्रयत्नतें बंध सो प्रायोगिक है। सो दोय प्रकार है। एक अजीवविषय एक जीवाजीवविषय। तहां लाखकै अर काष्ठकै 

सचिक्कण, रूक्ष ए अष्टप्रकारका स्पर्श है। बहुरि खाटो, मीठो, कडवो, कषायलो, चिरपरो ए पंचप्रकार रस है। बहुरि सुगंध, दुर्गंध, ऐसैं दोय भेदरूप गंध हैं। बहुरि कृष्ण नील रक्त पीत श्वेत ए पंच-प्रकार वर्ण हैं। ऐसैं वीस भेद हैं। इन एकएकका एक दोय तीन चार संख्यात असंख्यात अनेक भेद हैं। अर अविभागप्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा अनंतभेद हैं। ए स्पर्श रस गंध वर्ण जिनकैं होय ते पुद्गल हैं। समस्त पुद्गलनिकै ए च्यारों गुण निश्चय करना। इहां केई अन्यमती कहैहैं—जो पृथ्वी आदिके परमाणु जातिभेद रूप हैं पृथ्वी आदिकनिके परमाणु जुदीजुदी जातिके हैं कदाचित् परस्पर एक होय नहीं जुदेही रहैहैं। तहां पृथ्वीके परमाणुमैं तो स्पर्श रस गंध वर्ण ए चार गुण हैं। अर जलविषैं गंधविना तीनगुण कहैहैं। अग्निविषैं गंध रस दोऊ नाहींहैं। स्पर्श वर्ण दोयही गुण हैं। पवनविषैं गंध रस रूप ए तीन गुण नाहीं है एक स्पर्शगुणही है। ऐसैं कहैहैं सो अप्रमाण है। जातैं पृथ्वी जल अग्नि पवनके पर-माणु जातिभेदके रूप नहीं हैं। एक पुद्गलही पृथिव्यादि अनेक प्रकार परिणमै है। सवनिमैं स्पर्श रस गंध वर्ण ए च्यार गुण हैं। गुणनिकी हीनता कोई पुद्गलमैंभी नहीं है। पृथ्वीतैं जल होना जलतैं पृथ्वी होना इत्यादि जातिसंकर देखिए हैं। पृथ्वी जो पाषाण तथा काष्ठतैं अग्नि प्रगट होय है। अग्नितैं कज्जल तथा भस्मादिक पृथ्वी प्रगट होय है। चंद्रकांत मणि पृथ्वी है। तातैं जल प्रगट होते देखिए है। जलतैं मोती तथा लवण ए पृथ्वी उपजते देखिए है। पृथ्वी जो जव नाम अन्न ताके भक्षणतैं वायु उपजती देखिए है जातैं पृथ्वी जलादिक ए समस्त पुद्गलद्रव्यकेही विकार हैं सर्वही चारो गुणनिकरि सहित हैं सो आगम अनुमान करि सिद्ध है॥ ऐसैं पुद्गलद्रव्यका गुण तो कह्या आगैं पुद्गल द्रव्यके पर्यायनिकूं कहैहैं—

शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवंतश्च ॥ २४ ॥

अर्थ—शब्द बंध सूक्ष्म स्थूल संस्थान भेद तम छाया आतप उद्योत इनि पर्यायनिसहित हैं ते पुद्गल द्रव्य हैं। तहां शब्द दोय प्रकार है। एक भाषात्मक एक अभाषात्मक। तिनमें भाषात्मकहू दोय प्रकार है। एक अक्षररूप एक अनक्षररूप। तिनमें अक्षररूप तो शास्त्रादिककरि प्रगट किया संस्कृत वा देशभाषारूप आर्य म्लेच्छनिके व्यवहारका कारण है। अर अनक्षररूप द्वींद्रियादिकनिकी तथा अतिशयरूप ज्ञानके प्रकाशनेकूं कारण केवलीकी दिव्यध्वनि सो ए समस्तही भाषा पुरुषके प्रयत्नतें भई प्रायोगिक है। बहुरि अभाषारूप शब्द है सोभी दोय प्रकार है। एक प्रायोगिक, एक वैस्रसिक। पुरुषके यत्नतें उपजे ते प्रायोगिक कहिएहै बहुरि पुरुषके यत्नकी अपेक्षारहित स्वाभाविक होय सो वैस्रसिक है। सो मेघगर्जनादिकनिका है। अर प्रायोगिक च्यार प्रकार है। तत, वितत, घन, सौषिर। तिनमें चर्मके तननादि उपजे नगार ढोल मृदंगादिकके शब्द ते तत कहिए। बहुरि तांति तारके वीणा सहतार तमूरा इत्यादिकतें उपजे उपज्या शब्द ताकूं वितत कहिएहै। बहुरि ताल घंटादिकके हलावनेकरि उपजा सो घन है। बहुरि बांसुरी शंख आदिकतें उपज्या सो सौषिरहै। ऐसें शब्दके भेदकहे। बहुरि बंध दोय प्रकार है। वैस्रसिक अर प्रायोगिक। तहां जो पुरुषके यत्नकी अपेक्षारहित होय सो वैस्रसिक है। सो वैस्रसिक दोय प्रकार है। एक आदिमान एक अनादिमान। तिसमें स्निग्ध रूक्षादि गुणनिके निमित्ततें बिजुरी उल्कापात बादला इंद्रधनुष आदिमान वैस्रसिक बंध कहिए। बहुरि धर्म अधर्म आकाश इत्यादिकनिकै अनादि बंध है। वा पुद्गलनिमें महास्कंधादिकनिकै अनादि बंध है। बहुरि पुरुषके प्रयत्नतें बंध सो प्रायोगिक है। सो दोय प्रकार है। एक अजीवविषय एक जीवाजीवविषय। तहां लाखकै अर काष्ठकै 

वंध सो अजीवविषय वंध है। वहुरि कर्मनोकर्मबंध है सो जीवाजीवविषय है। वहुरि सौक्ष्म्य दोय प्रकार है। अंत्य अर आपेक्षिक। तहां परमाणु तो अंत्य सूक्ष्म है। अर बेलतैं आमला सूक्ष्म है। आमलातैं वेर सूक्ष्म ऐसैं अन्यकी अपेक्षातैं सूक्ष्म सो आपेक्षिकसूक्ष्म है। वहुरि स्थौल्यभी दोय प्रकार है। एक अंत्य दूजा आपेक्षिक। तहां जगद्व्यापी महास्कंध तो अंत्यस्थौल्य है। अर वेर आमला वेल तालफल इत्यादिक अन्यकी अपेक्षातैं आपेक्षिक स्थौल्य हैं। वहुरि संस्थान दोय प्रकार है। एक इत्थंलक्षण एक अनित्थंलक्षण। इहां संस्थान नाम आकृतिका है। तहां गोल त्रिकोण चौकोर लंवा चौडा परिमंडलरूप तो इत्थंलक्षण-संस्थान है। अर जो बादलेनिकीज्यों जिनका आकार आकृति नहीं कहीजाय सो अनित्थंलक्षण है। वहुरि भेद हैं ते छह प्रकार हैं। उत्कर[1] चूर्ण[2] खंड[3] चूर्णिका[4] प्रतर अणुचटन ऐसैं छह प्रकार हैं। तहां जो करोंतादिकनिकरि काष्ठादिकनिका चूर उतारना सो उत्करनाम भेद है। वहुरि यवांका गोहांका सातू वा कणिकादिक सो चूर्ण नाम भेद है। अर घटादिकनिका कपाल खंडशर्करादिक होय सो खंड नाम भेद है। उडद मूंग चौंला इत्यादिकनिकी दालि सो चूर्णिकानाम भेद है। अर अभ्रपटलादिकनिका पुडत उतलै है सो प्रतर नाम भेद है। तप्त लोहपिंडादिकनिकों लोहके घनादिककरि घात करिए तादि स्फुलिंगनिका निर्गमन होय सो अणुचटन नाम भेद है। ऐसैं छह प्रकार भेद कह्या। वहुरि प्रकाशका विरोधी अंधकार सो तम है। वहुरि प्रकाशके आवरणका कारण सो छाया है। सो दोय प्रकार है। तहां काचविषैं मुखका वर्णादिकनिका परिणमन दिखना सो तद्वर्णपरिणति नाम छाया है। वहुरि दूजी प्रतिबिंब स्वरूपही है। वहुरि सूर्यविमानके निमित्ततैं उत्तमप्रकाश होय सो आतप कहिए वहुरि चंद्रकांत मणि अग्नि इत्यादिकका प्रकाश सो उद्योत कहिए। एते शब्दादिक कहे ते समस्त पुद्गलकी पर्याय हैं।

बहुरि सूत्रमें "च" शब्द कहा तातैं प्रेरणा अभिघात आदिभी होय ते पुद्गलके विकार हैं तिनकाहू समुच्चय चशब्दकरि होय है। तैसेंही औरहू अनेकप्रकार पुद्गलका पर्याय जानना। बहुरि इहां केई अन्यमती शब्दकों आकाशका गुण मानैंहैं। सो अप्रमाण है। जातैं शब्द मूर्तिक है आकाश अमूर्तिक है सो शब्द आकाशका गुण कैसे होय। बहुरि शब्दका मूर्तिकपणा साक्षात् है जातैं शब्दकों कर्णइंद्रियकरि ग्रहण करिये है तथा हस्तादिकरि रोकिए है। भीती इत्यादिकरि रुकैंहै। पवनादिक मूर्तिकवस्तुनिकरि तिरस्कार होयहै। तातैं शब्द है सो पुद्गलद्रव्यका पर्याय है मूर्तिक है यह प्रमाणसिद्ध है। पुद्गल स्कंधनिके परस्पर भिडनेतैं शब्दपर्याय प्रगट होयहै॥ अब पुद्गलनिमें भेद कहैहैं—

अणवः स्कंधाश्च ॥ २५ ॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्यके अणु अर स्कंध ए दोय भेद हैं। एक प्रदेशमात्रहीमें स्पर्शादिक गुणनिकरि निरंतर परिणमै है तातैं अणु कहिए है। सूक्ष्मपणातैं आपही आदि आपही मध्य आपही अंत ऐसा सूक्ष्म अविभागी जाका विभाग नहीं होय सो परमाणु है। अर जो स्थूलपणाकरि ग्रहण निक्षेपणादि व्यापारकूं प्राप्त होय सो स्कंध है। अर ग्रहण निक्षेपणादिक व्यापारके योग्य नहीं होय ऐसे सूक्ष्म परिणमनरूपहू स्कंध होय हैं। परमाणुनिविषै रूक्ष स्निग्धपणामैंतैं एक गुण होय अर शीत उष्णमैंतैं एक ऐसैं दोय गुण तौ स्पर्शके हैं। अर एक रस एक गंध एक वर्ण ऐसैं पांच गुणसहित होय है। जातैं परमाणु निरवयव है याके अंश नाहीं। जाकै अनेकरससहितपणा होय ऐसे मातुलिंगादि फलकै अनेक रसपणा देखिए है। मयूरादिकनिकै अनेकवर्णपणा देखिए है। अनुलेपनादिकनिके अनेक गंधपणा देखिए है। परमाणु अवयवरहितही है यातैं रस गंध वर्ण इनका एकपणा ही है। अर स्पर्शके दोयही भेद हैं। जातैं हलका भारी नरम

कठोर ए स्कंधके विषय हैं तातैं परमाणुमैं नहीं हैं। वहुरि द्व्यणुकादि बहुत परमाणुके मिलनरूप स्कंध हैं ते स्पर्श रस गंध वर्ण गुणनिसहित अनेक प्रकार हैं। ऐसैं पुद्गलद्रव्यके अणु स्कंध रूप दोय भेद जानने। यद्यपि द्व्यणुकादिक तथा स्पर्श रस गंध वर्णादिककरि अनंतभेदरूप हैं तथापि इन दोऊ भेदनिमैं गर्भित हैं॥ अव स्कंधनिकी उत्पत्तिके हेतु कहनेकूं सूत्र कहे हैं—

भेदसंघातेभ्य उत्पद्यंते ॥ २६ ॥

अर्थ—पुद्गलनिके स्कंध हैं ते भेदतैं तथा संघाततैं उपजैहैं। बाह्य अभ्यंतर निमित्तके वसतैं स्कंध विदारे जाय सो भेद है। वहुरि न्यारे न्यारे होंय तिनका एकपणा सो संघात है। इहां भेद अर संघात दोऊनिकै वहुवचन है तातैं तीसरा भेद जो भेद अर संघात दोऊनितैंहू स्कंध उपजै है। तहां दोय वा तीन च्यार इत्यादि संख्यात असंख्यात अनंत परमाणु मिलि स्कंध होय है। वा केई स्कंधनिमैं कोई स्कंध वा परमाणु मिलि स्कंध होय है ऐसैं संघाततैं स्कंधनिकी उत्पत्ति कही। अर तैसैंही स्कंधके भेद होतैं दोय परमाणुका स्कंधपर्यंत स्कंध उपजैहैं। वहुरि ऐसैंही कोई स्कंधका भेद होय कोई अन्य स्कंधका मिलना होय ऐसैं भेद संघाततैंभी स्कंध उपजैहैं॥ अव अणुकी उत्पत्तिका नियमके अर्थि सूत्र कहेहैं—

भेदादणुः ॥ २७ ॥

अर्थ—परमाणु हैं सो भेदहीतैं उपजैहैं संघाततैं नहीं उपजैहैं॥ अव इहां कोऊ कहै—जो संघाततैंही स्कंधकी उत्पत्ति होय है फेरि भेदसंघातका ग्रहण करना अनर्थक है ऐसैं कहतैं इनका ग्रहण करनेका प्रयोजन जनावनेकूं सूत्र कहे हैं—

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

अर्थ—इंद्रियगोचर जो स्कंध होय है सो भेद संघात दोऊनितैं होय है । अनंतपरमाणुनिका स्कंध है सो कोऊ स्कंध चक्षु इंद्रियके गोचर होय कोऊ स्कंध चक्षु इंद्रियगोचर नाहीं होय। सो कैसें नेत्र इंद्रियके गोचर होय? इस हेतुतैं "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः" ऐसा सूत्र कह्या है। केवल भेदही तैं नेत्र इंद्रियके गोचर नहीं होय है। भेद संघात दोऊनितैं होय है। सोही कहिए है। जो सूक्ष्मपरिणमनरूप स्कंध है ताका भेदकूं होतेकूं आपने सूक्ष्मपरिणामकूं नाहीं छांडै है तदि इंद्रियनिके ग्रहणमैंहू नाहीं आवै है। अर जब वह सूक्ष्मपरिणाम्या स्कंध अन्य स्कंधमें संघातरूप होय मिलै तब सूक्ष्मपणाके परिणामकूं छांडि स्थूलपणाको प्राप्त होय चक्षु इंद्रियके गोचर होय है इंद्रियनिकरि ग्रहण करनेयोग्य होय है ॥ अब द्रव्यका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

सत् द्रव्यलक्षणं ॥ २९ ॥

अर्थ—द्रव्यका लक्षण सत् है जो सत् है सोही द्रव्य है । यह सामान्य अपेक्षाकरि द्रव्यका लक्षण है। जातैं सर्व द्रव्य सन्मय है जो सत् है सो द्रव्य है। इहां ऐसा विशेष जानना। जो सत्का भाव ताही सत्ता कहिए वा सत्त्व कहिए। सत् नाम अस्तित्वका है। जो वस्तु है सो सर्वथा नित्यपणा करिकै नहीं है अर सर्वथा क्षणिकपणा करिकै नहीं है। सर्वथा नित्यही होय तो क्रमतैं होते जे वस्तुमें अनेक भाव तिनका अभावतैं विकारवानपणा कैसें होय अर सर्वथा क्षणिक जो क्षणविनाशीकही मानिये तो यो वस्तु सो पूर्वै था सोही है ऐसा प्रत्यभिज्ञानका अभाव होय तदि वस्तुके एकसंतानपणा काहेतैं होय तातैं प्रत्यभिज्ञानका कारणभूत कोऊ स्वरूप करिकैं तो वस्तु ध्रुवपणाकूं अवलंबन करै है। अर कितने

क्रमतैं प्रवर्त्ततै स्वरूपकरि नष्ट होता अर उत्पन्न होता संता एककालविषै निश्चयथकी उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप तीन अवस्थाकूं धारण करता वस्तुकूं सत् मानना योग्य है। ऐसैं सत् वस्तु तीनरूप है। याहीतैं सत्ताकूंहू उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप मानना योग्य है। जातैं भावकै अर भाववान्कै कथंचित् एकस्वरूपपणा है। अब जो यो सत्ता है सो त्रिलक्षणरूप समस्त वस्तुके स्वरूपमें सदृशपणाकूं कहै है। जो यो सत् है। ऐसैं समस्त त्रिलक्षणरूप वस्तुकूं सत् कहैहै तातैं एक है। वहुरि त्रिलक्षणरूप समस्त पदार्थनिकूं जो सत् यैसा नाम कहिये हैं वा सतपणाकी प्रतीत करिये है तिनका मूल एक सत्ता है तातैं या सत्ता सर्वपदार्थस्थिता है। वहुरि समस्त वस्तुका स्वभाव जे उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप त्रिलक्षण स्वभाव तिनकरि सहित व्यावर्त्तै है तातैं या सत्ता विश्वरूपा है। वहुरि द्रव्यनिमैं पर्यायनिकी अनंत व्यक्ति है ते समस्त व्यक्ति त्रिलक्षणरूप हैं। तिनतैं सत्ता जानिये है। यातैं या सत्ता अनंत पर्याय है। येसैं या सत्ता है तोहू सर्वथा ऐसीही एकांततैं नहीं है। अपना प्रतिपक्षीकरि सहित है कथंचित् सत्ता कथंचित् असत्ता कथंचित् त्रिलक्षणा कथंचित् अत्रिलक्षणा कथंचित् एका कथंचित् अनेका कथंचित् एकपदार्थस्थिता कथंचित् सर्वपदार्थस्थिता कथंचित एकरूपा कथंचित् विश्वरूपा कथंचित् एकपर्याया कथंचित् अनेकपर्याया ऐसैं सत्ताकूं अनेक भेदरूप कहैहैं ॥

सत्ता दोय प्रकार है। एक महासत्ता, एक अवांतरसत्ता। तिनमें समस्त सत्पदार्थनिका समूहमें व्यापनेवाला जो सदृश अस्तित्व ताकी कहनेवाली सो तो महासत्ता है। जाकरिकै घट पट स्तंभ पृथ्वी आकाश जल स्थल जीव अजीव समस्त द्रव्य सत् कहावै हैं। जो योभी सत् यो भी सत् समस्त सत्रूपही है सो तो महासत्ता है। अर वस्तुवस्तुप्रति नियमतैं भिन्न भिन्न अपने अपने स्वरूपके अस्तित्वको सुचानेवाली

अवांतरसत्ता है। तिनमैं महासत्ता तौ अवांतरसत्ताकी अपेक्षा असत्ता है। जातैं महासत्ता जो समस्त वस्तुकी सत्ता सो एक वस्तुकी सत्ता कैसें होय। जो समस्तवस्तुकी सत्तारूप जो महासत्ता एकवस्तुकी सत्ता होजाय तौ समस्तवस्तु एकवस्तुरूप होजाय सो होयनहीं तातैं अवांतरसत्ताकी अपेक्षा महासत्ता असत्ता है। अर अवांतरसत्ता महासत्तारूपकरि असत्ता है। जातैं एकवस्तुकी सत्ता महासत्ता कैसें होय जो एकवस्तुकी सत्ताही महासत्ता होजाय तौ समस्त वस्तु एक होजाय। तातैं सत्तातैं प्रतिपक्षी कथंचित् असत्ता है। बहुरि जिस स्वरूपकरि उत्पाद है सो तिस स्वरूपकरि उत्पादही एक जाका लक्षण है। अर जिस स्वरूपकरि विनाश है तिस स्वरूपकरि विनाशैकलक्षणही है। अर जिस स्वरूपकरि ध्रौव्य है तिस स्वरूप करि ध्रौव्यैकलक्षण है। जैसें उत्पाद है सो घटपटपणाकरिकैही है पिंडपणाकरिकै नहींहै। अर मृत्तिकापणाकरिकै नहींहै। अर विनाश है सो पिंडपणाकरिकैही है। घटपणाकरिकै नहींहै। अर मृत्तिकापणाकरि नहींहै। अर ध्रौव्य है सो मृत्तिकापणाकरिकैही है घटपणा करिकै पिंडपणाकरिकै नहीं है। ऐसें उत्पद्यमान उच्छिद्यमान अवतिष्ठमान जे वस्तुके स्वरूप तिनकै प्रत्येक त्रिलक्षणपणाका अभाव है यातैं कथंचित् अत्रिलक्षणपणा त्रिलक्षणपणाका प्रतिपक्षी वस्तुकै है। बहुरि जो एकवस्तुका स्वरूपकी सत्ता है सो अन्यवस्तुका स्वरूपकी सत्ता नहीं होयहै तातैं एकपणाका प्रतिपक्षी अनेकपणा है। बहुरि पदार्थ पदार्थनिकी सत्ताका जुदाजुदा नियम है कोऊ पदार्थकी सत्ता कोऊ अन्य पदार्थकी सत्तासैं मिलै नहीं सो ऐसी पदार्थनिकै जुदाजुदापणाका नियम है तातैं सर्वपदार्थस्थितिका प्रतिपक्षी एकपदार्थस्थितिपणा है। बहुरि जिस पदार्थका जो रूप है तिस रूपकी सत्ता तिस पदार्थहीमैं है अन्यमैं नहीं तातैं एक रूपपणा विश्वरूपपणाका प्रतिपक्षी है। बहुरि ऐकऐक वस्तुकै अनंतपर्याय है तिनमैं ऐकऐक पर्यायप्रति सत्ता

का जुदाजुदा नियम है। यातैंही पर्यायनिकैं भिन्नता हैं तातैं कथंचित् एकपर्यायपणा अनंतपर्यायका प्रतिपक्षी जानना। ऐसैं सामान्यविशेषस्वरूपका प्ररूपणमैं समर्थ ऐसा दोऊ नयनिकै आधीन समस्त कथन निर्दोष है। नयनिकूं जानेविना वस्तुका यथावत् जानना नही होय तादि एकांतग्रहणकरि विपरीतताकूं प्राप्त होयहै॥ अब सत्का लक्षण कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

अर्थ—उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनपणाकरि युक्त है सो सत् है। अपनी जातिकों नाहीं छांडते जे चेतन अचेतन द्रव्य तिनकै बाह्य अभ्यंतर निमित्तके वशतैं येक परणतितैं अन्य परणतिको प्राप्त होना सो उत्पाद हैं। जैसैं मृत्तिका द्रव्यविषैं पिंडपर्यायका नाश होना अर घटपर्यायका उपजना ऐसैं उत्पाद जानना। तथा एकजातिमैं विरोधरहित क्रमतैं होता जो भावनिका संतान ताकै विषै पूर्वभावका अभाव होना सो विनाश है ताहीकूं समुच्छेद कहिए हैं व्यय कहिए हैं। अर उत्तरभावका प्रगट होना सो उत्पाद है। अर पूर्व भावका नाश अर उत्तर भावका उत्पाद होतैंहू आपनी जातिका नाहीं छांडना सो ध्रौव्य है। ए उत्पाद व्यय ध्रौव्य सामान्यतैं तो अभिन्न हैं वोही एकद्रव्य है द्रव्यतैं भिन्न नहीहै। अर विशेषकी अपेक्षा समस्तपर्यायक्रमवर्ती जुदीजुदी हैं परस्पर मिलै नहीं तिसकरि भिन्न हैं। द्रव्यविषैं तीनों धर्म युगपत् एक कालमैं पाइयेहैं द्रव्यका स्वभाव है याहीतैं द्रव्यका लक्षण है। जातैं जो उत्तरपर्यायका उपजना सोही पूर्वपर्यायका नाश होना है अर जो पूर्वपर्यायका नाश होना सोही उत्तरपर्यायका उत्पाद है अर द्रव्य है सो उत्पादमैंहू वेही द्रव्य है अर व्ययमैंहू वेही द्रव्य है अन्य नाही भया अर उत्पाद व्यय द्रव्यमैं समय समय होइ हैं जातैं सर्वद्रव्य परिणामी हैं परिणमनविना कोऊ समयमैंहू द्रव्य नहींहै। तातैं जो सत्

स्वरूप द्रव्य है सो उत्पाद व्यय ध्रौव्यस्वरूप ही है ।

बहुरि ए तीनों द्रव्यमें परस्पर सापेक्षही हैं । इनके जो परस्पर अपेक्षा नहीं होय तो वस्तुही सिद्ध नहीं होय । जो केवल उत्पादही मानिए तो नवीन वस्तुका उपजना ठहरै सो अत्यंत असत् ताका उपजना कैसे नहीं । पूर्वे जो वस्तु सत्रूप होयगा ताहीका अन्य पर्यायका उपजना होयगा अर जो पूर्वे सर्वथा असत् था अर फिर नवीन उपज्या मानिए तो मृत्तिकाविना घटका उत्पाद अर सुवर्णविना कुंडलका उपजना होयगा सो सर्वथा अवस्तुका उत्पाद होना नहीं है । पर्याय नवीन उपजै है अर विनसै है । द्रव्यका स्वभावकरि उत्पाद विनाश नहीं है । बहुरि सर्वथा वस्तुका विनाशही मानिए तो तिसका फेर उपजना नहीं ठहरैगा केवल शून्यका प्रसंग आवैगा । घटका विनाश होते माटीका विनाश अर कुंडलका विनाश होते सुवर्णका नाश ऐसें प्रत्यक्ष दोष आवै । अर जो एकांत करि ध्रौव्यही मानिए तो वस्तुमें उत्पाद विनाश प्रत्यक्ष देखिये है तिस समस्त व्यवहारकै असत्पना आवै तब व्यवहारका लोप होय । ऐसा उत्पाद व्यय ध्रौव्यहीकूं एकांतकरि सत् कहिये तो पूर्वापरका जोडरूप नित्यभावविना वस्तुका अभाव भया यदि उत्पाद व्यय हीनके होय समस्त व्यवहारका लोप होय तातैं सत् है सो उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है । अथवा आगें कथ कहैंगे जो गुण पर्याय द्रव्यका लक्षण है । अनेकांतस्वरूप वस्तुके अन्वयी जोडरूप तो गुण है । अर व्यतिरेकी पर्याय हैं । जैसें मृत्तिकाविषैं स्पर्श रस गंध रूप ये तो गुण हैं । अर पिंड घट कपाल खंड शर्करादिक पर्याय हैं । स्पर्श रस गंध वर्ण गुण हैं ते तो मृत्तिकाके साथिही घट कपाल खंडादिक समस्त पर्यायनिमें पाइए है तातैं स्पर्शादिक गुण अन्वयी हैं । अर घट कपालादिक पर्याय भिन्नभिन्न कालमें पाइए है जिस कालमें पिंडपर्याय है तिस कालमें घटादिक अन्य

पर्याय नहीं अर घटपर्याय है तिसमैं पिंडादिक पर्याय नहीं तातैं पर्याय व्यतिरेकी हैं। अर द्रव्यतैं गुण पर्याय भिन्न नहीं गुणपर्यायात्मकही द्रव्य है । गुण हैं ते तो द्रव्यमैं युगपत प्रवर्तैं हैं। पर्याय हैं ते क्रम-करि प्रवर्तैं हैं तातैं गुणपर्याय हैं ते द्रव्यका स्वभावभूत हैं तातैं द्रव्यका लक्षणपणाकूं धारण करैहैं। ऐसैं द्रव्यके तीन लक्षण कहै।

एक द्रव्यका लक्षण सत् कह्या। एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तपणा कह्या। एक गुणपर्यायवान्पणा कह्या। इन तीन लक्षणनिकै मध्य एककूं कहतै संतै अन्य दोय लक्षण अर्थतैंही आजाय हैं। जो सत् लक्षण कहिए तो उत्पादव्ययध्रौव्यवानपणा अर गुणपर्यायवान्पणा स्वयमेव आवैहैं अर उत्पादव्यय-ध्रौव्यवान् कहिए तहां सत्पणा अर गुणपर्यायवान्पणा स्वयमेव आवैहैं। अर गुणपर्यायवान्पणा तहां सत्पणा अर उत्पादव्ययध्रौव्यपणा आपही आवैहै। जो सत् है सो नित्यानित्यस्वभाव है यातैं ध्रुवपणा अर उत्पादव्ययपणाकूं प्रगट करैहै। बहुरि जो सत् है सो ध्रुवस्वरूप गुणनिकरि अर उत्पादव्ययस्वरूप पर्यायनिकरि सहित अपना एकपणाकूं कहैही है। बहुरि उत्पाद व्यय ध्रौव्य जे हैं तेहू नित्य अनित्य है स्वरूप जाका ऐसा परमार्थभूत सत्कूं जणावैहैं अर अपने स्वरूपके लाभका निमित्त गुणपर्यायनिकूंहू विस्तारैहैं। जातैं उत्पादव्ययध्रौव्य रूप होयगा सो नित्यअनित्यरूपही होयगा। अर गुणनिविना ध्रौव्य-पणा कैसैं होय। अर पर्यायनिविना उत्पाद व्यय कौनका होय तातैं गुणपर्यायवानहू होयही। बहुरि गुणपर्याय हैं ते अन्वयव्यतिरेकीपणातैं ध्रौव्य उत्पाद विनाशकूं अर नित्य अनित्य स्वभाव सत्कूं जणावैही हैं। यातैं एकलक्षण कहनेतैं स्वयमेव तीनू लक्षण आवैहैं।

बहुरि उत्पाद अर विनाश द्रव्यके नहीं है। जातैं द्रव्य तो सहप्रवृत्तगुण अर क्रमप्रवृत्तपर्याय इनिका

सद्भावरूपकरि अनादिनिधन है। कदाचित् गुणपर्यायनिका द्रव्यमें नाश नहीं है तातें द्रव्य तो उपजै नहीं अर विनसैभी नहीं। अर द्रव्य अपने सहभावी गुणनिकरि ध्रौव्यहै तोहू क्रमप्रवृत्तरूप पर्यायनिकरि उपजैहू विनसैहै। तातें द्रव्यार्थिकनयकरिकै तो द्रव्यकै उत्पादहू नहीं अर विनाशहू नहीं। अर पर्यायार्थिकनयकरि उत्पादसहित अर विनाशसहित द्रव्यकूं जानना योग्य है। बहुरि कथंचित् द्रव्यकै अर पर्यायकै भेद नहीं है द्रव्यपर्याय एकही है। जैसें दुग्ध दधि नवनीत घृत इनि पर्यायनिविना गोरसनामा द्रव्य कोऊ कहावै नहीं है गोरस होयगा सो दुग्ध दधि नवनीत घृत इनि पर्यायनिमें ही होयगा इन विना कहूं नहीं, तैसें पर्यायविना द्रव्यहैही नहीं। बहुरि जैसें गोरसविना दुग्ध दधि नवनीत घृत कहूं है नाहीं तैसें द्रव्य विना पर्याय कहूं है नाहीं। तातें द्रव्यकै अर पर्यायनिकै नयके वशतें कथंचित् भेद होतें भी द्रव्य अर पर्यायका अस्तित्व भिन्न नहीं है अस्तित्व एकही है। यातें द्रव्यकै अर पर्यायकै वस्तुपणाकरि भेद नहीं वस्तु एकही है। ऐसेंही द्रव्यकै अर गुणकैहू भेद नहीं है। जैसें पुद्गलद्रव्यतें भिन्न स्पर्श रस गंध वर्ण नहीं हैं तैसें द्रव्य विना गुण नहीं हैं। अर जैसें स्पर्श रस गंध वर्णतें जुदा पुद्गलद्रव्य नहीं संभवै है तैसें गुणविना द्रव्य नहीं संभवैहै। तातें द्रव्यकै अर गुणनिकै कथंचित् भेद होते भी अस्तित्व एकका नियम है तातें वस्तुपणाकरि अभेद है। यहां द्रव्यकै नयका वशतें कही सप्तभंगी है। स्यादस्ति द्रव्यं, स्यान्नास्ति द्रव्यं, स्यादस्ति च नास्ति च द्रव्यं, स्यादवक्तव्यं च द्रव्यं, स्यादस्ति अवक्तव्यं च द्रव्यं। स्यान्नास्ति च अवक्तव्यं च द्रव्यं। स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्यं च द्रव्यं। ऐसें द्रव्यविषै सप्तभंग कहे। इहां स्यात् शब्दका अर्थ तो सर्वथापनाका निषेध करनेवाला है अर अनेकांतका उद्योतक है। कथंचित् अर्थमें स्यात् शब्दका निपात है तहां अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि कहिये तदि तो द्रव्य अस्तित्वरूप है। अर पर-

द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि कह्या हुवा द्रव्य नास्तिस्वरूप है अर स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकैं अर परद्रव्य क्षेत्रकाल भाव करिकैं क्रमतैं कह्या हुवा द्रव्य अस्ति नास्तिरूप है। वहुरि स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव अर परद्रव्य क्षेत्र काल भाव करि युगपत् कह्या द्रव्य अवक्तव्य है। वहुरि स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकें अर युगपत् स्वपरद्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकै कह्या द्रव्य अस्तिअवक्तव्य है वहुरि परद्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकैं अर युगपत् स्वपरद्रव्य क्षेत्र काल भाव करि कह्या हुवा द्रव्य नास्तिअवक्तव्य है। वहुरि स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकैं अर परद्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकैं अर युगपत् स्वपरद्रव्य क्षेत्र काल भाव करि कह्या हुवा द्रव्य अस्तिनास्तिअवक्तव्यरूप है। ऐसैं नयविभागतें भंग जानना। वहुरि जो सत्रूप द्रव्य है ताका द्रव्यपणाकरि नाश नहीं है। अर असत् जो अभावरूप अन्यद्रव्यताका द्रव्यपणा करि उत्पाद नहीं है। जातैं जो सत्वस्तु है ताका सर्वथा अभाव कदाचित् नहीं होय है। अर असत् जो अभाव सो कहांतैं उपजै ? नही उपजे। यातैं द्रव्य है ते सत्का उच्छेद अर असत्का उत्पादविनाही गुण पर्यायनिमैं विनाश अर उत्पादकूं आरंभे है। जैसैं घृतकी उत्पत्तिविषै विद्यमान गोरसका नाश नहीं है अर गोरसविना अन्य सत्अर्थका उत्पाद नहीं है। तो काहा है। सत्का उच्छेद अर असत्का उत्पादकूं नही प्राप्त होता जो गोरस ताके स्पर्श रस गंध वर्णादिक परिणामी गुणनिकै विषै पूर्वअवस्थाकरि विनसता अर उत्तरअवस्थाकरि प्रगट होतामैं नवीन पर्याय विनसैहै अर घृत पर्याय उपजैहै। गोरस तो उपजै नहीं अर विनसै नहीं। ऐसैं समस्तद्रव्यनिमैं जानना। वहुरि जीवादिक तो द्रव्य हैं अर चेतनादिक गुण हैं। अर सुर नर नारक तिर्यंचादिक जीवकी वहुत प्रकार पर्याय हैं। तहां अगुरुलघुगुणकी हानिवृद्धिकरि रचीहुई तो शुद्धपर्याय है। अर जीवकै सुर नर

नारक तिर्यंच लक्षण जे पर्याय हैं ते परद्रव्य जो पुद्गलकर्म तिसके संयोगतैं रची अशुद्धपर्याय है। समयसमयप्रति संभवती जो अगुरुलघुगुणकी हानिवृद्धिकरि रची स्वभावपर्यायकी परिपाटीकूं नहीं विच्छेद करनेवाली ऐसी कर्मकी उपाधिसहित मनुष्यपर्यायकरि तो जीव विनसै है। अर उपाधिसहित देवादिक पर्यायकरि उपजै है। तहां मनुष्यपणाकरि नाश होतैं जीवपणाकरि नाश नहीं होय है। अर देवादिपर्यायकरि उत्पन्न होतैं जीवपणाकरि नहीं उपजै है सत्का नाशविना अर असत्का उत्पादविना ही पर्याय तैसैं प्रवर्तै है। जो पूर्वपर्यायका नाश अर उत्तरपर्यायका उत्पादरूप दोऊ अवस्थाकूं अंगीकार करता जीवद्रव्य उपजता विनशता देखिए है। परंतु उत्पाद विनाश दोऊ अवस्थामें व्यापी अपना एक स्वभाव तिसकरि विनसै नहीं है अर उत्पन्न नहीं होय है। अर द्रव्य है सो पूर्वपूर्व पर्यायका नाश अर उत्तरउत्तर पर्यायका उत्पाद ऐसैं विनाश उत्पाद दोऊ धर्म धारै है। परंतु द्रव्यतैं भिन्न नहीं है तातैं पर्यायनिकरि सहित एकवस्तुपणातैं जीवद्रव्य उपजै है अर विनसै है तोहू सर्वकालमें जीवद्रव्य अविनष्ट है अर अनुत्पन्न है। अर देव मनुष्यादिक पर्याय हैं ते क्रमवर्ती हैं। तातैं अपना समय व्यतीतकरि विनसै है अर उपजै है। तातैं सत्का विनाश नहीं है अर असत्का उत्पाद नहीं है। अर जो ऐसा होइ जो जीव मरै है सो ही उपजै है अर जो उपजै है सोही मरै है तदि तो सत्का विनाश होय अर असत्का उत्पाद होय। अर जो देव उपजै है अर मनुष्य मरै है ऐसा कहिये तो अपने कालकी मर्यादा प्रमाण देव मनुष्यादिक पर्यायकूं रचनेवाला देव मनुष्य गतिनामा नामकर्मके तितना प्रमाणमात्रपणा है तातैं विरोध नहीं है। जैसैं एक बडा बांसविषै अपने प्रमाणकौं लिए अनेक पैली अपना अपना स्थानविषै तो महानकूं धरै है। अर अन्य पैलीविषै आप नहीं प्राप्त होती। परस्थानमें अपना अभा-

वकूं धारैहैं। अर वांस है सो समस्त पेलीनिमैं अपना सद्भावकूं धारै है तोहू अन्य पेलीका संवंधकरि अन्य पेलीमैं संवंधका अभावतैं अभावकूंभी धारण करैहै। तैसैं अमर्यादरूप त्रिकालमैं तिष्ठता एक जीवद्रव्य- कै क्रमतैं वर्त्तती अनेक मनुष्यत्वादि पर्याय हैं। ते पर्याय अपनेअपने प्रमाणकूं लीये हैं यातैं अन्यपर्याय- मैं नहीं गमन करती अपनेअपने स्थानमैं तो सद्भावकूं धारै हैं अर परस्थानविषै अभावकूं धारै हैं। अर जीवद्रव्य है सो समस्तपर्यायनिविषै अपना सद्भावकूं धारैहै तोहू अन्यपर्यायका संवंधकरि अन्यपर्यायमैं संवंधको अभाव है यातैं अभावकूं धारण करैहै।

भावार्थ—जैसैं एक जीवके मनुष्य देव नारक तिर्यक् अनेकपर्याय होय हैं तिन समस्त पर्यायनिमैं जीव एकही प्रवर्तैहै। परंतु मनुष्य पर्यायमैं तो देव नारकादि पर्यायका अभाव है अर देव नारकादिकनिमैं मनुष्यपर्यायका अभाव है। मनुष्यपणाकरि देवपर्यायमैं नही देवपर्यायकरि मनुष्यपर्यायमैं नही। ऐसैं कथंचित् सद्भाव कथंचित् असद्भाव जानना। अव सिद्धपर्याय कैसैं है सो कहैहैं। जैसैं थोरै काल है संवंध जाका ऐसा नामकर्मका भेद जो देवगत्यादिकर्म तिसकरि रची जो जीवकै देवत्वादिक पर्याय होय हैं अर जव देवगतिनामकर्मका उदय होय चुकै तदि पूर्वै कभी नहीं भई ऐसी मनुष्यादिक पर्याय उपजै हैं सो असत्की उत्पत्ति तो नहीं भई। जीव तो वोही है नवीन नहीं उपज्या। तैसैंही दीर्घ काल है संवंध जाका ऐसा ज्ञानावरणादिक कर्मसामान्यका उदयकरि रची संसारीपणाकी पर्याय जीवकै अनादितैं है। अव किसही भव्य जीवकै संसारीपणाका कारण अष्टकर्मका उदय नाशकूं प्राप्त भया तदि संसारीपणाकी पर्याय नष्ट भई अर पूर्वै नहीं भईथी ऐसी सिद्धत्व पर्याय उत्पन्न भई। सो असत्की उत्पत्ति नहीं है पूर्वै जो जीव अष्टकर्मकरि लिप्त था सो संसारी था सोही जीव अष्टकर्मका अभाव किया तदि सिद्ध भया है।

प्रकृति द्रव्य है सो सदाकाल विनसै नहीं है अर उत्पन्न नहीं होयहै । तातैं जीवकै द्रव्यरूपकरि नित्यपणा कह्या है । अर देवादिपर्यायकरि प्रगट होते तिसही जीवकै भावका कर्त्तापणा कह्या । अर मनुष्यादि पर्यायकरि विनसता तिसही जीवकै अभावका कर्त्तापणा कह्या । अर विद्यमान देवादिपर्यायका उच्छेदकूं आरंभ करता तिसही जीवकै सद्भावका अभावको कर्त्तापणो उत्पन्न होयहै अर तिसही जीवकै अविद्यमान जो मनुष्यादिक पर्यायका उत्पादका आरंभ कर्त्ताकै अभावकै भावका कर्त्तापणा कह्या । ऐसैं यह समस्त कहना निर्दोष है । द्रव्यपर्यायनिकै मध्य एककूं गौण एककूं मुख्यकरि व्याख्यान सिद्धांतमें है यातैं सोही कहियेहै । जिस अवसरमें पर्यायकूं तो गौण करिये अर द्रव्यकूं मुख्यकरि कहिये तहां तो जीव उपजैहू नहीं है अर विनसैहू नहीं है । अर जिस अवसरमें द्रव्यको गौण करिये अर पर्यायकूं मुख्य करिये तादि प्रगटभी होय है । अर विनसैहू है । ऐसैं यो समस्त प्रसाद अनेकांतको है जो ऐसा विरोधहू विरोधकूं नहीं प्राप्त होयहै ॥ अब नित्यपणा कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

तद्भावाव्ययं नित्यं ॥ ३१ ॥

अर्थ—तद्भावकरि अव्ययरूप है सो नित्य है । जो पहिले समयमें था सोही दूसरे कालमें होय सो तद्भाव है ताहीकूं नित्य कहिए । जो पूर्वै था सोही यह वर्तमानमें है ऐसा जोडरूप जो वस्तुमें भाव सो तद्भाव है । ताहीकूं प्रत्यभिज्ञान कहिये । जो तद्भावकरि अव्यय कहिये अविनाशी सो नित्य जानना । सर्वथा नित्य कहै तौ सर्वथा नित्यकूटस्थ ठहरै । कूटस्थकै पर्याय पलटनेका अभाव है । तादि संसार तथा संसारकै अभावका कारणकै विधानमें विरोध आवै ॥ इहां तर्क—जो सोही वस्तु नित्य सोही अनित्य ऐसैं कहनेमें तो विरोध है । ऐसैं विरोधकै अभाव करनेकूं सूत्र कहैहैं—

अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जाकूं मुख्य करिये ताकूं अर्पित कहिये। अर जाकूं गौण करिये ताकूं अनर्पित कहिए। इनि दोऊ नयनिकरि अनेक धर्मस्वरूप वस्तुका कथन सिद्ध होयहै। वस्तूमैं अनेक धर्म हैं। तहां वक्ता जिस धर्मका प्रयोजनके वसतैं प्रधानकरि कहै सो अर्पित है। अर प्रयोजनाविना जिस धर्मकी कहनेकी इच्छा नहीं करै सो अनर्पित है। बहुरि ऐसैं नाहीं जो वस्तुमैं धर्मही नहींहै। वस्तु तो अनेकधर्मस्वरूप हैही। परंतु किसीकी धर्मकूं कहनेकी प्रधानता किसीकी अप्रधानता दोऊनिकरि सिद्धि होयहै। जैसैं एक पुरुषमैं पिता पुत्र भ्राता मामा भाणजा इत्यादिक अनेक संबंध हैं ते अपेक्षातैं सिद्ध होयहैं। पुत्रकी अपेक्षा पिता कहिये पिताकी अपेक्षा पुत्र कहिए। भाईकी अपेक्षा भाई कहिए भाणजाकी अपेक्षा मामा कहिए अर मामाकी अपेक्षा भाणजा कहिये। ऐसैं एकही पुरुषमैं अनेक संबंध कहनेतैं कुछ विरोध नाहीं। तैसैंही वस्तुकूं सामान्य अर्पणातैं नित्य कहिये विशेष अर्पणातैं अनित्य कहिये यामैं विरोध नाहीं। बहुरि जे सामान्य विशेष है ते कथंचित् भेद अभेद कर व्यवहारके कारण होयहैं। इहां सत् असत् एक अनेक नित्य अनित्य भेद अभेद तत् अतत् इत्यादि अनेक धर्मात्मक वस्तुके कहनेमैं अन्यमती विरोधादि दूषण बतावै हैं। ते वस्तुको स्वरूप जान्यो नही ते सर्वथा एकांती हैं सर्वथा एकांतका सामर्थ्यतैं अनेकांतस्वरूप वस्तु कैसैं सधै? एकांती जैसैं कहै तैसैं दूषण आवै। निर्दोष वस्तुका स्वरूप नही साधि सकै। स्याद्वाद बडा महिमालायक है बलवान् है यामैं विरोधादि दूषणका अवकाश नहींहै। निर्बाध वस्तुके रूपकूं साधैहै॥ अब इहां कोऊ कहैहै सत् है ताकै अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातैं सत्रूप पुद्गलस्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद संघाततैं है। परंतु इहां ऐसा संदेह है जो द्व्यणुकादिलक्षण जो स्कंध सो संघात जो संयोग तातैंही

होयहै कि और कछु विशेष निश्चयकरिए है। तहां कहांगे जो पुद्गलनिका संयोग होतें जो एकत्व परिणमन होना सोही तो बंध तातें संघात उपजैहै तो और पूछैहै—जो अनेक पुद्गलनिका संयोग होतेंहू केईकनिकै बंध होयहै केईक भिन्नही रहैहैं। तिनकै बंध होनेका कारण कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

स्निग्धरूक्षत्वाद् बंधः ॥ ३३ ॥

अर्थ—स्निग्ध कहिए सचिक्कण अर रूक्ष कहिये रूखा इन दोऊपणातें पुद्गल परमाणुनिकै परस्पर बंध होयहै पुद्गलपरमाणुनिकै सचिक्कणपना तथा रूक्षपणातेंही परस्पर बंध होयहै। दोय आदि संख्यात असंख्यात अनंत परमाणुनिका स्कंध होयहै। इहां ऐसा जानना पुद्गलनिमें रूक्ष तथा सचिक्कण गुण होयहै तहां केई परमाणु रूक्षरूप हैं केई सचिक्कणरूप हैं। तहां सचिक्कणपणाका अर रूक्षपणाका अविभागपरिच्छेद केई परमाणुमें किसी अवसरमें अधिक होजायहै किसी अवसरमें घटिजायहै। षट्गुणी हानिवृद्धिका क्रमकरि रूक्षपणा सचिक्कणपणाकी अधिकता हीनता निरंतर होयहै। इहां सचिक्कणपणाका वा रूक्षपणाका अविभागपरिच्छेद हैं तिनहीकूं गुण कहैहैं। परमाणुमें सचिक्कणपणा वा रूक्षपणाका एक अविभागपरिच्छेदसूं लेय अनंतपर्यंत वधैहै। अर एक परमाणुमें अनंत अविभागपरिच्छेदतें घटै तो असंख्यात वा संख्यात वा दोय तथा एक अंशपर्यंत रहै तथा सचिक्कण परमाणु रूक्ष होजायहै रूक्ष परमाणु सचिक्कण होयहै। समयसमय परिणमन है अर बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकनिके निमित्ततैं परिणमैहै। ऐसैं स्निग्धरूक्षपणा परमाणुमें तथा स्कंधमें जानना। जैसैं जलमें सचिक्कणता है तातैं छालीका दूधमें, छालीका दूधतैं गोदूधमें, गौके दुग्धतैं भैंसके दुग्धमें, तातैं घृतमें घृततैं तेलमें सचिक्कणपणा अधिक अधिक पाईयेहै। तथा पांसु जो रज तिसमें रूक्षपणा है तातैं वालुकामें तातैं शर्करामें

अधिक अधिक रूक्षपणा है। तैसैं परमाणुहूमैं सचिक्कणपणाकी रूक्षपणाकी अधिकता अर न्यूनता अनुमान करना योग्य है। परमाणुमैं होय तदिही स्कंधमैं होय। ऐसैं स्निग्धरूक्षपणातैं पुद्गलनिकै परस्पर बंध जानना॥ अब बंध होनेमैं अन्य विशेष कहैहैं।

न जघन्यगुणानां॥ ३४॥

अर्थ—जे जघन्यगुणसहित परमाणु हैं तिनकै बंध नही होयहै। इहां परिमाणुमें स्निग्धताका वा रूक्षताका अविभागपरिच्छेद है ताहि गुण कहिएहै। जिस परमाणुमें स्निग्धताका वा रूक्षताका एक अविभागपरिच्छेद रहिजाय सो जघन्यगुण है। इहां एक अविभागपरिच्छेदकूं जघन्य कह्याहै। जिसमें एकगुण स्निग्ध रूक्षताका होय सो परमाणु द्वितीयादि संख्यात असंख्यात अनंत गुणसहित स्निग्धपरमाणुकरिकैं वा रूक्षकरिकैं नही बंधनै प्राप्त होयहै॥ औरभी जिस गुणसहित नही बंधै ताके कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

गुणसाम्ये सदृशानां॥ ३५॥

अर्थ—गुण जे स्निग्धरूक्षताके अंश तिनकरि साम्य कहिए समान संख्यारूप ऐसे सदृश कहिए रूक्षरूक्ष अर स्निग्धास्निग्ध ऐसे सदृश होय ते परमाणुहू बंधकूं नही प्राप्त होयहैं। गुणकी समानता कहिए दोऊ परमाणुमैं गुणनिके अविभागपरिच्छेदरूप अंश समान होय तिन परमाणुनिके परस्पर बंध नही होय। जामैं दोयदोय वा तीनतीन वा च्यारच्यार ऐसै संख्यात असंख्यात अनंतगुण स्निग्धता वा रूक्षताका समान होय तिनकै बंध नही होयहै॥ अर सदृशका कहिए रूक्षरूक्षकै अर स्निग्धास्निग्धकैहू बंध नही होयहै॥ स्निग्धरूक्षकैहू नही होयहै तो कौनकै बंध होय यातैं सूत्र कहैहैं—

द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥ ३६ ॥

अर्थ—दोय गुणकरि अधिक होय तिनहीकै बंध होय अन्यकै नहीं होय । तुल्य जातीयकैहू होय अर अतुल्यजातीयकैहू होय । जिस परमाणुमें दोय गुण स्निग्धताका होय तिसकै एक गुण स्निग्ध वा दोय गुण स्निग्ध वा तीन गुण स्निग्ध परमाणुकरि बंध नहींहै । च्यारगुण स्निग्धताका जामें होय ताकरि बंध है । बहुरि तिस द्विगुण स्निग्ध परमाणुकै पंच षट् सप्त अष्ट नव दश संख्येय असंख्येय अनंत गुण स्निग्धकरि बंध नहींहै । ऐसैंही त्रिगुण स्निग्ध परमाणुकै पंचगुण स्निग्धसहित परमाणुकै बंध है । अन्य जे पूर्व उत्तर संख्यासहित स्निग्ध गुणधारक परमाणु तिनिकरि बंध नहींहै । बहुरि चतुर्गुण स्निग्धपरमाणुकै षड्गुण स्निग्ध परमाणुकरि बंध है । अर शेष पूर्वोत्तरकरि नहींहै । ऐसैंही शेष अन्य परमाणुनिविषैं दोय गुणकरि अधिक करिकैंही बंध है अन्यकरि नहींहै । बहुरि तैसैंही द्विगुण रूक्षकै एक दोय तीन गुण रूक्षकरि सहित बंध नहींहै अर चतुर्गुण रूक्षकरि बंध है । तैसैंही द्विगुण रूक्ष परमाणुकै पंचगुण रूक्षादिक उत्तरगुण तिन करिकैहू बंध नहींहै । ऐसैंही त्रिगुण रूक्षादिक परमाणुनिकैहू द्विगुण अधिककरि बंध योग्य है । जैसैं समानजातीयमें कह्या तैसैं भिन्नजातीयमैंहू बंध जानना । द्विगुण स्निग्धकै एक दोय तीन रूक्षगुणसहितनिकरि बंध नहींहै चतुर्गुण रूक्षकरिकै बंध है अर उत्तर पंचगुण रूक्षादिककरि बंध नाहीं है । ऐसैंही त्रिगुण स्निग्धपरमाणुकै पंचगुण रूक्ष परमाणुकरिकै बंध है । शेष पूर्वोत्तर गुणसहितनिकै बंध नहींहै । ऐसैं संख्यात असंख्यात अनंत गुणके धारक जे स्निग्ध रूक्ष परमाणु तिनकै सजातीयमें वा विजातीयमें दोऊ गुण अधिककरिही बंध है अन्यकै नहीं । ऐसैंही भगवान् सर्वज्ञ वीतरागदेव प्रत्यक्ष देख्या है । अन्य छद्मस्थनिकै सर्वज्ञ वीतरागका कह्या आगमतें प्रमाण जानना । सोही सिद्धांतमें कह्या है ।

गाथा–णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण ।
णिद्धस्स लुक्खेण उवेदि बंधो जहण्णवज्जो विसमे समे वा ॥

अर्थ–स्निग्ध परमाणुकै स्निग्धपरमाणु दोय गुण अधिककरि वंध होयहै । अर स्क्षपरमाणुकै दोय गुण अधिक रूक्षपरमाणुकरि बंध होयहै । अर स्निग्ध परमाणुकै रूक्षपरमाणुकरि बंध होयहै । अर जघन्य-गुणा जो एक गुण तिससहित परमाणुकरि बंध नहीं होयहै । अर दोय च्यार छह आठ इत्यादिक सम-गुणकै धारकनिकैहू वंध है । अर तीन पांच सात नव ग्यारा इत्यादिक विषमगुण धारकनिकैहू वंध होय है । परंतु गुणके दोय अंशकी हीन अधिकता होय तिनहीकै वंध है अन्यकै नहींहै ।

भावार्थ–स्निग्ध स्निग्धकै अर स्निग्ध रूक्षकै अर रूक्ष रूक्षकै दोय गुण अधिक सम विषम होतै वंध होय है । अन्य हीन अधिकके बंध नहीं होय । ऐसैंही सर्वज्ञ वीतराग प्रत्यक्ष देख्या है । ऐसैं कही जो विधि तिस करि द्व्यणुकादि अनंत परमाणुका स्कंधपर्यंत स्कंधकी उत्पत्ति जानना योग्य है । बहुरि इहां पुद्गल स्कंधका छह भेद सिद्धांतमैं वर्णन किया है ।

गाथा–वादर बादरवादर, वादरसुहमं च सुहमथूलं च । सुहमं च सुहमसुहमं, धरादियं होदि छब्भेयं ॥
पुढवी जलं च छाया, चउरिंदियविषयकम्मपरमाणु । छव्विहभेयं भणियं, पुग्गलदव्वं जिणवरेंहि ॥

अर्थ–वादरवादर १ वादर २ वादरसूक्ष्म ३ सूक्ष्मवादर ४ सूक्ष्म ५ सूक्ष्मसूक्ष्म ६ ऐसैं स्कंधके छह भेद कहै । तिनमैं जे छेदेहुए फेर जुडनेको असमर्थ ऐसै काष्ठ पाषाणादि वादरवादरसंज्ञक हैं । बहुरि जे छेदे भेदे हुए स्वयमेव मिलजानेमैं समर्थ ऐसै जल घृत दुग्ध तैलादिकरस बादर हैं । बहुरि जिनका अवलंवन तो स्थूल अर शरीरादिकनिकैं आताप आल्हाद करै तोहू छेद्या नहीं जाय भेद्या नहीं जाय अर उठाय ग्रहण

पकनेकूं अर अन्य स्थान लेजानेकूं समर्थपणा नहीं होय सो ऐसे छाया आतप अंधकार चांदनी इत्यादिक ते बादरसूक्ष्म स्कंध हैं। बहुरि जे सूक्ष्म हैं तोहू स्थूलपणातें ग्रहणमें आवें ऐसे स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द ते च्यार इंद्रियनिके विषय ते सूक्ष्मबादर स्कंध हैं। बहुरि सूक्ष्म हैं तातें इंद्रियनिके ग्रहणमें नहीं आवें ऐसी कर्मवर्गणादिक सूक्ष्म स्कंध हैं। बहुरि कर्मवर्गणातें नीचे दोय परमाणुका स्कंधपर्यंत सूक्ष्मसूक्ष्म स्कंध हैं। जातें सूक्ष्म स्थूल पर्याय स्कंधहीमें होयहै परमाणुमें नहीं। परमाणुमें तो रस एक गंध एक वर्ण एक स्पर्श दोय शीत उष्णमैंतें एक स्निग्धरूक्षमैंते एक एही पांच गुण हैं। सूक्ष्मबादरादिक स्कंधके भेद हैं ॥ अब दूसरे अधिकगुणकरि मिलजाय तिनका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥

अर्थ—बंध होते अधिक गुणसहित पुद्गल अल्पगुणसहितकौ अपने परिणामस्वरूप करैहै। एकत्व परिणाम होयहै। अल्पगुणके धारक अधिकगुणके स्कंधरूप होयहै सो पूर्व अवस्थाका त्यागपूर्वक तीसरी अवस्था प्रगट होयहै। एक स्कंध होय जाय है। जो एकस्कंध नहीं होय तो शुक्ल कृष्ण सूतके तंतुकीज्यों संयोग होतेहू एकपरिणाम नहीं होय भिन्नभिन्न रूपकरिही तिष्ठै। अर एक होय मिलजाय तदि वर्ण गंध रस स्पर्श इनकी अन्यही अवस्था प्रगट होइ स्कंध उपजे हैं। जैसें कृष्णपीतादिकका संयोग होइ हरितवर्णपणा जात्यंतर प्रगट होय है। तैसें स्कंध मिल्या जात्यंतरपणा प्रगट होयहै ॥ अब द्रव्यका अन्य लक्षण कहै हैं—

गुणपर्ययवत् द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—गुणपर्यायवान् द्रव्य है जाके गुणपर्याय होय सो द्रव्य है समस्त द्रव्य अपनेअपने गुणपर्यायसहित हैं तहां अन्वयी तो गुण हैं व्यतिरेकी पर्याय हैं। जो द्रव्यकी अनेक परिणति होतेहू द्रव्यतें भिन्न नहि

होय द्रव्यका साथिही रहै सो गुण है अर क्रमवर्ती पर्याय हैं। द्रव्यके जेते गुण हैं ते द्रव्यतैं भिन्न नहीं गुणनिका समुदाय है सोही द्रव्य है। द्रव्यकै अनेक पर्यायकूं पलटतैहू गुण नही पलटैहैं लारही रहैहैं तातैं गुण हैं ते अन्वयी हैं। द्रव्यका स्वभाव गुणरूप अर पर्यायरूप है। द्रव्यका लक्षण पूर्व सत् कह्या सो तो सामान्यलक्षण है जातैं सत् कहनेमैं द्रव्य गुण पर्याय समस्त आगए। जातैं सत् सामान्य कहैं तो सत् द्रव्य है कि गुण है कि पर्याय है यातैं द्रव्यका विशेषलक्षण गुणपर्यायवान् कह्या। जातैं द्रव्य है सो सहप्रवृत्त तो अनंतगुण अर क्रमप्रवृत्त अनंतपर्यायनिका आधारपणाकरि अनंतरूपपणातैं एकहू नानारूप कहिएहै। द्रव्यकै गुणनितैं भेद मानिए वा गुणनिकै द्रव्यतैं भेद मानिए तो वडा दोष आवै। गुण हैं ते तो कोऊ द्रव्यकै आश्रय हैं। जाकै आश्रय सोही द्रव्य अर द्रव्यकूं गुणनितैं भेदही मानिए अर द्रव्यमैं गुणनिकूं मिलै मानिए तो पहले गुणनिविना द्रव्यका स्वरूप तो कैसें था अर द्रव्यविना गुण कहां तिष्ठंथे तादि दोऊनिका नाश होय तातैं द्रव्यतैं गुण भिन्न नही द्रव्य गुणस्वरूपही है द्रव्यकै अर गुणनिकै प्रदेशनिकरी भेद नहीं ऐसा एकपणा है। अर प्रदेशनिका भेदरूप अन्यपणाभी नाहीं अर अनन्यपणाभी नाहींहै। जैसें एक परमाणुकै एक अपना प्रदेशकरि सहित अभिन्नपणातैं अन्यपणा नाहीं है तैसें एक परमाणुकै अपने स्पर्श रस गंध वर्णादिगुणनिकरिकैभी भिन्नपना नाहींहै।

वहुरि जैसें अत्यंत दूरवर्ती सह्याचलपर्वत अर विंध्याचलपर्वत इनकीज्यों तो द्रव्य गुणनिकै अन्यपणाहू नाहींहै। अर अत्यंत मिलरहे जे दुग्ध अर जल इनकीज्यों अनन्यपणा नाहीं है। जातैं अत्यंत मिलेहुए हू दुग्ध जल प्रदेशनिकै भिन्नपणातैं अनन्यपणाकूं नाहीं धारैहैं। अर संज्ञा संख्या लक्षण विषयादिकरि द्रव्यकै अर गुणनिकै भेद है तोहू सह्याचल विंध्याचलकीज्यों प्रदेशनिकरि भेद नहीं है। अव कोऊ कहै-लो-

ऐसैं कहै है, ए द्रव्यके गुण हैं ऐसैं कहनेतैं जानिए है जो द्रव्य भिन्न है अर गुण भिन्न है सो नहीं है। जातैं द्रव्य प्रदेश संस्थान संख्या विषय अन्यपणामैंभी होय अर अनन्यपणामैंहू पाइए है। जैसैं देवदत्तके गौ है इहां देवदत्त भिन्न है अर गौ भिन्न है इहां अन्यत्वमैं षष्ठी विभक्तिकरि व्यपदेश है तैसैं वृक्षके शाखा है द्रव्यके गुण हैं ऐसैं अनन्यपणामैंभी षष्ठीव्यपदेश है। जैसैं देवदत्त जो है सो जो फल है ताहि अंकुशकरिकै धनदत्तके अर्थि वृक्षतैं वाडीमैं चूटै है। इहां अन्यत्वमैं षट्कारक हैं। जातैं देवदत्त कर्ता सो भिन्न है। अर फल कर्म सो भिन्न है। अर अंकुश करण है सो भिन्न है अर धनदत्तके अर्थि संप्रदान भिन्न है अर वृक्ष जो अपादान सो भिन्न अर वाटिका आधार सो भिन्न है। ऐसैंही अनन्यत्वमैं षट्कारक अभिन्न है। जैसैं मृत्तिका घटभाव जो है ताहि स्वयं आपहीकरि आपके अर्थि आपतैं आपविषै करै है। अर ऐसैंही आत्मा आपनैं आपकरि आपके अर्थि आपतैं आपमैं जाणै है ऐसैं अनन्यपणामैंहू कारकव्यपदेश है। जैसैं ऊंचे देवदत्तकी ऊंची गौ इस प्रकार अन्यत्वमैं संस्थान है तैसैं ऊंचा वृक्षके ऊंची शाखा अर मूर्तद्रव्यका मूर्तगुण ऐसैं अनन्यत्वमैंभी संस्थान होय है। जैसैं एक देवदत्तके दश गाय हैं ऐसैं अन्यत्वमैं संख्या है तैसैं एक वृक्षके दश शाखा हैं एक द्रव्यके अनंत गुण हैं ऐसैं अनन्यत्वमैंभी संख्या है। जैसैं गायवाडामैं गाय है ऐसैं अन्यत्वविषै विषय है तैसैं वृक्षमैं शाखा है द्रव्यमैं गुण है ऐसैं अनन्यत्वमैंभी विषय है। तातैं व्यपदेशादिक हैं ते द्रव्यगुणनिकै वस्तुपणाकरि भेद नहीं साधै हैं। वस्तुपणाकरि एकही हैं। अब वस्तुपणाकरि भेदका अर अभेदका उदाहरण कहै हैं। जैसैं धनका अस्तित्व भिन्न है अर पुरुषका अस्तित्व भिन्न है अर धनका संस्थान कहिए आकार सो भिन्न है अर पुरुषका संस्थान भिन्न है। बहुरि धनकी संख्या भिन्न है अर पुरुषकी संख्या भिन्न है। अर धन भिन्नविषयमैं प्रवर्त्तै है अर पुरुष भिन्नविषयमैं प्रवर्त्तै है। ऐसैं

धनकै अर पुरुषकै बडा भेद है तोहू धनका संबंधकरि धनी ऐसा नाम पृथक्प्रकारकरि पावै है। बहुरि जैसें ज्ञानका आस्तित्व अर पुरुषका आस्तित्व भिन्न नहीं अर पुरुषका संस्थान अर ज्ञानका संस्थान भिन्न नहीं अर ज्ञानकी संख्या अर पुरुषकी संख्या भिन्न नहीं। अर ज्ञानका विषय अर पुरुषका विषय भिन्न नहीं तोहू पुरुषकै ज्ञानी ऐसा नाम एकत्वप्रकारकरि करैहैं। औठैहू जहां द्रव्यकै भेदकरि कथन होय तहां पृथक्पणा है अर जहां अभेदकरि कथन होय तहां एकत्वकरि कथन है बहुरि जो ज्ञानी आत्मा ज्ञानतें जुदाही होय तो जैसें अपना कर्त्रंशविना जैसें फरसीरहित देवदत्त काष्ठकूं नहीं छेदिसकै तैसें किसी पदार्थकूं जाननेकूं नहीं समर्थ होय ज्ञानविना काहेतें जानै यो दोष आवै। बहुरि ज्ञान है सो जो ज्ञानीतें भिन्न नहीं होय तो कर्त्रंशविना कोन जानै। जैसें देवदत्तरहित फरसी काष्ठ छेदनेकूं समर्थ नही तैसें ज्ञानी जो आत्मा तिस विना ज्ञान जाननेकूं नहीं समर्थ होय तदि ज्ञानकै अचेतनपना आया यो दोष आयो। बहुरि ज्ञान अर ज्ञानी दोऊनिकै संयोग मिलिकरिकैभी चेतनपणा प्रगट नहीं होय है ज्ञानगुणविना तो ज्ञानीका अभाव है। अर आत्माविना निराश्रय गुणका अभाव है। तातें आत्माविना ज्ञान कहूं सिद्ध हो जाय अर ज्ञानविना आत्मा सिद्ध होजाय तो दोऊनिका संयोगभी सिद्ध होय सो भिन्न कहूं सिद्धहै नहीं। बहुरि केइक एकांती ऐसें कहैहैं। जो आत्मा अर ज्ञान दोऊनिकै भेद है परंतु समवाय नाम एकपदार्थ है सो ज्ञानकूं अर आत्माकूं युक्त करिदेयहै समस्त गुणगुणीनिकूं समवायपदार्थ जोडैहै। ऐसें मानै है ताकूं कहै हैं—जो तुम आत्मातें ज्ञानकूं भिन्न मानो हो अर ज्ञानका समवायतें आत्माकूं ज्ञानी मानो हो सो नही वणि सकैहै। सो पूछैहैं ज्ञानका समवाय पूर्वै नही भया तदि आत्मा ज्ञानी था कि अज्ञानी था। जो या कहोगे ज्ञानका समवाय भये पहलीभी आत्मा ज्ञानी था तदि तो ज्ञानका समवाय मानना निष्फल

है पहलैंही ज्ञानी था। अर कहोगे पहली अज्ञानी था तौ पूछैहैं—अज्ञानका समवायकरि अज्ञानी था कि अज्ञानकरि सहित एकपणाही था। जो अज्ञान समवायतैं तौ अज्ञानी नहीं होसकै जातैं अज्ञानीकै अज्ञानसमवाय निष्फल है। अर ज्ञानका समवायबिना ज्ञानी था नहीं । तातैं अज्ञानकरिकैं सहित एकपणा अवश्य सिद्ध भया। अर ज्ञानकरि साहित एकपणा सिद्ध भया । तदि तैसैंही ज्ञानकरि साहितहू आत्माका एकपणा सिद्ध होयहै। तदि तुमारा समवायतैं संबंध मानना वृथा है। जातैं जैनीनिकै तौ जो द्रव्यकै अर गुणनिकै एक अस्तित्वपणा सोही तथा अनादिनिधनसहवृत्तिपणा सोही समवाय है। अर जो समवायकूं एकपदार्थकी भिन्न मानै सो नहीहै। अन्यमती समवायपदार्थकूं न्यारा मानैहैं। जो जगतमैं एक समवाय है सो अग्निमैं उष्णगुणका समवाय करैहै। जलमैं शीतगुणका समवाय करैहै। ऐसैं समस्तपदार्थनिमैं गुणका जोड समवाय करैहै। ताकूं कहेहैं जो जगतमैं वस्तु तौ अनंत हैं अनंतनिमैं गुण जोडनेकूं एकाही समवाय कैसे समर्थ होय। अर समवाय तौ जड है अचेतन है एक है सो उष्णगुणका समवाय एकहीमैं कैसैं किया अर शीतगुणका समवाय जलहीमैं अर ज्ञानगुणका समवाय आत्माहीमैं करनेका ज्ञान जड अज्ञानी अचेतन ऐसे समवायपदार्थमैं कैसैं आया तातैं समवायतैं गुणगुणीकी संयुक्तता मानना वृथा है। जैसैं परमाणूनिमैं वर्ण रस स्पर्श गंध गुण प्ररूपणकरिएहैं ते गुण परमाणुतैं अविभक्तप्रदेशपणाकरि भिन्न नहीं हैं। तैसैंही ज्ञान दर्शन गुणहू आत्माविषै अविभक्तप्रदेशपणाकरि अन्य नहीं आत्माही हैं। नामादिकनिकरि भिन्न हैं तोहू स्वभावतैं द्रव्यतैं अपृथक्पणाही जानना। ऐसैं तौ द्रव्यकै अर गुणनिकै अभेदपणा दिखाया। अब जो पर्याय है सोहू द्रव्यतैं भिन्न नहीहै द्रव्यका स्वभावही है। द्रव्य तौ पर्यायबिना कहूं देखिएनहीं अर पर्याय द्रव्यबिना नहीं। यद्यपि द्रव्यकै अर पर्यायकै संज्ञा

संख्या लक्षणादिकरि भेद है तोहू वस्तुपणाकरि भिन्न नहीहै। जैसै मृत्तिका नाम द्रव्य है तिसके घटादिक पर्याय हैं। सो मृत्तिकाके अर घटादिकके कथंचित् संज्ञाकरि भेद है वाकूं मृत्तिका कहिए वाकूं घट कहिए। अर संख्याकरि भेद है मृत्तिकाका पिंड एक था ताके घट पांच बणिगए तातैं संख्याकरिकैभी भेद है। बहुरि मृत्तिकाका लक्षण तो पिंडादिकरूप अन्य है अर घटका लक्षण कंबुग्रीवाकारादिपणा भिन्न है। बहुरि मृत्तिकाका प्रयोजन तो लेपन हस्तधोवनादिक अन्य है अर घटका जलधारणादि प्रयोजन अन्य है। ऐसैं द्रव्यकै अर पर्यायकै संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजनादिककरि कथंचित् भेद होतेंहू वस्तुपणाकरि भेद नहीहै वाही एक मृत्तिका है। ऐसैं गुणपर्यायवान्‌पणा द्रव्यका लक्षण कह्या ॥ अब कालद्रव्यकूं कहेहैं—

कालश्च ॥ ३९ ॥

अर्थ—काल है सोभी द्रव्य है। इहां द्रव्य है ऐसा वाक्य शेष है इस लोकाकाशके समस्तप्रदेशनिविषैं एक कालद्रव्य भिन्नाभिन्न तिष्ठैहै परस्पर मिलै नही एकएक परमाणुमात्र अवगाहनाकूं धारते असंख्यात कालाणुद्रव्य हैं। ते कालद्रव्य अमूर्त हैं स्पर्श रस गंध वर्ण गुणरहित हैं। बहुरि ज्ञान दर्शनादि चेतना-संबंधी गुणरहित हैं तातैं अचेतन हैं। प्रदेशनिका समूह इनिकै नही तातैं एकएक प्रदेशमात्र भिन्नाभिन्न मिलनेकी शक्तिरहित रत्ननिकी राशिकीज्यों असंख्याते तिष्ठैहैं तातैं अकाय हैं। क्षेत्रतें क्षेत्रांतरमें गमन-रहित हैं तातैं निष्क्रिय हैं। अर उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त सत्‌पणा अर गुणपर्यायवान्‌पणा द्रव्यके लक्षण तिनकरि संयुक्त हैं तातैं कालभी द्रव्य है। बहुरि कालद्रव्यकै ध्रौव्यपणा तो स्वाधीनस्वभावकी व्यव-स्थातैं है। अर उत्पाद व्यय ए परके निमित्ततैंभी हैं अर अगुरुलघुगुणकी वृद्धि हानिकी अपेक्षाकरि स्वनिमित्ततैंभी हैं। तथा कालद्रव्यकै गुणहू साधारण असाधारण दोऊरूप हैं। तिनमें वर्तनाहेतुपणा

सो असाधारणगुण है। अर अचेतनपणा अमूर्तपणा सूक्ष्मपणा अगुरुलघुपणा ए साधारण गुण हैं। अर उत्पाद व्यय लक्षण पर्याय है। समस्तद्रव्यनिकों समयसमय वर्तनापरिणमनका बहिरंगनिमित्त कालद्रव्य है॥ अब व्यवहारकालका प्रमाण निश्चयकै अर्थि सूत्र कहैहैं—

सोऽनंतसमयः ॥ ४० ॥

अर्थ—काल है सो अनंत है समय जाकै ऐसा है यद्यपि वर्तमानकाल एकसमयमात्र है तोहू अतीत अनागत अपेक्षा अनंत समय है। समय है सो अतिसूक्ष्म है। तिनका समूह सो आवली घटिका इत्यादि व्यवहारकाल है। अथवा अनंतपर्यायनिकी वर्तनाका कारण एक कालाणु है तातैं मुख्यकालकैहू अनंत समयपणा बनैहै॥ अब गुणपर्यायवान् द्रव्य कह्या तिनकै गुणका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जे द्रव्यकै तौ आश्रय हैं अर आप अन्यगुणनिकरि रहित हैं ते गुण हैं। जे द्रव्यकूं आश्रयकरि नित्यही रहैं ते गुण हैं अर पर्याय हैं ते कदाचित् अन्य होय कदाचित् अन्य होय। अर गुण हैं ते द्रव्यमें नित्य हैं। गुणविना द्रव्य नहीं है। जीवकै अस्तित्वादिक ज्ञानदर्शनादिक गुण हैं। पुद्गलकै अचेतनत्वादिक तथा रूपादिक गुण हैं। इत्यादि समस्त द्रव्यनिमें जानना॥ अब पूछैहै परिणामशब्द वारंवार कह्या सो परिणाम कहा है ताकैं सूत्र कहैहैं—

तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

अर्थ—धर्मादिक द्रव्यनिका निज स्वरूपकरि होना सो तद्भाव है सो ही परिणाम है। सो परिणाम दोय प्रकार है। एक आदिमान् परिणाम है। एक अनादिमान् परिणाम है। तहां धर्मादिकनिकै जो गति हेतु-

# अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

दोहा।

आस्रव आठो कर्मका त्यागि सुभलै प्रकार ।
पायो पद अविकार जिन ध्यावो थुतिविस्तार ।

अजीवपदार्थके अनंतर आस्रव कहने योग्य है यातैं आस्रवकी प्रकटकताकै अर्थि सूत्र कहैहैं—

कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥ १ ॥

अर्थ—काय वचन मन इनिका कर्म कहिए क्रिया सो योग है। तहां वीर्यांतरायकर्मका क्षयोपशम होतैं औदारिकादिक सप्तप्रकार काय वर्गणामैंतैं अन्यतम वर्गणाका अवलंबनकी अपेक्षाकरि आत्मप्रदेशका सकंप होना सो काययोग है। बहुरि वीर्यांतराय अर मत्यक्षरादिआवरणका क्षयोपशमकरि प्राप्त भयी वाग्लब्धिकी निकटता होतैं जो वाग्रूप परिणमनकै सन्मुख जो आत्मा ताका प्रदेशनका जो हलनचलन सो वाग्योग है। बहुरि अभ्यंतर वीर्यांतराय अर नोइंद्रियावरणका क्षयोपशमस्वरूप मनोलब्धिकी निकटता होतैं अर बाह्य पूर्वोक्तनिमित्तका आलंबन होतै मनःपरिणामकै सन्मुख आत्माका प्रदेशनिका चलनहलन सो मनोयोग है। ऐसैं क्षयोपशमलब्धि अभ्यंतर हेतु है। अर केवलीकै क्षयहेतु होतैहू त्रिविध योग है। जातैं क्रियारूप परिणमन करता आत्माकै तीन प्रकार पुद्गल वर्गणाका आलंबनकी अपेक्षा जो आत्मप्रदेशनिका सकंप होना सो योग है। सो सयोगीगुणस्थानपर्यंत है अयोगीकै अर सिद्धनिकै त्रिविध वर्गणाका आलंबनको अभाव तातैं योग नहीं है॥ ऐसैं मन वचन काय तीन योग हैं तेही आस्रव हैं यातैं सूत्र कहै हैं—

स आस्रवः ॥ २ ॥

अर्थ—कह्या जो योग सो आस्रव है। योगके निमित्ततें आत्माकै कर्मका आगमन होयहै तातें योग है सोही आस्रव है। जैसें सरोवरकै जल आवनेका द्वार होय सो जल आवनेकूं कारण है ताकूं आस्रव कहिये है तैसें इहां योगद्वारकरि आत्माकै कर्म आवैहै यातें योगभी आस्रव है ऐसें कहिए है। अथवा—जैसें आला वस्त्र है सो समस्त तरफतें आया रजकूं ग्रहण करैहै तैसें कषायरूप जलकरि आला आत्मा योगनिकरि ल्याया कर्मकूं समस्त प्रदेशनिकरि ग्रहण करैहै। अथवा जैसें अग्निकरि तप्तायमान लोहका पिंड जलमैं क्षेप्या हुआ सर्वतरफतैं जलकूं ग्रहण करैहै तैसें योगनिकरि तप्तायमान जीव समस्त तरफतैं कर्मकूं ग्रहण करैहै ॥ सो कर्म दो प्रकार पुण्यपापरूप है ताका हेतु कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥

अर्थ—शुभ योग पुण्यका आस्रव करैहै। अशुभयोग पापका आस्रव करैहै। तहां प्राणीनिका घात करना अदत्त वस्तुका ग्रहण करना मैथुन सेवना ईर्षापरिणामकूं आदि लेय अशुभ योग हैं यातें पापका आस्रव होयहै। बहुरि प्राणीनिकी रक्षा करना सत्यवचन बोलना परधनका हरण नहीं करना अरहंतादिककी भक्ति इत्यादि शुभयोग है इनितैं पुण्यका आस्रव होय है। इनका विशेष ऐसा—जो प्राणीनिका घात करना बिना दिया परधनका ग्रहण करना मैथुनप्रयोगादि अशुभ काययोग हैं। असत्यवचन कठोरवचन असभ्यवचन इत्यादिक अशुभ वचनयोग है। हिंसा ईर्षा असूयानिका चिंतवन सो अशुभ मनोयोग है। ऐसैं अशुभयोगके असंख्यातविकल्प हैं। बहुरि इनतैं उलटा सो शुभयोग है। यद्यपि परिणामके भेद असंख्यातलोकमात्र हैं तथापि अनंतानंत जीवनिकी अपेक्षा अनंत भेद है। अब कहोगे—जैसें सुवर्णमय सांक-

लवेडी तथा लौहमय बेडी आत्माकै स्वतंत्रताका अभाव दोऊ तुल्य करैहैं। तैसैं पाप अर पुण्य आत्माकूं पराधीन करनेको दोऊ निमित्त तुल्य हैं तातैं इनकूं शुभ अशुभ भेद रूप कैसैं कहे। ताका समाधान—इष्ट अनिष्ट गति जात्यादिक रचनेतैं भेद कह्या है। अब इहां कोऊ कहैं—जो आयुकर्मविना सप्तकर्मका आस्रव निरंतर होयहै। तातैं शुभपरिणाम पुण्यहीका कारण अर अशुभ पापहीका कारण कैसैं कहोहो ? ताका उत्तर-यद्यपि संसारी जीवनिकै सप्तकर्मका आस्रव निरंतर होय है तथापि ऐसैं जानना जो संक्लेशपरिणामतैं देव मनुष्य तिर्यक् आयुविना एकसो पैंतालीस कर्मकी प्रकृतिनिकी स्थिति वहुत वाढिजाय है अर तीन आयुकी स्थिति घटिजाय है अर मंद कषायके परिणामतैं समस्त कर्मकी स्थिति घटिजाय है अर तीन आयुकी स्थिति बाढिजाय है। वहुरि तीव्रकषायकरि शुभप्रकृतिनिमें अनुभाग जो रस सो घटिजाय है। अर असातावेदनीय आदिक अशुभप्रकृतिनिमैं अनुभाग वाढिजाय है। वहुरि मंदकषायके प्रभावतैं शुभ जे पुण्यप्रकृति तिनमैं रस वाढिजाय है। अर पापप्रकृतिनिमैं रस घटिजाय है। तातैं स्थिति अनुभागकी अपेक्षाकरि शुभपरिणामानितैं पुण्यास्रव कह्या अर अशुभपरिणामतैं पापास्रव कह्या। जातैं स्थिति अनुभागही प्रधान हैं। स्थितिविना आस्रव कुछ कार्यकारी नाहीं। अर अनुभाग जो रस तिसविना थोथी प्रकृति कहा कार्य करैं। तातैं शुभपरिणामानितैं अशुभकर्मनिकी स्थिति घटिजाय अर अनुभाग जो रस सो घटिजाय तदि अशुभका आस्रव नही आवनेतुल्यही है। अर अशुभपरिणामानितैं पुण्यप्रकृतिनिकी स्थिति अनुभाग दोऊ घटिजाय अर पापप्रकृतिनिकी स्थिति अनुभाग वाढिजाय तदि स्थिति अनुभागविना आस्रव निष्फल रह्या। सोही पूर्वाचार्यकृत वार्त्तिकमैं गाथासूत्र लिखा है—

गाथा—सव्वठ्ठिदीणमुक्कस्स गोदुऊकस्स संकिलेसेण। विपरीदे दु जघंणं आयुगतिग वज्ज सेसाणं॥

अर्थ—मनुष्य तिर्यंच देव आयुकूं वर्जिकरिकै समस्तकर्मनिकी उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट संक्लेशपरिणामनितें होयहै। विशुद्धपरिणामनितें जघन्यस्थितिबंध होयहै। अर इन तीन आयुकी स्थिति संक्लेशपरिणामनितें घटै है, विशुद्धतातें बधैहै ॥

गाथा—सुभपयडीण विसोहिए तिव्वमसुहाण संकिलेसेण। विपरीदे दु जघण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं।

अर्थ—विशुद्धपरिणामनिकरि शुभप्रकृतिनिमें रस अधिक होजायहै। अशुभप्रकृतिनिमें मंद रस होयहै। अर संक्लेशपरिणामकरि शुभप्रकृतिनिमें रस मंद होय अशुभमें तीव्र होय तातें कषायही संसारका कारण है॥ आगें यो आस्रव सर्व संसारीनिकै समानफलका हेतु है कि कछु विशेष है यातें सूत्र कहैहैं—

सकषायाकषाययोः सांपरायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥

अर्थ—कषायसहित जीवकै सांपरायिक कहिए संसारका कारण ऐसा आस्रव होयहै। अर कषायरहित जीवकै ईर्यापथ कहिए स्थितिरहित आस्रव होयहै इहां स्वामीके भेदतें आस्रवमें भेद है। आस्रवके दोय स्वामी हैं। सकषायी जीव अर अकषायी जीव। जे आत्माकूं "कषन्ति" कहिए घातैं ते क्रोधादिक कषाय हैं। यथा जैसें निंबकडुआ आदि वृक्षनिके रस वस्त्रकै रंग लगनेकूं कारण है। तैसें क्रोधादिकषाय आत्माकै कर्मनिका रंग लगनेकूं कारण हैं तातें कषाय कहिए हैं। ऐसें कषायसहित जीवकै सांपरायिक कहिए संसारका कारण आस्रव होय है। अर कषायरहित जे उपशांतकषाय क्षीणकषाय सयोगकेवली तिनिकै योगका वशकरि आस्रव होयहै सो ईर्यापथ आस्रव है स्थिति पड़नेकूं नहीं पावैहै जैसें मार्गै होय गमनकरि जाय तद्वत्‌ही। यथा जैसें कोरा घट ऊपरि रज उडकरि चली जाय तैसें कषायनिकी चिकणता विना कर्मरज टिकै नहीं॥ आगें बहुत भेदरूप जो सांपरायिक आस्रव ताके भेद कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

इंद्रियकषायाव्रतक्रियाः पंचचतुःपंचपंचविंशतिसंख्याः पूर्व्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥

अर्थ—इंद्रिय पांच, कषाय च्यार, अव्रत पांच, क्रिया पचीस ए सब हैं ते "पूर्व्वस्य" कहिए पहिले कह्या जो सांपरायिक आस्रव ताके भेद हैं। तहां पांच इंद्रिय तो पहिले कह्या। सोही इंद्रियनिके विषयविषैं रागद्वेषरूप प्रवर्त्तना बहुरि कषाय क्रोधादिक बहुरि अव्रत हिंसादिक आगैं कहसी। अब इहां पचीस क्रिया कहैहैं। तहां चैत्य गुरु अर प्रवचन जो आगम इनिकी पूजादिलक्षण सम्यक्त्वक्रिया है।१। अन्य कुदेवतानिका स्तवनादिरूप मिथ्यात्वक्रिया है ॥ २ ॥ कायादिक करि गमनागमनादिरूप प्रवर्तन सो प्रयोगक्रिया है ॥३॥ बहुरि वीर्यांतराय वा ज्ञानावरणका क्षयोपशम होतैं संतै अंगोपांगका अवलंबनतैं आत्माकै काय वचन मनके योगकी रचनामैं समर्थ ऐसे पुद्गलनिका ग्रहण सो समादानक्रिया है। अथवा संयमीपुरुषकै असंयमके सन्मुखपना सो समादानक्रिया है ॥ ४ ॥ बहुरि ईर्यापथ जो गमनकर्म ताकै निमित्त क्रिया सो ईर्य्यापथक्रिया है ॥ ५ ॥ ऐसैं पांच क्रिया कहीं। बहुरि क्रोधके वशतैं जो क्रिया सो प्रादोषिकी क्रिया है। जातैं क्रोध प्रदोषकूं कारण है। कोऊ अपना इष्ट स्त्री वित्तहरणादिक निमित्त विनाही चुगल दुष्ट क्रोध करैहैं जैसैं दृष्टिविषादिक स्वभावतैं ही होय हैं। तथा दुष्टनिकी चेष्टा विनानिमित्तही क्रोधादिरूप है निमित्तवान् प्रदोष है ॥ १ ॥ दुष्टपनाकै अर्थि उद्यम करना सो कायकी क्रिया है ॥ २ ॥ हिंसाके उपकरण शस्त्रादिक ग्रहण करना सो अधिकरणक्रिया है ॥ ३ ॥ अपनै वा परकै दुःखकी उत्पत्तिका कारण सो पारितापिकी क्रिया है ॥ ४ ॥ आयु इंद्रिय बल प्राणका वियोग करनेतैं प्राणातिपातिकी क्रिया है ॥ ५ ॥ ऐसैं पंच क्रिया कहीं। बहुरि प्रमादी जीवकै रागार्द्रीकृतपणातैं रमणीक रूपके अवलोकनका अभिप्राय सो दर्शनक्रिया है ॥ १ ॥ वस्तुके स्पर्शनै विषै परिणामतैं प्रवर्त्तना सो स्पर्शक्रिया है ॥ २ ॥ विषयके अपूर्व

वाह्य अभ्यंतर कारणनिकी उदीरणाके वशतैं अतिवृद्धिरूप क्रोधादि कषायनिकरि तीव्र परिणाम सो तीव्रभाव है। अर कषायनिकी मंदतातैं मंदभाव है। कोऊ प्राणीका घात होतै ज्ञान भया जो मैं प्राणीका घात किया सो ज्ञातभाव है। अथवा यो प्राणी मारने योग्य है ऐसा जानिकरि मारनेमैं प्रवृत्ति करना सो ज्ञातभाव है। बहुरि मद्यादिककरि वा इंद्रियनिकै मोहके करनेवाला मद तातैं वा असावधानता है लक्षण जाका ऐसा प्रमादतैं गमनादिकनिमैं विनाजाणे प्रवृत्ति करना सो अज्ञातभाव है। जाकै आधार पुरुषनिका प्रयोजन होय सो अधिकरण है द्रव्यकी शक्तिका विशेष सो वीर्य है। इन छहके तफावततैं आस्रवनिविषै तफावत होय है। ए जहां जैसा होय तहां तैसा आस्रव होय है। जातैं कारणमैं भेदतैं कार्यमैं भेद हैही॥ अब कह्या जो अधिकरण तामैं भेद दिखावैहैं—

अधिकरणं जीवाजीवाः ॥ ७ ॥

अर्थ—आस्रवका आधार जीव अर अजीव हैं। इहां बहुवचन कहनेकरि जिस तिस पर्यायकरि सहित जीव अजीव अधिकरण है॥ अब प्रथम जीवाधिकरणका भेद कहैहैं—

आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥

अर्थ—आदिका जीवाधिकरण है सो संरंभ समारंभ आरंभ ए तीन अर मन वचन काय ए तीन, अर कृत कारित अनुमोदना ए तीन, क्रोध मान माया लोभ ए कषाय च्यार, इनिकों परस्पर गुणे एकसो आठ भेदरूप है। हिंसादिकविषै उद्यमरूप परिणाम सो संरंभ है। हिंसादिकका साधन जे कारण तिनमैं अभ्यास करना सामग्री मिलावना सो समारंभ है। हिंसादिकनिमैं प्रवर्तन करना सो आरंभ है। ऐसा ए तीन बहुरि मन वचन कायके भेदतैं योग तीन, बहुरि कृत कहिए आप स्वाधीन होय करै अर परतैं करावै सो

कारित है अर अन्य कोऊ करै ताकूं आप भला जानै सो अनुमत है ऐसे ए तीन बहुरि क्रोध मान माया लोभ ए च्यार कषाय एनै विशेषनिकरि परस्पर संबंधरूप करिए तदि एकसो आठ भेद होइहैं। सो ऐसैं क्रोधकृतकायसंरंभ, मानकृतकायसंरंभ, मायाकृतकायसंरंभ, लोभकृतकायसंरंभ, क्रोधकारितकायसंरंभ मानकारितकायसंरंभ, मायाकारितकायसंरंभ, लोभकारितकायसंरंभ, क्रोधानुमतकायसंरंभ, मानानुमतकायसंरंभ, मायानुमतकायसंरंभ लोभानुमतकायसंरंभ। ऐसैं कायसंरंभके भेद भए। ऐसैंही वचनसंरंभके बारह भेद हैं अर ऐसैंही मनःसंरंभके बारह भेद हैं। सब मिलि संरंभके छत्तीस भेद भए। ऐसैंही समारंभके अर आरंभके छत्तीस छत्तीस भेद होयहैं। सब मिलि जीवाधिकरणके एकसो आठ भेद हैं। बहुरि सूत्रमें 'च' शब्द है सो अंतरंग भेदके समुच्चयके अर्थि है। ताकरि अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण संज्वलन ऐ कषायके च्यार भेद तिनकरि गुणे च्यारसै बत्तीस भेद होय हैं। ऐसैं जीवके परिणामके विशेषतैं असंख्यातें भेद हैं ॥ अब अजीवाधिकरणके भेद कहैहैं—

निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परं ॥ ९ ॥

अर्थ—निर्वर्तना निक्षेप संयोग निसर्ग ए च्यार हैं। तहां निर्वर्तनाके दोय भेद, निक्षेपके च्यार भेद, संयोगके दोय भेद, निसर्गके तीन भेद ऐसैं ये अजीवाधिकरणके भेद हैं। तहां निपजाइए सो निर्वर्तना है सो दोय प्रकार है। शरीरतैं कुचेष्टा उपजावना सो देहदुःप्रयुक्त नाम निर्वर्तना है। अर हिंसाके उपकरण शस्त्रादिककी रचना करना सो उपकरणनिर्वर्तना है। तथा एक मूलगुण निर्वर्तना एक उत्तरगुणनिर्वर्तना। तहां मूल पंचप्रकार शरीर वचन मन श्वासोच्छ्वासका निपजावना सो मूलगुणनिर्वर्तना है। अर उपर जो काष्ठपुस्त कहिए चित्रामादिक अर चित्रकर्मादि निपजावना सो उत्तरगुणनिर्वर्तना है। ऐसैंहू दोय प्रकार

आस्रवका कारण है ॥ अब अन्यकर्मके आस्रवकूं कहैहैं—

दुःखशोकतापाक्रंदनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥

अर्थ—दुःख शोक ताप आक्रंदन वध परिदेवन एते आपकै करै तथा परकै करै तथा आपकै परकै दोऊनिकै करै सो असातावेदनीय कर्मके आस्रवके कारण हैं। तहां पीडारूप परिणाम सो दुःख है। अपने उपकारक द्रव्यका वियोग होतै जो परिणाममैं मलीन होय तिसमैं लीन अभिप्रायरूप होय चिंता खेदरूप निराश होना सो शोक है। बहुरि जो निंदकार्य करनेतैं अपना अपवाद होनेतैं अंतःकरणकी कलुषतातैं तीव्र पश्चात्ताप करना सो ताप है। कोऊ या कहै जो निंद्यकार्य किया ताका तो पश्चात्ताप चाहिएही तो निंद्यकार्य करनेतैं अपवादहूभी चाहिएही निंद्यकार्यका फल तो नरक तिर्यंचमैं भोगना पडैगा इहां निंदा अपवाद होनेतैं धर्मात्मा तो हर्षही मानैगा जो मैं निंद्यकार्य किया है मेरी निंदा अपवाद तिरस्कार चाहिएही अब पश्चात्ताप करूंगा तो तीव्रकर्मका बंध होयगा ऐसा विचारि क्लिशित नहीं होयहै। बहुरि परितापतैं उपज्या अश्रुपातपूर्वक विलापकरि रोवना सो आक्रंदन है। बहुरि आयु इंद्रिय बल प्राणादिकका वियोग करना सो वध है। बहुरि ऐसा विलाप करै आवै सो परिदेवन है। ऐसैं दुःख शोक ताप आक्रंदन वध प

करि जीविका करना । निर्दयीपणै परकूं दंड देना. विश्वासघातना वा जाल पासी वागुरा पिंजर बनावना. जीवनिके घातके पासनिकूं करनेकूं यंत्रनिका उपाय तथा खोटे प्रयोग शस्त्रनिका दान पापतें मिले भाव इत्यादि असातावेदनीयकर्मके आस्रवका कारण हैं ॥

बहुरि इहां कोऊ प्रश्न करै—जो दुःखादिक आपकै परकै करनेतें असातावेदनीयका बंध होय तो नग्न रहना अनशनादिक तप करना आतापनयोगादि धरना इत्यादिकका उपदेश देना वा करना इसमेंहू दुःखादि उत्पन्न होयहै तातें अपने करनेमेंही धर्मशास्त्रमें विरोध आया । ताका समाधान—जो अंतरंगमें क्रोधादिक परिणामकै आवेशपूर्वक दुःख आदिक देनेका अभिप्राय होय ते असातावेदनीयकर्मके आस्रवके निमित्त हैं । अर जैसें कोऊ वैद्य परमकरुणाचित्तकरि निःशल्य हुवा यत्नतें संयमीपुरुषके गूमडाकै चीरा देहै सो वाकै दुःख उपजावैहै तोहू तिस वैद्यकै बाह्य दुःखके निमित्तमात्रहीतें पापबंध नहीं होयहै । वैद्यका अभिप्राय तो रोगीके रोगकूं दूरिकरि निरोगी करनेका है । तातें संसारके दुःख मेटि मोक्ष प्राप्त होनेका अभिप्रायवालाकै दुःख होनेका अभिप्राय नाहीं । तातें किंचित् बाह्यदुःख होतेहू परिपाककालमें कड़वी औषधिकीज्यों समस्तदुःखका दूरि करनेवाला है तातें असाताके बंधका कारण नहींहै ॥ अब सातावेदनीयका आस्रवके कारणनिकूं कहैहैं—

भूतव्रत्यनुकंपादानसरागसंयमादियोगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥

अर्थ—आयुनामकर्मके वशतें उत्पन्न होय ते भूत कहिए ते समस्त चतुर्गतिसंबंधी प्राणी जानने । अर जिनकै अहिंसादिव्रतनिका धारण होय ते व्रती जानने । इनकै विषैं पीडा जानि आपमें जैसें दुःख आया तैसैं परकी पीडा मेटनेरूप परिणाम होना सो भूतव्रतीनिमैं अनुकंपा है । अब इहां कोऊ आशंका करै—जो

परकै कषाय उपजावना इत्यादि कषायवेदनीयके आस्रवके कारण हैं। बहुरि उत्कट हसना दीन दुःखित अनाथनिका हास्य करना कामकथा कामचेष्टाकरि हास्य करना बहुतवृथाप्रलाप करना इन परिणामनितैं हास्यवेदनीयकर्मका आस्रव होय है। बहुरि परपुरुष कोऊ विचित्रक्रीडा करै तिसमैं तत्परता उचितक्रियाकूं नहीं वर्जन करना परकै पीडाका अभाव करना दर्शनादिकनिमैं उत्सुकपणाका अभाव सो रतिवेदनीयकर्मका आस्रवका कारण हैं। बहुरि अन्य जीवनिकै अरति प्रगट करना परकीर्त्तिका विनाश करना पापीनिकी संगति करना खोटी क्रियामैं उत्साह करना इत्यादि अरतिवेदनीयका आस्रवका कारण हैं। बहुरि आपकै शोक होइ तामैं विषादी होय चिंता करना परकै दुःख प्रगट करना अन्यकूं शोकमैं देखि आनंद धारना सो शोकवेदनीयकर्मका आस्रवका कारण हैं। बहुरि अपना भयरूप परिणाम करना परकै भय उपजावना निर्दयपरिणामकरि परकूं त्रास देना सो भयवेदनीयका आस्रवका कारण है। बहुरि सत्यधर्मकूं प्राप्त भए जो च्यार वर्णके धारक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तिनका कुलकी क्रिया आचारनिकी ग्लानि करना परका अपवाद करनेका स्वभाव सो जुगुप्सावेदनीयके आस्रवका कारण है। बहुरि अतिक्रोधके परिणाम अतिमानीपणा ईर्षाका व्यवहार असत्यवचनमैं प्रवृत्ति अतिमायाचारमैं तत्परपना अतिरागभावका करना परस्त्री सेवन करना परस्त्रीका रागभावतैं आदर करना स्त्रीकेसे भाव आलिंगनादिकरना इन भावनितैं स्त्रीवेदका आस्रव होय है। बहुरि अल्पक्रोध कुटिलताका अभाव विषयनिमैं उत्सुकताका अभाव निर्लोभता स्त्रीके संबंधमैं अल्पराग अपनी स्त्रीमैं संतोष ईर्षाका अभाव अर स्नान गंध पुष्पमाला आभरणादिकनिमैं अनादरपणा इत्यादि पुरुषवेदके आस्रवका कारण है। बहुरि प्रबल क्रोध मान माया लोभके परिणाम तथा गुह्य इंद्रियका छेदना स्त्रीपुरुषनिके कामके अंग छांडि अनंगमैं व्यसनीपणा करना

तथा शीलवंतनिकूं उपहास करना व्रतीनिकूं दूषण करना गुणवंतनिका मथन करना दीक्षाग्रहण करने-वालेनिकूं दूषण देना परस्त्रीका संगके निमित्त तीव्रराग करना आचारवंतनिं निरादारी होना सो नपुंसक-वेदके आस्रवका कारण है। ऐसे मोहनीयकर्मके आस्रवका कारण कह्या॥ अब आयुकर्मके आस्रवके का-रणनिविषै नरकायुका आस्रवके कारणनिकूं कहै हैं—

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥ १५ ॥

अर्थ—बहुत आरंभ अर बहुत परिग्रह नरक आयुके आस्रवके कारण हैं। तहां प्राणीनिकै पीडाका का-रण व्यापारका करना करना सो आरंभ है। बहुत जो आरंभ सो बह्वारंभ है। अर परवस्तुनिमें मेरा यं वस्तु है मैं इसका स्वामी हूं ऐसें परवस्तुमें आपा अर आपकापणाका संकल्प सो परिग्रह है। बहुत जो प-रिग्रह सो बहुपरिग्रह है। सो बहुआरंभ अर बहुपरिग्रह नरकायुके आस्रवके कारण हैं। बहुरि मिथ्यादर्शी-नमें शिथिल आचरण उत्कृष्टमानीपणा शिलाभेदसमान क्रोध तीव्रलोभके परिणाम निर्दयपणा परजीवनि-कै संताप उपजावनेके परिणाम परके घातकरनेके परिणाम परके बंधन होनेका अभिप्राय प्राणीनिका घातकरनेवाला असत्यवचन परद्रव्यके हरनेके परिणाममें मैथुनमें अतिराग अभक्ष्यभक्षण इत्यादिक साधु-निकी निंदा तीर्थंकरनिकी आज्ञाभंग कृष्णलेश्याके परिणाम रौद्रध्यानकरि मरण इत्यादिक नरकआयुके आस्रवके कारण हैं॥ अब तिर्यगायुके आस्रवका कारण कहैं हैं—

माया तैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥

अर्थ—चारित्रमोहके उदयतें प्रगट भया जो आत्माका कुटिलस्वभाव सो माया है। मायाचारतें तिर्यग्यो-निका आस्रव होय है। बहुरि मिथ्याधर्मका उपदेश देना बहुआरंभ बहुपरिग्रहमें परिणाम कपट कूटकर्म-

मैं तत्परपना पृथ्वीभेदसमान क्रोधीपणा शीलरहितपणा शब्दकरि चेष्टाकरि तीव्र मायाचार करना परके परिणामनिमैं भेद उपजावना अति अनर्थ प्रगट करना गंध रस स्पर्शनिका विपरीतपणाका करना जाति कुल शीलमैं दूषण लगावना विसंवादमैं प्रीति रखना परके उत्तम गुणनिकूं छिपावना विनाहोतेहू गुण प्रगट करना नील कपोत लेश्याके परिणाम आर्त्तध्यानतैं मरण करना इत्यादि तिर्यंच आयुके आस्रवका कारण है ॥ अब मनुष्यआयुका आस्रवका कारण कहैहैं—

अल्पारंभपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ १७ ॥

अर्थ—अल्प आरंभ अल्प परिग्रहपणातैं मनुष्यआयुका आस्रव होय है। बहुरि मिथ्यादर्शनसहित बुद्धि विनयवान स्वभाव, सरलप्रकृति, सांचे आचरणमैं सुख मानना, अपना सुख जनावना, अल्पक्रोध, व्यवहारमें सरलप्रकृति संतोषमैं रति प्राणीनिका घातमैं विरक्तता कुकर्मतें निवृत्तहोना समस्तमें मिष्टवचन स्वभावहीतैं मधुरता, लौकिकव्यवहारतैं उदासीनता, ईर्षारहितपणा, अल्पसंक्लेशपणा, देव गुरु अतिथिनिका दान पूजाके अर्थि अपने द्रव्यमैतैं विभाग करना, कपोतलेश्याके परिणाम, मरणकालमें धर्मध्यानीपणा. ए मनुष्यायुके आस्रवके कारण हैं। इहां कोऊ आशंका करै। जो मिथ्यादर्शनसहित जाकी बुद्धि होय ताके मनुष्यायुका आस्रव कैसैं कह्या। ताका उत्तर—मनुष्य तिर्यंचनिकै सम्यक्त्वपरिणाम होते तो कल्पवासीदेवकाही आयु बंधैहै मनुष्यायुका बंध नहीं करैहैं ॥ अब औरहू मनुष्यायुका आस्रवपणाका कारण कहैहैं—

स्वभावमार्दवं च ॥ १८ ॥

अर्थ—विनासिखाया स्वभावतैंही कोमलपणा सोहू मनुष्यायुके आस्रवका कारण है ॥ अब अन्यहू विशेष कहैहैं—

निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषां ॥ १९ ॥

अर्थ—शीलरहितपणा अर व्रतरहितपणातैं समस्त च्यारूंही आयुका आस्रव होय है। इहां कोऊ कहै जो व्रतशीलरहित होय ताकै देवआयुका आस्रव कैसें होय। ताका समाधान—जो भोगभूमिके जीवनिकै शीलव्रतादिक नाहीं है तौऊ देवआयुहीका आस्रव होय है ॥ अब देवआयुके आस्रवके कारणनिकूं कहै हैं—

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥ २० ॥

अर्थ—सरागसंयम अर संयमासंयम अकामनिर्जरा बालतप ए देवायुके आस्रवका कारण हैं। कर्मके नाशकरनेमें राग तथा व्रतादिक शुभ आचरणमें रागसहित संयमभाव सो सरागसंयम है। अर त्रसहिंसाका त्याग सो संयम अर थावरकी हिंसाका त्यागनहीं सो असंयम ऐसें संयम असंयम दोऊ रूप परिणाम सो संयमासंयम है। अर परवशीन बंदीगृहादिकनिमें क्षुधातृषादिककी पीडाका भोगना मारना ताडनादिक भार भोगना मलधारण करना भूमिशयन ब्रह्मचर्य रखना परितापादिक दुःख भोगना इत्यादिक संक्लेशरहित भाव होय सो अकामनिर्जरा है। बहुरि आत्मज्ञानरहित तप करना सो बालतप है। सो सरागसंयमतैं अकामनिर्जरातैं बालतपतैं देवआयुका आस्रव होय है। तथा आपके कल्याणके कारण ऐसे मित्रनिका सेवन करना तथा धर्मायतन जो धर्मके स्थान तिनका सेवन करना सत्यार्थधर्मका श्रवण सम्यक् दर्शन करना धर्मकी महिमा दिखावना निर्दोष उपवासादि करना तामें भावना रखना इनतैं देवआयुका आस्रव होय है। बहुरि बालवृद्धमें संयमादिककरि चेष्टा होय तथा तीव्र क्रोधका रोगी होय तथा संक्लेशरहित क्षुधा तृषाकरि मरणा होइ तथा पर्वतपरतैं पडिकरि तथा जलमें अग्निप्रवेशमें अपघातमें मि- रणमें धर्म होनेतें इत्यादि मरण होना होइ ते व्यंतरनिमें मनुष्यनिमें तिर्यंचनिमें उपजै है। तथा जो

शीलव्रतरहित होइ परंतु अनुकंपासहित जिनका हृदय होय अर जलरेखा समान ज्याकै रोष अतिमंद होइ ते व्यंतरादिक देवनिमैं उपजैहैं। तथा भोगभूमिके उपजे मनुष्य तिर्यंच तेहू व्यंतरादिक देवनिमैं उपजैहैं तथा आत्मज्ञानरहित अज्ञानसंयमी अर संक्लेशभावरहित होइ ते भवनवासी व्यंतरादि वारमा स्वर्गपर्यंत देवनिमैं उपजैहैं। तथा मनुष्यतिर्यंचनिमैंहू उपजैहैं॥ अब औरहू देवायुके आस्रवका कारण कहैहैं—

सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥

अर्थ—सम्यक्त्वतैं देवआयुहीका आस्रव होय है। इहां न्यारा सूत्र कहनेतैं कल्पवासी देवहीका नियम है। ... तर ज्योतिषीनिमैं नहि उपजैहैं। कल्पवासीनिमैंहू महर्द्धिकदेव होय हैं। नीचदेव नहीं उप- ... तिर्यंचनिकी अपेक्षा नियम है अर देवलोकमैंतैं वा नरकमैंतैं आया सम्यग्दृष्टि कर्मभूमि- ... होय है जातैं देवपर्यायतैं आयाहुवा देव होयनहीं अर नरकका निकस्याहू देव होय नहीं। ... के आस्रवका कारण कह्या॥ अब नामकर्ममैं अशुभनामकर्मके आस्रवकूं कहैहैं—

... योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः॥ २२

... र अन्यजीवनिकूं अन्यथा प्रवर्त्तावना धर्मके मार्गकूं छुडाय ... होय है। मिथ्यादर्शन धरना पीठ पाछैं खोटा कहना ... र्ण मणि-रत्नादिक खोटेकूं सांचेमैं मिलावना, झूठी ... रस गंध स्पर्श इनिकी विपरीतता करना, अनेक जीव- ... अधिकता रखना, परकी निंदा करना, अपनी प्रशंसा ... महापरिग्रह, उज्ज्वलवेषका मद करना, आभ-

... आदिककरि गर्व करना. कठोर निंद्य वचन असभ्य प्रलाप करना. कोपके वचन सौठ्याकै वचन कहना, अपना सौभाग्य गावना, वशीकरणके प्रयोग करना. परजीवनिकै कौतूहल उपजावना. आभरण पहरनेमैं आदरतैं अनुराग करना. जिनमंदिरके चंदनादिक गंध अर पुष्पमाल्यादिक धूपादिकनिका चोरना, हास्य करना. ईंटनिके पकावनेकै प्रयोग करना. दवाग्नि लगावनेका प्रयोग करना. प्रतिमाका विनाश करना. तथा प्रतिमाका स्थान जो मंदिर ताका विनाश करना. मनुष्य तिर्यंचनिके बैठने सोवनेके मकान- कूं वस्तुसामग्रीकूं बिगाड़ना. बाग बगीचा वनका विनाश करना. तथा क्रोध मान माया लोभका तीव्र- करना. पापकर्मतें जीविका करना इत्यादिकनितैं अशुभनामकर्मका आस्रव होय है ॥ अब शुभनामकर्मके आस्रवकूं कहैं हैं—

तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥

अर्थ—अशुभनामकर्मका जो आस्रव कह्या तातैं विपरीत कहिए उलटा भावतैं शुभनामकर्मका आस्रव होय है। मन वचन कायकी सरलता अर विसंवादका अभाव अर धर्मात्माकूं देखि हर्ष करना सम्यग्भाव रखना संसारभ्रमणतैं भयभीत रहना प्रमाद वर्जना इत्यादि शुभनामकर्मके आस्रवका कारण है ॥ अब अनंत अर अनुपम है प्रभाव जाका अर अचिंत्यविभूतिविशेषका कारण अर त्रैलोक्यमैं विजय कर- नेवाला ऐसा तीर्थंकरनामा नामकर्मके आस्रवके कारण सोलहभावना तिनकौं कहैं हैं—

दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी
साधुसमाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्ग
प्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥ २४ ॥

अर्थ–दर्शनविशुद्धता[१], विनयसम्पन्नता[२], शीलव्रतेष्वनतीचारता[३], अभीक्ष्णज्ञानोपयोग[४], संवेग[५], शक्तितस्त्याग[६], शक्तितस्तप[७], साधुसमाधि[८], वैयावृत्यकरण[९], अरहंतभक्ति[१०], आचार्यभक्ति[११], बहुश्रुतभक्ति[१२], प्रवचनभक्ति[१३], आवश्यकापरिहाणि[१४], मार्गप्रभावना[१५], प्रवचनवत्सलत्व[१६], इन षोडशभावनाकरि, तीर्थंकरनामकर्मको आस्रव होयहै। तहां जो सत्यार्थ आप्त आगम गुरुका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। तिनमैं जो अठारह दोषनिकरि रहित होय अर सर्वज्ञ होय अर परमहितोपदेशक होय इनि तीन विशेषणानिकरि सहित होइ सो आप्त होय है। तिनमैं क्षुधा[१], तृषा[२], जन्म[३], जरा[४], मरण[५], रोग[६], शोक[७], भय[८], विस्मय[९], अरति[१०], चिंता[११], राग[१२], द्वेष[१३], स्वेद[१४], खेद[१५], निद्रा[१६], मद[१७], मोह[१८] ए अठारह दोष करि रहित होइ सोही आप्त है। अर दूजा विशेषण जो सर्वज्ञपणा जामैं पाइए जो लोक अलोकरूप समस्तपदार्थ तिनकूं त्रिकालवर्ती समस्तगुणपर्यायनिसहित युगपत् एकसमयमैं जानता होइ सो सर्वज्ञपणा आप्तका दूसरा विशेषण है। अर तीजा परमहितोपदेशक होइ ऐसैं निर्दोषपणा अर सर्वज्ञपणा अर वीतरागपणा जामैं तीनो गुण असाधारण पाइए सोही आप्त है। जो आप्तका लक्षण एक निर्दोषही कहिए तो क्षुधादि अठारह दोषकरि रहित तो घटपटादिकभी हैं। धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गलभी हैं। इनिकैं आप्तपणाका प्रसंग आवै तातैं सर्वज्ञताविना आप्तत्व नहीं। अर जो निर्दोषत्व अर सर्वज्ञत्व दोय विशेषणरूपहीकूं आप्त कहिए तो भगवान् सिद्ध परमेष्ठी निर्दोषभी हैं अर सर्वज्ञभी हैं। यातैं सिद्धनिकै आप्तपणाका प्रसंग आवै तातैं तीजा विशेषण परमहितोपदेशकपणा कह्या। तातैं निर्दोषत्व अर सर्वज्ञत्व अर परमहितोपदेशकत्व इनि तीन विशेषणानिकरि सहित भगवान् अरहंतकैही आप्तपणा संभवैहै अन्यकै नही संभवैहै। यातैं निर्दोष सर्वज्ञ परमहितोपदेशक अरहंतकूंही आप्त जाणि श्रद्धान करना उचित है।

बहुरि जो आप्त भगवान् आप्तका कह्या हुआ होइ अर वादी प्रतिवादीकरि उल्लंघन नहीं किया जाय अर जामैं कह्या प्रत्यक्ष अनुमानकरि विरुद्ध नहीं होय अर सारभूत वस्तुकूं कहनेवाला होइ अर समस्त खोटे मार्गके जीवनिका हितरूप होइ अर कुमार्गका दूरि करनेवाला होय ऐसा आगमका श्रद्धान करना उचित है। बहुरि जाके विषयनिमें वांछा नहीं होय अर समस्त आरंभ अर परिग्रह रहित होय अर निरंतर ज्ञानध्यानमें ध्यानमें तपमें आसक्त होय सोही वीतरागी मोक्षमार्गी गुरु श्रद्धान करनेयोग्य है। ऐसें समीचीन आप्तमें आगममें गुरुमें जाके दृढश्रद्धान होइ अर इन लक्षणरहितनिकूं आप्त आगम गुरुपणाकरि श्रद्धान नहीं करै सो श्रद्धानरूप परिणाम सम्यग्दर्शन है। सो इन श्रद्धानपरिणाममें पचीस दोष नहीं होय अर अपने गुण अंगनिकरि सहित होय सोही दर्शनविशुद्धि है। तिन दोषनिमें तीन मूढता हैं, अष्ट मद हैं, शंकादिक अष्ट दोष हैं, छह अनायतन हैं ए पचीस दोष हैं। तिनमें जो नदीस्नानमें धर्म मानै समुद्रकी लहरि लेनेमें धर्म मानै तथा पर्वततें पडनेमें अग्निमें प्रवेश करनेमें धर्म मानै तथा स्नानतें अपना शौच मानै तथा अश्वत्थादिकनिकूं धर्म मानै तथा संक्रांतिआदि दान करना, ग्रहणआदि सूतक पालना स्नान करना इत्यादिक बहुतप्रकार लोकमूढता है। ऐसेंही यक्ष भूत पिशाच योगिनी ग्रह शाकिणी क्षेत्रपाल सूर्य चंद्रमा अन्य व्यंतरादिकनिकूं वांछितकी सिद्धिके अर्थि मानना पूजना वंदना दान देना सो देवमूढता है। अर जो देवगणादिकरि रहित, जिनमें स्त्र्यादि विकारका देखणा नहीं अर देवाधिदेव लक्षणकरि रहित अर जिनके तिर्यंचनिकेसे मुख हस्तीकासा मुख वानरकासा मुख सिंहकासा मुख गर्दभकासामुख सूकरकासा रूप जिनकै पूंछ सींग इत्यादि विपरीत आकारकूं धरैं तथा चतुर्भुज षड्भुज षण्मुख चतुर्मुखादि रूपके धारकनिकूं देव मानना तथा लिंग योनि विपरीत रूपनिमें देवबुद्धि करना तथा जलकूं अग्निकूं वृक्षकूं पहाडकूं अन्नकूं देव

नहीं प्रवर्त्तना तथा लौकिकमैं मणि मंत्र ओषधनिका संयोगजनित अनेक क्रिया तथा व्यंतरादिकनिकरिविपरीत चेष्टाकूं देखि भगवत्सूत्रकी आज्ञातैं विपरीत श्रद्धानका अभाव सो अमूढदृष्टि अंग है। बहुरि जैसैं पुत्रकृत दोषकूं माता गोपन करै तैसैं परके दोष देखि प्रगट नहीं करै जो मोहनीय ज्ञानावरणादि कर्मके आधीन जगत् नष्ट होय रह्या है जो गुण होना दुर्लभ है हमारै मांहीही अनेक दोष हैं ऐसैं विचारि परका दोष प्रगट नहीं करै अर अपना सुकृत्य होइ ताहि प्रशंसाकै अर्थि प्रगट नहीं करै तथा धर्मात्मामैं दोष देखि विचारै जो इसकै अज्ञानतातैं अशक्तातैं दोष लगिगया है जो प्रगट होइगा तो धर्मकी निंदा होयगी ऐसा विचारि दोषकूं गोपन करै सो उपगूहनगुण है। अथवा उत्तम क्षमादिभावनाकरि आत्माकै धर्मकी वृद्धिका करना सो उपबृंहण है सोभी याहीकूं कहिए हैं।

बहुरि कर्मका उदयजनित रागद्वेष वा रोगपीडा तथा उपसर्गपरीषह इनितैं परिणाम बिगडि जो धर्मसूं छूटता होइ ताकूं धर्मकै उपदेशकरि ज्ञान वैराग्य वधाय चिगने नहीं देना तथा औषध आहार पानका संयोगतैं शरीरकी टहलतैं तथा हम आपके हैं आपकी सेवातैं कदाचित् नहीं चिगैंगे आपकेही हैं ऐसैं आत्मसमर्प्पणतैं जैसैं बनै तैसैं चिगनेनहीं देवै धर्ममैं स्थापन करै सो स्थितिकरण अंग है। बहुरि जिनेंद्रका कह्या धर्ममैं तथा धर्मके धारकनिमैं धर्मके कारणनिमैं नित्य अनुराग रखना सो वात्सल्य अंग है॥ बहुरि जो रत्नत्रयधर्मको धारणकरि आत्माका प्रभाव प्रगट करना तथा दान शील तप जिनपूजन इत्यादिकरि जिनधर्मका प्रभाव प्रगटकरै तथा अन्यमिथ्यादृष्टिहू जाकी प्रशंसा करैं जो जैनीका बडा संतोष बडा दयावानपणा निर्लोभीपणा दातारपणा क्षमावानपणा जो प्राण जातैंहू विकारी नहीं होइ अनेक लोभके वशतैंहू असत्यवचन नहीं कहैं, परधनहरण स्वप्नमैंहू नहीं करै, जैनीनिका सादृश्य और कोऊ-

निंदा नाहीं ऐसें सत्यवानकारकी यथार्थनिकरि पापनिकी निंदा नहीं करावै अर अनेकांतके प्रभावकरि एकांतरूप मिथ्याश्रद्धान है ताकरि लोकनिके हृदयमें अनेकांतरूप सत्यार्थवस्तुका स्वरूपका प्रकाश करै तथा मुनिराजनिमें तप ध्यानकरि वा आकाशगामी होइ धर्मका प्रभाव प्रगट करै सो प्रभावनांग है। ऐसें पचीस दोषनिकरि रहित अष्ट अंगनिकरि सहित होइ सो दर्शनविशुद्धि है ॥ १ ॥ बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्रके विषें तथा दर्शन ज्ञान चारित्रके धारकनिके विषें आदर सत्कार भक्ति करना तथा देव गुरु धर्म का प्रत्यक्ष परोक्ष विनय करना सो विनयसंपन्नता गुण है। तथा कषायका अभावकरि आत्माकूं मार्दव-रूप करना सो विनयसंपन्नता अंग है ॥ २ ॥ अहिंसादिक व्रतनिके पालनेके अर्थि क्रोध मान माया लोभ कषायका अभावरूप आत्मस्वभावका रहना सो शील है। तथा स्पर्शइंद्रियजनित समस्तविषयनितें राग छुटि वीतरागभावरूप होना सो शील है। शीलव्रतनिमें मन वचन कायकी निर्दोषता करि अति-चाररहित प्रवर्तना सो शीलव्रतेष्वनतिचारभावना है ॥ ३ ॥ बहुरि निर्दोषग्रंथनिकूं पढना पढावना उप-देश करना श्रुतज्ञानके अर्थमें निरंतर उपयोग रखना सो अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है ॥ ४ ॥ बहुरि शरीर-संबंधी क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोगादिजनित अर मनसंबंधी दुःख अर इष्टवियोग अनिष्टसंयोग वांछित-का अलाभ इत्यादिक संसारके दुःखनितें भयभीत होइ परमवीतरागताका चिंतवन सो संवेगभावना है ॥ ५ ॥ बहुरि अपना अर अन्यका उपकारके अर्थि आहार औषध शास्त्र अभयदानका सम्यग्भावनितें अतिशयकरि देना, जातें स्वामीमें अर त्यागी शक्ति छिपावनाहू नहीं अर शक्तितें अधिकहू नहीं जातें शारी-रादिक विगाडि पाछें खेदरूप सो नाहीं करना सो शक्तितस्त्यागभावना है ॥ ६ ॥ बहुरि अपना वीर्यकूं छिपायकरिकै जिनेंद्रका मार्गकै अनुकूल अनशनादिक तप करना तथा ऐसें विचारना जो यो शरीर दुः-

खका कारण है अशुचि है कृतघ्न है इस देहकूं यथेष्ट भोजन देय पुष्ट करना अयोग्य है तोहू चारित्र ज्ञाना-दिक रत्ननिका संचय करनेकूं उपकारी है यातैं विषयनितैं विरक्त होइकरिकै अपना प्रयोजनकै अर्थि-परिमित शुद्ध आहार देय यथाशक्ति मार्गतैं अविरोधी कायक्लेशादि तप करना श्रेष्ठ है ऐसी शक्तितैं तपो-भावना है ॥ ७ ॥ वहुरि अनेक व्रत शीलनिकरि सहित जो मुनि तिनकै कोऊ कारणकरि विघ्न आवै तो ताका दूरि करना, जैसैं अनेक वस्तुनिकरि भर्या भंडारविषै अग्नि लागि होइ ताका जैसैं बुझावना तैसैं साधुनिकै विघ्न दुःख दूरिकरि व्रत शील संयमकी रक्षा करना सो साधुसमाधि है ॥ ८ ॥

गुणवंत जे साधुजन तिनकै कोऊ कारणकरि दुःख रोग आजाय ताका निर्दोष विधानकरि दूरि करना सेवा टहल करना सो वैय्यावृत्य है ॥९॥ इहां उपदेश देकरि तथा शरीरका टहलकरिकै आहारादिक दान करिकै तो वैयावृत्ति होय है अर उनके व्रतसंयमादिकनिमैं विघ्नके कारणनिकूं दूरि करना सो साधुसमाधि है। वहुरि केवलज्ञानही है दिव्य नेत्र जाके ऐसा अरहंत भगवानके गुणनिमैं अनुराग सो अर्हद्भक्ति है ॥ १० ॥ वहुरि समस्तसंघकै अधिपति दीक्षाशिक्षाकै देनेवाले आचार्यनिकै गुणनिमैं अनुराग सो आचार्य-भक्ति है।११।वहुरि परके हित करनेमैं है प्रवृत्ति जिनकी अर स्वमतपरमतके विस्तारका निश्चयका जाननेवाले बहुश्रुत जे उपाध्याय तिनकै गुणनिमैं अनुराग सो बहुश्रुतभक्ति है।१२।वहुरि श्रुतज्ञानके गुणनिमैं अनुराग सो प्रवचनभक्ति है ॥ १३ ॥ वहुरि सामायिक स्तव वेदना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान कायोत्सर्ग ए षट् आ-वश्यक क्रियानिकी हानि नहीं करना यथाकाल प्रवर्त्तन करना सो आवश्यकापरिहाणि भावना है ॥१४॥ वहुरि परमरूप अज्ञानके उद्योतका तिरस्कार करनेवाली जे स्याद्वादरूप सम्यग्ज्ञानसूर्यकी प्रभाकरि जिनधर्मका सत्यार्थ प्रभाव दिखावना तथा जातैं देवनिकेहू आसनकंपायमान होजाय ऐसा महान् तप-

करि तथा अन्यका ज्ञाननिकै गर्व प्रकाशित करनेवाला जिनेंद्रका पूजनकरि सम्यग्धर्मका प्रभाव प्रगट करना सो मार्गप्रभावना है ॥ १५ ॥ बहुरि जैसें गऊ बछरासूं प्रीति करै तैसें धर्मीनिकूं अवलोकन करि स्नेहरूप चित्तका आर्द्रपणा होजाना सो प्रवचनवत्सलत्व भावना है ॥ १६ ॥ ऐसैं ए षोडशभावना समस्त तथा न्यस्त सम्यग्दर्शनविशुद्धिकरि सहित चिंतवन करी हुई तीर्थंकरनामकर्मका आस्रवका कारण है ॥ २७ ॥ बहुरि इहां विशेष जो तीर्थंकरनाम प्रकृतिका बंध होइ सो अविरतनाम चतुर्थगुणस्थानमैं तथा पंचमा छठा सातमा तथा आठमा अपूर्वकरणगुणस्थानका छठा भागपर्यंत बंध होयहै । अर प्रथमोपशमसम्यक्त्वमैं तथा द्वितीयोपशममैं क्षयोपशममैं क्षायिकमैं च्यारौं सम्यक्त्वमैं तीर्थंकरप्रकृतिका बंध होइ परंतु मनुष्यगतिहीमैं आरंभका आरंभ केवली भगवान् तथा श्रुतकेवलीनिके चरणनिके निकटही होय और जगह नहीं होय बहुरि तीर्थंकरप्रकृतिकूं बांधि देवआयुबांधी होय तो कल्पवासीनिमैं [illegible] सो इन्द्र होय तथा ग्रैवेयकादिकनिमैं अहमिंद्रनिमैं जाय उपजै तहां स्वर्गादिकतैं विदेह आयकरि आयुते- है । अर जाकै पूर्वै मिथ्यात्वगुणस्थानमैं तिर्यंचगतिका वा मनुष्यगतिका आयु बांधिलिया होइ ताकै नियमतैं तीर्थंकरप्रकृतिका बंध नहीं होइ । अर जो पूर्वै मिथ्यात्वादिकगुणनिमैं प्रथम नरकका वा द्वितीय नरकका आयुका बंधिलिया होइ अर पीछै केवली श्रुतकेवलीका निकट पाय क्षयोपशम वा क्षायिकसम्यक्त्वकूं प्राप्त होइ अविरतनाम चतुर्थगुणस्थानी होइ तामैं नरक आयु बंधनकीया होइ ताकै [illegible] महापुरुष नहीं, तातैं अविरतगुणस्थानवर्ती होइकै पाछै केवलीका निकटकूं पाय षोडशकारण भावना भाय तीर्थंकरप्रकृतिका बंध करै सो मरणकरि अन्तर्मुहूर्तमैं प्रथमनरक जाय तहांभी तीर्थंकरप्रकृतिका आस्रव हुवाकरै । तहांतैं आयु पूर्ण करि पंचकल्याणकनि पाय तीर्थंकर होइ निर्वाण प्राप्त होइ है । अर

कोऊ मिथ्यादृष्टि जीव द्वितीय तृतीय नरकका आयु बंध किया होइ अर पीछैं क्षयोपशमसम्यक्त्व ग्रहण करि केवली तथा श्रुतकेवलीका निकट पाय षोडशकारणभावना भाय तीर्थंकरप्रकृतिके बंधकूं करै फिर मनुष्यआयुमैं अंतर्मुहूर्त बाकी रहे तहां ताईं सम्यक्त्व रहै अर समयसमय तीर्थंकरप्रकृतिका आस्रव हुवा करै फिर द्वितीय अर तृतीय नरकमैं सम्यक्त्व लिएजाय नहीं। यातैं अंतर्मुहूर्त आयुमैं बाकी रहि जाय तदि सम्यक्त्व छूटि मिथ्यादृष्टि होइ द्वितीय तृतीय नरकमैं जाय हैं। तहां अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत तो मिथ्यात्व रहै फिर पर्याप्त पूरा हुवा सम्यग्दर्शनकूं प्राप्त होइ तादि तीर्थंकरप्रकृतिका फिर आस्रव होनेलागिजाय सो तीन सागर वा सप्त सागर पूर्ण करि वहांतैं मनुष्यजन्ममैं पंचकल्याण पाय निर्वाण जायहै। इहां भरतक्षेत्रमैं वा ऐरावत-क्षेत्रमैं तो दोय जन्म पहली तीर्थंकरप्रकृतिबंध किया होइ ऐसा जीव तीन नरकका आया वा षोडश स्वर्ग वा अहमिंद्र लोकका आयाही तीर्थंकर होइ पंचकल्याणक पाय निर्वाण जायहै। बहुरि विदेहक्षेत्रमैं पूर्व-भवमैं तीर्थंकरप्रकृति बांधि तीसरातांईं नरकका आया वा कल्पवासी देवका आया वा अहमिंद्रलोकका आया तो पंचकल्याणकूं प्राप्त होयहै। अर कोऊ मनुष्यपर्यायमैं गृहस्थावस्थामैं तीर्थंकरप्रकृतिबंध करै सो तप ज्ञान निर्वाण तीन कल्याण प्राप्त होय है। जातैं याकै गर्भ जन्म तो तीर्थंकरप्रकृतिबंधकिया पाहिली होगए। तादि दोय कल्याण कैसैं होइ। बहुरि कोऊ मुनिपणामैं तीर्थंकरप्रकृतिका बंध कीया ऐसा चरम शरीरी उसी भवहीमैं ज्ञान निर्वाण दोऊ कल्याण पायकरिही निर्वाण जाय है। ऐसैं तीर्थंकरप्रकृतिका आस्रव कहि नामकर्मके आस्रवके कारण कहे॥ अब नीच गोत्रके आस्रवके कारण कहैहैं—

परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य॥ २५॥

अर्थ—परकी निंदा अपनी प्रशंसा करनी परके विद्यमानहू गुणका आच्छादन करना अर आपकै जो

गुण नहीं होइ तिनकूं प्रगट करना इन भावनितैं नीचगोत्रका आस्रव होय है। परजीवनके होते दोष वा अनहोते दोष प्रगट करनेकी इच्छा सो परनिंदा है। अर आपविषैं विद्यमान वा अविद्यमान गुणनिकी प्रगट करनेकी इच्छा सो आत्मप्रशंसा है। परके सत्यगुणनिकूं आच्छादन करना अर अपने झूठेहू गुण प्रगट करना सो परनिंदा आत्मप्रशंसा है अर परके गुण होइ तिनकूं ढाकणा आपके अनहोते गुण प्रगट करना ये नीचगोत्रके आस्रवके कारण हैं। विशेष ऐसा—जो जाति कुल बल रूप श्रुत आज्ञा ऐश्वर्य तपका मद करना परकी अवज्ञा करना परका हास्य करना परके अपवाद करनेका स्वभाव रखना धर्मात्मा पुरुषनिकी निंदा करना आपकी उच्चता दिखावना परके यशकूं बिगाडि देना अपनी असत्यकीर्त्ति प्रगट करना गुरुनिका तिरस्कार करना गुरुनिका दोष विख्यात करना गुरुनिका स्थान बिगाडना अपमान करना गुरुनिकूं पीडा उपजावना अवज्ञा करना गुणनिकूं लोपना गुरुनिका अंजलि नहीं जोडना गुरुनिकी स्तुति नहीं करना गुरुनिके गुण नहीं प्रकाशना गुरुनिकूं देखि नहीं खडा होना तीर्थंकरादिककी आज्ञाका लोप करना ए सकल नीच गोत्रके आस्रवके कारण हैं॥ अब उच्च गोत्रके आस्रवके कारण कहैं हैं—

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥ २६ ॥

अर्थ—नीचगोत्रके आस्रवतैं विपरीतपणातैं अर नीचवृत्ति अर उत्सेकताका अभावतैं उच्चगोत्रका आस्रव होय है। परकी प्रशंसा करना आपकी निंदा करना परके भले गुणनिकूं प्रगट करना अपने गुणकों ढाकने नहीं कहना गुणवाननितैं विनयकरि नम्रीभूत रहना सो नीचवृत्ति है। आपमें विज्ञानादिक अधिक होइ तौऊ तिनकरि मद नहीं करना सो अनुत्सेक है। सो ए उच्चगोत्रके आस्रवके कारण हैं। अन्यहू जानना जाति कुल रूप बल वीर्य विज्ञान ऐश्वर्य तप इनिकरि अधिक होइ तातैं आपकी उच्चता नहीं

चिंतवन करना। अन्यजीवनिकी अवज्ञा नहीं करना अन्यजीवनितैं उद्धतपणा छांडना परकी निंदा ग्लानि हास्य अपवादका त्याग करना अभिमानरहित रहना धर्मात्मा जनका पूजा सत्कार करना देखतैं ही उठि खडा होना अंजुली जोडना नम्रीभूत रहना वंदना करना बहुरि इस अवसरमैं अन्यपुरुषनिकै ऐसे गुण दुर्लभ तिनकूं आपमैं होतैंहू उद्धतपणा नहीं करना जैसें भस्ममैं ढक्या अग्निकीज्यों अपना महत्त्व नहीं प्रगट करना धर्मके कारणनिमें परमहर्ष करना सो समस्त उच्चगोत्रके आस्रवके कारण हैं॥ अब अंतरायकर्मके आस्रवनिकूं कहैहैं—

विघ्नकरणमंतरायस्य ॥ २७ ॥

अर्थ—दानदेनेमैं विघ्न करनेतैं दानांतरायकर्मका आस्रव होय है। जो कोऊके लाभ होता होइ तिन लाभके कारणनिकूं विगाडनेतैं लाभांतरायकर्मका आस्रव होय है। परके वीर्य विगाडनेतैं वीर्यांतराय कर्मका आस्रव होय है। बहुरि विशेष ऐसा—जो कोऊ ज्ञानाभ्यास करता होइ ताके निषेध करनेतैं तथा कोऊका सत्कार होता होइ तिसके विनाशनेतैं तथा दान लाभ भोगोपभोग वीर्य स्नान विलेपन अत्तर फुलेल सुगंध पुष्पमाल्यादिक वस्त्र आभरण शय्या आसन भक्षण करने योग्य पेय आस्वादने योग्य लेह्य इत्यादिकनिमैं दुष्टभावनतैं विघ्न करनेतैं तथा विभवसमृद्धि देखि आश्चर्य करनेतैं तथा अपने धन होतैंहू नहीं खरच करनेतैं द्रव्यकी अतिवांछातैं देवताकै चढी वस्तुकै ग्रहणकरनेतैं निर्दोष उपकरणके त्यागनेतैं परकी शक्ति वीर्य विनाशनेतैं धर्मका छेद करनेतैं सुंदर आचारके धारक तपस्वी गुरुका घात करनेतैं धर्मका आयतन तथा जिनप्रतिमाकी पूजाके विगाडनेतैं तथा दीक्षितनिकूं वा दरिद्रीनिकूं दीन अनाथनिकूं कोऊ वस्त्र पात्र स्थान देता होइ तिनका निषेध करनेतैं परकूं बंदिगृहमैं रोकनेतैं बांधनेतैं गुह्य अंगके छेद-

जैसैं कर्म नासिका आदिक छाटनेतैं जीवनिकै मारनेतैं अंतरायनाम कर्मका आस्रव होय है । इहां कोऊ ऐसी आशंका करै—जो कोऊ पुरुष अभक्ष्यभक्षण करै ताकूं वर्जन करै तौ ताकै अंतराय कर्मका आस्रव कैसैं नहीं कह्या ? ताका समाधान—जो कोऊ अभक्ष्यभक्षण करता देखि ऐसा विचार करै जो अभक्ष्य-भक्षणतैं नरक जायगा अर हिंसातैं महान् पापका बंध होयगा किसी तरह याकै यातना नहीं होइ ऐसी करुणा भावनाकरि वर्जन करै ताकै तौ अंतरायकर्मका बंध नहीं होय । अर आपना केवल मान दिखाव-नेका अभिप्रायतैं वर्जन करै ताकै अंतरायका आस्रव होयगा । इहां ऐसा विशेष—जैसैं कोऊ मनुष्यनिकै आपनीही शक्तिकै विपरीतैं भोजनादि विषयकै करनेवाला तादृश पीय करिकै अर ताके परिपाककै वशतैं अनेक विकारकूं प्राप्त होय है । तथा जैसैं रोगी अपथ्य भोजन करि अपने वातपित्तकफादि अनेक विकारनिकूं प्राप्त होय है । तैसैं यह जीव आस्रवविशेषकरि ग्रहण कीया अष्टप्रकारका ज्ञानावरणा-दिकनैं तथा एकसौ अड़तालीस उत्तरकर्म तथा असंख्यात लोकप्रमाण उत्तरोत्तरकर्मका प्रकृतिनैं अनेक विकारकूं प्राप्त होय है । अब इहां कोऊ प्रश्न करै—जो आयुकर्मविना सातकर्मप्रकृतिनिका आ-स्रव समय समयप्रति निरंतर अनादिकालतैं होय है तहां तत्प्रदोषादिकनिकरि ज्ञानावरणादिकनिकाही नियम कैसैं कह्या । ताका उत्तर—एककालमैं जो समयप्रबद्ध आवै है तिनके परमाणु आयुविना ज्ञानाव-रणादि सातकर्मनिकूं वंटै है तथा आगेंआगें बांधैं यथायोग्य आवैं उत्तरप्रकृतिनिकूं वंटै है । तातैं समस्त कर्मप्रकृतिनिकै प्रदेशबंधकी नियम नहीं कह्या है । जो ए तत्प्रदोषादिक भाव कहे ते अनुभागबंधके कार-णका नियम है । इन भावनितैं जो कर्म आवै सो अनुभागबंधकी नियम जणावै है । जैसैं कोऊ पुरुषका भाव दानकै देनेमैं अंतराय करनेवाला होइ तहि उस समयमैं जो कर्मका आस्रव भया सो सातकर्मनिकूं

अंतरंगज्ञानदृष्टितैं अर नेत्रनितैं देखि सोधि भक्षण करना सो आलोकितपानभोजन है। ए पांच भावना अहिंसाव्रतकी निरंतर चिंतवन करना ॥ अब सत्यव्रतकी पंच भावना कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच ॥ ५ ॥

अर्थ—क्रोधका प्रत्याख्यान कहिए त्याग अर लोभका त्याग भयका त्याग, हास्यका त्याग अर पापरहित सूत्रके अनुसार बोलना सो अनुवीचिभाषण ए पांच भावना सत्यव्रतकी हैं। जातैं क्रोध लोभ भय हास्य इनिके निमित्ततैं असत्यवचन बोलिए तातैं इनिका त्यागरूप भावना राखणी अर अपना परका अहिताहितकूं विचारि बोलना ऐसैं सत्यकी पंचभावना कही ॥ अब अचौर्यव्रतकी पंचभावना कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पंच ॥ ६ ॥

अर्थ=शून्यागारमैं वसना, विमोचितावासमैं वसना, परका वर्जन नहीं करना, भिक्षाकी शुद्धता करना सधर्मीनिसों विसंवाद नहीं करना, ए पंच भावना अदत्तादानवर्जव्रतकी हैं। शून्यगृह जो पर्वत गुफा वन वृक्ष कोटरादिकनिमैं वसना, अर परकरि छोडा हुआ ऊजडस्थानमैं वसना, तथा आप जठै जावै अन्य कोऊ आवै ताकूं वर्जन नहीं करना, तथा पहली कोऊ वासकरि राख्या होइ ताकूं काढि नहीं वसना, अर आचारांगके मार्गकरि भिक्षाकी शुद्धता करना, सधर्म्मीनितैं विसंवाद नहीं करना, ए अचौर्यव्रतकी पंच भावना हैं ॥ अब ब्रह्मचर्यव्रतकी पंच भावना कहैहैं—

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच ॥७॥

अर्थ—स्त्रीनिकै विषै राग उत्पन्न करनेवाली कथाका त्याग करना, स्त्रीनिकै सुंदरमनोहर अंगनिकूं रागसहित अवलोकनका त्याग करना, त्याग नहीं किए पहली भोगकीए थे तिनके स्मरण करनेका त्याग

करना, कृमिकरि सहित पुष्ट इष्ट रस जो कामोद्दीपन करनेवाला इन्द्रियनिकै लालसा उपजावनेवाला रस ताका त्याग करना. अर अपने शरीरकूं कज्जल कुंकुम पुष्प तैलादिककरि संस्कार करनेका त्याग ए पांच भावना ब्रह्मचर्यव्रतकी जानना ॥ अब परिग्रहत्यागव्रतकी पंच भावना कहै हैं—

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच ॥ ८ ॥

अर्थ—पांच इन्द्रियनिके जे स्पर्श रसादिक इष्ट अनिष्ट विषय तिन विषै रागद्वेष छोडना सो परिग्रहत्याग व्रतकी पंच भावना है। ऐसैं पंच व्रतनिकी पांच पांच भावना निरंतर भावनेतैं व्रत शिथिल नाहीं होय है। जैसैं व्रतनिकी दृढता करनेकूं भावना कही तैसैं व्रतनिके विरोधी हिंसादिकनितैं ग्लानि उपजावनेकूं भावना कहै हैं—

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—हिंसादिक पंच पाप तिनि विषै इस लोकमें तथा परलोकमें अपाय कहिए नाश तथा भय अर अवद्य कहिए निंद्यपणा देखिए है। ऐसैं भावना करनी योग्य है। तिनमें सो कहिए है—हिंसक है सो निरंतर उद्वेगरूप होय है। अर निरंतर अनेक जीवनितैं वैरका बांधनेवाला होय है अर इस लोकमें वध बंध क्लेशादिकनिकूं प्राप्त होय है। अर परलोकमें अशुभगति अर निंदनीय होय है। तातैं हिंसातैं विरक्त होना है सो कल्याणकारी है। ऐसैं असत्यवादी पुरुषके श्रद्धानयोग्य नहीं होय है। इस लोकहीमें जिह्वाका छेद तथा [illegible] तथा तिनकै असत्यवचनतैं दुःखित किए ते वैरी भए तिनतैं अनेक कष्टनिकूं प्राप्त होय है। अर परलोकमें अशुभगति होय है अर निंदनीक होय है। तातैं असत्यवचनतैं विरक्त होना कल्याणकारी है। ऐसैं परद्रव्यहरणमैं आसक्त है बुद्धि जाकी ऐसा चोर है सो सर्वकै भय उपजावनेवाला होय है। अर इस लोकहीमें मारना ताडना बंधन अर हस्त पाद कर्ण नासिका ओष्ठ इत्यादिकनिका छेदन भेदन सर्व-

अध्याय ७

२९२

हरणादिकनिकूं प्राप्त होय है। अर परलोकमैं अशुभगति अर निंदनीक होय है। तातैं चोरीतैं विरक्त होना कल्याणकारी है। तथा कुशीलपुरुष हैं सो मदका विभ्रमकरि उन्मत्तचित्त रहैहैं। अर स्त्रीनिकरि ठग्याहुवा विवश हुआ वनका हस्तीकीज्यों वध बंध परिक्लेशादिकनिकूं भोगै है। मोहकरि तिरस्कृत हुवा कार्य अकार्यकूं नहीं जाणैहै। अर किंचितहू कुशलकूं नहीं आचरण करैहै। अर जो परकी स्त्रीका आलिंगनमैं रति करैहै सो इसही लोकमैं वैरका बंधाणकरि लिंगछेदन वध बंधन सर्वस्वहरणादिक नाशकूं प्राप्त होय है। परलोकमैं अशुभगतिकूं प्राप्त होय है अर निंद्य होय है। यातैं कुशीलतैं विरक्त होना आत्माका हित है। बहुरि तैसैंही परिग्रहधारी है सो अनेकधनका अर्थी तो राजा चोर होइ या दारादिक तिनकरि तिरस्कारादिकनिकूं प्राप्त होय है। जैसैं कोऊ पक्षीके मांसका खंड ग्रहणहुवा तिसकूं अनेकपक्षी चोगिरद फिरि मारैहैं मांस खोसिलेहैं दुःखित करैहैं। तैसैं धनवानकै चोगिरद धनके ग्राहक अनेक दुष्ट फिरे रहैहैं। अर धनके उपार्जनमैं रक्षणमैं तथा नाशमैं बहुत क्लेशकूं प्राप्त होयहै। अर जैसैं इंधनकरि अग्नि तृप्ति नहीं होय है तैसैं धनकरि तृप्ति नहीं होय है। अर जिसका मन लोभकरि तिरस्कृत है सो कार्य अकार्यकूं नहीं देखै है अर परलोकमैं अशुभगति होय है। अर यो लोभी है ऐसैं निंद्य होय है। तातैं परिग्रहतैं विरक्त होना श्रेष्ठ है ऐसैं हिंसादिक पापनितैं इस लोकमैं नाश तथा भय परलोकमैं नरकादिक दुर्गतिस्वरूप अपाय अवद्य अवलोकन करना॥ औरहू हिंसादिकनिमैं भावना कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

दुःखमेव वा॥ १०॥

अर्थ—हिंसादिक पंच पाप हैं ते दुःखरूपही हैं ऐसी भावना राखना। हिंसादिक दुःखका कारण हैं तातैं हिंसादिक दुःखही हैं। इहां कारणमैं कार्यका उपचारकरि कह्या है। हिंसादिक पाप हैं ते असातावेदनी-

बहुरि अनुरागनिका कारण है अनुरागतै दुःखका कारण है ऐसें दुःखका कारणका कारणभी है तातैं दुःखही है। जैसें सब प्राण पीडन माहि अधिक है तैसेंही अन्य समस्तपापनिकै अधिक है। जैसें कोऊ पुरुष नीचै कोऊ पडै तातैं अपना कर्मनितैं हमारें अति तीव्र दुःख उपजै है तैसें अन्य जीवनिकै दुःख उपजावै है। जैसें मेरा उपरि कोऊ जोरनिकरि मारनें हमारें महादुःख होय है तैसें अन्य जीवनिकै होय है जैसें हमारा कोऊ तिरस्कार करै तिस करि हमारें तीव्र मानसिक पीडा होय तैसें अन्य जीवनिकै अतिदुःख होय है। जैसें आपके धनादिक परिग्रह नहीं प्राप्त होते वा प्राप्त हुवा ताकूं नष्ट होते देखि तथा जीव इत्यादि करि उपजा दुःखके नाम होय है। तैसेंही परिग्रहकी वांछातैं तथा परिग्रहके नष्ट होनेतैं समस्त जीवनिकै दुःख होय है। तातैं हिंसादिक पापनितैं विरक्त होनाही जीवका कल्याण है। इहां कोऊ प्रश्न करै—जो पुरुषस्त्रीका कोमल सुंदर अंगनिका स्पर्शनतैं रतिसुख उपजता देखिए है सो दुःखरूप कैसें कहा? ताका उत्तर—जो यो सुख नाहीं है भ्रांतितैं सुखरूप देखिये है। वेदनाका इलाज है। जैसें खाज पीडित पुरुष है सो ताकी निवारनेंकूं कठोरपनातैं पामरोग खाजकी उत्कटताकरि बाधा करै है नखनितैं कठोर पत्थर इत्यादिकनितैं अपना शरीरकूं खुजावै है। ताकूं जैसे खाजनैं पीडितकरि तिस दुःखकू अपना खुजावनेकरि दुःखहीकों सुख मानै है। तैसें मैथुन सेवनेवाला मोहतैं दुःखहीकूं सुख मानै है। तथा ... तथा पुष्पादिक ... अपने प्राणि उपजैं जो इंद्रियां तिनकरि उपजा दुःखकू सहनेकूं असमर्थ भए ... तातैं समस्त संसारीजीवनिकै इंद्रियनिकरि उपज्या परोक्ष इंद्रियोंके आधीन ज्ञान है तातैं इंद्रियनिविषै ... इंद्रियनिकै अपने अपने विषयनिविषै अतिलालसा-रूप वेदना ... है। जैसें अग्निकरि तप्तायमान लोहका गोला तैसें इंद्रियनिकी तापकरि तप्तायमान जो

धिक होइ तिनकूं गुणाधिक कहिए तिनमैं प्रमोदभावना करनी। प्रमोद नाम हर्षका है। सो गुणानिकरि अधिक पुरुषनिकूं देखतप्रमाण मुखकी प्रसन्नताकरि नेत्रानिका आल्हादनकरि रोमांच होनेकरि स्तुति भाषण नामकीर्तिनादिकरि अंतर्गत भक्ति प्रगट करना सो प्रमोदभावना है। वहुरि असातावेदनीयका उदयकरि रोग दारिद्र्यादिककरि पीडित जे क्लिश्यमान मनुष्य तिनमैं उपकार करनेका दुःख मेटनेका अभिप्राय सो कारुण्यभावना है। बहुरि जे तत्त्वार्थउपदेशका श्रवण ग्रहणकै योग्य नहीं ऐसे अविनेयनिविषैं रागद्वेषका अभावरूप माध्यस्थभावना करना।

भावार्थ—मैं सर्वजीवनिमैं क्षमा कराऊंहू अर समस्तजीवनिमैं मै क्षमा करूंहूं मैं समस्तजीवनिमैं मैत्रीभाव जो प्रीतिभाव ताकूं धारूंहूं मेरा किसी जीवतैं वैर नहीं ऐसैं समस्तप्राणीनिमैं मैत्रीभावना भावै। अर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकरि आधिक पुरुषनिमैं वंदना स्तुति वैय्यावृत्यकरणादिकरि प्रमोदभावना भावै अर नानाप्रकारके शारीरिक मानसिक दुःखकरि संतापित दीन अनाथ कृपण वाल वृद्ध मनुष्यानिमैं करुणाभावना भावै। अर जे ग्रहण धारण विज्ञानादिरहित मोही मिथ्यादृष्टि अभिमानी दुष्ट हठग्राही तिनमैं रागद्वेषरहित माध्यस्थभावना भावै॥ वृतीनिकी औरहू भावना हैं ताहि कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थं ॥ १२ ॥

अर्थ—संवेग अर वैराग्यके आर्थि जगतका अर कायका स्वभाव चिंतवन करना। यो जगत् कहिए लोक सो अनादिनिधन है अर्द्धमृदंग ऊपरि एक मृदंग धरिए ऐसा ज्येढ मृदंगकासा संस्थान धरैहै। इस जगतविषैं जीव हैं ते नानाभेदरूप चतुर्गतिमैं भ्रमणकरता निरंतर दुःख भोगैहैं। कोऊहू निश्चल नहींहै। जलका बुद्बुदातुल्य जीवित अथिर है। अर भोगसंपदा मेघपटलज्यों तथा विजुलीके चमत्कारज्यों क्षण-

संयुक्त है । इहां संसारमैं जीव अनेकपर्यायनिमैं फिरै है इत्यादिक जगतका स्वभावका चिंतवन करनेतें संसारविषयनितैं भीति कहिए भय उपजै है । बहुरि जो काय है सो अनित्य है दुःखको कारण है अपवित्र है निःसार है कोईकाल रहनेका नहीं ऐसा । बहुरि जो मनुष्यशरीर है सो रोगनिका व्याधिनिका निलय है । अर याकूं पोषतैं निरंतर भोग चाहै है । तृष्णा अगनि कदाचित उपशमता नाहीं होय है । पोषतैं नाहीं भरै है । फुनि याके संगतैं आत्मा अजरअमर नहीं होय है । भोग करते करते निरंतर दिनदिन क्षीण होय है । सुखाभास सुखाभास दिनदिन अशक्तता भावै है । सुख देतेदेत दुःख उपजावै है । मलको मलको मलमूत्रादि करै है । हाड़मांसादि दूषित करै है । जिह्वा इंद्रिय स्वादनिमैं नाहीं धापै है । दुःख भोगनै भोगतै उच्छ्वासमात्र नहीं भाव होय है । रोकतै रोकतैंहु पापहूमैं प्रवर्तन करै है । प्रेरणा करतें करतैंहु धर्मविषै नाहीं प्रवर्तन करै है । यत्न करते करते कठोर होय है । रक्षा करते करते आपकूं घाते है । निरन्तर पोषतें पोषतेंहु नाशकूं प्राप्त होय है । जितना जितना निज हित जानै है । शोषण करते करते कृशताकूं प्राप्त होय है । पुष्टि पुष्टिते तपकरि क्षीण होय है । रक्षा करतै करतैंहु यमका मुखमें पड़ै है । ऐसा निज चिंतवन करिकै वैराग्यभाव प्रगट होय है । याही रीति मिलनेकै अर्थि जगतका स्वभाव अर कायका स्वभाव चिंतवन करना ॥ अब हिंसादिक पापनिका लक्षण करनेकूं सूत्र कहै है—

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥

अर्थ—प्रमत्तयोगनितैं प्राणनिका व्यपरोपण कहिए वियोग करना सो हिंसा है । कषायसहित आत्माका परिणाम सो प्रमत्त है । अथवा करनेयोग्य, नहींकरनेयोग्य, करनेयोग्य, नहींकरनेयोग्यनिकूं नहीं जानना

संता जीवनिके उत्पत्तिस्थान आश्रय जीवसमासादिकनिकूं नहीं जानता संता कषाय मदसहित हुवा जीवनिकी दयामैं नहीं प्रवर्तै सो प्रमत्त है। प्रमत्तपणाका योग जो संबंध तातैं प्राणीनिका वियोग करना सो हिंसा है। जातैं जीवकै रागादिकनिकी उत्पत्ति सो हिंसा है। अर रागादिकनिकी अनुत्पत्ति सो अहिंसा है। जातैं हिंसाके दोयभेद, एक स्वहिंसा एक परहिंसा। तहां राग द्वेष मोहादिकनिकरि आत्माका ज्ञानदर्शनादिक भावप्राणनिको जो घात तो स्वहिंसा है। अर अन्य देहादिकनिको प्राणीनिको घात सो परहिंसा है। अर जहां अपना ज्ञानादिकनिका घातभया तहां हिंसा निश्चित भई जातैं त्रैलोक्य जीवनिकरि भरया है। प्रमत्तयोगविना केवल प्राणीकै प्राणनिका वियोगहीतैं प्राणीकी हिंसा नहीं है। जातैं समितिकै पालनेवाले मुनि यत्नाचारी तिनकै बाह्यहिंसाहीतैं बंध नहीं होयहै। समितिसहित च्यार हाथप्रमाण भूमीकूं अवलोकनकरि गमन करते साधुका तो पग उठाय अर मेलना अर तहां जीवका उछलिकरि पगतलै दबि मरजाना होतैहू साधुकै तिसके निमित्ततैं सूक्ष्महू बंध नहीं होयहै। ऐसा आगममें कह्या है। बहुरि जीवका मरण होहु वा मतिहोहु अयत्नाचारीकै निश्चयतैं हिंसा होयहै। अर यत्नाचारीकै हिंसामात्रही करि बंध नही होयहै। बहुरि जे एकांतवादी जीवको सर्वथा नित्य अविनाशीही मानैहैं तथा सर्वथा क्षणभंगुरही मानैहैं तिनके मतमैं हिंस्य हिंसक हिंसा हिंसाफल इत्यादि कछू नहीं बनिसकैहै। तिनके मतमैं बहुत बाधा आवैहै तातैं तिनका मत प्रमाण नाही ॥ अब अनृतका लक्षण कहैहैं—

असदभिधानमनृतं ॥ १४ ॥

अर्थ—प्राणीनिकूं पीडाका कारण अप्रशस्तवचन कहना सो अनृत है। इहां अप्रशस्तकूं अनृत कहनेतैं जो आपकै परकै इस लोकमैं वा परलोकमैं दुखका कारण असत्य कहना वा झूठ कहना सो समस्त अनृत है।

जिस वचनतैं आत्माका अप्रतिबन्ध अज्ञान होजाय, जिस वचनतैं हिंसाके कारण आरंभमें प्रवृत्ति होजाय, जिस वचनतैं ज्ञानकी मलिनता होजाय, समाधान बिगडि जाय, कलह प्रगट होजाय, मूर्छा परिग्रह बधिजाय, परकै स्वरूपपुष्ट होजाय, इंद्रियनिके विषयनिमें लीनता होजाय सो अनृत वचन है। तथा जिस वचनतैं परका मर्म भेदाजाय, परका अपवाद दूषण जगतमें प्रगट होजाय, अपमान होजाय, तिरस्कार होजाय, सो अनृतवचन है। जिस वचनतैं वैर युद्ध पापी परका न्यून होजाय, तथा कुदेव कुगुरु कुधर्ममें लीनता होजाय, शोक भेद होजाय, सो सारावाद होजाय, सो सकल अनृतवचन जानहु ॥ आगै चोरीका लक्षण कहै हैं—

अदत्तादानं स्तेयं ॥ १५ ॥

अर्थ—प्रमत्तयोगतैं विना दिया अन्यका धन धान्यादिकका ग्रहण सो स्तेय है। इहांभी प्रमत्तयोगकी अनुवृत्ति है। जहां संक्लेशपरिणामपूर्वक परवस्तु ग्रहणकरनेकी इच्छा ताकूं स्तेय कहिए। परका वस्तुग्रहण होहु वा मति होहु प्रमत्तयोगतैं स्तेय होयही है। यद्यपि कर्म नोकर्म वर्गणाका ग्रहण इत्यादिकनि कोऊ दिए बिना ग्रहण है तोऊ स्तेय अदत्तग्रहण नाहीं है। जातैं देने लेनेका व्यवहार जहां होय तहां अदत्तग्रहण जानना ॥ आगै अब्रह्म का लक्षण कहै हैं—

मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥

अर्थ—मैथुन कहिए कामसेवन सो अब्रह्म है। चारित्रमोहनीयका तीव्र उदयकरि रागभावकरि उपजे जे स्त्री और पुरुषनिके परस्पर अंगनिका स्पर्श करनेमें सुखकूं इच्छा करना पूर्वक जो रागपरिणाम सो मैथुन है। इहांभी चारित्रमोहका उदयकरि स्त्री पुरुषनिके वा दोयनिमिलिके कामका उदयकरि जो रागपरिणाम सो मैथुन है। तहां जो एकही जन हस्तादिकनितैं क्रीडा करैहै ताकूं लौकिकमें मैथुन

है सो अब्रह्म हैं ॥ अब परिग्रहकूं कहै हैं—

मूर्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥

अर्थ—बाह्य अभ्यंतर जे चेतन अचेतन परिग्रह तिनमैं जो ममत्व परिणाम सो मूर्छा है सोही परिग्रह है। बाह्य अभ्यंतर स्त्री पुत्र दासी दास सेवक परिवार गाय भैंसी हस्ती घोडा धन धान्यादिक तथा सुवर्ण रूप्य मणि मोती शय्या आसन गृह आभरण वस्त्रादिक चेतन अचेतन बाह्य परिग्रह अर रागादिक अभ्यंतर परिग्रहका रक्षण उपार्जन संस्कारादिकमैं जो व्यापार सो मूर्छा है। मूर्छा है सोही परिग्रह है। इहां कोऊ कहै—जो "मेरा यह" ऐसा संकल्पही परिग्रह है, तो ज्ञानदर्शनादिकमैंभी 'मेरा' ऐसा संकल्प है तिनकै भी परिग्रहका प्रसंग आया सो यह दोष नहीं। इनिमैं मोहका अभाव है। ज्ञानदर्शनादिक परद्रव्य नहीं आत्माका स्वभाव है इनिमैं मूर्छा कैसैं होय। रागादिक होयहैं ते परके निमित्ततैं होयहैं यातैं परिग्रह हैं। समस्त दोषनिका मूल एक परिग्रह है। जातैं परिग्रहधारीही हिंसामैं तथा आरंभादिकमैं प्रवर्त्तै तथा उपार्जनकै अर्थि हिंसा करै असत्य बोलै परधन हरणकरै कामसेवनमैं प्रवर्त्तै इसहीकरि नरकादिकनिमैं दुःख का प्रकार प्रगट होयहै। बहुरि मिथ्यात्व अर च्यार कषाय तीन वेद हास्यादिक छह ऐसैं चोदह प्रकार परिग्रह है ॥ अब जाकै व्रत होइ सो शल्यरहित हुवा व्रती होयहै। याके कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

निःशल्यो व्रती ॥ १८ ॥

अर्थ—जो शल्यरहित होय सो व्रती होयहै। अनेकप्रकार वेदनारूप शलाकाकरि प्राणीनिका समूहकूं "शृणाति" कहिए घातकरै तातैं शल्य ऐसा नाम कहिए। जैसैं शरीरमैं प्रवेश किया बाणादिक आयुध प्राणीनिकै बाधा करैहै तैसैं कर्मका उदयजनित शल्यहू प्राणीनिकै बाधा करै, तातैं शल्य ऐसा उपचार

छिदि शल्य कहिये है। ते शल्य तीन प्रकार हैं। मायाशल्य, मिथ्यात्वशल्य, निदानशल्य। तिनमें माया नाम कपटका नाम है सो ही मायाशल्य है। विषयभोगनिकी वांछा करना सो निदानशल्य है। अर तत्त्वार्थनिका श्रद्धानका अभाव सो मिथ्यादर्शनशल्य है। जातैं मिथ्यादृष्टीकै व्रत होय तोहू व्रतलिंगी रह्या, यातैं व्रती नाहीं। अर मायावी कपटीका व्रत भला कैसा? अर जाकै इंद्रियजनित विषयभोगनिकी वांछा सो तो आत्मज्ञानरहित रह्यो है, तिनकै व्रतनिकै व्रत होइ सो परमार्थकूं निदानरूप होइ सो अज्ञानीका व्रत निष्फल है यातैं शल्यरहितही व्रतनितैं व्रती होयहै अन्य नहीं। अब जो व्रती होय ताके दोय भेद कहै हैं—

अगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥

अर्थ—व्रतीके दोय भेद हैं। एक अगारी कहिए गृहस्थ व्रती होयहै। एक अनगारी कहिए गृहका त्यागी साधु संयमी, ऐसें व्रतीके दोय भेद हैं। जो गृहमें तिष्ठता एकदेश व्रत धारै सो अगारी व्रती अर जो गृहकूं छोडि समस्त पापनिका सर्व त्याग करनेवाला अट्ठाईस मूलगुण उत्तरगुणनिका धारक मुनि होय सो हू व्रती है। इहां कोऊ प्रश्न करै—जो गृहस्थकै अणुव्रत है, परिपूर्ण व्रत बिना व्रती कैसैं कह्या? ताका समाधान—जो नैगमादिक नयनिकरि ऐसा कह्या है। जैसैं नगरके मध्य एक ओरडा मकानमें अंगणमें रहतेकूं नगरनिवासी कहिए, तैसैं अणुव्रतीकूं व्रती कहिएहै। तथा जैसैं बत्तीस हजार देशनिका अधिपति सार्वभौमकूं राजा कहिए, अर एकदेशका धनीकूं राजा कहिए, ऐसैं अणुव्रतीकूं व्रती कहिए अर अठारह सहस्र शील चौरासी लाख उत्तरगुणके धारक महामुनिनिकूं व्रती कहिए॥ अब अगारीकूं कहै हैं—

अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥

अर्थ—जाकै अणुव्रत हूं कहिए एकदेश पंचपापनिका त्याग होय सो अणुव्रती है सो अगारी क- 

हिए गृहस्थ है। द्वींद्रियादिक जंगम प्राणीनिकी हिंसा करनेका त्याग सो प्रथम अणुव्रत है। वहुरि स्नेह के वशतैं वैरके वशतैं मोहके वशतैं असत्य कहनेका त्याग सो द्वितीय अणुव्रत है । वहुरि जो परजीवनिकै पीडाको कारण अर राजादिकनिके भयतैंहू त्यागनेयोग्य ऐसा विनादीया परधनका त्याग सो तृतीय अणुव्रत है। बहुरि परकरि ग्रहणकरी वा नहींकरी ऐसी परकी स्त्रीका संगतैं विरक्त होना सो चतुर्थ अणुव्रत है। बहुरि स्त्री पुत्र दासी दास गाय भैंसी धनधान्य इत्यादि परिग्रहकी इच्छाका वशतैं प्रमाण करना सो परिग्रहप्रमाण नाम पंचम अणुव्रत है। ऐसैं पंचव्रतनिका धारनकरनेवाला अगारी व्रती है। जिनेंद्रकी उपदेशी नीतिकूं नहीं विगाडनाही व्रत है। अव ग्रहस्थकै योग्य अन्यहू व्रत हैं तिनकूं कैहैहैं-

दिग्देशानर्थदंडविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोग
परिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च ॥ २१ ॥

अर्थ—दिग्विरत[1], देशविरत[2], अनर्थदंडविरत[3], सामायिक[4], प्रोषधोपवास[5], उपभोगपरिभोगपरिमाण[6], अतिथिसंविभाग[7] इनि सात व्रतनिकरि सहितहू गृहस्थ व्रती होय है । इहां विरतिशब्द प्रत्येककै लगावना। लोभका आरंभका त्यागकै अर्थि पूर्वादिक दिशानिका योजन नदी ग्राम नगर पर्वतादिक प्रसिद्धचिह्ननिकरि प्रमाण करना, जो इतना क्षेत्रका प्रमाण है इतना क्षेत्रवाहिर गमनादि करूं नहीं, कराऊं नहीं, करतेकूं भला जाणूं नहीं, सेवकादिक भेजूं नहीं, किंचित् वस्तु मंगाऊं नहीं, भेजूं नहीं, ऐसी यावज्जीव मर्यादाकरि अधिक क्षेत्रमैं वणिजव्यवहारादिकका त्याग करै तिसकै दिग्विरति नामव्रत है। वहुरि यावज्जीव जो दिशाका प्रमाण दिग्व्रतमैं किया तिसके अभ्यंतर ग्राम नगर गृह पाटकादिकका मास पक्ष दिवसादिक कालकी मर्यादाकरि गमनागमनादिकका प्रमाण करै ताकै देशविरति नामव्रत होयहै। वहुरि जातैं

जाका करेंतें कछु सिद्धि नहीं होइ अर पापका आगैं ग्रहण होइ सो अनर्थदंड है । सो अनर्थदंड पंचप्र-कार है । पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति, प्रमादचर्या । तहां जो आरंभका निर्बंधनिके क्लेश-दायक वणिजकी कथनकरि जीवनिके बोलनेका बीजुकनिके तिर्यंचनिके बंधनादिकका जो उप-देश देना सो पापोपदेश नामा अनर्थदंड है । याका विशेष ऐसा—जो इस देशमें दासी दास सुलभ हैं इहां ते लेय उस देशमें बेचे तो बहुत लाभ होय सो तो क्लेशवाणिज्य है । अर इस देशतें गाय भैंसि बलद आदि लेय उस देशमें बेचनेमें तो महालाभ है ऐसें तिर्यग्वाणिज्य है । बहुरि वागुरका शिकारी शाकुनिकनि-कूं कहै इस देशमें मृग शूकर पक्षी बहुत हैं ऐसें कहना सो वधकोपदेश है । बहुरि खेतीके आदि लेय आ-रंभ करनेवालेनिकूं कहै पृथ्वीका जलका अग्निका पवनका वनस्पतिका आरंभ इस उपायकरि करना सो आरंभोपदेश है ऐसें याके भेद हैं । बहुरि जो हिंसाके उपकरण जे शस्त्र फावडा कुदाल कुहाडा नेजी आदिक सांकल विष अग्नि मार्जारादिक दुष्ट जीवनिका पालना लोहादिक आयुध तथा लाखा नाली क-रना मारना मोरा शांति मैंन इत्यादिक हिंसाका कारण वाणिज्य करना सो हिंसादान नामा अनर्थदंड है । बहुरि जो परजीवनिके बंधच्छेदन करनेका भाव, तथा अन्यकी लक्ष्मीके ग्रहण करनेकी इच्छा, अन्य की स्त्रीके देखनेकी इच्छा, तथा अन्य मनुष्य तिर्यंचनिकी कलह देखना, तथा परजीवनिके जो पुत्र धन आजीविकाका वियोग चाहना तथा अपमान अपवाद अवज्ञा चाहना, परकै हानि होते हर्ष करना, परकी स्त्रीका चाहना, परकी जीति हारि निरखना हिंसामें धर्म मानना इत्यादि अनेक दुर्ध्यानि-करि अपध्यान नामा अनर्थदंड कह्या है । बहुरि रागका ज्ञान होय अभिमानका बधावनेवाला, हिंसा-का पोषन करनेवाला, मिथ्यात्वकूं करनेवाला, मिथ्या पुरुषनिके भारत महाभारतादिक पर अनुरा-

दिकका श्रवण करना सो दुःश्रुति नामा अनर्थदंड कहा है। बहुरि जो प्रयोजनविना जलका अग्निका वनस्पति छेदनेका भूमिखोदनेका अभिप्राय रखना, तथा घात करना, अतिसंग्रह करना सो सब प्रमादचर्या नाम अनर्थदंड है। ऐसैं पंचभेद वा अनेकभेदरूप अनर्थदंडका त्याग करना योग्य है। बहुरि तीनो संध्याविषै सर्वपापयोगक्रियासों रहित होइ समस्त राग द्वेष ताजि साम्यभावकूं प्राप्तहोइ शुद्ध आतमस्वरूपविषैं लीन होना सो सामायिक है। बहुरि एकएक मासप्रति दोय अष्टमी दोय चतुर्दशी इन पर्वनिमैं सकल आरंभ तजि विषय कषाय आहारका त्याग करि धर्मकथाका श्रवण कर्त्ता करावता धर्मकथाके चिंतवनमैं अंतःकरण लगाय सोलह पहर व्यतीत करै ताकै प्रोषधोपवास है। एकांत पवित्र क्षेत्रमें साधुनिका निवास करनेयोग्य निर्जनस्थानमैं तथा चैत्यालयमैं तथा अपने रहनेकी जायगामैं निराला स्थानमै प्राप्तहोइ शास्त्राभ्यास आदि आत्मकल्याणके कार्यमैं प्रवर्त्तै। ताकै प्रोषधोपवास होयहै। बहुरि जो एकवारही भोगनेमैं आवै ऐसैं तांबूल भोजन पान पुष्प गंधादिक तिनकूं उपभोग कहिए। अर जो वस्तु अनेकवार भोगनेमैं आवै ऐसै आभरण वस्त्र गृह वाहन शय्या आसनादिक ते परिभोग हैं। इनि भोगपरिभोगकी मर्यादा करै। तहां त्रसघात प्रमाद बहुवध अनिष्ट अनुपसेव्य जे पंचविषय तिनकै भेदतैं भोग पंचप्रकार है तिन पंचप्रकारके भोगनिका तो यावज्जीव त्याग करना ए तो महापापरूप हैं इनिमैं मर्यादा नहीं है। ए तो महा अनर्थ उत्तमकुलके योग्यही नहीं व्रती कैसैं ग्रहणकरै। तिनमैं मधु अर मांस इनिमैं तो अप्रमाण त्रसजीवनिका घात है। तातैं शुष्कमांसमैं तथा आलामैं कच्चामैं अग्निका पचायामैं तथा अग्निउपरि पकतेमैं निरंतर असंख्यात त्रसजीव उपजैहैं तातैं त्यागही श्रेष्ठ है। बहुरि कार्य अकार्यमैं विवेकका नाश करनेवाला महामोह करनेवाला मद्य है सो प्रमादका नाश करनेकैअर्थि त्यागही करना योग्य

है। इहां मधके मदिरापानहीं नहीं जानना जो मदिरापानमें उन्मत्तता उपजावै सो समस्त भंगपानादिक मदही है यातैं आत्माके ज्ञानादिक गुणनिका घात होय है। अर मदिरामें तो त्रस जीवनिका भी अनंतानका घात मधुमांसवत् जीविक घातभी बहुत है, यातैं हिंसाभी अपरिमित है। बहुरि केतकी केवडा निंबका पुष्प-कूं आदि लेय बहुत जीवनिका योनिस्थान है। तथा नवनीत जो माखन तथा आर्द्र शृंगबेर कंदमूल इत्या-दी इत्यादिक अनंतकाय है। इनिके खानेमें अनंतजीवनिका घात होइ अर किंचित जिह्वाका आस्वादन-मात्र फल है यातैं बहुत जीवनिका घात जानि त्याग करना श्रेष्ठ है। बहुरि जो अपने शरीरमें रोग वेद-नादिक उत्पन्न करनेवाला अनिष्ट है। जातैं किंचित् आस्वादनके अर्थि महावेदना रोगकी वृद्धि मरणादि-कहूं नहीं गिनता जिह्वा इंद्रियका लोभी होइ अनिष्टकूं भक्षण करै ताके महापाप होय तातैं अनिष्टका त्याग करना योग्य है। बहुरि सज्जनपणां गोमूत्रादिक कफ मलमूत्र ऊंटनीका दुग्ध तथा अशुद्धस्पर्शवाला तथा अस्पर्शशूद्र लोकादिकनिकरि स्पर्शनकीया भोजन अनुपसेव्य है त्यागने योग्य है। तथा चित्र वि-चित्र वस्त्र विकाररूप वस्त्र आभरणादिक अनुपसेव्य हैं ते त्यागनेयोग्य है। तातैं त्रसजीवनिका स्थान अर प्रमाद करनेके कारण अर बहुघात अर अनिष्ट अर अनुपसेव्य होनेतें त्यागि अन्य भोगनिमें तथा त्याग-रूप भी भोगनिमें कालकी मर्यादाकरि त्याग करै सो भोगोपभोगपरिमाण व्रत है।

बहुरि अतिथि जे मोक्षके अर्थि उद्यमी अर संयममें लीन अर अलंकार रहित शुद्ध ऐसे मुनीनिके अर्थि शुद्ध मन करि निरपेक्षि दान देना योग्य है। जातैं जिनधर्ममें लीन मुनि हैं ते पचनपाचनादिक आरंभादि क्रियाहीन और गृहीत अपरिग्रही ... भक्तिपूर्वक गृहस्थनिकरि दीया भोजन ग्रहण करै है। तातैं गृह-स्थ भक्तिपूर्वक संयमकी वृद्धि करनेवाला भोजन देवै तथा दर्शन ज्ञान चारित्रकी शुद्धताका कारण पर्याय-

करण देवैहै। तथा संयमकै अर्थि रोगका नाश करनेवाला प्रासुक औषध देना तथा ध्यानाध्ययनका कारण शुद्ध वस्तुका देना ऐसैं चार प्रकार दानमैं अपना भोजन धनादिकका विभाग करना सो अतिथिसंविभाग नाम व्रत है। ऐसैं पंचव्रत अर सप्तशील ए बारह व्रत श्रावकके होयहैं ॥ अब सलेखनाकूं कहैहैं—

मारणांतिकीं सलेखनां जोषिता ॥ २२ ॥

अर्थ—मरणके अंतमैं सलेखना जो है ताहि जोषिता कहिए प्रीतिकरै सेवन करै। आयु इंद्रिय बल श्वासोच्छ्वास इन दशप्राणनिका वियोगकूं मरण कहिएहैं। मरणरूप अंतविषै सलेखनाकूं प्रीतिकरि सेवन करना सो सलेखना दोय प्रकारहै। एक कायसलेखना दूजी कषायसलेखना है। तहां कायकूं जो सम्यक् कहिए आत्महितकै अर्थि लेखना कहिए कृश करना सो सलेखना है। अर कषायानिकूं आत्महितकै अर्थि कृश करना सो कषायसलेखना है। जैसैं वात पित्त कफादिकके प्रकोपकरि मरणके अवसरमैं परिणाम आकुल होइ अराधनातैं नहीं चलायमान होइ तैसैं कायसलेखना करै। अर मोह राग द्वेषादिककरि अपना ज्ञानदर्शनपरिणाम मरणसमयमैं मलिन नहीं होइ तैसैं कषायसलेखना करै ऐसैं अनशन रसपरित्यागादिकका क्रमकरि तो जो देहका त्यागकरै अर शुभध्यान स्वाध्यायादिक करि परमात्मस्वरूपमैं एकाग्रता करता संसारसंबंधी समस्तविकल्प छांडि च्यार आराधनाका आराधक हुवा प्राणत्याग करै ताकै सलेखनामरण होयहै संसारके नाश करनेकूं समर्थ है। कोऊ प्रश्न करैं—जो समाधिमरणपूर्वक देहका त्याग करै तिसकै आत्मघातका प्रसंग आया। ताकूं कहैहैं—जो राग द्वेष मोहकरि लिप्त हुवा विष शस्त्रादिक कारणनिकरि अपना घात करै तिसकै आत्मघात होयहै। अर सलेखनामरण करै ताकै रागादिक नहीहै। जैसैं कोऊ वणिज करनेवाला वणिकके नानाप्रकारके क्रय विक्रयकै योग्य जे रत्न सुवर्ण वस्त्र केसरि कपू-

गृहस्थकूं अनेकप्रकार गृह होइ तिस गृहका विनाश होना बडा अनिष्ट है। अर जो विनाशके कारण निकट होइ तबी तौ ताकौ शक्तिप्रमाण विनाशके कारणनिकूं दूरि करै अर जो दूरि नहीं होनें दीखै तौ जैसैं बहुमूल्यवस्तुनिका नाश नहीं होइ तैसैं गृहमेंसूं भिन्न होइ तिष्ठै तैसैं गृहस्थ शील संयमादिक पुण्य परिणामनिके संचयकरि युक्त जो शरीर तिसका विनाश नाहीं चाहै है। तथापि जो दुर्भिक्ष जरा रोग उपसर्गादिक शरीरके नाशके कारण आय प्राप्त होइ तौ जैसैं अपना सम्यग्दर्शनादि गुण नहीं मलिन होइ तैसैं यत्न करै अर जो यत्नतैं तिनका यत्न नहीं दूरि होत जानैं तौ जैसैं अपना ज्ञान संयमादिक नहीं बिनसै तैसैं आहारादिक क्रमतैं त्यागकरि सल्लेखनामरण करै तिसकै आत्मघात कैसैं होय। बहुरि जैसैं तपमैं तिष्ठते साधुकै शीत उष्णादि अनिष्ट दुःख उपजते होतैं सुखदुःखनिका अभिप्रायके अभावतैं सुखदुःखमैं रागद्वेष नहीं होनेतैं सुखदुःखकृत कर्मबंध नाहीं होय है। तैसैं अर्हंतप्रणीत सल्लेखना करनेवाले पुरुषकै जीवितमरणके अभिप्रायरहित पुरुषकै अपने मरणमैं रागादिकके अभावतैं सल्लेखनामरणतैं आत्मघात कदाचित् नहीं होय है। ऐसैं व्रतीनिका तथा सल्लेखनाका वर्णन किया। अर जो प्रमत्तयोगविना आत्मज्ञानसहित देहतैं भिन्न आत्माकूं जानिकरि आहारादिक आदि त्याग करै ताकै हिंसा नहीं ॥ अब सम्यक्त्वके पंच अतीचार कहै हैं—

शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥ २३ ॥

शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा, अन्यदृष्टिसंस्तव ए सम्यग्दर्शनके पांच अतीचार हैं। तहां जो अर्हंतके परमागमतैं प्रगट किए अर्थमैं संदेह सो शंका है तथा आपने आत्माकूं ज्ञाता द्रष्टा अनादि अविनाशी परद्रव्यनिके संबंधतैं भिन्न जानिकरिकैं जो सप्तभयकूं प्राप्त होना सो शंकानाम अतीचार है। इस लोक परलोकसंबंधी भोगनिमैं वांछा सो कांक्षा नाम अतीचार है। तथा कुत्सित वृ-

द्री रोगी इत्यादिक क्लेशितमनुष्य तिर्यंचनिकूं देखि ग्लानि करना तथा अशुभकर्मका उदयमैं ग्लानि करना तथा अरहंतके परमागमतैं जो अनशनादिक तप अर यावज्जीव स्नानका त्याग त्रिकाल परिषहका सहना इत्यादिक आचरणमैं ग्लानिकरना सो विचिकित्सा नाम अतिचार है। मिथ्यादृष्टीनिका ज्ञान तप शील दानादि देखि अपना मनविषैं भला जानना सो अन्यदृष्टिप्रशंसा नाम अतिचार है। अर मिथ्यादृष्टीके ज्ञान चारित्र शील तपादिकनिका वचनकरि प्रशंसा करना सो संस्तव नाम अतिचार है। ऐसैं सम्यग्दर्शनके पांच अतिचार कहे। ऐसैंही व्रतादिकनिके अतिचार हैं—

व्रतशीलेषु पंच पंच यथाक्रमं ॥ २४ ॥

अर्थ—अहिंसादिक अणुव्रत अर दिग्विरत्यादिक शील इनकेभी पांच पांच अतिचार यथाक्रमतैं कहिए है सो जानना। जातैं जाणेविना त्यागपूर्वक व्रत शुद्ध कैसैं होय॥ अब अहिंसा अणुव्रतके अतिचार कहैहैं—

बंधवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥

अर्थ—बंध, वध, छेद, अतिभारारोपण, अन्नपाननिरोध ए पांच अहिंसा अणुव्रतके अतिचार हैं। तहां जो प्राणीनिका वांछितदेशमैं गमनकूं रोकना खोडा बेडी शांकल पींजरा कोठा रस्सा जेवडानिकरि बांधना सो बंध अतिचार है। बहुरि लाठी चाबुक बेंतादिककरि प्राणीनिका घात करना सो वध नाम अतिचार है। बहुरि कर्ण नासिका लिंगादि अंग उपांगनिका छेदना सो छेद नाम अतिचार है। बहुरि बलध उंट घोडा भैंसा इत्यादिक ऊपरि जो भार बोझ लादनेकी जो न्यायरूप मर्यादा तातैं अधिक भारका लाधना तथा मर्यादातैं अधिक दूरिचलावना सो अतिभारारोपण नाम अतिचार है। बहुरि मनुष्य तिर्यंचादिकनिकूं खान पानादिकका निरोधकरि भूखा तिसाया राखना तथा काल उल्लंघनकरि भोजन पान देना सो अन्नपानानि-

भेद नाम अतिचार है । ऐसें अहिंसा अणुव्रतके पंच अतिचार कहे ॥ अब सत्य अणुव्रतके कहैं—

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥ २६ ॥

अर्थ—मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार, साकारमंत्रभेद ए पांच सत्य अणुव्रतके अतिचार हैं । तहां जो स्वर्गमोक्षके साधक क्रियाविशेषनिविषैं अन्यजीवनिकूं अन्यथा प्रवर्तन करावना ऐसा उपदेश देना सो मिथ्योपदेश नाम अतिचार है । तथा स्त्रीपुरुषनिकरि एकांतविषैं जो क्रिया आचरण किया ताका प्रकाश करना प्रगट करना सो रहोभ्याख्यान नाम अतिचार है । बहुरि परकरि कह्या नाहीं अर परका अभिप्रायतैं किछू जानिकरि लिखि देना जो तिननै ऐसैं कह्या है ऐसा आचरण कीया है ऐसें परके ठगनेके अर्थि झूठा लिख देना सो कूटलेखक्रिया नाम अतिचार है । बहुरि कोऊ कोईका मोहर वा आभरणादिक आपके पास धरगया पीछैं गिणती भूलि अल्पप्रमाण मांगनेलगा ताकूं कहै जो ठीक है ल्यावो है सो लेजावो ऐसैं विस्मरणकूं कहना सो न्यासापहार अतिचार है । बहुरि कोऊ एकान्तविषैं वा अंगविकार भ्रूक्षेपादिककरि अन्यके अभिप्रायकूं जाणि ईर्षाभावतैं लोकनिकूं प्रगट करना सो साकारमंत्रभेद नाम अतिचार है । ऐसैं सत्यअणुव्रतके पालकके त्यागनेयोग्य पंचअतिचार कहे ॥ अब अचौर्यव्रतके कहैं—

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥ २७ ॥

अर्थ—स्तेनप्रयोग तदाहृतादान विरुद्धराज्यातिक्रम हीनाधिकमानोन्मान प्रतिरूपकव्यवहार ए पंच अचौर्यव्रतके अतिचार हैं । चोरी करनेकूं चोरनिके अर्थि आप युक्त करै तथा अन्यतैं प्रेरणा करावै तथा करतेकै भला जानै सो स्तेनप्रयोग अतिचार है । बहुरि जो चोरकूं प्रेरणाभी नाहीं करी अर अनु-

मोदनाहू नहीं करी परंतु चोरका ल्याया वस्तुकूं ग्रहणकरै सो तदाहृतदान नाम अतिचार है। वहुरि जो उचित न्यायकूं छांडि जो देना ग्रहणकरना सो विरुद्ध है राज्यके न्यायतैं विरुद्ध सो विरुद्धराज्यातिक्रम है। ज्यों वहुत मोलकी वस्तु अल्पमोलकरि लेना इत्यादिक विरुद्धराज्यातिक्रम दोष है। अर जो तोला-वाट तो मान है अर तोलनेकी ताखडी उन्मान है तहां न्यूनकरिकै अन्यकै अर्थि देना अर अधिककरी लेना ऐसा कपटका प्रयोग रखना सो हीनाधिकमानोन्मान नाम अतिचार है। वहुरि जो सुवर्णादिक धातु तथा व ... ...दिक तिनमैं खोटी मिलाय खरीमैं वेचना सो मायाचारपूर्वक व्यवहार सो ... है। ऐसैं अदत्तादानत्याग नाम अणुव्रतके पांच अतिचार त्यागनेयो-... अतिचार कहैहैं—

...करणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमनानंगक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥

...थ—परविवाहकरण अपरिगृहीतेत्वरिकागमन परिगृहीतेत्वरिकागमन अनंगक्रीडा कामतीव्रता ए ...र्यव्रतके पांच अतिचार हैं ॥ सातावेदनीय अर चारित्रमोहनीय कर्मके उदयतैं जो कन्याका वरण ...रका जो विवाह करना सो परविवाहकरण नाम अतिचार है। वहुरि ज्ञानावरणकर्मके ... कलागुणप्रवीणता ताकरिकै तथा स्त्रीवेद नाम कर्मके तीव्रउदयकरिकै तथा ...रुषतैं रमनेका जाका स्वभाव होइ सो व्यभिचारिणी इत्वरिका है। तहां ... स्वामी नहीं होइ ऐसी जो परपुरुषगामिनी कुलटा सो अपरि-...इ एक पुरुषका परिणीतहोइकरि—जो परपुरुषनिमैं गमन कर-...है। इनि दोऊ प्रकारकी व्यभिचरिणीकै जावना बुलावना लेना

ऐसा परिणाम करना ते ऐसे अति तीव्रके कारण अतिचार हैं। बहुरि कामसेवनयोग्य अंगनिकूं छो-
डि अन्य अंगनिमैं क्रीडा सो अनंगक्रीडा नाम अतिचार है। बहुरि कामसौं अधिक परिणाम तथा काम-
सेवनमैं विशेष परिणाम सो कामतीव्राभिनिवेश नाम अतिचार है। ऐसें ए ब्रह्मचर्य नाम अणुव्रतके पा-
लनेवालेके श्रावकके ए पांच अतिचार त्यागनेयोग्य हैं। बहुरि दीक्षितकी अतिचारका स्त्री निर्णयसौं
क्रका त्याग कामतीव्रताकरि करावै। तिन पापीके लोकापवादका भय तथा राजाका भय तथा पर-
लोकका भय नाहीं होयगा तिनिके ऐसें अन्यायमैं प्रवृत्ति होय है तातैं लौकिकजनकी इनिका परिहारकरि-
नाहि श्रावक ऐसे वचन कहैं ॥ अब परिग्रहपरिमाणके अतिचार कहैं—

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यभांडप्रमाणातिक्रमाः ॥ २९ ॥

अर्थ—क्षेत्रवास्तु हिरण्यसुवर्ण धनधान्य दासीदास कुप्यभांड इनिका प्रमाणनिकरि उल्लंघना सो परि-
ग्रहपरिमाण अणुव्रतके पांच अतिचार हैं। धानादिक उपजनेका स्थान क्षेत्र है। रहनेका गृहादिक मकान
सो वास्तु है। रूपा सोना इत्यादि हिरण्य है। सुवर्ण प्रसिद्ध है। इहां हिरण्यशब्दकरि तौ व्यवहारमैं प्र-
वृत्तिरूप जाननां रूपा सोना इत्यादि लेना। अर सुवर्णशब्दकरि आभरण पात्र अन्य सुवर्णका नानादि
लेना। गौ रूपा इत्यादिक धन है। शालि गोहूं इत्यादिक धान्य हैं। दासीकरि गृहकी सेवा करनेके अ-
धिकारी सौंपूरा दासदासी हैं। वस्त्र कपास चंदनादि कुप्य हैं। इन परिग्रहमैं ऐसें इतनाही ग्रहण है। अ-
तिके लोभतै ऐसे प्रमाणकरि तिन अभिलाष इनिके तीनों प्रमाणतैं अधिक ग्रहण करना सो प्रमाणातिक्रम
हैं। परिग्रहपरिमाण व्रतके त्यागनेयोग्य पंच अतिचार हैं ॥ अब दिग्विरतिके पंच अतिचार कहैं—

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यंतराधानानि ॥ ३० ॥

अर्थ–ऊर्ध्वातिक्रम अधोतिक्रम तिर्यगतिक्रम क्षेत्रवृद्धि स्मृत्यंतराधान ए दिग्विरतके पंच अतिचार हैं। तहां पर्वतवृक्ष भूम्यादिकनिके ऊपरि चढना सो ऊर्ध्वातिक्रम है। कूप बावडी इत्यादिकनिके मध्य अवतरणतैं अधोतिक्रम है। भूमिके मध्य बिल तथा पर्वतादिकनिकी गुफादिकनिमैं प्रवेश करना सो तिर्यगतिक्रम है। पूर्वै जो दिशानिका योजनादिककरि प्रमाण किया तातैं अधिक क्षेत्रमैं गमनकी वांछा सो क्षेत्रवृद्धि नाम अतिचार है। मर्यादाकरी ताका विस्मरण होना सो स्मृत्यंतराधान नाम अतिचार है। इहां ऐसा जानना। जो दिशाका प्रमाण कीया तिसमैं जो समस्तलोकनके जावनेयोग्य मार्ग है तिसमैं वृतीकूं गमन करना उचित है। अर मार्ग छांडि पर्वत वृक्ष टीवा इत्यादिकऊपरी चढना तथा कूपादिकमैं नीचैं उतरना तथा गुफादिकमैं प्रवेश करना सो अतिचार है। ऐसैं दिग्विरतिवृतके पंच अतिचार त्यागनेयोग्य हैं ॥ अब देशवृत कहै हैं—

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥

अर्थ–आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात, पुद्गलक्षेप ए पंच देशविरतिवृतके अतिचार हैं। तहां जो मर्यादारूप क्षेत्रकरि तिष्ठते पुरुषके प्रयोजनके वशतैं मर्यादावाह्य क्षेत्रकी वस्तु परकरि मंगावना तथा परकूं बुलावना सो आनयन नाम अतिचार है। मर्यादाकरि तिस क्षेत्रके वाह्य आप तो नहीं गमन करै परंतु सेवककूं वा पुत्रादिकनिकूं कहै जो हमारे तो इस मकानतैं बाहिर गमनका त्याग है। तुमकूं ऐसा कार्य करना ऐसैं अपने अभिप्रायका कार्यकी प्रेरणा करना सो प्रेष्यप्रयोग नाम अतिचार है। मर्यादावाह्य क्षेत्रमैं तिष्ठते पुरुषनिकूं कास खखारादि समस्याकरि समझावना सो शब्दानुपात अतिचार है। रि

मर्यादाबाह्य तिष्ठते तिनकूं आपना रूप दिखाय कार्यमें प्रवर्तन करावना सो रूपानुपात अतिचार है। बहुरि मर्यादाबाह्य क्षेत्रमें पाषाण कांकरी इत्यादिक डारि कार्यके करनेवालेनिकूं समस्या करना सो पुद्गलक्षेप नाम अतिचार है। ऐसैं देशविरतिके पांच अतिचार कहे॥ अब अनर्थदंडत्यागका अतिचार कहै हैं—

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥

अर्थ—कंदर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण, भोगपरिभोगका अनर्थपणा ए पांच अतिचार अनर्थदंडके हैं। तहां रागभावकी उत्कटतातें हास्यकरि मिल्याहुवा गाली भंडवचन बोलना सो कंदर्प अतिचार है। बहुरि रागका उद्रेकतें हास्यवचनभी अर अशिष्ट भंडवचन बोलना अर कायतें कुचेष्टा किया करना सो कौत्कुच्य नाम अतिचार है। बहुरि धीठपणाकरि अनर्गल बहुप्रलाप करना सो मौखर्य अतिचार है। बहुरि प्रयोजनके विचारविना अधिकपणाकरि प्रवर्तन करना सो अधिकरण है। सो काय वचन मनकरि तीन प्रकार है। तहां अनर्थके करनेवाला काव्य आदि लौकिक चिंतवन करना सो मन अधिकरण है। अर निःप्रयोजन कथा करना हिंसा करना तथा परकै पीडा करनेवाला वचन सो वचन अधिकरण है। अर प्रयोजनविना गमन करना बैठना खडा रहना सचित्त अचित्त फूल पत्र फल पुष्प इत्यादि छेदन भेदन कूटन क्षेपणादि करना अग्नि विष क्षारादिक देना ए समस्त असमीक्ष्याधिकरण है। बहुरि ऐसा सर्वही अपना भोग उपभोगकूं रचना बैठे लिखना सो अर्थ है। अर प्रयोजनविना अधिकका संग्रह करना सो भोगोपभोगानर्थक्य नाम अतिचार है। ऐसैं अनर्थदंडविरतिव्रतके पालनेवालेके त्यागनेयोग्य पंच अतिचार है॥ अब सामायिक व्रतके अतिचार कहै हैं—

योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥

अर्थ–मन वचन कायके योगनिका दुष्प्रणिधान अनादर स्मृत्यनुपस्थान ए सामायिकके पंच अतिचार हैं। सामायिक करनेका अवसरमैं शरीरकै अंगोपांगादिकनिका निश्चलतारहित रखना सो कायदुःप्रणिधान है। अर अक्षरानिका उच्चारणमैं शुद्ध संस्कारका अभाव अर्थ जामैं नहीं जान्या जाय ऐसैं पाठका पढना सो वचन दुष्प्रणिधान है। अर सामायिकके भावमैं अर्थमैं मनका नहीं लगावना सो मनोदुष्प्रणिधान है। इहां प्रणिधान नाम दुष्टपरिणामनिका वा अन्यथा प्रवर्त्तनका है। वहुरि उत्साहरहित अनादरतैं सामायिक करना सो अनादर नाम अतिचार है। वहुरि सामायिकमैं एकाग्रताविना चित्तकी व्यग्रतातैं पाठका भूलि जाना सो स्मृत्यनुपस्थापन नाम अतिचार है। ऐसैं सामायिकव्रतके त्यागनेयोग्य पंच अतिचार कहे ॥ अव प्रोषधोपवासके पंच अतिचार कहैहैं—

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥

अर्थ–अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित ऐसी भूमिमैं मलमोचन तथा उपकरणग्रहण तथा संस्तरोपक्रमण अर अनादर, अर स्मृत्यनुपस्थान ए पंच प्रोषधोपवासके अतिचार हैं। इस भूमिमैं जीव है किं नहीं है ऐसैं नेत्रनिमैं देखना सो प्रत्यवेक्षण है वहुरि कोमल उपकरणकरिकैं सोधना भुवारना सो प्रमार्जन है। तहां जो नेत्रनितैं देखेविना तथा कोमल उपकरणतैं सोधन कीएविना भूमिमैं मल मूत्र कफादिकका क्षेपना सो अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जितोत्सर्गनाम अतिचार है वहुरि देखे शोधे विना अरहंत आचार्यादिकनिकी पूजनके उपकरण तथा गंध माल्य धूपादिकनिका ग्रहण तथा अपने पहरनेके वस्त्र वा पात्रादिकनिका ग्रहण सो अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान नाम अतिचार है। वहुरि विनादेखी विनासोधी भूमिविषै वस्त्रादिकनिकूं शय-

भूमिकै अगि विछावना सो अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण नाम अतिचार है। बहुरि क्षुधा तृषा-दिककी बाधाकरि आवश्यक क्रियानिविषै अनादर सो अनादर नाम अतिचार है। करनेयोग्य आवश्य-कादिकनिकू विस्मरण होजाना सो स्मृत्यनुपस्थान अतिचार है। ऐसैं प्रोषधोपवासके धारक पुरुषकै ए पांच अतिचार त्यागनेयोग्य हैं। अब भोगोपभोगपरिमाणव्रतके अतिचार कहै हैं—

सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥ ३५ ॥

अर्थ—सचित्त सचित्तसंबंध सचित्तसंमिश्र अभिषव दुःपक्व ऐसैं आहारका भक्षणतैं भोगोपभोगपरिमाण-व्रतकै पंच अतिचार हैं। चेतनासहित हरित पुष्पफलादिकका आहार सो सचित्तआहार नाम अति-चार है। सचित्ततैं मिल्या संबंधतैं प्राप्त भया संबंधमात्रतैं प्राप्त भया वस्तुका जो आहार सो सचित्तसंबं-धाहार नाम अतिचार है। सचित्ततैं मिलनापणा मासिलपणा जो भिन्न नहीं किया जाय ऐसा वस्तुका आ-हार सो सचित्तसंमिश्रआहार नाम अतिचार है। बहुरि पुष्टवस्तु द्रव्यादिकका आहार करना सो अभि-षव नाम अतिचार है। बहुरि जो भला सम्यक् नहीं पकया होइ सो दुःपक्वाहार है। ऐसैं आहारके करनें-तैं प्रमादकर इंद्रियमद बढिजाय होइ तथा अगि सचित्तपणा होइ सो दुःपक्व है तातैं दुःपक्व आहार करनेतैं इंद्रियनिमैं मदकी वृद्धि होइ वा सचित्तपणाका प्रयोग होइ वातादिक रोग होइ फिर रोगका इलाज करनें-मैं पापका बंध होइ यातैं दुःपक्वाहार त्यागनेयोग्य है। ऐसैं भोगोपभोग व्रतके त्यागनेयोग्य पंच अति-चार हैं॥ अब अतिथिसंविभागव्रतके अतिचार कहै हैं—

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सचित्तनिक्षेप, सचित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य, कालातिक्रम ए दानके पंच अतिचार हैं। स-

योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥

अर्थ—मन वचन कायके योगनिका दुष्प्राणिधान अनादर स्मृत्यनुपस्थान ए सामायिकके पंच अतिचार हैं। सामायिक करनेका अवसरमैं शरीरकै अंगोपांगादिकनिका निश्चलतारहित रखना सो कायदुःप्रणिधान है। अर अक्षरानिका उच्चारणमैं शुद्ध संस्कारका अभाव अर्थ जामैं नहीं जान्या जाय ऐसें पाठका पढना सो वचन दुष्प्राणिधान है। अर सामायिकके भावमैं अर्थमैं मनका नहीं लगावना सो मनोदुष्प्रणिधान है। इहां प्रणिधान नाम दुष्टपरिणामनिका वा अन्यथा प्रवर्त्तनका है। वहुरि उत्साहरहित अनादरतैं सामायिक करना सो अनादर नाम अतिचार है। वहुरि सामायिकमैं एकाग्रताविना चित्तकी व्यग्रतातैं पाठका भूलि जाना सो [illegible]

दानके फलमें विशेषके दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

अर्थ—विधिविशेषतैं, द्रव्यविशेषतैं, दाताके विशेषतैं, पात्रके विशेषतैं दानमैं विशेष है। तहां प्रतिग्रह उच्चस्थान पादप्रक्षालन पूजन इत्यादिक विधि है। इनमें आदरअनादर करनेतैं विशेष है सो जानना। बहुरि आहार तपःस्वाध्यायादिककी वृद्धिका कारण होइ तथा कोऊ नहीं होइ इत्यादिक द्रव्यके विशेषतैं विशेष है। बहुरि ईर्षारहितपना तथा विषादरहितपना तथा देनेके इच्छकमैं देनेमें दीया जिनमें प्रीति होइ तथा कल्याणका अभिप्राय होइ तथा दृष्टफलकी वांछना नहीं होइ तथा निदान नहीं होइ इत्यादि दाताके गुण हैं तिनके विशेषतैं दानमैं विशेष होय है। बहुरि सम्यग्दर्शनादिक गुणनिकरि युक्त पात्र होइ तिनके विशेषतैं दानमैं विशेष होय है। ऐसैं विधि द्रव्य दाता पात्र इनके विशेषतैं दानमैं विशेष जानना। ऐसे अध्याय सातमा पूर्ण भया। ऐसैं ... आस्रवके ... हिंसादिक पंच पापके त्यागरूप व्रत ... तिनकी ... भावना ... बहुरि तिन व्रतनिके दृढ करनेकूं पांच पांच भावना कही। बहुरि पांच पापनिकूं इस लोक परलोकमैं दुःखदाई तथा दुःखरूप कहे। बहुरि मैत्री आदि च्यारि भावना कही। बहुरि संसार देह भोगनिकी भावना कही। बहुरि पंच पापनिका जुदा जुदा लक्षण कह्या तथा व्रतीका लक्षण कह्या बहुरि गृहस्थके अणुव्रत सात शील कहे। सल्लेखना कही। बहुरि सम्यक्त्वके पंच अतीचार अर शील सहित सल्लेखना इन सबनिके पांच पांच अतीचार कहे। बहुरि दानका लक्षण अर याके फलका विशेष कह्या ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥

... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ।

... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ॥

चित्त जो कमलपत्रादिकमैं स्थापनकरि दान देवै सो सचित्तनिक्षेप नाम अतिचार है। वहुरि जो अन्यका नामकरि दान देना सो परव्यपदेश नाम अतिचार है। वहुरि देतासंता आदरविना देना सो मात्सर्य है अथवा अन्यदातारतैं ईर्षाभावतैं तथा अदेखसकाभावतैं देना सो मात्सर्य नाम अतिचार है। कालके उल्लंघनकरि अकालमैं भोजन देना सो कालातिक्रम नाम अतिचार है। ऐसैं अतिथिसंविभागके पांच अतिचार हैं॥ अब सल्लेखनाके अतिचार कहैहैं—

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुवंधनिदानानि ॥ ३७ ॥

अर्थ—जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुवंध, निदान ए पांच अतिचार सल्लेखनामरणके हैं। सल्लेखनाकरिकै जीवनेकी इच्छा करना जीविताशंसा नाम अतिचार है। रोगादिक उपद्रवतैं आकुल होइ मरणकी वांछा करना सो मरणाशंसा नाम अतिचार है। पूर्वै जिनकै जिनकै सामिलरहि अनेक क्रीडादिकमैं रच्या तिन मित्रनिकूं स्मरण करना सो मित्रानुराग नाम अतिचार है। वहुरि पूर्वै भोगे भोगनिकूं शयनकूं क्रीडानिकूं चिंतवन करना सो सुखानुवंध नाम अतिचार है। वहुरि जो विषयसुखनिकी अभिलाषा भोगनिमैं आगामीकालमैं वांछा सो निदान नाम अतिचार है। ऐसैं सल्लेखनामरण करनेवाला व्रतीका पंच अतिचार कह्या॥ अब दानका लक्षण कहै हैं—

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं ॥ ३८ ॥

अर्थ—आपका अर परका उपकारके अर्थि धनादिकका त्याग करना देना सो दान है। जिसतैं आपकै पुण्यबंध होइ वा धर्मात्मा पात्रका लाभ होय सो अपना उपकार है। अर अन्य जीवकै सम्यग्ज्ञानादिककी वृद्धि होइ सो परका उपकार है। अपना अर परका उपकारकै अर्थि आहारादिक देना सो।

श्रद्धान है ऐसें कहिए अतत्त्वश्रद्धान जाकै सो मिथ्यादृष्टि है ॥१॥ सासादना नाम विराधनाका है सो सम्य-
क्त्वकी विराधनासहित होय सो सासादनसम्यग्दृष्टि कहिये। जातैं सम्यक्त्व छूटि मिथ्यात्वके सन्मुख
होय तहां सासादन नाम पावै ॥२॥ बहुरि सम्यक्त्व अर मिथ्यात्व दोऊ मिल्याहुवा परिणाम होइ सो मिश्र
नाम पावै ॥३॥ बहुरि जाकै व्रत नहीं होइ अर सम्यक्त्व होय सो अविरतसम्यग्दृष्टि नाम पावै ॥४॥
बहुरि जाकै एकदेशविरत कहिए व्रत होइ सो देशविरत नाम पावै ॥५॥ बहुरि जो संयत कहिए सं-
यमी होइ अर प्रमादसहित होइ सो प्रमत्तसंयत है ॥६॥ बहुरि प्रमादरहित ध्यानमैं लीन जो संयमी सो
अप्रमत्त संयत है ॥७॥ बहुरि जाकै अपूर्वकरण अपूर्व कहिए पूर्वकै समयनिमैं नहीं भए ऐसे करण कहिए
परिणाम होइ सो अपूर्वकरण है ॥८॥ बहुरि निवृत्ति नाम भिन्नताका है भिन्नता है जिनमैं
समानसमयवर्ती जीवनिकै एकसमयमैं एकरूप परिणाम होइ निवृत्ति कहिए भिन्नता नहीं होइ सो
अनिवृत्तिकरण है ॥९॥ बहुरि जाकै सूक्ष्म कहिए अतिसूक्ष्म सांपराय कहिए कषाय होइ सो सू-
क्ष्मसांपराय है ॥१०॥ बहुरि जहां मोहका सर्वथा उपशम होइ सो उपशांतमोह नाम है ॥११॥ बहुरि
जहां मोहका सर्वथा नाश होइ सो क्षीणमोह नाम है ॥१२॥ बहुरि घातियाकर्मनिकूं जीति
लिया तातैं जिन है। अर केवल कहिए असहाय इंद्रियादिकनिकी अपेक्षारहित ज्ञान होइ सो केवली है।
अर मन वचन कायके योगनिसहित है केवली जिन सो सयोगकेवली जिन है ॥१३॥ बहुरि योगरहित
जो केवली जिन सो अयोगकेवली जिन नाम है ॥१४॥ ऐसैं गुणस्थाननिका अर्थरूप कह्या। ये गुण-
स्थान हैं ते आत्माका स्वभाव नहीं है। मोहकर्मका उदयादिक वा योगनिकी अपेक्षातैं होइ हैं। अब मि-
थ्यात्वगुणस्थानका स्वरूप कहिये। दर्शनमोहका भेद जो मिथ्यात्वप्रकृति ताका उदयकरि जो अतत्त्व-

## अथाष्टमोऽध्यायः ।

दोहा ।

श्रीजिनेंद्रपद नमनतैं, होई सवसुखसंच ।
करम भरम संवंधका, कारन रहै न रंच ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा वंधहेतवः ॥ १ ॥

अर्थ—इस सूत्रमैं वंधपदार्थका वर्णन करिए है परंतु गुणस्थाननिके अर मार्गणास्थाननिके तथामार्गणा है मध्य जाकै ऐसी वीसप्ररूपणानिका स्वरूप जाणेविना वंधका उदयका सत्त्वका स्वरूप स्पष्ट समझनेमें नहीं आवै तथा प्रसंगपाय प्रयोजन स्वरूप समझि पहली संक्षेपकरि गुणस्थाननिका स्वरूप लिखिए है । तिनमैं प्रथमही गुणस्थाननिका नाम जानेनयोग्य है ।

गुणस्थान—मिच्छा सासण मिस्सो, अविरदसम्मो य देसविरदो य ॥
विरदप्पमत्त इदरो, अपुव्व अणियट्टि सुहुमो य ॥ १ ॥
उवसंत खीणमोहो, सजोगकेवलिजिणो अजोगी य ॥
चोद्दसगुणठाणेहिं य, कमेण सिद्धा य णादव्वा ॥ २ ॥

मिथ्यात्व[1], सासादन[2], मिश्र[3], अविरतसम्यग्दृष्टि[4], देशविरत[5], प्रमत्तसंयत[6], अप्रमत्तसंयत[7], अपूर्वकरण[8], अनिवृत्तिकरण[9], सूक्ष्मसांपराय[10], उपशांतमोह[11], क्षीणमोह[12], सयोगकेवलीजिन[13], अयोगकेवलीजिन[14], इस प्रकार गुणस्थाननिके चोदह नाम कहे । अब इनके नामनिके अर्थसहितपणा दिखावें है—मिथ्यात्व

ताका॰- उपशमसम्यक्त्वका काल अंतर्मुहूर्तका है अंतर्मुहूर्त पीछे नियमतैं उदैहै। सो तहां मिथ्यात्व-प्रकृति उदय आवाय तौ उपशमसम्यक्त्व छोडि मिथ्यात्वगुणस्थानी होजाय। अर तहां जो अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभविषैं कोऊ एकका उदय होजाय तौ सासादनगुणस्थानी होजाय। अर सम्यक्त्व-प्रकृतिका उदय होजाय तौ उपशमसम्यक्त्व छोडि क्षयोपशम सम्यक्त्व होजाय। जो जीव उपशमसम्यक्त्व-रूप पर्वततैं छूटि मिथ्यात्वभूमिके सन्मुख भया, ऐसै अंतरालविषैं जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवलीपर्यंत अंतरालविषैं जो जीव सासादनगुणस्थानी कहिए है। जैसैं पर्वततैं छूट्या अर भूमिमैं नाहीं पहुंच्या सो पुरुषका अर भूमिका अंतरालविषैं वर्तमान है तैसे कोऊ जीव अनंतानुबंधीका उदय होतें स-म्यक्त्व नाहीं रह्या अर मिथ्यात्वका उदयविना मिथ्याती नाहीं कहावा तीनिमैं जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवलीपर्यंत सासादनगुणस्थानी कहिए है। याका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह आवलीप्र-माणकाल है पीछे नियमतैं मिथ्याती होय है ऐसैं द्वितीय सासादनगुणस्थानका स्वरूप कह्या॥ अब तृतीय मिश्रगुणस्थानका स्वरूप कहिए है। दर्शनमोहनीयका भेद एक जात्यंतरसर्वघाति सम्यग्मिथ्यात्व है तिसका नाम जाना ऐसी मिश्रप्रकृतिका उदयकरि जीवकै सम्यक्त्व अर मिथ्यात्वरूप मिलेहुए, कहुंकि परिणाम होयहै। सो मिश्रप्रकृतिका उदयकरि केवल सम्यक्त्वरूपभी नहीं होइ। अर केवल मिथ्या-त्वरूपभी नाहीं होइ। जैसे दधि जो दही अर गुड दोऊ मिल्याहुवा नहिं एक जात्यंतरका स्वाद अनुभव करिये है ताका स्वाद नाहीं है। तैसें मिश्रप्रकृतिका उदयकरि सम्यक्त्व मिथ्यात्व दोऊनिका मिलेहुए परिणाम होयहै। याहीतैं मिश्रगुणस्थानी जीव देशसंयम तथा सकलसंयमकौं नाहीं ग्रहण करैहै।

क्योंकि मिश्रगुणस्थानीकै देशसंयम सकलसंयमके होनेयोग्य करणरूप परिणामनिका असंभव है। मिश्रगुणस्थानीकै देशसंयम सकलसंयम भावनिप्रति चढनेकी योग्यता नही है। अर चतुर्गतिका कारण चार आयुका बंधभी नही करैहै। अर मिश्रगुणस्थानमें मरणभी नही होयहै। मिश्रगुणस्थानकूं छांडि असंयतसम्यक्त्वमें वा मिथ्यात्वमें जाय मरण करैहै ऐसा नियम है। बहुरि मिश्रगुणस्थानी पूर्वे सम्यक्त्वपरिणाममें वा मिथ्यात्वपरिणाममें जहां आयुबंध कीयाहोय तिस सम्यक्त्व वा मिथ्यात्व परिणामनें प्राप्त होयकरिकै ही मरण करैहै ऐसाभी नियम केई आचार्यनिके अभिप्रायतें जानना। बहुरि मिश्रगुणस्थानमें मारणांतिकसमुद्घातहू नही करैहै। ऐसें मिश्रगुणस्थानका स्वरूप कह्या॥ अब चौथा असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानका स्वरूप कहैहैं। सम्यक्त्व जो तत्त्वार्थनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन एक प्रकार है। तथापि कारणके वशतें तीन प्रकार है। जातें दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृति अर ४ अनंतानुबंधी कषाय इनि सातप्रकृतिनिका उपशमतें उपशमसम्यक्त्व होयहै। अर इन सात प्रकृतिनिका अत्यंतक्षयतें क्षायिकसम्यक्त्व होयहै। अर इनि सातप्रकृतिनिका क्षयोपशमतें क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होय है। तिन तीन प्रकार सम्यक्त्वमें क्षायोपशमसम्यक्त्वका स्वरूप कहिए है। जहां अनंतानुबंधी कषायनिका प्रशस्त उपशम तो नहीं होइ अर अप्रशस्त उपशम होय, अथवा अनंतानुबंधीका विसंयोजन भया होय, अन्य द्वादशकषाय नवनोकषायरूप परिणमिजाय ताकूं विसंयोजन कहिएहैं। अर मिथ्यात्व अर सम्यग्मिथ्यात्व इन दोऊ दर्शनमोहकी प्रकृतिनिका प्रशस्त उपशम होय, अथवा क्षयकूं प्राप्त होय। अर सम्यक्त्वप्रकृतिका देशघातिस्पर्द्धनिका उदय होतें जो तत्त्वार्थनिका श्रद्धान होइ सो क्षयोपशमसम्यक्त्व है।

भावार्थ—जिसकै अनंतानुबंधी च्यार कषायनिका उपशम होइ अथवा विसंयोजन होइ अर मिथ्यात्व

अर सम्यक्त्वमिथ्यात्व प्रकृतिनिका उपशम होइ, अर सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होत होइ क्षायोपशमिकसम्यक्त्व होत है। इहां ऐसा जानना। जो प्रकृति उदययोग्य तो नाहीं होइ तौभी स्थिति अनुभागकी वृद्धिहानिके योग्य होय वा संक्रमणयोग्य होय सो अप्रशस्तोपशम कहिए है। अर जो प्रकृति उदययोग्यभी नाहीं होइ अर स्थिति अनुभागकी वृद्धिहानि योग्यभी नाहीं होइ, अर संक्रमण योग्यहू नाहीं होइ तहां प्रशस्तोपशम कहिए है। इहां अप्रशस्तोपशमरूप उक्तप्रकृतिनिका सो उपशम जानना ऐसा। एक सम्यक्त्वप्रकृतिका देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय है। सो देशघातीनिका उदयतैं तत्त्वार्थनिका श्रद्धान शिथिलपनेका नाशपना नाहीं तातैं सम्यक्त्व रहै है परंतु चल मल अगाढ इन तीन दोषनिकरि सहित सम्यक्त्व होत है। क्योंकि सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयतैं तत्त्वार्थका श्रद्धान शिथिलपनेका सामर्थ्य सो है नाहीं किंतु सम्यक्त्वके मल दोष लगावनेमात्रकौ सामर्थ्य है। तातैं इन प्रकृतिनिकौं देशघाति कहिए है। सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयके अनुभवि याहीतैं याकूं वेदकसम्यक्त्व कहिए है। अब चलादिक दोषनिका स्वरूप कहिए है। आपहीके स्थापे आप्त आगम पदार्थ तिनविषैं जो चलायमान होय सो चलदोष है। जैसे आपकरि कराया जो अर्हंतका मंदिरादिकनिविषैं सो हमारो मंदिर है सो हमारा देव है ऐसा अभिप्राय करै है। अर परकरि कराया ताको ये परका है ऐसा परपनाका अभिमान सो चलदोष है। क्योंकि अर्हंतका मंदिरादिक है सो सकल भव्यनिके आराधनेयोग्य है। तथापि ए मंदिर ए प्रतिमा हमारा ये अन्यका ऐसा अभिप्राय सो चलदोष है। जैसे नानाप्रकार कल्लोलनिकरि जल एकही है तोऊ नानारूपकरि चलै है तैसे सम्यक्त्वमोहनीयका भेद जो सम्यक्त्वप्रकृति ताका उदयकरि आपहीके आप्त आगम पदार्थनिविषैं श्रद्धान चलायमान करि गरकौ नाहीं जाय है। ऐसा चलदोष है।

वहुरि सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयतैं श्रद्धानकै अतिचार मल लागै। जैसैं शुद्धसुवर्ण है सो परसंगकरि मलिन होइ तैसैं सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयकरि श्रद्धान मलिन होय सो मलदोष है। वहुरि जैसैं वृद्धपुरुषका हस्तविषैं लाठी स्थानऊपरिही रहै स्थानसूं चलै नही अर हस्ततैंहू नही छूटै तोहू सकंप रहैहै। ताकूं अगाढ कहिए हैं। तैसैं आप्त आगम पदार्थका श्रद्धानमैं अवस्थित दृढपुरुषहूकै सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयतैं श्रद्धान कंपायमान रहैहै। सोही दिखावैहैं। समस्त अरहंतदेवनिकै समानही अनंतशक्ति है। तोहू इस शांतिकर्मके विषैं श्रीशांतिनाथस्वामीही समर्थ हैं। इस विघ्नविनाशनकर्मविषैं पार्श्वनाथदेवही समर्थ हैं। इत्यादि प्रकारकरिकै श्रद्धानकै शिथिलपणाका संभवतैं अगाढ दोष है। अव औपशमिक क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण अर इनिका स्वरूपकूं कहैहैं। अनंतानुवंधी क्रोध मान माया लोभ अर मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व अर सम्यक्त्वप्रकृति ए तीन दर्शनमोहकी इनि सातप्रकृतिनिका करणपरिणामनिकरि अत्यंत उपशमकरिकै उपशमसम्यक्त्व उपजैहै। अर इनही सप्तप्रकृतिनिका क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त्व होय है। ए दोऊही सम्यक्त्व निर्मल हैं। इनमैं शंकादिक मलदोषका लेशहू नही है। तथा ए निश्चल हैं। आप्त आगम पदार्थ है विषय जाका ऐसा श्रद्धानका विकल्पनिविषैं कहांहू शिथिल नहीहैं वहुरि दृढ हैं गाढरूप हैं आप्तादिकनिमैं तीव्ररुचिका संभवतैं दृढ होयही। ऐसैं कह्या जो तीन प्रकार सम्यग्दर्शन तिनकरि परिणत सम्यग्दृष्टि हैं। अर अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ इनमैंतैं कोई एकका उदयकरि संयमभाव नहीं होसकै तातैं याकूं असंयतसम्यग्दृष्टि कहिए है। यो असंयतसम्यग्दृष्टि भगवान् अरहंतका उपदेश्या सत्यार्थ आप्त आगम पदार्थका श्रद्धान करैहै। अर जो आपकै विशेषज्ञान नहीं होय अर केवल उपदेशदाताके संबंधतैं भगवान् अरहंतका उपदेश्या जाणि असत्यार्थहू श्रद्धान करै

औ सम्यक्त्वका आचरणतैं ऐसैही करना होयगा, ऐसे सम्यग्दृष्टि है भगवानकी आज्ञा नहीं उलंघनतें। न-
हीं कोई बहुतनिका संयोग होइ अर चलनादिकनिका उपदेश्या आगम दिखावै तो तुमने श्रद्धान
तो किया तो नहीं है। भगवानका आगममें ऐसैं उपदेश है। तुम जो ग्रहण किया है सो नहीं है। ऐसैं
समझावनेहू तो कोई आपकैं तथा अभिमानतें तथा इस दुराग्रहनिकैं कथा अर कोई ऐसैं
लक्षके धरतानी जो असत्यार्थके श्रद्धे नहीं छोडै तो जीव उसही कालतें मिथ्यादृष्टि होय है। बहुरि
जो अविरतसम्यग्दृष्टि है सो इंद्रियनिके विषयनिमें विरक्त नहीं त्रसनिका घातैं त्याग नहीं। तथा त्रस
स्थावरनिकी हिंसाका त्यागहू नहीं है। तथापि जिनेंद्रके वचनका दृढ श्रद्धानतें विषयकषायनिके निमि-
त्त [illegible] विषयनिमें आसक्त है अर प्रयोजनबिना स्थावर जीवनकी विराधनादिक नहीं करै है
हिंसाके त्यागरूप भाव करै है। ताका [illegible] है। [illegible] आदिक आ-
स्था। ऐसैं अविरतसम्यग्दृष्टि नाम चतुर्थगुणस्थानका वर्णन किया। अब देशसंयत नाम पंचमगुण-
स्थानका स्वरूप कहैं हैं। अनंतानुबंधी अर अप्रत्याख्यानावरण इन अष्टकषायनिका उपशमतें अर प्रत्या-
ख्यानावरण नामा कषायनिका देशघातिस्पर्धकनिका उदय होतसंते अर सर्वघातिस्पर्धकनिका उदया-
भावलक्षण क्षय होतें सकलसंयमके भाव नहीं होयहै। देशसंयम होय है। एकदेश थोरे व्रत होय है।
इसप्रकार चारित्र धारनेतें देशसंयत नाम पंचमगुणस्थान धारी होय है। जाकै त्रसनिकी हिंसाका त्याग
अर स्थावरनिकी हिंसाका त्याग नहीं। एककालविषैं त्रसकी हिंसातें विरत अर स्थावरहिंसातें विरत
नहीं ताते याहू विरताविरत कहिए है। परन्तु प्रयोजनबिना स्थावरहिंसाहू नहीं करैहै। इस देशसंयम
गुणस्थानमैंही श्रावकके ग्यारह स्थान वर्णन हैं जाकी ऐसी शक्ति होइ तिस प्रमाण धारण करै है।

इन ग्यारह स्थानका वर्णन लिखैं तो ग्रंथ बहुत होजाय यातैं नहीं लिख्या है रत्नकरंडश्रावकाचारादि अन्य ग्रंथनितैं जानना। याका काल जघन्य तो अंतर्मुहूर्त है अर उत्कृष्टकाल अष्टवर्ष अंतर्मुहूर्त घाटि कोटिपूर्वका है। ऐसैं देशसंयम नाम पंचमगुणस्थानका स्वरूप कह्या। अब प्रमत्तसंयत नाम छठा गुणस्थानका स्वरूप कहैहैं। इहां संज्वलन क्रोध मान माया लोभरूप च्यार कषाय अर हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्री पुरुष नपुंसकवेद इनका तीव्र उदयतैं संयमहू होइ अर संयमके मल लगावनेवाला प्रमादहू होय यातैं याकूं प्रमत्त संयत कहिए हैं। इहांहू संज्वलन कषाय अर नव नोकषाय इनिका सर्वघातस्पर्द्धकनिका उदयाभावलक्षण क्षय होतैं अर द्वादश कषायनिका अर उदयकूं नहीं प्राप्त भए ऐसें संज्वलन कषाय अर नवनोकषायका निषेकनिका सत्तामैं अवस्थितलक्षण उपशम होतें अर संज्वलनका अर नोकषायनिका देशघातिस्पर्द्धकनिका तीव्र उदयतैं संयम होय अर मलका उपजावनेवाला प्रमादहू उत्पन्न होय है तातैं छठा गुणस्थानवर्ती जीवकूं प्रमत्तसंयत कहिए हैं। ऐसा जानना। जो केते प्रमाद तो अपने अनुभवमैं आवें तातैं व्यक्त कहिए। अर केतेक प्रमाद हैं ते प्रत्यक्षज्ञानके धारकनिके जाननेमैं आवें ते अव्यक्त हैं। ऐसैं व्यक्त अर अव्यक्त प्रमाद होतैंहू जो संयम वर्त्तैहै सो चारित्रमोहनीयका क्षयोपशमका माहात्म्यकरिकै सकल गुणशीलकरि सहित महाव्रती होयहै। देशसंयमीकी अपेक्षा याकूं सकल संयमी कहिए हैं। याका आचरण प्रमादसहित है तातैं कर्बुरित आचरण है। अब प्रमादनिका नाम संख्या कहैहैं। गाथा—विकहा तहा कसाया, इंदियणिद्दा तहेव पणयो य। चतु चदु पण एगेगं, होंति पमादा हु पंचदस॥

विकथा चार, कषाय च्यार, इंद्रिय पांच, एक निद्रा, एक स्नेह ऐसें तो ए पंचदश प्रमाद हैं। इहां इनका ऐसा अर्थ है। जो संयमतैं विरुद्धकथा सो विकथा है अर जे संयमगुणका घात करैं ते कषाय हैं। अर

शब्दादि विषै प्रवर्त्तावनेवाली इंद्रियनिकी प्रवृत्ति सो इंद्रिय है। अर निद्रा नाम कर्मके उदयतैं अपने अंगकौ सामान्यपनाकौं सोवनेवाली जड अवस्था सो निद्रा है। अर बाह्य अर्थनिविषै ममत्वरूप परिणाम सो प्रणय है स्नेह है। ऐसे एक एक प्रमादनिके सामान्य भेदनिकूं परस्पर गुणें अस्सी भेद होय अर विकथा पचीस अर कषाय पचीस अर मनसहित इंद्रिय छह अर निद्रा पांच अर स्नेह मोह दोय इनकूं परस्पर गुणें साढा सैंतीस हजार अर प्रमादनिके विशेष होनेतैं भी इनका आलापादिक लिखें ग्रंथ बहुत होजाय इस भयतैं लिख्या नहीं लिख्या है। इस प्रमत्तगुणस्थानका जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल है। ऐसैं छठा प्रमत्तसंयतगुणस्थानका स्वरूप कह्या। अब अप्रमत्तसंयत नाम सप्तम गुणस्थानका स्वरूप कहै हैं। जिस कालविषै संज्वलन क्रोध मान माया लोभ इन च्यार कषायनिका अर हास्यादिक नव नोकषायनिका यथासंभव मंद उदय होय तिस अवसर प्रमादनिका अभाव होय तिस कालविषै जीवकै अंतर्मुहूर्तपर्यंत अप्रमत्तगुणस्थान होय है। तहां सम्यक्त्वपनासहित अर मूल गुण अठाईस तिनिका परिकरि मंडित होय अर सम्यग्ज्ञानोपयोगयुक्त होय अर धर्मध्यानविषै लीन जाका मन होय सो अप्रमत्तसंयत है। सो यो अप्रमत्तसंयत जितनें उपशमश्रेणीकी वा क्षपकश्रेणीके चढनेकूं सन्मुख नहीं भया तितनें स्वस्थान अप्रमत्त कहिए है। अर जिस अवसरविषै चारित्रमोहकी इकईस प्रकृति तिनकौ उपशम करनेकूं वा क्षपावनेकूं सन्मुख होय सो सातिशय अप्रमत्त कहिए है। याका स्वरूप ऐसा है। जो समयसमय अनंतगुण विशुद्धताकरि वर्द्धमान ऐसा वेदकसम्यग्दृष्टि अनंतानुबंधीकौं अवश्यकरि अंतर्मुहूर्तमैं अधःप्रवृत्तादिक तीन करणनिकरि विसंयोजनकरि ताका काल सो अष्टमादि [illegible] करि विसंयोजन करि पीछैं अंतर्मुहूर्त काल विश्राम करि तहाँ दर्शनमोहकी तीन प्रकृतिनिकूं उपशमावनेकरि द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि होयहै। अथवा क्षायिकसम्यग्दृष्टि

दर्शनमोहका त्रयकूं क्षयकरि क्षायिकसम्यग्दृष्टि होयहै। ताकै अनंतर अंतर्मुहूर्त कालपर्यंत प्रमत्त अप्रमत्त दोऊ गुणस्थाननिमैं हजाराबार पलटापलटी करैहै। तहां पाछैं समयसमयप्रति अनंतगुण विशुद्धताकरि बधतो एकविंशति चारित्र मोहनीयकी प्रकृतिके उपशम करनेकूं उद्यमी होयहै। अथवा इकवीस प्रकृति के क्षपावनेविषै उद्यमी होयहै। परंतु क्षपावनेके सन्मुख क्षायिकसम्यग्दृष्टिही होय उपशमसम्यग्दृष्टि नही होय। अर उपशम करनेमैं दोऊही सम्यक्त्वी उद्यम करैहैं। सो सातिशय अप्रमत्त होयहै सोही चारित्रमोहके उपशम वा क्षपण करनेके निमित्त जे तीन करण तिनमैं प्रथम अधःप्रवृत्तिकरण करैहै इहां अधःप्रवृत्तिकरण होइ ताका स्वरूप अर प्रवृत्ति वर्णन करिए तो कथनी वहोत होजाय तातैं ग्रंथ वधनेके भय तैं नही लिख्या ज्ञानीजन श्रीगोमट्टसार वा लब्धिसारतैं जानहु। इस अधःकरणके प्रभावतैं समयसमय अनंतगुण विशुद्धताकी वृद्धि अर स्थितिबंधापसरण अर सातादिक प्रशस्तप्रकृतिनका समयसमय अनंतगुणवृद्धिकरि गुडखंड शर्करा अमृतसदृश चतुःस्थानरूप अनुभाग बंध अर असातादिक अप्रशस्तप्रकृतिनका समयसमय अनंतगुणी हानिकरि निंब काजी सदृश द्विःस्थानरूप अनुभागबंध होयहै। ऐसें च्यार आवश्यक संभवैहैं। इहां नानाजीवनिकी अपेक्षा नीचले समयके अर ऊपरले समयके परिणामनिकी विधता मिलिजाय है। जैसैं कोई जीवकूं अधःकरणकूं प्राप्त भए वीस समय भए जो विशुद्धिताकूं प्राप्त भया होइ सो विशुद्धिता कोई जीव पांचसमयमैंही प्राप्त होजाय। ऐसें नानाजीवनिकी अपेक्षा नीचले ऊपरिले समयकी विशुद्धता किसी जीवकी मिलिजाय किसीकी नहीं मिलै तातैं याकूं अधःकरण कह्या। याका काल असंख्यातसमयरूप अंतर्मुहूर्तका है। अर असंख्यातलोकप्रमाण परिणाम नानाजीवनिकी अपेक्षा त्रिकालगोचर हैं समयसमय विशुद्धता अनंतगुणी है सो याका दृष्टांत दार्ष्टांत विस्तार-

रूप है ताका निरूपण कहिए॥ अब अपूर्वकरण गुणस्थानकौं कहै हैं। एहि अंतर्मुहूर्त कालपर्यंत पूर्वै कथ्या अधःप्रवृत्तकरणकै कालविषै विशुद्धतातैं समय समयप्रति अनंतगुणी विशुद्धताकी वृद्धि करि बर्ध्या अपूर्वकरणगुणस्थानकौं आश्रय करै है। जातैं इस अपूर्वकरणगुणस्थानविषै अन्य जो उपरि तनि समयनिविषै तिष्ठता जो जीव ते पूर्व समयनिविषै नाहीं प्राप्त भए ऐसे विशुद्धपरिणामनिकौं प्राप्त होय है। तातैं इसका अपूर्वकरण कहिए है। जैसे अधःप्रवृत्तकरणकै भिन्न भिन्न समयनिविषै तिष्ठते जीवनिकै परिणामनिकी संख्या अर विशुद्धता सदृश संभवै है। तैसैं अपूर्वकरणगुणस्थानविषै समस्तकालविषै कोऊ जीवकैं भी सदृशता भिन्न समयविषै नाहीं संभवै है। अर एक समयविषै तिष्ठते कोऊकै सदृशपणा भी संभवै है। कोऊकै सदृशपना नाहीं होय है। याका काल अधःप्रवृत्तकरणके कालकै संख्यातवें भागमात्र अंतर्मुहूर्त है सोऊ अंतर्मुहूर्तमात्र है। अर त्रिकालवर्ती नानाजीवनिकी अपेक्षा अधःप्रवृत्तकरणका जो असंख्यात लोकमात्र परिणाम तिनतैं असंख्यातगुणे अपूर्वकरणका परिणाम हैं। अर समय समयप्रति अनंतगुणी विशुद्धता है इन परिणामनिकी समयसमयप्रति संख्या विशुद्धताके वर्धमानपणा पूर्व करणवत् नाहीं निरूपिए। जिस अपूर्वकरणपरिणामरूप परिणमे समानजीव हैं। ते प्रथमसमयकौं आदि देय चारित्रमोहनीयकर्मका उपशमके वा क्षपणके उद्यमी होय हैं। अर गुणश्रेणीनिर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिखंडन, अनुभागखंडन ए है च्यारि आवश्यक करै हैं। इस अपूर्वकरणगुणस्थानके समयसमयविषै भिन्न भिन्न होय सो यातैं पृथक्त्वपणा होय जो उपशमश्रेणीकौं आरोहण करै हैं तिनकै सूक्ष्म आयुकै बंध नाहीं होय ऐसी आगमकी आज्ञा है। जे अपूर्वकरणगुणस्थानी जीव उपशमश्रेणी चढे है। तिनकै चारित्रमोहनीयका निरवशेष उपशम होय है। अर जे क्षपकश्रेणी चढै हैं ते नि-

ऐसें चोदमा गुणस्थानका स्वरूप कह्या। ए गुणस्थान आत्माका स्वभाव नहीं हैं। मोहकर्म अर योगकरि उत्पन्न भयाहै। इन गुणस्थानके धारी कर्मसहित संसारीजीव कहै। जिनके अष्टकर्मनिका नाश भया ऐसै गुणस्थानरहित भगवान् सिद्धपरमेष्ठी मुक्तजीव हैं। ऐसें संक्षेपकरि गुणस्थाननिका वर्णन किया॥ अब गुणस्थाननिके चढनेउतरनेका क्रम कहैहैं—

मिथ्यात्वगुणस्थानतैं तो चढनेके च्यार मार्ग हैं। कोऊ जीव तो मिथ्यात्वमें तीन करणकरि दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृति अर अनंतानुबंधी च्यार कषाय इन सात प्रकृतिनिका उपशमकरि चतुर्थगुणस्थानकूं प्राप्त होय है। कोऊ मिश्रप्रकृतिका उदयतैं तीजे गुणस्थान जाय हैं। कोऊ सात प्रकृतिनिका अर अप्रत्याख्यानकाहू क्षयोपशमतैं पंचमगुणस्थान चढै हैं कोऊ दर्शनमोहनीय अर अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरणका क्षयोपशमादिकरि संज्वलन अर नव नोकषायका देशघातिस्पर्द्धकनिका अतिमंद उदयतैं सप्तमगुणस्थानकूं प्राप्त होय हैं। ऐसें मिथ्यात्वतैं तो चौथे तीजे पांचमे सातमे इन च्यार गुणस्थाननिमैंही गमन होय है। अर सासादनतैं एक मिथ्यात्वमैंही पडै है चढै नहीं। अर मिश्रगुणस्थानतैं चढै तो चौथे, पडै तो पहले मिथ्यात्वमें ये दोयहीमें गमन है। अर अव्रत नाम चतुर्थगुणस्थानी चढै तो सातमे तथा पांचमे दो स्थानमैं जाय अर पडै तो प्रथममें तथा द्वितीयमें तृतीयमें ऐसें चढने उतरनेके पांच मार्ग हैं। अर देशसंयम नाम पंचम गुणस्थानी चढै तो एक सप्तममें जाय, पडै तो मिथ्यात्वादिक च्यारमैं ऐसें पांच मार्ग हैं। अर छठे गुणस्थानतैं चढै तो एक सप्तममें, अर पडै तो प्रथममें तथा द्वितीय तृतीय चतुर्थ पंचममैं ऐसें छह मार्ग हैं। अर सप्तम गुणस्थानतैं पडै तो एक छठे अर चढै तो अष्टममें अर मरण करै तो चतुर्थ गुणस्थानमें आवै ऐसें तीन मार्ग हैं। अर अष्टम

जो मरणमैं सूक्ष्म और पड़े चौथे मैं ऐसैं तीन मार्ग हैं अर नवमा गुणस्थानतैं चढ़ै तौ दशवें सूक्ष्मसांपरा-
यमैं जाय अर पड़ै तौ आठवैं अर मरण करै तौ चौथे असंयतमैं ऐसैं तीन मार्ग हैं। अर दशम गुणस्थान-
तैं क्षपकश्रेणीवाला मोहकौ क्षपणाकरि चढ़ै तौ बारमै जाय अन्य मार्ग नहीं। अर मोहनीयका उप-
शम करनेवाला चढ़ै तौ एक ग्यारमै अर पड़ै तौ नवमै अर मरण करै तौ चौथे ए तीन मार्ग हैं। अर
ग्यारमा गुणस्थानवाला पड़ै तौ दशमै अर मरै तौ चौथे दोयगुणस्थानकी मार्ग हैं चढ़ै नहीं पड़ैही अर
बारमा क्षीणकषाय वाला चढ़ै तौ तेरमैंही जाय, पड़ै नहीं अर मरणहू नहीं करै। अर तेरमा गुणस्थानी
चढ़ै तौ चौदमैंही जाय, पड़ै नहीं अर यामैं मरणहू नहीं। अर चौदमा गुणस्थानी सिद्धालयमैंही जाय
है। ऐसैं गुणस्थाननिके उतरनेचढ़नेका स्वरूप कह्या। इहां ऐसा जानना। मिश्रगुणस्थानमैं अर क्षीणकषा-
य नामा बारमा गुणस्थानमैं अर तेरमामैं अर क्षपकश्रेणीमैं तौ नियमकरि मरण नहीं है। अन्य गुणस्थानमैं
मरण होइ है। परंतु मरणकरि परलोकजाय है तहां मार्गमैं विग्रहगति कहिए तहां विग्रहगतिमैं मिथ्या-
त्व और सासादन अर अविरत ए तीनही गुणस्थान हैं। संयमादिक अन्यगुणस्थाननिमैं मरण तौ करै परंतु
परलोककौं गमन करतैं अविरतगुणस्थान होजाय है संयमभाव रहै नहीं। अर मिथ्यात्वका मरण
सहित मिथ्यात्वी सासादनका मरणकरि आगेंमैं सासादन रहै है। अनंतर आवलीमात्र पीछे मिथ्यात्व होय
है। अविरतका मरणकरि अविरत रहै। ऐसैं चौदह गुणस्थाननिका स्वरूप कह्या॥ अब बीस प्ररूपणानिविषै
जीवसमासनिरूपणका कहैं हैं— और अनेक हैं बहुप्रकार जिनकी जाति है तेऊ समानजातिकरि एकत्रपनैं
प्राप्तिकरिए सो जीवसमास है। और जहाँ संग्रहरूप सामान्यकरि नानारूप जातिकरि आत्मा भी
तौ स्थापन है। और है सो इहां जीवसमास एकप्रकार है। इसमें संख्या और आगमप्रमाणसिद्ध द्रव्यादिकनका

विषयकरि जीव एकप्रकारही है। संग्रहनयकरि ग्रहणकीया तिनमैं भेद करनेवाला व्यवहारनयकरि संसारी जीवका त्रस स्थावर भेदकरि जीव समास दोयप्रकार है। एकेंद्रिय विकलेंद्रिय सकलेंद्रिय करि तीन प्रकार है। एकेंद्रिय विकलेंद्रिय सकलेंद्रिय के संज्ञी असंज्ञी भेद करि च्यार प्रकार हैं। एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय भेदकरि पंचप्रकार हैं। पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति त्रसकायके भेदकरि छह प्रकार हैं।

वहुरि पंच स्थावर विकलेंद्रिय अर सकलेंद्रियके भेदकरि जीवसमास सप्तप्रकार हैं। पंच स्थावर अर विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी भेदकरि अष्टप्रकार हैं। वहुरि स्थावर पंचेंद्रिय त्रींदिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय भेदकरि नवप्रकार हैं। वहुरि पंच स्थावर तीन विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी भेदकरि दशप्रकार हैं तथा पंच स्थावरकाय वादरसूक्ष्मकरि दश अर त्रसकाय ऐसैं ग्यारह प्रकार है। वहुरि वादरसूक्ष्मकरि स्थावर दशप्रकार अर विकलेंद्रिय सकलेंद्रियके भेदकरि द्वादशप्रकार हैं। वहुरि स्थावरकाय दश अर विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी ऐसैं त्रयोदशप्रकार है। तथा स्थावरकाय दश अर विकलेंद्रिय तीन अर पंचेंद्रिय ऐसैं चतुर्दश प्रकार है। तथा स्थावरकाय दश विकलेंद्रिय तीन असंज्ञी संज्ञी ऐसैं पंचदश प्रकार हैं। तथा पृथ्वी अप् तेज वायुकायिक अर वनस्पतिका नित्यनिगोद इतरनिगोद ऐसैं स्थावरनिके षड्भेद वादरसूक्ष्मकरि वारह अर प्रत्येकवनस्पति ऐसैं स्थावर तेरह अर विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी भेदकरि षोडश प्रकार हैं। वहुरि स्थावरकाय तेरह प्रकार विकलत्रय तीन पंचेंद्रिय एक ऐसैं सतरह प्रकार हैं। तथा स्थावरकाय तेरह विकलत्रय संज्ञी असंज्ञी ऐसैं अष्टादशप्रकार जीवसमास है। तथा पृथ्वीकाय अप् तेज वायु नित्यनिगोद चतुर्गतिनिगोद इनका वादरसूक्ष्मकरि वारहभेद अर सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठितकरि प्रत्येक वनस्पति दोय भेद द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय । ३

करि गुणिए जो अठतीस स्थान अर पर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त निर्वृत्त्यपर्याप्त करि गुणे [illegible] भेदरूप है। तातें अठ्याणवै जीवसमास समझनेयोग्य है। पृथ्वी अप तेज वायु नित्यनिगोद चतुर्गतिनिगोद इनि छह के बादरसूक्ष्मकरि बारह भेद भए अर वनस्पतीनिविषै प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित ऐसें दोय भेद सब मिलि एकेंद्रियनिके चौदह भेद अर विकलत्रय ऐसें सतरह भेद इनिके पर्याप्त निर्वृत्त्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त इन तीन भेदनिकरि गुणें इक्यावनभेद एकेंद्रिय विकलत्रयके भए। बहुरि तिर्यंचनिविषै कर्मभूमिके गर्भज पंचेंद्रिय तिर्यंच जलचर थलचर नभचर तीन भेद ते प्रत्येक सैनी असैनी भेदकरि छह प्रकार तिनके पर्याप्त निर्वृत्त्यपर्याप्तकरि कर्मभूमिके गर्भज पंचेंद्रिय तिर्यंचनिके बारह भेद भए। बहुरि कर्मभूमिके सम्मूर्छन पंचेंद्रिय तिर्यंच जलचर थलचर नभचर इनिके सैनी असैनी भेदकरि छह प्रकार। इनिके पर्याप्त निर्वृत्त्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्तकरि अठारह प्रकार ऐसें कर्मभूमिके पंचेंद्रिय तिर्यंचनिके तीस भेद भए। भोगभूमिविषै सैनीही होते अर असैनी नाहीं होते। थलचर नभचर इनके पर्याप्त निर्वृत्त्यपर्याप्तकरि च्यारि भेद भए। ऐसें तिर्यंचनिके पिच्यासी भेद भए। अर मनुष्यनिविषै आर्यखंडके अर म्लेच्छखंडके अर भोगभूमिके अर कुभोगभूमिके च्यारि प्रकारके गर्भज मनुष्य पर्याप्त निर्वृत्त्यपर्याप्त भेदकरि आठप्रकार भए। बहुरि संमूर्छन मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तही होइ यातैं नव भेद भए। अर देव नारकी पर्याप्त निर्वृत्त्यपर्याप्तकरि च्यारि भेदरूप भए। ऐसें अठ्याणवै जीवसमास जानने। इन भेदनिको जाननेतैं संसारी जीवनिके प्रकारनिका जानना जावै है। मुख्य जैन सिद्धांतनिविषै प्ररूपणा है। ऐसें इहां जीवसमासप्ररूपणा वर्णन करी॥ अब पर्याप्तिप्ररूपणा वर्णनीय है। जैसें घट पट गृह इत्यादिक पदार्थ जो समस्त अभिलषित लिये संपूर्ण होइ ताकौं पूर्ण कहिए। अर समस्त शक्तिनिकरि पूर्ण जो होइ सो पर्याप्त कहिए है। ऐसें

विषयकरि जीव एकप्रकारही है। संग्रहनयकरि ग्रहणकीया तिनमैं भेद करनेवाला व्यवहारनयकरि संसारी जीवका त्रस स्थावर भेदकरि जीव समास दोयप्रकार है। एकेंद्रिय विकलेंद्रिय सकलेंद्रिय करि तीन प्रकार है। एकेंद्रिय विकलेंद्रिय सकलेंद्रिय के संज्ञी असंज्ञी भेद करि च्यार प्रकार हैं। एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय भेदकरि पंचप्रकार हैं। पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति त्रसकायके भेदकरि छह प्रकार हैं।

बहुरि पंच स्थावर विकलेंद्रिय अर सकलेंद्रियके भेदकरि जीवसमास सप्तप्रकार हैं। पंच स्थावर अर विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी भेदकरि अष्टप्रकार हैं। बहुरि स्थावर पंचेंद्रिय त्रींदिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय भेदकरि नवप्रकार हैं। बहुरि पंच स्थावर तीन विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी भेदकरि दशप्रकार हैं तथा पंच स्थावरकाय बादरसूक्ष्मकरि दश अर त्रसकाय ऐसैं ग्यारह प्रकार है। बहुरि बादरसूक्ष्मकरि स्थावर दशप्रकार अर विकलेंद्रिय सकलेंद्रियके भेदकरि द्वादशप्रकार हैं। बहुरि स्थावरकाय दश अर विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी ऐसैं त्रयोदशप्रकार है। तथा स्थावरकाय दश अर विकलेंद्रिय तीन अर पंचेंद्रिय ऐसैं चतुर्दश प्रकार है। तथा स्थावरकाय दश विकलेंद्रिय तीन असंज्ञी संज्ञी ऐसैं पंचदश प्रकार हैं। तथा पृथ्वी अप् तेज वायुकायिक अर वनस्पतिका नित्यनिगोद इतरनिगोद ऐसैं स्थावरनिके षड्भेद बादरसूक्ष्मकरि बारह अर प्रत्येकवनस्पति ऐसैं स्थावर तेरह अर विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी भेदकरि षोडश प्रकार हैं। बहुरि स्थावरकाय तेरह प्रकार विकलत्रय तीन पंचेंद्रिय एक ऐसैं सतरह प्रकार हैं। तथा स्थावरकाय तेरह विकलत्रय संज्ञी असंज्ञी ऐसैं अष्टादशप्रकार जीवसमास है। तथा पृथ्वीकाय अप् तेज वायु नित्यनिगोद चतुर्गतिनिगोद इनका बादरसूक्ष्मकरि बारहभेद अर सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठितकरि प्रत्येक वनस्पति दोय भेद द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय सं

करि एकेंद्रीके बियालीस प्रकार अर पर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त करि गुणे अठ्याणवै भेदरूप है।
तहां अठ्याणवै जीवसमास समझनेयोग्य है। पृथ्वी अप तेज वायु नित्यनिगोद इतरनिगोद इनि छह के बादरसूक्ष्मकरि बारह भेद भए अर प्रत्येकवनस्पति सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित ऐसैं दोय भेद सब मिलि एकेंद्रियके चौदह भेद अर विकलत्रय ऐसैं सतरह भेद इनिके पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त इन तीन भेदनिकरि गुणे इक्यावन भेद एकेंद्रिय विकलत्रयके भए। बहुरि तिर्यंचनिमैं कर्मभूमिके गर्भज पंचेंद्रिय तिर्यंच जलचर थलचर नभचर तीन भेद ते प्रत्येक संज्ञी असंज्ञी भेदकरि छह प्रकार तिनके पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तकरि कर्मभूमिके गर्भज पंचेंद्रिय तिर्यंचनिके बारह भेद भए। बहुरि कर्मभूमिके सम्मूर्छन पंचेंद्रिय तिर्यंच जलचर थलचर नभचर इनिके संज्ञी असंज्ञी भेदकरि छह प्रकार। इनिके पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्तकरि अठारह प्रकार ऐसैं कर्मभूमिके पंचेंद्रिय तिर्यंचनिके तीस भेद भए। भोगभूमिमैं संज्ञीही हो हैं अर असंज्ञी नाहीं हो हैं। थलचर नभचर इनके पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तकरि च्यारि भेद भए। ऐसैं तिर्यंचनिके पिच्यासी भेद भए। अर मनुष्यनिमैं आर्यखंडके अर म्लेच्छखंडके अर भोगभूमिके अर कुभोगभूमिके च्यारि प्रकारके गर्भज मनुष्य पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त भेदकरि अष्टप्रकार भए। बहुरि संमूर्छन मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकही होइ ऐसैं नव भेद भए। अर देव नारकी पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तकरि च्यारि भेदरूप भए। ऐसैं अठ्याणवै जीवसमास जानने। इन भेदनिके जाननेतैं संसारीजीवनिके प्रकारनिका जानना आवै है। [illegible] है। ऐसैं इहां जीवसमासप्ररूपणा वर्णन कीया॥ अब [illegible] पर्याप्तिप्ररूपणा निरूपण करिए है। जैसें घट पट गृह इत्यादिक द्रव्यनिकै तहां जो सकल उपकरणनिकरि संपूर्ण होइ ताकौं पूर्ण कहिए। अर सकल उपकरणनिकरि पूर्ण नाहीं होइ सो अपूर्ण कहिए है। तैसें २९३

ही संसारी जीवहू एक शरीर छांडि अन्य शरीरके ग्रहण करनेविषैंहू अपनेयोग्य पर्याप्ति पूरण करै सो
पूर्ण कहावै तथा पर्याप्त कहावैं । पूर्ण नहीं करैं सो अपर्याप्त कहावै । आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति,
इंद्रियपर्याप्ति श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति मनःपर्याप्ति ऐसें छह पर्याप्तिनिके नाम जानने । नि-
नमैं एकेंद्रिय जीवनिकै भाषा अर मन नहीं तातैं च्यारिही पर्याप्ति हैं । अर विकलत्रय जीवनिकै तथा
असंज्ञी पंचेंद्रियकै मनविना पंच पर्याप्ति हैं । संज्ञी पंचेंद्रियकै छह पर्याप्ति हैं । इहां ऐसा जानना । जो
मनुष्य तिर्यंचनिकै तो औदारिक शरीर होयहै । अर देवनारकीनिकै वैक्रियक शरीर होयहै । छठा गुण-
स्थानवाले आहारक ऋद्धिधारक मुनिकै संशयादि दूरि करनेकै आर्थि एक हाथ प्रमाण इंद्रियनिकै अगो-
चर मस्तकमैंतैं निकसि अंतर्मुहूर्त्तप्रमाण कालमैं केवली श्रुतकेवलीका दर्शनमात्रतैं संशयादि दूरि करि
मुनीश्वराँका अंगमैं पाछा प्रवेश करै सो आहारकशरीर है । ऐसें तीन शरीरकै मध्य जैसा शरीर नाम
कर्मका उदयकरि जो शरीर धारण करना होय तिस शरीरकै योग्य तथा छह पर्याप्तिनिकै योग्य पुद्गल-
स्कंधनिकूं खलरसभोगकरि परिणमावनेकूं पर्याप्तिनाम कर्मका उदयतैं आत्माकै शक्तिका उपजना सो
आहारपर्याप्ति है ।

भावार्थ—कर्मके उदयतैं जैसा शरीर धारण करना होइ ताके योग्य जो प्रथम समयमैं ग्रहण कीये पुद्ग-
लस्कंध तिनकूं खलरसभागरूप परिणमायवेकी पर्याप्तिनाम कर्मके उदयतैं आत्मामैं शक्ति प्रगट होजाना
तिस आत्मशक्तिकूं आहारपर्याप्ति कहिए है । वहुरि तीन शरीर षट्पर्याप्तिके योग्य जे पुद्गलस्कंध ते
खलभाग तो हाड इत्यादिक स्थिर अवयवरू

हूर्त्त अर समस्तका मिलाइए तोहू अंतर्मुहूर्त्ततैं अधिक नहीं होइ क्योंकि अंतर्मुहूर्त्तभी जघन्य तो एक आवली एकसमयका है। अर उत्कृष्ट दोयघडी एक समय घाटिका है। मध्यका असंख्यात भेद है। दोय घडी पूर्ण होय सो एक मुहूर्त्त है। इहां अन्य विशेष जानना। जो पर्याप्तनाम कर्मके उदयतैं एकेंद्रिय तो चारि पर्याप्ति पूर्ण करैहैं। विकलचतुष्क पांच पूर्ण करैहैं। संज्ञी पंचेंद्रिय छह पूर्ण करै तादि पर्याप्त नाम कहिए वा पूर्ण कहिए। परंतु जेतैं अंतर्मुहूर्त पर्यंत शरीरपर्याप्ति पूरण न करै तेतैं निवृत्यपर्याप्त कहिए है। इसका अर्थ ऐसा—जो निवृत्ति कहिए शरीरपर्याप्तिकी उत्पत्ति तिस करि अपर्याप्त कहिए पूर्णता नहीं होइ तिनतैं निवृत्यपर्याप्त कहिए। अर शरीरपर्याप्ति अंतर्मुहूर्तमैं पूर्ण होजाय तादि पर्याप्त कहिए है। बहुरि जो अपर्याप्त नाम कर्मका उदयतैं एकेंद्रियादिक जीव अपने अपने चार पांच छह पर्याप्ति पूर्ण नहीं करैं। स्वासका अठारमा भागही मात्र अंतर्मुहूर्तमैंहीं मरण करै सो लब्ध्यपर्याप्त कहिए है।

भावार्थ—पर्याप्त अपर्याप्त दोय जीवके भेद हैं। तिनमैं जो अंतर्मुहूर्त्तमैं पर्याप्ति पूर्ण करै सो पर्याप्त कहिए। अर अपर्याप्तके दोय भेद हैं। एक निवृत्यपर्याप्त एक लब्ध्यपर्याप्त। जाकै पर्याप्तनाम कर्मके उदयतैं अंतर्मुहूर्त्तमैं पर्याप्ति नियमतैं पूर्ण होयगी जेतैं पूर्ण नहीं होइ तेतैं अंतर्मुहूर्त्तप्रमाण निवृत्यपर्याप्त कहावैहै। अर जाकै अपर्याप्तनाम कर्मके उदयतैं एकहू पर्याप्ति पूर्ण नहीं होय श्वाँसका अठारवां भागमैंही मरण करै सो लब्ध्यपर्याप्त कहावैहै। सो लब्ध्यपर्याप्त सन्मूर्छन तिर्यंचानिमैंही होय है। अर सन्मूर्छन मनुष्यनिमैंहू होयहै। अर गर्भज तिर्यंच मनुष्य समस्त भोगभूमिके कुभोगभूमिके म्लेछ खंडके अर समस्त देवनारकी इनमैं लब्ध्यपर्याप्तक जीव नहीं उपजैहैं। पर्याप्त अर निर्वृत्यपर्याप्त

प्राण अर मनोबल वचनबल कायबल श्वासोच्छ्वास अर आयु ए दश प्राण हैं सो पर्याप्त अवस्थामें संज्ञी पंचेंद्रियकै दश प्राण हैं। असंज्ञी पंचेंद्रियकै मनबिना नवप्राण हैं। अर चतुरिंद्रियकै मन अर कर्ण इंद्रिय-बिना आठ प्राण हैं। अर त्रींद्रियकै नेत्रभी नाहीं तातैं सात प्राण हैं। अर द्वींद्रियकै नासिकाभी नाहीं तातैं छह प्राण हैं। एकेंद्रियकै रसना इंद्रिय अर वचनबलभी नाहीं तातैं च्यार प्राणही हैं। अर अपर्याप्त अवस्थाविषै एकेंद्रियकै स्पर्शनेंद्रिय अर कायबल अर आयु ऐसैं तीन प्राणही हैं। जातैं अपर्याप्त अवस्थाविषै वचनबल अर श्वासोच्छ्वास अर मनोबल ए नाहीं होइ हैं। द्वींद्रिय अपर्याप्तकै च्यार प्राण. त्रींद्रियकै पांच प्राण, चतुरिंद्रियकै छह प्राण. असंज्ञीपंचेंद्रियकै सात प्राण. अर संज्ञीपंचेंद्रियकैभी सात प्राण हैं। मन वचन बल उस्वासनिस्वास तीन प्राण अपर्याप्तकै नाहीं होयहैं। ऐसैं चौथा प्राणप्ररूपणा समाप्त करी॥ अब संज्ञाप्ररूपणा लिखिये है। संज्ञा नाम इहां वांछाका है। सो संज्ञा च्यार प्रकार है। आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा, ए ते संज्ञा कहिए वांछा इनकरि पीडाकूं प्राप्तभए जीव इन भवविषै विषयनिकूं सेवनकरिभी तथा विषयनिकी प्राप्ति होतें वा नाहीं प्राप्ति होतें दोऊ लोकविषै महान दुःखकूं प्राप्त होइ हैं। इहां ऐसा जानना। सो बहुरि च्यार प्रकारके आहारके देखनेतैं तथा आहारकूं याद करनेतैं आहारकी कथाके श्रवण करनेतैं आहारविषै उपयोग लगावनेतैं तथा उदरकी रिक्ततातैं अर असातावेदनीयकी उदीरणातैं तथा मोह उदयतैं आहार जो विशिष्ट अन्नादिकका भोजन करनेकी वांछा सो आहारसंज्ञा है। बहुरि भयकारी सर्पादिका देखनेतैं डरिये। अतिभयंकर व्याघ्रादिक क्रूर मृग सर्पादिकका देखना तथा उनकी कथाका श्रवण करना याद करना तथा आपका शक्तिहीनपणा इत्यादि बाह्य कारणनिकै अर भयप्रकृतिका उदय अंतरंग कारण इनि कारणनितैं भागनेकी वांछा तथा छिपनेकी इच्छा सो भयसंज्ञा

है। अब मैथुनसंज्ञाके कारणनिकूं कहैहैं। पुष्टरसका भोजन करना, कामकी कथाका श्रवण करना, पूर्वकालमैं सेवनकीया कामादिकका यादि करना, कुशील पुरुषनिकी संगति करना तथा कामकी गोष्ठी शृंगारादिक कथा स्त्रीनिका हावभाव रूपादिका देखना इत्यादिक वहिरंगकारण अर स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेद इनिमैं कोऊएक वेदनाम नोकषायकी उदीरणारूप अंतरंगकारणकरि सुरतव्यापाररूप मैथुनमें इच्छा सो मैथुनसंज्ञा है। अब परिग्रहसंज्ञाकी उत्पत्तिके कारणनिकूं कहैहैं। वाह्यपरिग्रह धनधान्य आभरणवस्त्रादि अनेक उपकरणनिका देखना तथा परिग्रहकी कथाका श्रवण करना तथा धनका संबंध होना तथा नानाप्रकारके परिग्रहधारीनिकूं देखना इत्यादिक वहिरंगकारण अर लोभकषायकी उदीरणारूप अंतरंगकारणनिकरि जो परिग्रहका संचयमें परिग्रहका उपार्जनमें वांछाका उपजना सो परिग्रहसंज्ञा है। ऐसैं ए च्यार संज्ञा कही। तिनमैं आहारसंज्ञा तो छठा गुणस्थानपर्यंतही है। जातैं अप्रमत्तादि गुणस्थाननिमैं असातावेदनीयकी उदीरणा नहीं होय है। अर भयसंज्ञा मैथुनसंज्ञा यद्यपि नवमा गुणस्थानतांई तथा परिग्रहसंज्ञा दशमातांई उपचारकरि कही क्योंकि इनकाकारण कर्मका मंदसद्भावतैं कहिएहै। अर निश्चयतैं तो अप्रमत्तादिगुणस्थाननिमैं ध्यानमैं लीन रहै। परिणामनिकी विशुद्धताकूं शुक्लध्यानके प्रभावतैं समयसमय चढैहैं तिनकै भय मैथुन परिग्रहका लेशरूपभी परिणाम नहीं है परंतु सत्तामैंतैं कर्मका नाश मूलतैं नहींभया यातैं उपचारतैं करणानुयोगमैं संज्ञा कही है। भावनिमैं संज्ञा नहीं। ऐसैं संज्ञाप्ररूपणा पांचमी वर्णनकरी।

अब गतिमार्गणाका स्वरूप कहैहैं। गतिनाम कर्मका उदयतैं उत्पन्नहुवा जो जीवके पर्याय सो गतिहै। एकभवकूं त्यागि अन्यभवकूं प्राप्त होय तादि जो प्राप्तहोनेयोग्य होय सो गति है। [illegible]
[illegible]र्यक्, मनुष्य, देव के [illegible]

ण रमंति जदो णिच्चं, दव्वे खेत्ते य कालभावे य। अण्णोण्णेहिं जम्हा, तम्हा ते णारया भणिया ॥ १ ॥

अर्थ—जो जीव नरकगतिसंबंधी आहारादिकद्रव्यविषैं तथा नरकका भूमिरूप क्षेत्रविषैं तथा एकसमयकूं आदि देकरि अपना आयुका अंतपर्यंत कालविषैं तथा चैतन्यकी पर्यायरूप भावविषैं नहीं रमै हैं रमायमान नाहीं है जाते पूर्व वैरी है। तथा भवांतरविषैं उपज्या वैर तातैं उदयवा परस्पर नारकीनिकैं क्रोध तिनकरि पुरातन अर नवीन नारकी रत कहिए रागी नहीं होइ तातैं इनकूं नरक कहिए। अथवा नरक जे तिन इनिविषैं उपजैं तातैं नारक कहिए। अथवा नर जे प्राणी तिनकौं कायति कहिए बाधा करैं दुष्ट करैं ते नारक हैं ऐसे नारकीनिकी गति सो नरकगति कहिए है ॥ उक्तं च गाथा—

तिरियंति कुडिलभावं सुविउलसण्णा णिगिट्ठमण्णाणा। अच्चंत पावबहुला तम्हा तेरिच्छिया भणिया ॥२॥

अर्थ—जा कारणतें जे जीव सुविवृत संज्ञा कहिए आहारादिसंज्ञा जिनकै गूढ नहीं आहार भय मैथुन परिग्रहादिक जिनकै प्रगट होइ। अर प्रभाव सुख द्युति लेश्याकी विशुद्धताकरि अत्यंत पापि होइ तातैं निकृष्ट है। बहुरि हेय उपादेयका ज्ञानादिककरि हीनपनातैं अज्ञानी हैं। बहुरि नित्यनिगोदादिककी अपेक्षाकरि अत्यंत पापकी बहुलतासहित हैं। तिस कारणतैं तिरोभाव जो कुटिलपरिणाम मायाचारके परिणामनिकूं अंचंति कहिए प्राप्त होंय ते तिर्यंच कहिए हैं ॥ उक्तं च गाथासूत्रं—

मण्णंति जदो णिच्चं, मणेण णिउणा मणुक्कडा जम्हा। मणुउब्भवा य सव्वे, तम्हा ते माणुसा भणिया ॥३॥

अर्थ—जातैं जे जीव हेयोपादेयादिक विशेषकूं नित्य ही जानैं अर मनकरि निपुण कहिए शिल्पादिक गुणनिविषैं प्रवीण होय वा मनकरि उत्कट कहिए ज्ञाता तिनकी अवधानादिककरि उत्कृष्ट उपयोग होय अर मनु जे कुलकर तिनकरि संतान हैं तातैं मनुष्य कहिए है ॥ उक्तं च गाथासूत्रं—

दिव्वंति जदो णिच्चं, गुणेहिं अट्ठेहिं दिव्यभावेहिं। भासंते दिव्वकाया, तह्मा ते वण्णिया देवा ॥४॥

अर्थ–जातैं जे जीव मनुष्यनिकै नहीं पाइए ऐसै अणिमा महिमादिक अष्ट ऋद्धिके प्रभावकरि सासते मेरु कुलाचल द्वीप समुद्रनिविषैं "दीव्यंति" कहिए क्रीडा करैं तथा मोद द्युति स्तुति कांति विजिगीषा गमनादिकनैं प्राप्त होय तथा गुणकरि प्रकाशमान होय तथा सप्तधातु मल वातापित्तादि दोषरहित प्रभासहित जिनका शरीर होय ते जीव परमागममैं देव कहेहैं। ऐसैं तो च्यार गतिका स्वरूप कह्या। अर जे जन्म मरण भय संभोग वियोग दुःख रोग क्षुधादि अनेक वेदना रहित भए समस्तकर्मबंधतैं छूटिगए सिद्धत्वपर्यायलक्षण सिद्ध भए तिनके चतुर्गति नहीं है। संसारीनिकी अपेक्षा च्यारि गति हैं ऐसैं छठी गतिप्ररूपणा समाप्त करी॥ अब इंद्रियप्ररूपणा सप्तमी कहैहैं। जैसैं अहमिंद्रदेव हैं ते स्वामी सेवकादिरहित स्वयं स्वाधीन हैं। तैसैं स्पर्शनादि इंद्रिय हैं तेहू अपनेअपने स्पर्शनादि विषयनिकै जाननेविषैं परकी अपेक्षा नहीं चाहैहैं तातैं इनिकूं इंद्रिय कहियेहैं। ते इंद्रिय द्रव्येंद्रिय अर भावेंद्रियकरि दोय प्रकार हैं। तिनमैं लब्धि अर उपयोगरूप भावेंद्रिय हैं। मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं उपजी जो जीवकै अपने विषयके जाननेकी शक्तिरूप विशुद्धिता सो लब्धि है। अर मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमतैंही अर्थ जो अपना विषय ग्रहण करनेके व्यापारमैं प्रवृत्ति सो उपयोग है। ऐसैं लब्धि अर उपयोगरूप तो भावेंद्रिय है। भाव नाम चैतन्यका परणति जानने रूप भई ताका है।

भावार्थ–पदार्थके ग्रहणकरनेकी शक्ति सो लब्धि है। अर पदार्थके ग्रहणकरनेमें व्यापार सो उपभोग है। बहुरि जातिनाम कर्मका उदय है सहकारीजाकै ऐसा देहनाम कर्मका उदयतैं उपज्या [illegible] उपकरण दोयप्रकार द्रव्येंद्रिय है। [illegible]

इंद्रियनिके आकार होय तिष्ठे हैं सो अभ्यंतरनिर्वृत्ति है। अर आत्मप्रदेशनिकरि सहित शरीरके प्रदे- शनिका संस्थान सो बाह्यनिर्वृत्ति है। अर इंद्रियपर्याप्तिकरि आये नोकर्मवर्गणाका संबंधरूप जो भावें- न्द्रिय उपजै ज्ञानके सहकारी सो अभ्यंतर उपकरण है। अर ताके आश्रय चर्मादिक ते बाह्य उपकरण है। ऐसें द्रव्येंद्रियभावेंद्रियका स्वरूप कह्या। जिनके स्पर्शनिका ज्ञान होय तिनि सो एकेंद्रियजीव है। जि- नके स्पर्श अर रस दोयनिका ज्ञान जो निरूपे ते द्वींद्रियजीव हैं। जिनकै स्पर्श रस गंधनिका ज्ञान जो निरूपे ते त्रींद्रियजीव हैं। जिनके स्पर्श रस गंध रूपनिका ज्ञान निरूपे ते चतुरिंद्रियजीव हैं। जिनके स्पर्श रस गंध रूप शब्दनिका ज्ञान निरूपे ते पंचेंद्रिय जीव हैं। ते सर्व जीव अपने अपने भेदकरि भिन्न भिन्न हैं। एकेंद्रिय जीवके एक स्पर्शन ही इंद्रिय है। द्वींद्रियादिक जीवनिकै जिह्वा घ्राण नेत्र कर्ण इंद्रिय क्रमतैं बधती बधती जाननी। पृथ्वी अप तेज वायु वनस्पतीनिकै एकही इंद्रिय है। शंखादिक द्वींद्रिय है। पिपीलिकादि त्रीं- द्रिय है। भ्रमरादि चतुरिंद्रिय है। मनुष्यादि पंचेंद्रिय हैं। स्पर्शनेंद्रियका अनेक प्रकार संस्थान है। रस- नेंद्रिय खुरपाके आकार है। घ्राणेंद्रिय तिलका पुष्पके आकार है। नेत्रेंद्रिय मसूरके आकार है। कर्णेंद्रिय जवकी नालिके आकार है। ऐसें इंद्रियमार्गणा वर्णन करी॥ अब कायमार्गणा आगें कहिये है। जो पुद्- गलस्कंधनिकरि संचयरूप होय ते काय हैं औदारिकादि शरीरमें तिष्ठता आत्माका पर्यायके त्रसस्थावरकरि भेद करिये है। पुद्गलविपाकी शरीरनामकर्मके उदयकरि शरीररूपी काय कहिये है। आगें जातिनाम कर्मका उदयतें अविनाभावी जो त्रस स्थावरनाम कर्मका उदयतें भया आत्माके त्रस तथा स्थावरप- र्याय सो काय कहिये है। सो पृथ्वी अप तेज वायु वनस्पति स्थावरकाय हैं तिनिके एक प्रकार भगवान् कह्या है। पृथ्वी अप तेज वायु नाम कर्मका उदयकरि पृथ्वीका उपजनेकै पृथ्वी अप तेज वायुरूप जे पुद्ग-

स्कंध तिनमैंतैं सोही वर्ण गंध रस स्पर्शयुक्त जीवनिकै देह नियम करिकैं होयहैं तातैं पृथ्वीही है काय कहिये शरीर जिनकैं ते जीव पृथ्वीकाय कहिये। जलरूपही है काय जिनकैं ते अप्कायिक हैं। अग्निही है काय जिनकैं ते जीव अग्निकायिक हैं। पवनही है काय जिनकैं ते जीव पवनकायिक हैं। कोऊ जीव पूर्वदेहकूं छांडि पृथ्वीकायपणाकी पर्यायकै सन्मुख हुवा विग्रहगतिविषैं वर्ते है सो पृथ्वीजीव कहिए। अर जो पृथ्वीरूप शरीरकूं ग्रहणकर रख्याहै सो पृथ्वीकायिक कहिए। अर पृथ्वीका शरीरकूं छांडिगया अर पृथ्वीमय देह रह्या तिस देहकूं पृथ्वीकाय कहिये। ऐसैंही अप्जीव अप्कायिक अप्काय तेजोजीव तेजस्कायिक तेजस्काय, वायुजीव वायुकायिक वायुकाय, ऐसैं इन च्यारनिका तीनतीन प्रकार जानना। इन च्यार प्रकारके स्थावरनिकै जीवविपाकी वादरनाम कर्मके उदयतैं वादर कहिए स्थूलशरीर होयहै। अर जीवविपाकी सूक्ष्मनाम कर्मके उदयतैं सूक्ष्मशरीर होयहै। इहां वादरसूक्ष्मका ऐसा लक्षण जानना। अपना शरीरकरि परका घात होय परकरि अपना घात होय सो वादरशरीर है अर वादरजीव आधारतैं तिष्ठैहैं। कोऊ पृथ्वी पर्वत जल स्थलादिककै आधार होय है। अर सूक्ष्मशरीरकरि परका घात नहीं होइ जलमैं स्थलमैं पृथ्वीमैं वज्रमैं कहांहू रुकै नहीं निकलिकरि चलेजाय हैं मार्‍या मरै नहीं छेद्या छिदै नहीं अग्निमैं बलै नहीं पवनकरि रुकै नहीं उडै नहीं ऐसा सूक्ष्मदेहधारी सर्वत्र त्रैलोक्यमैं जलमैं स्थलमैं आकाशमैं निरंतर अंतरहित भरे हैं। आधारकी अपेक्षा नहीं करैहैं। समस्त पर्वत भींत वज्रादिक शरीरादिकमैं गमनागमन करैहैं। इन च्यार प्रकारके वादरसूक्ष्म जीवनिके शरीरका प्रमाण घनांगुलकै असंख्यातवें भाग है। यद्यपि चोसाठि भेद अवगाहना के कीए ...

करै है जो बादरतैजसकायिक अग्नि है सोइ मेघादिकमें कदाचित् नाहीं होइहै । अर बादरजीव अग्नि
शरीर होनेकू वातवलय वर्जित उनमें परवति होइहै । जैसें मदोन्मत्त पवनमें जल नाहीं रहै अर कठन्यूं होइहै ।
सुमति अहिमिन्द्रादिकनिका कल्पवृक्षादि विमान शिला पर्वत सब पृथ्वीमें नाहीं होइहै । सो तपका अतिशय
का माहात्म्य है । जातें तप शिला मणि मंत्र औषधिनिकी बडी अचिंत्य शक्ति है अतिशयरूप माहात्म्य
है । स्वभाव वैभवनिमें आगेह कल्पनामें तर्क नाहीं है ॥ अब वनस्पतिकाय जीवनिका ऐसा स्वरूप जानना ।
वनस्पति नाम कर्मके उदयतें वनस्पतिकायिक जीव होयहै । ते दोय प्रकार हैं । एक
प्रत्येकशरीर एक साधारणशरीर । एक जीवका एक शरीर होय सो प्रत्येक वनस्पति है अर एक शरीरकूं
अनंतजीव धारण करें हैं एक अर जीव अनंत ते साधारणशरीर ताकूं साधारणवनस्पति कहिए है । ति-
नमें प्रत्येक शरीरकू दोय प्रकार है । जिनके आश्रय बादरनिगोदशरीर तिष्ठै ते प्रतिष्ठितप्रत्येक कहिए ।
अर जिनकै आश्रय बादरनिगोद नाहीं ते अप्रतिष्ठितप्रत्येक हैं । अब प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकी पहि-
चानि कहिये । जिस वनस्पतिमें सिरा प्रगट नाहीं भए होंय अर संधिरूपरेखा प्रगट नाहीं भया तथा ग्रंथि
प्रगट नाहीं भई होय अर जाकूं तोडिये समभंग होजाय तथा तोडे तन्तु नहीं रहै वा मांको वेही नाहीं रहै नांहि
उत्पद्यमान छेद कीए ऊगै सो वनस्पति साधारणशरीरसंयुक्त है तातें प्रतिष्ठित प्रत्येक कहिए । सोइ सा-
धारणके आश्रयतें उपचारतें साधारण कहिए है । अर जिस वनस्पतिमें सिरा संधि पर्व रेखा भया ऐसी नांहि
समभंग होजाय तथा तन्तु नहीं होय सो अप्रतिष्ठित प्रत्येक है साधारणशरीररहित है । मूल कंद छालि
स्कंध फूल पत्र बीज इत्यादिक अर सहजां त्रिज फल फल जिनका तोडतैं समभंग होजाय सोही निगो-
दशरीरसहित प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति है । अर यहीं वनस्पति ऐसें कठिन भए पीछे समभंग नाहीं होइ

तांतू प्रगट होजाय तथा पेली संधी प्रगट होजाय सो निगोदरहित अप्रतिष्ठित प्रत्येक होयहै। बहुरि जिनकै कंदकै वा मूलकै डाहालाकै डाहलीकैं बक्कल अतिस्थूल होय सोहू निगोदसहित प्रतिष्ठित प्रत्येक होय है। अर जिनकै कंदादिकमैं छाली पतली होय ते अप्रतिष्ठितप्रत्येक हैं निगोदरहित हैं। अब साधारण वनस्पतिका स्वरूप कहैहैं। साधारण नाम कर्मका उदयतैं निगोदशरीर होयहै। इनकूं साधारणशरीर कहिएहैं। सो ए साधारणवनस्पतिशरीर पूर्वै कह्या लक्षणसहित बादर सूक्ष्म दोय प्रकार हैं। जिनकै आहार श्वासोच्छ्वास जन्म मरण समानकालमैं होय ते साधारणजीव हैं। इहां ऐसा जानना। जो साधारण नाम कर्मका उदयकै वशवर्त्ती अनंतजीवनिकै उत्पन्न होनेके प्रथमसमयमैं आहारवर्गणारूप आए पुद्गलस्कंधनिकूं खलरसभाग परिणमावनेकी शक्ति समस्त अनंतजीवकै सदृश समानकालमैं प्रगट होय सोही आहारकी पूर्णता है। और कवलाहार ग्रास लेना सो नहीं जानना। आहारपर्याप्ति अंतर्मुहूर्तमैं पूर्ण भए पाछैं बहुरि आहारवर्गणारूप आए पुद्गलस्कंधनिकूं शरीराकार परिणमनका शक्ति समस्त अनंतजीवनिकै समान कालमैं होय है। बहुरि स्पर्शनेंद्रियकै आहार परिणमनशक्ति तथा श्वासोच्छ्वास होनेकी शक्ति अनंतजीवनिकै समानकालमैं होयहै। तातैं साधारण कहिएहैं।

बहुरि प्रथमसमयमैं उत्पन्न भए जीवनिकीज्यों तिसही शरीरमैं द्वितीयादि समयमैं उत्पन्न भए अनंतानंत जीवनिकै पूर्वसमयमैं उपजे अनंतानंत जीवनिकरि सहित आहारपर्याप्ति सदृशकालमैं पूर्ण करैं तातैं हू साधारण कहिए हैं। जिस निगोदशरीरमैं जिस कालमैं अपनी स्थितिके क्षयके वशतैं एकजीव मरण करैहै तिस कालमैं तिसही निगोदशरीरमैं समानस्थिति

जेम और सारिखी प्रवर्त्ता होय है तैसैं साधारणपणा जानना। अर द्वितीयादिसमयनिविषैं उपजे अनंतानंत जीवनिकी सरीखी स्थितिका भए होते साथिही मरण जानना। एक निगोदशरीरविषैं अनंतानंत जीव समानस्थिति साथिही मरैं साथिही उपजै है। जिनिने असंख्यात कोटाकोटिसागर प्रमाण निगोदशरीरकी उत्कृष्टस्थिति पूर्ण होय। भावार्थ–निगोदजीवनिकी आयु तौ अंतर्मुहूर्तकी है अर निगोदशरीरकी स्थिति असंख्यातकोटिनिकी वाले शरीर तो रहता है अर समयसमय अनंतजीव उपजा करैं अर समानस्थितिवाले साथ मरण होया करै ऐसा जानना॥ बहुरि एक इहां विशेष जानना। एक बादरनिगोदशरीरविषैं वा सूक्ष्मनिगोदशरीरविषैं अनंतानंत साधारणजीव केवल पर्याप्तही उपजैं तथा एकशरीरविषैं केवल अपर्याप्त उपजैं एकशरीरविषैं पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ नहीं उपजैं क्योंकि तिनकै समान कर्मका उदय है यातैं। अब बादरनिगोदजीवनिके शरीरनिकी संख्या कहिए है। इस लोकविषैं असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिष्ठितप्रत्येक जीवनिके शरीरनिके स्कंध है। अर एकएक स्कंधनिविषैं असंख्यात लोकप्रमाण अंडर है। अर एकएक अंडरनिविषैं असंख्यातलोकप्रमाण आवास है। एकएक आवासविषैं असंख्यात लोकप्रमाण पुलवी है। एकएक पुलवीनिविषैं असंख्यातलोकप्रमाण बादरनिगोद जीवनिका शरीर है। एकएक शरीरनिविषैं अतीत कालके सिद्धनितैं अनंतगुणा जीव है। बहुरि साधारणके दोय भेद हैं। एक नित्यनिगोद एक चतुर्गतिनिगोद तहां जे अनादितैं जीव अनादि कालतैं त्रसपणाकौं प्राप्त नहीं भए निगोदहीविषैं अनुभवैं ते नित्यनिगोद है। बहुरि च्यार गतिमैं परिभ्रमणकरि फेरि निगोदकैं प्राप्त होय ते अनित्यनिगोद है। अब त्रसजीवनिकौं कहिए है। जे बेंद्रिय तेंद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय जीवनिके त्रसकाय है ते त्रसजीव त्रसनालीमांहि रहै है। उपपादसमुद्घात अर मारणांतिकसमुद्घात अर केवलसमुद्घातविना अन्य त्रसनालीबाह्य

नहीं है ॥ बहुरि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक च्यार प्रकारके शरीर अर केवलीका शरीर अर आहारक शरीर अर देव नारकीनिके शरीर इन भाव शरीरनिकै आश्रय बादरनिगोद नहीं हैं। अन्य जे अप्रतिष्ठित वनस्पतिकायके शरीर अर द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय तिर्यंचानिके शरीर अर समस्त मनुष्यनिके शरीर ए समस्तही बादरनिगोदके शरीरनिकरि आश्रित हैं सहित हैं। अर सूक्ष्मनिगोद समस्त त्रैलोक्यमै हैं आधारकी अपेक्षा नहीं है। बहुरि पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय पवनकाय इनि च्यारनिका शरीर जघन्य उत्कृष्ट अवगाहना घनांगुलकै असंख्यातवै भाग है। बहुरि पृथ्वीकायिकनिका शरीर मसूरकै आकार है गोल है। अप्कायिकनिका जलकी बूंदके आकार है। अग्निकायिक जीवनिका शरीर सूईनिका समूहसमान है तैसा ऊंचा बहुमुख है। वातकायिकनिका शरीर ध्वजासमान आयत चतुरस्र है लंब चौकोर है। इनका शरीरका आकार कह्या परंतु अगुलकै असंख्यातवें भाग है तातें नेत्रनिकै गोचर नहीं अर जो ए दीखेहैं ते असंख्यातशरीरनिका समूह हैं। बहुरि वृक्षादिवनस्पतिनिका शरीर अर द्वींद्रियादिक त्रसनिके शरीरनिका आकार अनेकप्रकार है। अर अवगाहनाका प्रमाण घनांगुलकै असंख्यातवै भाग तो जघन्य है। अर उत्कृष्ट वृक्षनिमैं तो कमल हजार योजनतैं अधिक ऊंचा है। बेंद्रियमैं शंख द्वादश योजन है। त्रींद्रियनिमैं कानखिजूरयाका तीन कोशका शरीर है। चोइंद्रिनिमें भ्रमरका देह एक योजनप्रमाण है। पंचेंद्रियनिमैं मत्स्यका शरीर हजारयोजनका है। अर मध्य अवगाहनाके अनेक भेद हैं। ते ए उत्कृष्ट अवगाहनाके धारक एकेंद्रियादिक जीव स्वयंभूरमणद्वीप समुद्रमें हैं। ऐसें कायप्ररूपणा अष्टमी संक्षेपकरि वर्णन करी।

अव [illegible]

काय पर्याप्तियुक्त संसारी जीव ताकै लोकमात्र जो आत्मके प्रदेश तिनिविषै
रहै जो पुद्गलस्कंधनिकै कर्म नोकर्मरूप परिणमनकौ कारणरूप जो शक्ति सो भावयोग है। बहुरि भा-
वयोगविशिष्ट आत्मप्रदेशनिविषै किंचित् चंचलरूप परिस्पंदन होना सो द्रव्ययोग है। जैसे अग्निके संयोगकरि
लोहकै तपावनेकी रूप दहनेकी शक्ति होयहै। तैसें अंगोपांग नाम अर शरीर नामकर्मका उदयकरि
मनोवर्गणा वा भाषावर्गणारूप आए पुद्गलस्कंधनिका तथा आहारवर्गणारूप आए नोकर्मपुद्गलस्कंधनिका
स्वरूपकरि जीवके प्रदेशनिकै कर्म नोकर्म ग्रहण करनेका सामर्थ्य उपजै सो योग है। अब योगका विशेष
कहैहैं। सत्य असत्य उभय अनुभयरूप वस्तुनिकौ जाननेकौं वा कहनेकौं मन वचनकी प्रवृत्ति होय सो सत्या-
दिक पदार्थका संबंधतैं सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभयमनोयोग, सत्यवचनयोग,
असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग, अनुभयवचनयोग होय है। सत्यज्ञानका विषय जो पदार्थ सो सत्य है।
जैसे जलके ज्ञानका विषय जल है सो स्नानपानरूप अर्थक्रिया ताका सद्भाव है। बहुरि मि-
थ्याज्ञानका विषय अर्थ सो असत्य है। जैसे जलज्ञानका विषय मरीचिकाविषै जलका जानना। तिसविषै
स्नानपानादिरूप जलकी अर्थक्रियाका अभाव है। बहुरि सत्य अर असत्य दोऊ प्रकारका ज्ञानका विषय
जो अर्थ सो उभय है। इहां एकस्थानविषै सत्य असत्य दोऊपनाका है। जैसें कमंडलुविषै घटका ज्ञान
होना। इहां कमंडलुविषै जलका धारणरूप अर्थक्रियाका सद्भाव है यातैं सत्यताकी प्रतीति है। अर घट-
का आकारादिककरि सर्वविधिका अभाव है तातैं कमंडलुविषै घटका जानना सो उभय है। बहुरि सत्य
असत्य दोऊ रूप ज्ञानका विषय नाहीं सो अनुभय है। याकूं सत्य भी नाहीं कह्या जाय अर असत्य भी नाहीं
कह्या जाय सो अनुभय है। जैसे यह कछू प्रतिभासै सामान्यपनै भासै है। इहां ऐसैं सामान्यपनाकरि प्रति-

वचन है। भो देवदत्त इत्यादि आमंत्रणी अनुभयभाषा है। इसमैं सत्यहू नहीं असत्यहू नहीं। बहुरि एक आज्ञा करूंहूं ऐसी आज्ञापिनी भाषा है। एक याचना करूंहूं ऐसी याचिनी भाषा है। एक मैं प्रश्न करूंहूं सो आपृच्छिनी भाषा है। एक मैं जणाऊंहूं सो प्रज्ञापनी भाषा है। एक त्याग करूंहूं सो प्रत्याख्यानी भाषा है। संशयरूप कहना संशयवचनी भाषा है। आपकी इच्छाके अनुकूल करूंहूं सो इच्छानुलोम भाषा है। द्वींद्रियादिक जीवनिका अनक्षरात्मक भाषा है। सो अनक्षरी है। ए नवप्रकार अनुभय भाषा हैं। जातैं इनमैं श्रवणकरनेवालेनिकै सामान्य अर्थ तो प्रगट हुवा तातैं असत्य नहीं। अर विशेष अर्थ प्रगट नहीं भया जो कहा कहैहै कहा आज्ञा करैगा कहा याचना करैगा कहा पृच्छा करैगा कहा जणावैगा कौन वस्तु है कहा इच्छा है अब कहा कहैहै तातैं सत्यहू नहीं क्योंकि विशेष अर्थ प्रगट हुवा विना सत्यहू कह्या जाय नहीं अर सामान्य अर्थ प्रगट भयाही यातैं असत्यहू नहीं कह्या जाय तातैं अनुभय जानना। औरहू अनुभयभाषा इसहीमैं गर्भित जाननी।

अब सप्तप्रकार काययोगकूं कहै हैं। औदारिक, औदारिकामिश्र[2], वैक्रियिक[3], वैक्रियिकमिश्र[4], आहारक[5] आरकमिश्र[6], कार्मण[7]॥ उदार नाम स्थूलका है। यह शरीर वैक्रियकादिककी अपेक्षा स्थूल है यातैं औदारिककाय कहिए हैं। औदारिक कायके अर्थि जो आत्माके प्रदेशनिकै कर्म नोकर्मरूप पुद्गलनिके खेंचनेकी ग्रहणकरनेकी शक्ति सो औदारिककाययोग है। अथवा औदारिकवर्गणारूप पुद्गलस्कंधनिकूं औदारिककायरूप परिणमनका कारण जो आत्मप्रदेशनिकै सकंपपना सो औदारिककाययोग है। सो यो औदारिकशरीर एकेंद्रियादिक समस्त तिर्यंचनिकै अर समस्त मनुष्यनिकै होय है। यद्यपि केतेक एकेंद्रियनिकै सूक्ष्मशरीरहू होयहै तथापि वैक्रियिक आहारादिकनिकी अपेक्षा स्थूलही है। ...

पुद्गलनिकी रचना सो औदारिकशरीर है। अब औदारिकमिश्रकाययोगकूं कहै हैं पूर्वै कह्या है लक्षण जाका ऐसा औदारिक शरीर जितनै अंतर्मुहूर्तपर्यंत पूर्ण नहीं होइ अपर्याप्त अवस्थामैं रहै तितनै काल औदारिकमिश्रशरीर कहिए है। जो आत्मा पूर्वपर्याय छोडि अन्यपर्यायकूं जाय है तदि मार्गमें एक समय तथा दोय समय तथा तीन समय लगे तहां मार्गमें याकै अष्टकर्ममय कार्मणशरीर है। फिर अन्यपर्यायमैं जाय तहां औदारिकादिशरीरके योग्य जे पुद्गलस्कंधनिकूं ग्रहण करना सो आहार है। तहां अंतर्मुहूर्तपर्यंत पर्याप्ति पूर्ण नहीं करै तितनै काल औदारिकमिश्रशरीर कहिए है पर्याप्ति पूर्ण होजाय तदि औदारिकशरीर कहिए है। याकूं मिश्रसंज्ञा ऐसैं जाननी। जो विग्रहगतिके तीन समयमें कार्मणकाययोगकरि ग्रह्या कार्मणवर्गणा ताका संयोगकरि औदारिकमिश्र कह्या है। अथवा पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ अवस्था मिलनेतै अथवा परमागममें ऐसी रूढि है तातैं मिश्र कहिए हैं। औदारिकमिश्रकायकरिकै आत्माके कर्मनोकर्मके ग्रहणकरनेकी शक्तिरूप प्रदेशनिका सकंपपना सो औदारिकमिश्रकाय योग है। सो अपर्याप्त अवस्थामें होय है। अब वैक्रियिककाययोगकूं कहै हैं। जे पुद्गलस्कंध नानाप्रकार शुभअशुभ क्रियाकरनेकूं अणिमा महिमादिक गुणनिकूं प्राप्त होने योग्य होय सो वैक्रियिकशरीर है। जो विक्रियाके अर्थि निज स्व परिणमनयोग्य शरीरवर्गणाके स्कंधनिके ग्रहनेकी शक्तिसहित आत्माका प्रदेशनिका कंपायमान होना चलना सो वैक्रियिककाययोग है। सो वैक्रियिककाययोग देवनिकै अर नारकीनिकै होय है। ऋद्धिके धारक विशेष जानना। जो बादरतेजस्कायिक बादरवायुकायिक तथा पंचेंद्रिय पर्याप्त तिर्यंच मनुष्यनिकै भी अपने अपने औदारिकशरीरकी विक्रियाके प्राप्त होय है। ते जीव अपृथक्विक्रिया करै हैं। अथवा पृथक्शरीरकी विक्रियारूप जैसा चक्री इत्यादिक होय है। तिन देव नहीं कहिये हैं। अर देव तथा भोग-

भूमिमैं उपजे तिनकै तथा चक्रवर्तीकै पृथग्विक्रियाहू होय है अपना एकशरीरका अनेकरूपहू करै है। तिन वादरतेजस्कायिक अर वातकायिक समस्तजीवनिकै विक्रिया नहीं है। अपनी संख्याकै असख्यातवै भाग जीवनिकैही विक्रिया है। अब वैक्रियिकमिश्रकाययोग ऐसा जानना। जो वैक्रियिकशरीर अंतर्मुहूर्त्तमैं जेतै पूर्ण नहीं होय तितनै अपर्याप्त अवस्थामैं वैक्रियिकमिश्रकाययोग है। औदारिकमिश्र जो अपर्याप्तकालमैं आत्मप्रदेशनिका सकंप होना सो वैक्रियिकमिश्रकाययोग है। प्रमत्तसंयतगुणस्थानधारीके आहारकशरीर नाम कर्मका उदयकरि आहारवर्गणारूप आए पुद्गलस्कंधनिका आहारशरीररूप परिणमनकरि आहारकशरीर होय है। सो याकै होनेका प्रयोजन ऐसा—जो ढाईद्वीपमैं वर्तते तीर्थयात्रादिककै अर्थि विहारमैं असंयमके दूरि करनेकै अर्थि ऋद्धिसहितहू प्रमत्तसंयमी मुनीकै श्रुतज्ञानावरण वीर्यांतरायका क्षयोपशमकी मंदता होतै जो धर्मध्यानका निरोध करनेवाला ऐसा श्रुतका अर्थमैं संदेह उपजावै तो तिस संदेहका नाशकै अर्थि आहारकशरीर प्रगट होय है सो शरीर रसादि सप्तधातु रहित है। अर प्रशस्त है। अर संहनन जो हाडनका बंधन ताकरि रहित है। शुभ समचतुरस्रसंस्थान शुभ अंगोपांगसहित है धवलवर्ण ऐसा मानूं चंद्रकांतिकरि रच्या है। एक हस्तप्रमाण है। प्रशस्त आहारकशरीर आहार बंधन संघात अंगोपांगसहित है। अपना शरीरकरि परका घात नहीं परकरि आपका घातरहित वज्रशिलादिकका भेदवामै समर्थ वज्रादिकमैं प्रवेशकरनेकूं समर्थ है। जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्तकालकी स्थितियुक्त है। तिस शरीर पर्याप्ति पूर्णहोतै संतै कदाचित् आहारक शरीरकी ऋद्धियुक्त प्रमत्तसंयतकै आहारकका काययोगका कालविषै अपना आयुकर्मका क्षयका वशकरि मरणहू होय है। आहारक ऋद्धियुक्त प्रमत्तसंयमीमुनी प्रवचनपदार्थमैं संशय होतै संतै संशयकै दूरि करनेकै अर्थि श्रीकेवलीके चरणनिकै

निकट आप सूक्ष्म अर्थनिकूं आहरति कहिए ग्रहण करे है तातें याकूं आहारक कहिए है। आहारकशरीर पर्याप्ति पूर्ण होते आहारकवर्गणाकरि आहारकशरीरके योग्य पुद्गलस्कंधनिके आकर्षणरूप शक्तिसहित आत्मप्रदेशनिका चंचल होना सो आहारककाययोग है। बहुरि आहारकशरीर अंतर्मुहूर्त पर्यंत पूर्ण नाहीं होय तितने आहारकमिश्रकाययोग है। पूर्वला औदारिकशरीर वर्गणाकरि मिल्या है तातें मिश्र कहिए है।

अब कार्माणकाययोगकूं कहैं हैं। आठनिकर्मनिका स्कंध सोही कार्मण है। कार्मणशरीर नाम कर्मका उदयकरि उपज्या सो कार्मण है। तिस कार्मणस्कंधकरि सहित आत्माके कर्मग्रहण करनेकी शक्तिसहित आत्माके प्रदेशनिका सकंपपना सो कार्मणकाययोग है। सो विग्रहगतिकालविषैं एकसमय दोयसमय वा तीनसमयनिमैं है वा केवलीके समुद्घातसंबंधी प्रतरद्वय लोकपूर्ण इन तीन समयनिमैंही होय है। अन्यकालमैं कार्मणकाययोग नाहीं होय है। इन समस्तयोगनिका परके निरोधविना अंतर्मुहूर्तकाल है। अर निरोध होय तौ एकसमयकूं आदि देय यथासंभव अंतर्मुहूर्तपर्यंत जानना। बहुरि आहारकऋद्धि अर वैक्रियिक-ऋद्धि युगपत नाहीं होय है। बहुरि औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस शरीर नाम कर्मका उदयकरि यथासंभव औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस नाम च्यार शरीर होय ते ए नोकर्मशरीर होय हैं। इहां 'नो' शब्द किंचित् वा तुच्छ अर्थमैं वर्तै है। इनि नोकर्मशरीरनिकै कर्म जो आत्माका गुणका घातकपणा तथा गत्यादिकनिमैं आत्माकूं पराधीन करनेकी सामर्थ्यका अभाव है। अर कर्मका सहकारीपणाकरि ईषत्कर्मकूं नोकर्म कहिए है। ज्ञानावरणादि अष्टविधकर्मस्कंधका समूह सो कार्मणशरीर है। सिद्धराशिके अनंतवैं भाग अर अभव्यराशितैं अनंतगुणा ऐसा जो मध्यम अनंतानंतपरिमाण पुद्गलपरमाणुनिका स्कंध ताकूं वर्गणा कहिए है। बहुरि अनंतानंतवर्गणानिका समूह सो समयप्रबद्ध है। एकसमयमैं जीवकै कर्म

अर नोकर्मका समयप्रवद्ध ग्रहणमैं प्राप्तहोय बंधैहै। इतना विशेष है। इन पंचशरीरकै योग्य नोकर्मका समयप्रवद्ध प्रमाण समान नहीं है। औदारिकका समयप्रबद्धमैं परमाणुनिका प्रमाण सर्वतैं अल्प है यातैं असंख्यातगुणा वैक्रियिकशरीरका समयप्रबद्ध है। यातैं असंख्यातगुणा आहारकका समयप्रबद्ध है। यातैं अनंतगुणा तैजसका समयप्रबद्ध है। यातैं अनंतगुणा परमाणुप्रमाण कार्मणका समयप्रबद्ध है। बहुरि औदारिकका समयप्रबद्धका अवगाहनाक्षेत्र घनांगुलकै असंख्यातवै भाग है। तथापि उत्तरउत्तर शरीरनिका समयप्रबद्धके अवगाहनाका क्षेत्र असंख्यातगुणा क्रमतैं घाटि जानना इनिमैं परमाणु तो अधिक अधिक हैं। अवगाहना सूक्ष्मपरिणमनतैं घाटिघाटि है। ऐसैं योगप्ररूपणा संक्षेपकरि कही। याका विशेष अर कर्मनिका सत्तामैं रहना सो, अर समयप्रबद्धनिका वटवारा सो समस्त कथन गोमट्टसारतैं जानना॥

अब दशमी वेदप्ररूपणा वर्णन करैहैं। चारित्रमोहका भेद जो पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद नाम कर्मका उदयकरि चैतन्यपरिणामविषैं पुरुष स्त्री नपुंसक रूप जीव होय हैं। अर निर्माण नाम कर्मका उदयकरि पुद्गलका पर्यायविशेषविषैं पुरुष स्त्री नपुंसक होय हैं सोही दिखावैहैं। पुरुषवेदका उदयकरि स्त्रीमैं अभिलाषारूप मैथुनसंज्ञाकरि व्याप्त जीव भावपुरुष होय हैं। स्त्रीवेदका उदयकरि पुरुषमैं रमनेकी इच्छारूप मैथुनसंज्ञाकरि व्याप्त जीव भावस्त्री होय हैं। नपुंसकवेदका उदयकरि दोऊनिका अभिलाषरूप मैथुनसंज्ञा करि व्याप्त जीव भाव नपुंसक होय हैं। बहुरि पुरुषवेदका उदयकरि निर्माण नामकर्मका उदयकरि युक्त अंगोपांग नाम कर्मका उदयके वशकरि डाडी मूंछ शिश्नादि लिंगकरि चिह्नित शरीरसहित जीव भवका प्रथमसमयकूं आदिकरि तिस भवका अंतसमयपर्यंत द्रव्यपुरुष होय है। बहुरि स्त्रीवेदका उदयकरि निर्माण नाम कर्मका उदययुक्त अंगोपांग नाम कर्मका उदयकरि रोमरहित मुख अर कुचयोन्यादि लिंगकरि

निर्जित स्त्रीवेदयुक्त जीव भवका प्रथमसमयतें आदि देय तिस भवका अंतसमयपर्यंत द्रव्यस्त्री होय है। बहुरि नपुंसकवेदका उदयकरि युक्त अंगोपांग नामकर्मका उदयकरि दोऊनिका चिह्नतैं रहित देहसंयुक्त भवका प्रथमसमयतें आदि देय तिस भवका अंतसमयपर्यंत द्रव्यनपुंसक जीव होय है।

ये द्रव्यभावरूप वेद बाहुल्यताकरि देवनारकीनिविषैं भोगभूमिके तिर्यंच मनुष्यनिविषैं समान होय हैं। जैसा भाववेद तैसाही द्रव्यवेद होयहै। अर कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिविषैं विषमभी होय है। द्रव्यपुरुष होय अर भावपुरुष तथा स्त्री तथा नपुंसक होय है। अर द्रव्यस्त्री अर भावपुरुष तथा स्त्री तथा नपुंसक होय हैं। अर द्रव्यतैं नपुंसक होय अर भावतैं पुरुष तथा स्त्री होय है। चारित्रमोहका भेद जो वेद ताकी उदीरणाकरिकैं वा तीव्र उदयकरिकैं परिणामनिविषैं संमोह जो विक्षेप सो उपजै है। तिस संमोहकरिकै जो जीव गुणकूं अर दोषकूं नाहीं जानिकै योग्य नहीं जानै है। तातैं परमागमविषैं भाववेदका वर्णनविषैं अवतरण प्रधानकीजिए है। अब पुरुषका लक्षण कहिए है। उक्तं च गाथासूत्रं—पुरुगुणभोगे सेदे, करेदि लोयम्मि पुरुगुणं कम्मं। पुरुउत्तमो य जम्हा, तम्हा सो वण्णिओ पुरिसो ॥ १ ॥ अर्थ—लोकनिविषैं जो जीव पुरुगुण जो सम्यग्ज्ञानादिक अधिकगुणनिकै स्वामीपनै होते कहिए स्वामिपनाकरि प्रवर्तै अर पुरुभोग कहिए बहुत महान् लोकाधिक अधिक भोगनिकै स्वामीपनै भोक्तापनाकरि प्रवर्तै तथा पुरुगुणकर्म कहिए जो अरिहंतादि ऐसा उत्तम पुरुषनिका सामान्यरूप आचरण करै तथा पुरूत्तमे कहिए परमेष्ठीनिविषैं तिष्ठै तिस कारणतैं द्रव्यभावपुरुषरूप जीव है सो पुरुष ऐसैं कहिए है ॥ स्त्री शब्दका अर्थ कहिए है। उक्तं च गाथासूत्रं—छादयदि सयं दोसे, णयदो छादयदि परं वि दोसेण। छादणसीला जम्हा, तम्हा सा वण्णिया इत्थी ॥ २ ॥ अर्थ—जातैं आपनैं आपकौ आत्माकूं दोष जो मिथ्यादर्शन अज्ञान असंयम क्रोध मान

माया लोभकरिकै आच्छादन करै अर युक्तितैं कोमलवचन स्नेहसहित अवलोकन अनुकूलप्रवर्तनादिक अर कुशलव्यापारकरिकै पर जो आपतैं अन्य पुरुष ताहिकूं अपने वशकरिकै दोष जे हिंसा अनृत चौर्य अब्रह्म परिग्रहादिक पापकरिकै आच्छादन करै सो कारणतैं आच्छादनस्वभावरूप द्रव्यभावकरिकै स्त्री या नामकरि वर्णनकरि परमागमविषैं कही। यद्यपि तीर्थंकरनिकी माता वा अन्य सम्यग्दर्शनकी धारक स्त्रीनिकै ये कहे दोष नहीं हैं तोहू ते स्त्री अतिविरली हैं। सर्वठौर आधिक्यताका व्यवहारकरि स्त्रीका लक्षण कह्या है। बहुरि जे जीव पूर्वैं कहे गुण तिनकरि सहित पुरुष नहीं अर स्त्रीहू नहीं दोऊनिके डाढी मूंछि तथा कुचादि चिन्हरहित ईंट पकावनेकी अग्निसमान तीव्र कामाग्निकरि सहित होय तथा कलुषितचित्त होय सर्वकाल कामवेदनाकरि कलंकित जाका हृदय होय सो जीव नपुंसक परमागममैं कह्या है। एकेंद्रियादिक चोइंद्रियपर्यंत अर समस्त सन्मूर्च्छन अर नरकके नारकी ए तो नियमतैं नपुंसकही होयहैं। च्यार प्रकारके देवनिमैं स्त्री अर पुरुष दोयही वेद हैं। अर गर्भज तिर्यक् मनुष्यनिमैं तीनों वेद हैं। ऐसैं वेदप्ररूपणाका संक्षेप कह्या॥ अब ग्यारमी कषायप्ररूपणा वर्णन करैहैं। अब कषायशब्दकी निरुक्ति जो है ताका अर्थ कहिए हैं। संसारी जीवके शुभ अशुभ ज्ञानावरणादि मूल उत्तर प्रकृतिरूप क्षेत्र ताहि कृषंति कहिए हलादिकतैं खेतज्यों संवारैं फलनिपजावनेयोग्य करैं तिस कारणकरि क्रोधादिक जीवके परिणाम कषाय हैं। ऐसैं भगवान् जिनेंद्र कह्या है। कर्मरूप क्षेत्र कैसाक है इंद्रियनिका विषयसंबंधतैं उत्पन्न भय हर्ष अर शारीरिक मानसिकदुःख सोही धान्य सो जहां उपजै हैं बहुरि कर्मरूप क्षेत्र कैसाक है अनादिके पंचपरावर्त्तन जाकी सिंव है मर्यादा है। मिथ्यादर्शनादि जीवका संक्लेशपरिणामरूप याका वीज है। अर क्रोधादिकषाय नाम भृत्य हैं। सो प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश भेदरूप कर्मबंधलक्षण क्षेत्रमैं

जीवका कर्मादि भूमी धान सुखदुःखलक्षण बहुतप्रकारके धान्यरूप फल अनादिसंसारसीमामैं उपजावै है। अथवा—सम्यक्त्वकौं देशचारित्रकौं तथा सकलसंयमकौं यथाख्यातचारित्रकौं इस प्रकारकरि जिनुक्तपरिणामनिकौं "कषन्ति" कहिए हिंसा करै घातै इनिकौं कषाय कहिए है। अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ आत्माका सम्यक्त्वपरिणामकौं "कषन्ति" कहिए घातै करै हैं। अनंतसंसारका कारणपनातैं मिथ्यात्वकौं अनंत कहिए है। अनंत जो मिथ्यात्व ताकौं "अनुबध्नन्ति" कहिए बांधै ते अनंतानुबंधी कहिए है। अप्रत्याख्यानावरणकषाय है सो अणुव्रतपरिणामकौं घातै है। अप्रत्याख्यान नाम ईषत् प्रत्याख्यान है। सो किंचित् प्रत्याख्यानकौं "आवृण्वन्ति" कहिए घातै सो अप्रत्याख्यानावरणकषाय है। बहुरि जो प्रत्याख्यान जो सकलसंयम ताकौं "आवृण्वन्ति" कहिए घातै सो प्रत्याख्यानावरण है। बहुरि 'सं' कहिए समीचीन जो यथाख्यातचारित्र ताहि 'ज्वलन्ति' कहिए दग्ध करैं सो संज्वलनकषाय है।

ऐसे निरुक्तिकरि कषायनिका अर्थ जानना। अनंतानुबंधी तो तत्त्वार्थश्रद्धान सो नाहीं होने दे है। अर अप्रत्याख्यानादिक अणुव्रतादिकौं घात करै है तातैं देशसंयम होने न देहै। अर प्रत्याख्यानावरण सकलसंयमकौं नाहीं होने देहै। संज्वलनकषाय यथाख्यात संयमकौं घातै नाहीं होने देहै। इनके क्रोध मान माया लोभकरि च्यार च्यार भेद हैं। ऐसे सोलह कषाय कहे। ते कषाय उदयका स्थानका विशेषकरि अनेकप्रकाररूप हैं। पाषाणकी रेखासमान उत्कृष्टशक्तियुक्त क्रोध जीवकौं नरकगतिविषैं उत्पन्न करै है। पृथ्वीकी रेखासमान अनुत्कृष्टशक्तियुक्त क्रोध जीवकौं तिर्यंचगतिविषैं उपजावै है। धूलिमैं रेखासमान अजघन्यशक्तियुक्त क्रोध जीवकौं मनुष्यगतिविषैं उपजावै है। जलविषैं रेखासमान जघन्यशक्तियुक्त क्रोध जीवकौं देवगतिविषैं उपजावै है। बहुरि शिलास्तंभसमान उत्कृष्टशक्तियुक्त मान जीवकौं नरकगतिविषैं उप-

जावैहै। हाडसमान अनुत्कृष्टशक्तियुक्त मान जीवकूं तिर्यंचगतिविषैं उपजावैहै। बहुरि काष्ठसमान अजघन्यशक्तियुक्त मान जीवकूं मनुष्यगतिविषैं उपजावैहै। बहुरि वेत्रसमान अजघन्यशक्तियुक्त मान जीवनकूं देवगतिविषैं उपजावैहै जैसैं पाषाण हाड काष्ठ वेत्र हैं ते चिरतरादि कालविना नमावनेकूं समर्थ नहीं होय है। तैसैं उत्कृष्टादिशक्तियुक्त मानकषाययुक्त जीवहू चिरतरादि बहुतकालविना नमनकीया नहीं जाय है। बहुरि वाँसकी जडसमान उत्कृष्टशक्तियुक्त मायाकषाय जीवकूं नरकगतिमैं उपजावैहै। मींढाका सींगसमान अनुत्कृष्ट शक्तियुक्त माया जीवकूं तिर्यंचगतिविषैं उपजावैहै। गोमूत्रसमान अजघन्यशक्तियुक्त माया जीवकूं मनुष्यगतिविषैं उपजावैहै। खुरपासमान जघन्यशक्तियुक्त माया जीवकूं देवगतिविषैं उपजावैहै। जैसैं वांसकी जडादिक बहुतकालविना अपनी अपनी वक्रताकूं छांडि सरलपणाकूं नहीं प्राप्तहोयहैं। तैसैं जीवहू उत्कृष्टादिशक्तियुक्त मायाकषायरूप परणया बहुतकालविना सरल नहीं होयहै बहुरि कृमिरंग अर रथके पहैयावागांवाका मल अर शरीरका मल अर हलदका रंगसमान उत्कृष्टादिशक्तियुक्त लोभकषाय विषयाभिलाषरूप अनुक्रमतैं नरक तिर्यंच मनुष्यदेवगतिमैं जीवकूं उपजावैहै। भावार्थ—नारकादिभवमैं उत्पत्तिका कारण सोसो आयुगति आनुपूर्व्यादिक कर्मका बंध करै है। ऐसैं कषायप्ररूपणा संक्षेपकरि वर्णन करी॥ अब ज्ञानमार्गणा नाम बारमी प्ररूपणा वर्णन करैहैं। ज्ञानके पांच भेद हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान ए सम्यग्ज्ञान हैं। जैसा पदार्थका स्वरूप होय तातैं न्यून नहीं जानै अर अधिक नहीं जानै जैसा है तैसा जानै सामान्यसंग्रहरूप द्रव्यार्थिकनयकरि ज्ञान एकरूपही है। तोहू विशेष अपेक्षाकरि ज्ञानके पांच भेद हैं। तिनमैं मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ए च्यार ज्ञान तो क्षायोपशमिक हैं। जातैं मतिज्ञानावरणादि तथा वीर्यांतरायका क्षयोपशमतैं उप-

है। इहां क्षयोपशमका अर्थ ऐसा जानना। जो घातिकर्मकी प्रकृतिनिका स्पर्द्धक दोय प्रकार हैं। एक सर्वघातिरूप एक देशघातिरूप है। तहां जो मतिज्ञानावरण अर वीर्यांतरायकर्मका सर्वघातिस्पर्द्धकनिका तौ उदयाभावी क्षय होय उदय आय रस नहीं देना सोही क्षय है, अर जो उदयावलीमैं नहीं आए ऐसे उपरितन जे सर्वघातिस्पर्द्धक तिनका सत्तामैं अवस्थितरूप रहना सोही उपशम ऐसैं सर्वघातिस्पर्द्धकनिका तौ क्षय अर उपशम अर देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होय तब मतिज्ञान होयहै। जातैं देशघातिस्पर्द्धकनिमैं आपने प्रतिपक्षी गुणका घातनेका सामर्थ्य नहीं होयहै। ऐसैही श्रुतज्ञानावरण वीर्यांतरायका क्षयोपशमतैं श्रुतज्ञान होयहै। ऐसैंही अवधि मनःपर्ययज्ञानकू अपने आवरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं होइ तातैं च्यार ज्ञान क्षायोपशमिक है। अर सकलज्ञानावरणका अर अंतराय कर्मका अत्यंत क्षयतैं उपज्या केवलज्ञान क्षायिक है।

अब मिथ्याज्ञानकी उत्पत्ति तथा कारण अर स्वरूप अर स्वामी अर भेदकूं कहै हैं। मिथ्यात्वकर्मका उदय तथा अनंतानुबंधी च्यार कषायमैं कोऊ एकका उदय होतै जीवकै कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान विभंगज्ञान ए तीन मिथ्याज्ञान होय हैं। जैसैं दूध मिष्ट है तोहू कडवी तूंबीमैं धाऱ्या विष होय परिणमैहै। तैसैं मिथ्यादृष्टिजीवकै मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञानहू, कुमति कुश्रुत कुअवधिरूप परिणमनकूं प्राप्त होय हैं। इन तीन कुज्ञानका विशेषरूप ऐसा जानना जो परका उपदेशविनाही अनेकजन्तु पिंजरा जीवनिके मारनेकूं लिये इत्यादि ऐसीही आदि बुद्धि उपजै तथा सिंह व्याघ्रादिकनिकूं पकडनेके मारनेके कारण यंत्र तथा पींजरे बुद्धि उपजै तथा जलके जीव पकडनेकी तथा तीतर सूवा इत्यादिक पक्षीनिके पकडनेकी जाल ईत्यादि यन्त्रनिकी तथा जगतका मृग पकडने मारनेकी जो विनाशिखाये बुद्धि उपजै सो तब कुमतिज्ञान है। और हू जो दुर्नीतिनिका पर ठगनेकू तथा परधन लोपनाकूं तथा परकी स्त्री हरनेकूं त-

था परके मारनेकूं धनके चोरनेकूं तथा निर्बलजीवानिकी आजीविका जमी जायगां स्त्री धन खोसि लेनेमें तथा अन्यका अपमान करादेनेमैं तथा न्यायमै सांचा होय ताकूं झूठा करदेनेमैं तथा झूठाकूं सांचा करनेमैं तथा परके दूषण लगावनेमैं तथा धर्मात्मापुरुषनिकै चोरीका कुशीलका दोष लगावनेमैं परका अपवाद निंदा करानेमैं जाकै प्रवलबुद्धि होइ तथा कुदेवनिमैं जीवाकैं देवत्वबुद्धि करादेनेमैं तथा पाखंडी कुलिंगनिमैं गुरुपणाकी बुद्धि कराय पुजादेनेमैं तथा आप व्यसनी पापी होय आपकी प्रशंसा कराय देनेमैं तथा अधर्मकूं धर्म धर्मकूं अधर्म जणाय देनेमैं इत्यादि हिंसा झूठ कुशील परधनहरण परिग्रहबधावनरूप महापापनिमैं जाकै प्रवीणता होय तथा पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पति त्रस इनि छहकायके जीवनिका घातकरि सांसारिक अनेक यंत्र अनेक क्रिया अनेक जगतके राग उपजावनेवाली रागकारी वस्तु उपजावनेमैं जाकै प्रवलबुद्धि उपदेशविना शास्त्रविना जाकै उपजै सो समस्त कुमतिज्ञान है। तथा ग्राम नगरादिककूं दग्ध करनेका तथा समस्त देश ग्रामनिवासी जीवानिका तथा परकी सेनाके विध्वंस करनेका उपायभूत शस्त्र विष अग्नि उपजाय देनेकी बुद्धि विनासिखायां उपजै सो समस्त कुमतिज्ञान है। वहुरि जो परके उपदेशतैं दुष्ट विपरीत बुद्धिका उपजना सो कुश्रुतज्ञान है। वहुरि चोरनिके शास्त्र तथा कोटपालपणाका शास्त्र तथा जिनमैं हिंसाकी प्रधानता जिनमैं उत्तमपुरुषनिकै व्यभिचार वतावना उत्तमपुरुपनिकै माता अन्य, पिता अन्यतैं उपज्या कहना तथा शिकार करना मांसभक्षण करना राजानिका सनातनमार्ग वतावना, शिकारमैं धर्म वतावना, देवीनिकै बकरा भैंसा मारि चढावनेका महाफल कहना। देवतानिकूं मांसभक्षी कहना, पितृ इश्वरनिकूं मांसपिंड देना सनातनसूं क्षत्रीकुलकूं मांसभक्षी कहना, यज्ञका उपदेश देना व्यभिच्यारकूं पुष्टकरना देवनिके मनुष्यिणीसूं संगम कहना कामी क्रोधी शस्त्रधारीनिकूं पर-

वैश्यक कहना तथा कामशास्त्र चूतशास्त्र मायाचार प्रधानशास्त्र रचना नाना भंडकाव्य बनावना स्त्री-
पुरुषनिके कामादिक चरित्र कहना परलोकीनिका अपवाद रचना इत्यादिक विपरीत मार्गका पुष्ट करने-
वाले ते कुश्रुत है। तथा जिनमें एकान्तरूप पदार्थका स्वरूप कहना तथा देवपूजाके अर्थि हिंसा करनेमें
धर्म कहना यज्ञ आरंभ हिंसाकूं धर्म कहना तीर्थंकरोंकूं नग्न कहना हनुमानादिकनिकूं वानर रावणकूं
राक्षस तथा देवनादिका निर्वस्त्रादिक जामें वर्णन कीया ते समस्त कुश्रुत हैं। इनके पठन श्रवणका
ज्ञान भी कुश्रुतज्ञान है। बहुरि मिथ्यादर्शनकरि कलंकित जीवके अवधिज्ञानावरण अर वीर्यांतरायका
क्षयोपशमतें जो अवधिज्ञान उपजै सो कुअवधि है। या याहीकूं विभंगज्ञान कहिए है। सो यो द्रव्य क्षेत्र
काल भावकी मर्यादालीयें रूपीद्रव्यकूं प्रत्यक्ष जानै है। सो यो विभंगज्ञान मनुष्यगतिमें तथा तिर्यंचमें तो
तीव्र कायक्लेश तप अर द्रव्यसंयमकरिकै उपजै है तातें गुणप्रत्यय है। अर देवनारकीनिकै तप व्रत संयम
बाह्य कारण विना भवही कारण है। जो देवका भव तथा नारकीका भव पावेगा ताकै नियमतें अवधि
ज्ञान होयगा। यातें देवनारकीनिकै भवही प्रत्यय कहिए कारण है। तातें देव नारकीनिकै भवप्रत्यय अ-
वधि आगममें कही है। सो मिथ्यादृष्टि देव नारकीनिकै विभंग अवधि कहावै वा कुअवधि कहावै। सो
यह विभंगज्ञान मिथ्यात्वादिक कर्मबंधका बीज है कारण है। तथा कोऊकै नरकादिकगतिमें पूर्व जन्म-
का उपजाया पापकर्म ताका फल तीव्र दुःख वेदना नारकीकै ऐसा चितवनहू होय है। जो मैं पूर्वजन्ममें
हिंसादिक पंचपाप कीये मद्यमांस सेये अनन्तभवाग निर्माल्यभक्षण अन्यायप्रवृत्ति बहुत आरंभ बहुत
परिग्रह करन कीया ताका फल नरकमें प्रत्यक्ष पाया ऐसा आत्मनिंदा करता पापतें विमुख होय ताकै स-
म्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानहू उपजावै है। ऐसें कुमति कुश्रुत कुअवधि ये तीन ज्ञान तिनका स्वरूप संक्षेपकरि

कह्या। अब मतिज्ञानका स्वरूप अर भेद कहेहैं। यो मतिज्ञान है सो इंद्रियद्वारै जानै है। इंद्रियनिके विना स्वयं जाननेकूं समर्थ नहीं। अर इंद्रिय हैं ते स्थूलपदार्थकूं जानै सूक्ष्मकूं नहीं जानै अर वर्तमानकालवर्त्तीकूं जानै। वर्तमान नहीं ताकूं नहींजानै। अर अपने योग्य क्षेत्रमैं तिष्ठताकूं जानै। दूर क्षेत्रमैं तिष्ठताकूं नहीं जानै। अन्य इंद्रियनिके विषयकूं अन्य इंद्रिय नही जान। जैसैं शब्दकूं नेत्रेंद्रिय नहीं जानै। इन इंद्रियनिकै स्पर्शादिक स्थूलविषयनिके जाननेकाही सामर्थ्य है। सूक्ष्म जे परमाणु इत्यादिक अर अंतरित जे पूर्वैं भए रामरावणादिक अर दूरवर्ती जो स्वर्ग नरक मेरु इत्यादिकके जाननेकूं असमर्थ हैं। यो मतिज्ञान जो है सो पांच इंद्रिय छठा मन इनहीतैं उपजै है। याका विशेष ऐसैं—जो इंद्रिय अर इंद्रियकै ग्रहणयोग्यविषयनिकै संयोग होतै ही जो वस्तुका सत्तामात्र ग्रहण होय सो दर्शन है। जैसैं दृष्टि पडतां ही वस्तुका प्रकाश होनेमात्र निर्विकल्पग्रहणमैं आया सो चक्षुर्दर्शन है। ऐसैंही कर्णादिक च्यार इंद्रियद्वारै सामान्य विकल्परहित ग्रहण होय सो अचक्षुर्दर्शन है। अर ताकै लगताही जो देख्याहुवा पदार्थका वर्ण संस्थानादिक विशेष ग्रहणमैं आवै सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है।

भावार्थ—इंद्रिय अर पदार्थ इनका संबंध होतांही जो सामान्यग्रहण होइ जो कुछ देखनेमैं आया तथा कुछ श्रवणमैं आया तथा स्पर्शनमैं आया परंतु कुछ विशेष जाननेमैं नहीं आया जो कोनका रूप है वा कहा शब्द है कैसा स्पर्श गंधादिक है ऐसैं विशेष तो जाननेमैं नहीं आवै अर सामन्य सत्तामात्रका ग्रहण होय सो दर्शन है। अर पाछैं लगताही पदार्थका रंग आकारादिकका ग्रहण होय सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है। जैसैं प्रथमही ग्रहणमैं आया जो यो श्वेत है। ऐसैं श्वतरूप जाण्या पदार्थमैं विशेष जाननेकी इच्छा जो यो श्वेत है सो बुगलांकी पंक्ति जाननेकी इच्छा अथवा ध्वजा देखी थी तिसमैं ध्वजा जाननेकी

इच्छा सो ईहा नामा मतिज्ञानका दूसरा भेद है। बहुरि जो यो श्वेत दीसै है सो बगलानिकी पंक्ति होसी ऐसें जो वस्तु होय तामैं ताहीका ज्ञान होना सो ईहा नाम मतिज्ञान है। ऐसैंही शब्दादिकविषैं अन्य इंद्रियनिकरि ईहा होय है। सो यो ईहाज्ञान सो प्रमाणरूप है परंतु ढीला ज्ञान है। बहुरि जाकै ईहा उपजी थी ताहीका निर्णय होय दृढ होना ताका नाम अवाय है। जैसैं बुगलांकी पंक्तिमैं ईहा नामा ज्ञान हुवो थो और बहुरि पांखनिकरि ऊंचा नीचा हलावनेकरि निश्चय भया जो या बुगलांकी पंक्तिही है। ऐसैं निर्णयरूप अवाय नामा तीसरा मतिज्ञानका भेद है। बहुरि ताका निर्णय होनया तामैं बारंबार प्रवृत्तिकरिकै ऐसा निर्णय हुआ जो कालांतरमैं विस्मरण नहीं होय सो धारणा नामा मतिज्ञानका चौथा भेद है।

सो ये अवग्रहादिक बारह प्रकार होय है। जहां बहोनका अवग्रह होय। जैसैं बहुत गायनिमैं कोऊ धोली कोऊ कारी कोऊ काबरी कोऊ लाल कोऊ भूरी ऐसैं बहुत गायनिका ग्रहण सो बहुअवग्रह है। अर ऐसाहि देखना जाय तहां बहुत जातिका हस्ती घोडा ऊंट बलध मनुष्य इत्यादि अनेक जातिका अवग्रहादिक होय सो बहुविधका है। शीघ्रतातैं पड़ता जो जलका धारादिक ताका ग्रहण सो क्षिप्रग्रहण है। बहुरि जलमैं मग्न जो हस्ती इत्यादिकका ग्रहण सो अनिःसृतग्रहण है। बहुरि वचनतैं कह्या बिना अभिप्रायतैं जानि लेना सो अनुक्तग्रहण है। बहुरि बहुतकालमैं जैसाका तैसा निश्चल ग्रहण करना सो ध्रुवग्रहण है। बहुरि अल्पका तथा एकका ग्रहण सो अल्पग्रहण है। बहुरि घोडा हस्ती ऊंट बलध मनुष्यादिकनिविषैं एक जातिनिका ग्रहण सो एकविधग्रहण है। बहुरि मंदगमन करता अश्वादिकनिका ग्रहण सो अक्षिप्रग्रहण है। बहुरि प्रगट बाहर निकस्या जो प्रगट हुवा ताका ग्रहण सो निःसृतग्रहण है। बहुरि सो यह है ऐसैं कह्याहुवाका ग्रहण सो उक्तग्रहण है। बहुरि अनवस्थित रहना जो बीजली इत्यादिक-

का ग्रहण सो अध्रुवग्रहण है। ऐसैं अवग्रह बारह प्रकार कह्या। तैसैंही बारह बारह प्रकार ईहा अवाय धारणा होय हैं। ते सब मिलि एकइंद्रियद्वारै अडतालीस भेद भए। तब पांचूं इंद्रिय छठा मन इन छहूंनिसूं गुणें २८८ भेद अर्थावग्रहके जानने। जातैं नेत्रादिक इंद्रियनिका विषय है सो तो अर्थ है। ताके बहु आदिक विशेषण हैं। इन बहु इत्यादिक विशेषणकरि सहित सो अर्थ कहिए वस्तु ताके अवग्रह ईहा अवाय धारणा ऐसा संबंध जोडि दोयसै अठ्यासी भेद जानिए। बहुरि व्यंजन कहिए अव्यक्त जो शब्दादिक ताका अवग्रहही होय है। ईहादिक नहीं होय हैं। ऐसा नियम है। जैसा नवा माटीका सरावाविषै जलका कणा क्षेपिए तहां दोय तीन आदि कणाकरि सींच्या जेतै आला नहीं होय तेतै तो अव्यक्त है सो व्यंजन है। बहुरि सोही सरावा फेरि सींच्याहुवा मंदमंद आला होय तब व्यक्त है। तैसैंही श्रोत्रादिक इंद्रियनिका अवग्रहविषैं ग्रहणयोग्य जे शब्दादि स्वरूप परणया पुद्गलस्कंध ते दोय तीन आदिसमयमैं ग्रह्याहुवा जेतैं व्यक्त ग्रहण नहीं होय तेतैं तो व्यंजनावग्रह है। बहुरि फेरिफेरि तिनका ग्रहण होय तब अर्थावग्रह होय है। ऐसैं व्यक्तग्रहणतैं पहलै तो व्यंजनावग्रह कहिए। बहुरि व्यक्तग्रहणकूं अर्थावग्रह कहिए। यातैं अव्यक्तग्रहणरूप जो व्यंजनावग्रह तातैं ईहादिक नहीं होयहै। ऐसैं जानना।

बहुरि नेत्रइंद्रिय अर मनइंद्रिय दोऊनिकरि व्यंजनावग्रह नहीं होयहै। जातैं नेत्रइंद्रिय अर मनइंद्रिय दोऊ अप्राप्यकारी हैं। ये पदार्थतैं भिडिकरि स्पर्शनकरि नहीं जानैहैं दूरिहीतैं जानैहैं। जातैं नेत्र इंद्रिय है सो विनास्पर्श्या सन्मुख आया अर निकट प्राप्त हुवा अर बाह्य सूर्य चंद्रमा दीपकादिककरि प्रगटकीया ऐसा पदार्थकूं जाणैहै। अर मन है सोहू विनास्पर्श्या दूरि तिष्ठता पदार्थकूं विचारमैं लेहै। यातैं इन दोऊइंद्रियनिकै व्यंजनावग्रह नहीं होय है। ऐसैं व्यंजनका अवग्रहही होय अर च्यार इंद्रियनिकरि होय। तातैं

च्यार इंद्रियनिकरि बहु बहुविधादिक बारह भेदकरि गुणिए तब अठतालीस भेद होयहैं। बहुरि पूर्वे कहे
अर्थावग्रहके भेदनिसौं अठ्यासी भेद अर व्यंजनावग्रहके अडतालीस भेद दोऊ मिलिकरि तीनसै छत्तीस भेद
मतिज्ञानके होय हैं। बहुरि जलके नाहैं हस्तीका सूंडिकूं देखि करि जलमैं मग्न जो हस्ती ताका जानना
सो अनिःसृत नामा मतिज्ञान है। अथवा साधनतैं अविनाभावका नियमका निश्चयरूप जो साधन तातैं
साध्यका विज्ञान होना सो अनुमान है। सो अनुमानहू अनिःसृत नामा मतिज्ञानहीमैं गर्भित है। जातैं
साध्य जो हस्ती ताविना सूंडि नहीं होनेका नियमरूप है निश्चय जाका ऐसा साधन जो सूंडि तातैं साध्य
जो हस्ती ताका जानना सो अनुमानप्रमाण मतिज्ञानही है। बहुरि कोऊकै नीका मुखका ग्रहणके काल
होतैं चन्द्रमासमान सो चन्द्रमा ताका ग्रहण होना जातैं मुखका सदृशपणातैं चन्द्रमाका स्मरण होना जो
चन्द्रमासमान मुख है ऐसा प्रत्यभिज्ञान होय है। अथवा वनमैं गोसदृश गवयकूं ग्रहणकरि गौका स्मरण
होना जो गोसदृश गवय है। ऐसा प्रत्यभिज्ञान होय है। तथा जैसैं रसोईमैं अग्निहीतैं धूम उपज्या देख्या
अर तापका कहूंमैं अग्नि बिना अभाव है तातैं कबभी नहीं देख्या तैसैं सर्वदेश सर्वकाल संबंधपणाकरि अ-
ग्निके अर धूमके अन्यथा अनुपपत्ति कहिए अग्नि बिना धूमनहीं ही होय ऐसा अविनाभावसंबंधका ज्ञान
सो तर्क नाम प्रमाण है। ऐसैं अनुमान स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क ए च्यार मतिज्ञानका भेद जो अनिःसृत
तामैं लिया है। ऐसा प्रयोजन है। जातैं अनिःसृतमतिज्ञानके भेद जे अनुमान स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क ए
च्यार एकदेश विशदता जो निर्मलता ताके अभावतैं परोक्षही हैं। बहुरि लोक जे स्पर्शनादि इंद्रिय अर मन
इनका व्यापारतैं उपजै है यहु इन्द्रियज है तिस तिनका ऐसे मतिज्ञान है एकदेश निर्मलतातैं सांव्यव-
हारिक प्रत्यक्ष कहिए है। तो सर्व मतिज्ञान परोक्ष है। और प्रमाण है। अब श्रुतज्ञानका लक्षण कहैं हैं—प्र- ३७५

थम तो मतिज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमतैं मतिज्ञान उपजैहै पाछैं मतिज्ञानकरि ग्रहणकीया पदार्थका अवलंवनकरिकै अर वामैं श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं अधिक अन्य अर्थ जानना सो श्रुतज्ञान है। जहां मतिज्ञानकी प्रवृत्तिका अभाव है तहां श्रुतज्ञानकी प्रवृत्तिकाहू अभाव है। ऐसा नियम है। अव इहां श्रुतज्ञानका प्रकरणविषैं श्रुतज्ञान दोय प्रकार हैं। एक अक्षररूप दूजा अक्षररहित। तिनमैं ककारादिक तो अक्षर हैं अर विभक्त्यंत पद हैं। अर परस्पर अपेक्षासहित पदनिका निरपेक्षसमुदाय सो वाक्य है। सो अक्षर पद वाक्य इनतैं उपज्या अक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो तो प्रधान है मुख्य है। जातैं देना ग्रहण करना शास्त्रनिका अध्ययन इत्यादिक संपूर्ण व्यवहारका कारण तो अक्षरात्मक श्रुतज्ञानही है। अर अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान लिंग चिह्नतैं उपज्या एकेंद्रियादिक पंचेंद्रियपर्यंत जीवनिविषै होयहै। तोहू व्यवहारके प्रवर्त्तावनेमैं प्रधान नाहीं तातैं अप्रधान है। जैसैं जीव विद्यमान है ऐसा शब्दका ज्ञान तो कर्णइंद्रियकरि उपज्या मतिज्ञान है। इस मतिज्ञानतैं जीवका अस्तित्वकूं होतां जो वाच्यवाचकका संवंधका संकेतका जोडपूर्वक जो ज्ञान उपजै है सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। अथवा कोऊ घट ए दोय अक्षर कह्या सो घट ए दोय अक्षरनिका कर्णद्वार जानना सो मतिज्ञान है। अर घटशब्दरूप मतिज्ञानतैं जलका धारण करनेवाला घटका आकार ज्ञानमैं प्रगट होजाना सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। वहुरि जैसैं पवन देहकै लाग्या तदि पवनका शीतस्पर्शका जानना सो तो स्पर्शइंद्रियद्वारै अनक्षरात्मक मतिज्ञान है अर पवनका शीतस्पर्शरूप ज्ञानतैं जो वातप्रकृतिवालाकै यह अमनोज्ञ है विकारकारी है। तथा यो पवन फल फूल उपजावैगा तथा फलफूल विगाडि देगा। मेघ वरसावैगा तथा अभाव करैगा ऐसा ज्ञान प्रगट होना सो अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। इहां श्रुतज्ञान अक्षरात्मक अनक्षरात्मक कह्या। तिनमैं अनक्षरात्मक श्रु-

श्रुतज्ञान है। तहाँ श्रुतज्ञान अक्षरात्मक अनक्षरात्मक कह्या। तिनिमैं अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके भेदनिमैं पर्याय समास है सबतैं जघन्य ताका सौ सर्व जघन्यकूं आदि देकरि ताका उत्कृष्टपर्यंत असंख्यात लोकमात्र भेद हैं। असंख्यातवार षट्स्थानपतितवृद्धि वर्द्धित है। अर अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो एक घाटि एकट्ठीप्रमाण जे अपुनरुक्त अक्षर तिनिमैं आचारादि संख्यातभेदरूप है। सो एक घाटि एकट्ठीप्रमाण जे अपुनरुक्त जे अक्षर तातैं आचारादि संख्यातभेदरूप है। सो एकघाटि एकट्ठीके अक्षरनिका प्रमाण ऐसा बीस अंकरूप जानना ॥१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५॥ अब श्रुतज्ञानके बीस भेद जानना—पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृतप्राभृतक, प्राभृतप्राभृतकसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व, पूर्वसमास ऐसैं श्रुतज्ञानका बीस भेद जानना। तिनिमैं सूक्ष्मनिगोदिया लब्धिअपर्याप्तकके उत्पन्न होनेके प्रथमसमयविषैं आवरणरहित सर्व जघन्यज्ञानरूप पर्यायनामा श्रुतज्ञान है। सो पर्यायज्ञान समस्तज्ञाननिविषैं जघन्यज्ञान है। याकै किछू आवरण नाहीं। जातैं जो आवरण होय तौ ज्ञानका अभाव होय ज्ञानका अभाव होतैं सब जीवनिके आत्माका अभाव होय। यातैं पर्यायज्ञानविषैं अधिक घाटि नैं ठिकाना नहीं यातैं पर्यायज्ञान आवरणरहित है। सो सूक्ष्मनिगोदिया लब्धिअपर्याप्तकके जन्मका प्रथमसमयमैं सर्व जघन्यज्ञाननिविषैं अविभागप्रतिच्छेद अनंतानंत हैं ताका नाम ज्ञात ऐसा अनंतभाग नामा श्रुतज्ञान होय है। ऊपरि याका पर्यायसमास पर्यायज्ञान है अपना अर्थ जो पदार्थ ताके जाननेकी शक्तिकूं लब्धि कहिए। ताहीविषैं जो अक्षर होय लब्धिअक्षर जानना सो इस पर्यायज्ञानके जाननेकी शक्तिरूप अविभागप्रतिच्छेदनिका प्रमाण इतना जानना। द्विरूपवर्गधाराविषैं वर्ग ४ अर दूसरा स्था-

न च्यारका वर्ग १६ तीजा वर्गस्थान २५६ चौथा वर्गस्थान पणाट्ठी ६५५३६ पांचमा वर्गस्थान वादाला ॥ ४२९४९६७२९६ ॥ छठा वर्गस्थान एकट्ठी ॥ १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ ॥ ऐसैं परस्परगुणनरूप अनंतानंतवर्गस्थान गए जीवराशिका प्रमाण उपजै है। बहुरि ताकै ऊपरि अनंतानंतवर्गस्थान गए पुद्गलराशिका प्रमाण उपजै है। बहुरि ताके ऊपरि अनंतानंतवर्ग स्थान गये कालका समयकी राशि उपजै है। वहुरि ताकै उपरि अनंतानंत वर्गस्थान गए आकाशका प्रदेशांकी श्रेणीका प्रमाण उपजै है। वहुरि ताकै ऊपरि अनंतानंत वर्गस्थान गए धर्म अधर्म द्रव्यके अगुरुलघु नाम गुणका अविभागप्रतिच्छेद उपजै है। वहुरि ताकै ऊपरि अनंतानंत वर्गस्थान गए जीवका अगुरुलघुगुणका अविभागप्रतिच्छेद उपजै है। बहुरि ताकै ऊपरि अनंतानंतवर्गस्थान गए सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यज्ञान जो पर्यायज्ञान ताके अविभागप्रतिच्छेद उपजैहै। यातैं सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकका सर्वतैं जघन्यज्ञानकै जाननेकी शक्तिरूप अनंतानंत अविभागप्रतिच्छेद हैं। तिनकै ऊपरि द्वितीयादिक भेद षड्गुणी वृद्धिकरवार्द्धित हैं। अनंत भागवृद्धि[1], असंख्यातभागवृद्धि[2], संख्यातभागवृद्धि[3], संख्यातगुणवृद्धि[4], असंख्यातगुणवृद्धि[5], अनंतगुणवृद्धि[6], ऐसैं असंख्यातलोकप्रमाण षट्स्थानवृद्धिरूप असंख्यातलोकप्रमाण पर्यायसमास ज्ञानके भेद होय हैं सो इन षट्स्थाननिकी वृद्धिका स्वरूप गोमटसार नाम ग्रंथतैं जानना। अर या पर्यायसमासज्ञानतैं अनंतपणा अर्थाक्षरज्ञान है। अक्षर तीन प्रकार हैं। लब्ध्यक्षर[1], निवृत्यक्षर[2], स्थापनाक्षर[3], तिनमैं पर्यायज्ञानावरणनैं आदि लेय श्रुतकेवलज्ञानवरण पर्यंत क्षयोपशमतैं उपजी जो आत्माके अर्थग्रहणकरनेकी शक्ति सो लब्धि कहिए भावेंद्रिय है। तिसरूप जो अक्षर सो लब्ध्यक्षर है। तातैं लब्ध्यक्षरकै अक्षरज्ञानकी उत्पत्तिका हेतुपणा है। वहरि कंठ ओष्ठ ताल्वादिक जे स्थान तिनका स्पर्शनादिक जे कर-

लक्षण स्थान तिनकरि निरूपित कहिए उत्पन्नभया है स्वरूप जाका ऐसा अकारादिक तौ स्वर अर ककारादिक व्यंजनरूप मूलवर्णनिका संयोगादिकका संस्थान सो निरूपित भए हैं। बहुरि पुस्तकनिमैं अनेक-भेदनिका अनुक्रमणिकाकरि लिख्या जो संस्थान सो स्थापनारूप ऐसैं एक अक्षरका श्रवणतैं उपज्या सो अर्थज्ञान सो एकाक्षर श्रुतज्ञान है। ऐसैं जिनेंद्रभगवान् कह्या है। अब ज्ञानका विषयका प्रमाण कहै हैं। जो वचनकरि कह्या नहीं जाय ऐसा केवलज्ञानके गोचर जे भाव कहिए जीवादिक पदार्थ तिनकै अ-नंतवें भाग सो तीर्थंकरका सातिशय दिव्यध्वनिकरि कहनेमैं आवै है। अर दिव्यध्वनिमैं कह्याजाय ति-सके अनंतवें भागमात्र द्वादशांगश्रुतविषै व्याख्यान कीजिए है। सो श्रुत केवलीकै भी गोचर नाहीं ऐसा पदार्थ कहनेकी शक्ति दिव्यध्वनिविषै पाइए है। अर जो दिव्यध्वनि करिभी नहीं कह्याजाय तिस अ-र्थका जाननेकी शक्ति केवलज्ञानही है। अर आगैं अक्षररूप श्रुतज्ञानका कथनविषय प्रथमसूत्रमैं कह्या है तहांतैं जानना। विशेषकथन आगमके उक्त श्रीगोम्मटसारतैं जानना। तथा संक्षेप भगवतीआरा-धनाविषै लिख्या है तहांतैं जानना। बहुरि अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञानका स्वरूप संक्षेप प्रथमअध्यायमैं लिख्या है तातैं इहां नहीं लिख्या।

अब केवलज्ञानका स्वरूप कहिये। जीवद्रव्यकी शक्तिकै प्रमाण जे ज्ञानका अविभाग प्रतिच्छेद जेते है तेते सर्वे व्यक्तिरूप भए इसही कारणतैं समस्त लोकालोकनिकूं अर तीनोंकालनिकैं समस्तपणतैं अंगीकृत-क्रियारूप युगपत्पणाकरि अर निरावरणपणाकरि जो यो ज्ञान संपूर्ण है। अर इंद्रियनिका सहायकी अपेक्षा-रहितपणातैं सकल है। अर अविनाशी च्यारि घातियाकर्मनिका अपनी क्रमरहित इंद्रियरहित अंतरायरहित-पणाकरि समस्तपर्यायनिविषै आत्माका प्रतिबिंबित लोक अलोककूं जाणै सो केवलज्ञान है। ऐसैं ज्ञानस्वरूप-

गा संक्षेपकरि कही। अब संयमप्ररूपणा तेरहमी वर्णन करैहैं। जो पंचव्रतको धारण अर पंचसमितिको पालन अर कषायनिको निग्रह अर अशुभ मनवचनकायको त्याग अर पंच इंद्रियनिको विजय याकूं परमागममैं संयम कह्या है। बादर संज्वलनका उदय होतैं सूक्ष्म लोभका उदय होतैं मोहनीयकर्मका उपशम होतैं अथवा क्षय होतैं नियमकरि संयमभाव होयहैं। सो संयम सात प्रकार है। सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, संयमासंयम, असंयम तिनमैं बादरसंज्वलनका संयमतैं अविरोधी देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होतैं बादरसामायिक छेदोपस्थापन परिहार विशुद्धि ए तीन संयम होय हैं। तहां परिहारविशुद्धि संयम है सो प्रमत्त अप्रमत्त दोऊ गुणस्थानमैंही होयहै। अर सामायिक छेदोपस्थापन ए दोय संयम प्रमत्तादि च्यार गुणस्थाननिमैं होयहै। बहुरि सूक्ष्मकृष्टिकूं प्राप्त भया ऐसा संज्वलनलोभका उदय होतैं सूक्ष्मसांपरायचारित्र होयहै। बहुरि समस्त मोहनीयका उपशमतैं अथवा क्षयतैं यथाख्यात चारित्र होयहै। सो ग्यारमा गुणस्थानमैं तो मोहका उपशमतैंही होय। अर बारमैं तेरमैं चौदमैं मोहनीयका क्षयतैं होय। बहुरि प्रत्याख्यानावरण जो तृतीय कषायका उदयकरि संयतासंयत वा देशसंयत नाम पंचमगुणस्थानी होयहै। अर द्वितीय कषाय जो अप्रत्याख्यानावरणकषायका उदयकरि असंयमभाव नियमकरि होयहै। इहां ऐसा जानना। मैं सर्व सावद्ययोगका त्यागी हूं ऐसा भावकरि भेदरहित समस्तपापका त्यागस्वरूप एकसंयमरूप होना सो सामायिक है। सो सर्वोत्कृष्ट है असदृश है संपूर्ण है दुःखकरि बडा कष्टकरि प्राप्त होनेयोग्य है। ऐसा सामायिकसंयम होयहै। बहुरि जो पूर्वें ग्रहण कीया सामायिकसंयमी होय फेरि संयमतैं छूटिकरि सावद्य जो पापसहित प्रवृत्तिमैं लीन होजाय फिर सावद्यव्यापारकूं प्रायश्चित्तादिककरि छेदि जो आत्माकूं पंच महाव्रतादि धर्मसंयममैं आपकूं स्थापन करै सो छेदोपस्थापन संयम

होयहै। बहुरि जो सामायिकरूप आत्मानुभवकरिकै फेरि आपहीं संयममें स्थापन करै सो छेदोपस्थापना होयहै।
अथवा सामायिक संयममें जो समस्त सावद्ययोगका त्यागरूप भेदरहित संयम ग्रहणकीया था फेरि छेद
जो भेदसहित पंचमहाव्रत पंचसमिति तीन गुप्ति रूप भेदसहित जो संयम सो छेदोपस्थापन है। जो पंचसमिति त्रि-
गुप्तिरूप हुवा सर्वकाल प्राणीनिकी हिंसाका परिहार करै सो परिहारविशुद्धिसंयम होयहै। सो जन्मतें तीस
वर्षका सर्वकाल सुखी रह्यो होय सो दीक्षाग्रहणकरिकै पृथक्त्ववर्षपर्यंत श्रीतीर्थंकरका चरणांके निकट प्र-
त्याख्यान नाम नवमां पूर्व पढ्या होय सो परिहारविशुद्धिनाम ऋद्धिकूं अंगीकार करि तीन संध्याविना
सर्वकालमें दोय कोश प्रमाण नित्य विहार करै। रात्रिविषै विहार नहीं करै। वर्षाकालका नियमरहित है
वर्षाकालमें विहार करै है। परिहरण करिए प्राणीनिकी हिंसातें रहित है। तातैं परिहारविशुद्धिसंयम क-
हिए है। याका जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त है। जातैं परिहारविशुद्धिसंयमकूं छांडि अन्यगुणस्थानकूं प्राप्त हो
जाय संयतै। अर उत्कृष्ट अडतीस वर्षरहित कोटिपूर्वप्रमाण याका काल है। जातैं तीस वर्षपर्यंत सदा-
सुखरूपगृहमें रहिकै दीक्षा धरि पाछै संयमी होय श्रीतीर्थंकरके चरणारविंदके निकट पृथक्त्ववर्षपर्यंत रहै। अर
प्रत्याख्यान नाम नवमां पूर्व पढिकरि पाछै परिहारविशुद्धिसंयमी होय। इहां पृथक्त्ववर्ष तीनकै ऊपरि अर
नवकै नीचै ग्रहण योग्य है तथा आठ वर्षकी आयुमें संयम करिए है। परिहारविशुद्धिसंयमी है सो जलकाय
के जीवनिकरि व्याप्त भूमिमें विहार करतां हूं जीवनिकरि बाधा नहीं होय तैसैं पापमलकरि नहीं लिपै है।
बहुरि सूक्ष्मसांपराय लोभकूं अनुभव करता उपशमश्रेणीका चढनेवाला वा क्षपक सूक्ष्मसांपराय सं-
यमी यथाख्यात चारित्रतें किंचित् न्यून होय है। याकै सूक्ष्मसांपराय नामकी गुणस्थान होय है। बहुरि
समस्त मोहनीय कर्मके उपशम होनेतें वा क्षय होनेतें आत्मस्वभावमें अवस्थितरूप यथाख्यातचारित्र है।

णा संक्षेपकरि कही। अब संयमप्ररूपणा तेरहमी वर्णन करैहैं। जो पंचव्रतको धारण अर पंचसमितिको पालन अर कषायनिको निग्रह अर अशुभ मनवचनकायको त्याग अर पंच इंद्रियनिको विजय याकूं परमागममें संयम कह्या है। बादर संज्वलनका उदय होतैं सूक्ष्म लोभका उदय होतै मोहनीयकर्मका उपशम होतै अथवा क्षय होतै नियमकरि संयमभाव होयहै। सो संयम सात प्रकार है। सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, संयमासंयम, असंयम तिनमैं बादरसंज्वलनका संयमतैं अविरोधी देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होतै बादरसामायिक छेदोपस्थापन परिहार विशुद्धि ए तीन संयम होय हैं। तहां परिहारविशुद्धि संयम है सो प्रमत्त अप्रमत्त दोऊ गुणस्थानमैंही होयहै। अर सामायिक छेदोपस्थापन ए दोय संयम प्रमत्तादि च्यार गुणस्थाननिमैं होयहै। बहुरि सूक्ष्मकृष्टिकूं प्राप्त भया ऐसा संज्वलनलोभका उदय होतै सूक्ष्मसांपरायचारित्र होयहै। बहुरि समस्त मोहनीयका उपशमतैं अथवा क्षयतैं यथाख्यात चारित्र होयहै। सो ग्यारमा गुणस्थानमैं तो मोहका उपशमतैंही होय। अर बारमै तेरमै चोदमै मोहनीयका क्षयतैं होय। बहुरि प्रत्याख्यानावरण जो तृतीय कषायका उदयकरि संयतासंयत वा देशसंयत नाम पंचमगुणस्थानी होयहै। अर द्वितीय कषाय जो अप्रत्याख्यानावरणकषायका उदयकरि असंयमभाव नियमकरि होयहै। इहां ऐसा जानना। मैं सर्व सावद्ययोगका त्यागी हूं ऐसा भावकरि भेदरहित समस्तपापका त्यागस्वरूप एकसंयमरूप होना सो सामायिक है। सो सर्वोत्कृष्ट है असदृश है संपूर्ण है दुःखकरि बडा कष्टकरि प्राप्त होनेयोग्य है। ऐसा सामायिकसंयम होयहै। बहुरि जो पूर्वै ग्रहण कीया सामायिकसंयमी होय फेरि संयमतैं छूटिकरि सावद्य जो पापसहित प्रवृत्तिमैं लीन होजाय फिर सावद्यव्यापारकूं प्रायश्चित्तादिककरि छेदि जो आत्माकूं पंच महाव्रतादि धर्मसंयममैं आपकूं स्थापन करै सो छेदोपस्थापन संयम

होयहै। छेद जो प्रायश्चित्तरूप आचरणकरिकै फेरि आपकूं संयममैं स्थापन करै सो छेदोपस्थापक होयहै। अथवा सामायिक संयममैं तो समस्त सावद्ययोगका त्यागरूप भेदरहित संयम ग्रहणकीया था फेरि छेद जो पंचमहाव्रत पंचसमिति तीन गुप्ति रूप भेदसहित जो संयम सो छेदोपस्थापन है। जो पंचसमिति त्रिगुप्तिरूप हुवा सर्वकाल प्राणीनिका हिंसाका परिहार करै सो परिहारविशुद्धिसंयत होयहै। सो जन्मतैं तीस वर्षका सर्वकाल सुखी रह्यो होय सो दीक्षाग्रहणकरिकै पृथक्त्ववर्षपर्यंत श्रीतीर्थंकरका चरणांकै निकट प्रत्याख्यान नाम नवमां पूर्व पढ्या होय सो परिहारविशुद्धिनाम ऋद्धिकूं अंगीकार करि तीन संध्याविना सर्वकालमैं दोय कोश प्रमाण नित्य विहार करै। रात्रिविषै विहार नहीं करै। वर्षाकालका नियमरहित है वर्षाकालहूमैं विहार करै है। परिहरण कहिए प्राणीनिकी हिंसातैं रहित है। तातैं परिहारविशुद्धिसंयम कहिए है। याका जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त्त है। जातैं परिहारविशुद्धिसंयमकूं छांडि अन्यगुणस्थानकूं प्राप्त हो जाना संभवैहै। अर उत्कृष्ट अडतीस वर्षरहित कोटिपूर्वप्रमाण याका काल है। जातैं तीस वर्षपर्यंत सदासुखरूपकालकूं व्यतीतकरि पाछै संयमी होय श्रीतीर्थंकरकै चरणारविंदकै निकट पृथक्त्ववर्षपर्यंत रहै। अर प्रत्याख्यान नाम नवमी पूर्व पढिकरि पाछैं परिहारविशुद्धसंयमी होय। इहां पृथक्त्वनाम तीनकै ऊपरि अर नवकै माही च्यार पांच छह सात आठकी आगममैं संख्या कहीहै। परिहारविशुद्धसंयमी है सो छहकाय के जीवनिकरि व्याप्तमैं विहार करताहू जैसैं जलकरि कमल नहीं लिपै तैसैं पापसमूहकरि नहीं लिपै है। बहुरि सूक्ष्मकृष्टिगत लोभकूं अनुभव करता उपशमश्रेणीका धारक उपशमक वा क्षपक सूक्ष्मसांपराय संयमी यथाख्यात चारित्रतैं किंचित् न्यून होय है। यामैं सूक्ष्मसांपराय एकही गुणस्थान होय है। बहुरि समस्त मोहनीय कर्मकूं उपशम होतै वा क्षय होनेतैं आत्मस्वभावमैं अवस्थितिरूप यथाख्यातचारित्र है।

सो उपशांतकषायछद्मस्थ तथा क्षीणकषायछद्मस्थ सयोगकेवलीजिन अयोगकेवलीजिन ए यथाख्यात संयमी है। बहुरि जे सम्यग्दृष्टि पंच अणुव्रत तीन गुणव्रत च्यार शिक्षाव्रतनिकरि संयुक्त हुवा निर्जरा करै हैं ते देशसंयमी हैं। तिनका दार्शनिक[1], व्रती[2], सामायिक[3], प्रोषधोपवास[4], सचित्तविरत[5], रात्रिभुक्तिविरत[6], ब्रह्मचारी[7], आरंभविरत[8], परिग्रहत्यागी[9], अनुमतिविरत[10], उद्दिष्टाहारत्यागी[11] ए ग्यारह देशसंयमके भेद हैं। जो पंच उदुंबर जो अभक्ष्यफल तिनकरि सहित सप्तव्यसनका त्याग करै अर सम्यग्दर्शनकरि विशुद्ध जाकी बुद्धि होय सो दार्शनिकश्रावक होयहै। इत्यादि विशेष ग्यारह स्थाननिका कथन श्रावकधर्मका व्याख्यानतें जानना। इहां ग्रंथ वधनेके भयतें विशेष नहीं लिख्याहै। बहुरि चोदह प्रकार जीवनिविषै अठाईस प्रकार इंद्रियनिके विषयनिविषै जाके विरति नहीं सो असंयत है। सो मिथ्यात्व सासादन मिश्र अविरत च्यारि गुणस्थाननिमैं असंयमी हैं। ऐसैं संयममार्गणा नाम तेरमी प्ररूपणा समाप्त करी ॥

अब दर्शनप्ररूपणा चोदमी वर्णन करिए है। सामान्य विशेषात्मक जे पदार्थ तिनका आकार ग्रहण नहीं करिकै वा भेदका ग्रहण नहीं करिकै जो सामान्यग्रहण होय स्वरूपमात्रका प्रकाश होय सो दर्शन है ऐसैं परमागममैं कह्याहै। बाह्य पदार्थनिका जाति क्रिया गुणनिके प्रकारकरि विकल्प भेद नहीं करिकै अर पदार्थका सत्तामात्र यामैं भासनेमैं आवैहै। सो दर्शन च्यार प्रकार है। चक्षुर्दर्शन १, अचक्षुर्दर्शन २, अवधिदर्शन ३, केवलदर्शन ४, तिनमैं जो नेत्रनिकरि सामान्य सत्तामात्र ग्रहण होय सो चक्षुर्दर्शन है। अन्य च्यारि इंद्रियनिकरि जो सामान्य सत्तामात्रका ग्रहण होय सो अचक्षुर्दर्शन है। बहुरि परमाणुकूं आदिकरि महास्कंधपर्यंत मूर्तद्रव्य जितने हैं तितने प्रत्यक्ष देखै सो अवधिदर्शन है। बहुरि समस्त सूर्यादिकनिका प्रकाश जाकूं उपमा नहीं ऐसा लोक अलोककूं तिमिररहित क्रमरहित इंद्रियरहित व्यवधानरहित

प्रकाशै सो केवलदर्शन है। ऐसैं दर्शनमार्गणा नाम चोदमी प्ररूपणा वर्णन करी। अव लेश्या नाम पंद्रमी प्ररूपणा वर्णन करैहैं। द्रव्यभावकरि लेश्या दोय प्रकार है। तिनमैं शरीरका वर्ण सो द्रव्यलेश्या है सो इहां प्रयोजनभूत नहीं। यातैं भावलेश्याका वर्णन करैहैं। कषायनिका उदयकरि रंगी जो मन वचन कायके योगनिकी प्रवृत्ति सो लेश्या है। जाकरि यो जीव आपकूं पुण्य तथा पापकरि लीपै तथा पापपुण्यकूं अंगीकार करै सो लेश्या है। प्रकृतिबंध प्रदेशबंध तो योगनितैं होय हैं। अर स्थितिबंध अर अनुभागबंध कषायनितैं होय है। यातैं कषायनिका रंगसहित योगनिकी प्रवृत्तिरूप लेश्यानितैं च्यार प्रकारका बंध होयही। ऐसा भगवान् कह्या है। लेश्या छह प्रकार है। कृष्ण[1], नील[2], कापोत[3], पीत[4], पद्म[5], शुक्ल[6] ए छह नाम जानने। अब इन लेश्यानिका बाह्यकर्म करनेका स्वभाव कहै हैं। छह पथिक परिभ्रमण करते वनकै मध्य एक फलकरि सहित आमवृक्ष देख्या। तिस आमवृक्षकूं देखि उसके फल भक्षण करनेका छहूं पथिकनिने परिणाममैं ऐसा उपाय चिंतवन किया। कृष्णलेश्याका धारक तो वृक्षको मूलतैं छेदि फल लेनेका विचार किया। अर नीललेश्यावाला डाहला छेदनेका विचार किया। कापोतलेश्यावाला फलनिसहित समस्त डाहली छेदनेका विकल्प किया। पीतलेश्याका धारक वृक्षकै जे फल हैं तिनके ग्रहण करनेका विचार किया। पद्मलेश्यावाले अपने भक्षणयोग्य फल ग्रहण करनेका विचार किया। शुक्ललेश्याका धारक भूमिमैं पड्या फलही भक्षण करनेका विचार किया। ऐसैं इनका कार्य जानना। अब कृष्णादि छह लेश्यानिका लक्षण ऐसा जानना। जो तीव्र क्रोध होय एकबार वैर हुवा पाछैं वैर छांडै नाहीं। भंडनेका बिगाडनेका जाका स्वभाव होय युद्ध करनेका स्वभाव होय धर्मरहित होय दयारहित दुष्ट होय कोऊकै किसीप्रकार वशि नहीं होय राजी नहीं होय ये परिणाम कृष्णलेश्याका धारक जीवकै होय हैं। अब नीललेश्या-

का लक्षण कहैहैं। जो मंद कहिए स्वच्छंदसंज्ञक होय अथवा क्रियाविषै मंद होय बुद्धिविहीन कहिए वर्त्तमानकार्यकूं जाननेमैं समर्थ नहीं होय बहुरि विज्ञान विवेकता रहित होय विषय जे पंचेंद्रियविषै ताका लोलुपी होय मानी अहंकारी होय मायाचारी कुटिल आचरणका धारक होय करनेयोग्य कार्यमैं आलस्ययुक्त होय परको जाका अभिप्राय जाननेमैं नहीं आवै जाकै निद्रा बहुत होय ठगनेमैं वाहुल्यता होय धनधान्यादिकनिमैं तीव्र वांछायुक्त होय ए लक्षण नीललेश्यावानका जानना। अब कपोतलेश्यावानका लक्षण कहैहैं। जो परकै अर्थि कोप करै। अर परकी बहुत निंदा करै। अर परकै बहुतप्रकार दूषण लगावै। अर शोक बहुत करै। अर जाकै भय बहुत होय। अर परकूं सहि न सकै। अर परका तिरस्कार करै अपनी बहुत प्रशंसा करै। अर परकूं आपसमान जाणि परकी प्रतीति नहीं करै। कोऊका विश्वास नहीं करै। अर कोऊ आपकी प्रशंसा स्तवन करै तिस उपरि बहोत राजी होय आनंदित होय। अपनी अर परकी हानिवृद्धि नहीं जानै। अर रणविषैं अपना मरण वांछै। अर कोऊ आपका स्तवन करै वड़ाई करै ताकूं वहोत धन देवै करनेयोग्य नहीं करनेयोग्य विचार नहीं गिणै ए कपोतलेश्यावान जीवके लक्षण हैं। अब तेजोलेश्या जो पीतलेश्यावानका लक्षण कहैहैं। जो करनेयोग्य नहींकरनेयोग्यकूं अर सेवनेयोग्य नहींसेवनेयोग्यकूं जाणै। समस्तमैं समदर्शी होय। दयाविषैं अर दानविषैं जाकै प्रीति होय। अर मनविषैं अर वचनविषैं अर कायविषैं सरल होय ए तेजोलेश्यावानका लक्षण कहे। अव पद्मलेश्यावानकूं कहैहैं। जो त्यागी होय अर भद्रपरिणामी होय अर उत्तम काज करनेका जाका स्वभाव होय शुभकार्य करनेमैं उद्यमी होय। अर जे अनिष्ट उपद्रव आजाय तिनकूं क्लेशरहित सहै। अर साधुनिकी गुरुनिकी पूजामैं जाकै प्रीति होय सो पद्मलेश्याधारक होय है। अब शुक्ललेश्यावानका लक्षण कहैहैं। जो पक्षपात नहीं करै। अर आ-

गामी विषयवांछारूप निदान नहीं करै। अर समस्तस्त्रीनिकूं जननीसमान जानै। वैरी मित्रनिमें समानबुद्धि करै। इष्ट अनिष्टमैं रागद्वेषरहित होय अर पुत्र कलत्र मित्रनिमैं स्नेहरहित होय ए शुक्ललेश्यावान जीवका लक्षण कह्या। ऐसैं छह लेश्याके परिणाम कहे। इन लेश्याके परिणामनिके अनुकूलही च्यारप्रकार आयुका बंध होय है। सो गत्यादिकनिका वर्णन लिखे कथनी बहुत होजाय। याका सोलह अधिकार गोमटसारजीमैं कह्या है कथनी बहुत है सो विशेष जाननैका इच्छुक तहांतैं जानना। संसारपरिभ्रमणही लेश्याकै आधीन है। ऐसैं लेश्याकी प्ररूपणा पंद्रमी कही। अब सोलमी भव्यप्ररूपणा कहैहैं। जीवनिकै अनंतचतुष्टयरूप सिद्धपर्याय होने योग्य है ते भव्य हैं जे सिद्ध होनेयोग्य नहीं ते अभव्य हैं। अर केतेक भव्यअनंतचतुष्टयरूप होनेके योग्य हैं तोहू मोक्ष होनेयोग्य सामग्री अनंतानंतकालहूमें तिनकूं मिलैनहीं। जैसैं सुवर्णपाषाणकूं मल दूरि होनेकी सामग्री नहीं मिलै तदि सुवर्ण पाषाणतैं जुदा नहीं होय तैसैं केतेक भव्यहू अनंतानंत परिवर्त्तन करतैहू बाह्य मनुष्यगत्यादिक अनेक सामग्री मिले विना संसारतैं नहीं छूटैहैं। अर अभव्य हैं ते अंधकपाषाणसमान हैं तिनमैं सिद्ध होनेकी योग्यताही नहीं। ऐसैं भव्यप्ररूपणा सोलमी संक्षेपतैं कही। अब सम्यक्त्व नामा सतरमी प्ररूपणा कहैहैं—भगवान् सर्वज्ञ वीतरागकरि प्ररूपे जे द्रव्यभेदकरि छह प्रकार अस्तिकायभेदकरि पंच प्रकार पदार्थभेदकरि नवप्रकार जीवादिक वस्तुनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। सो दोय प्रकार है। एक तो आज्ञासम्यक्त्व दूजा अधिगमसम्यक्त्व है। सो प्रमाणादिक विना आप्तका वचनका आश्रयकरि किंचित् निर्णयरूप आज्ञाकरि जो श्रद्धान भया सो आज्ञासम्यक्त्व है। अर प्रमाण नय निक्षेप निरुक्ति अनुयोगद्वारकरि विशेषनिर्णयहैलक्षण जाका ऐसा अधिगमसम्यक्त्वहोयहै। सो सम्यक्त्व सराग वीतरागपणातैं दोय प्रकार है। तहां सरागसम्यक्त्व है सो प्रशम संवेग अनुकंपा आस्ति-

क्यरूप है। तहां कषायनिकी उत्कटताको अभाव सो प्रशमभाव है। अर संसार देह भोगनितैं विरक्तता सो संवेग है। अर समस्त जीवनिकै क्लेशका अभाव चाहना सो अनुकंपा है। बहुरि जीवादिक पदार्थ जैसैं अपने स्वभावमैं अवस्थित हैं तैसैं परमागमतैं निश्चय करना सो आस्तिक्य है। तथा आप्तमैं व्रतमैं श्रुतमैं तत्त्वमैं आस्तिक्यरूप सरागसम्यक्त्व है। आत्मविशुद्धतामात्र वीतरागसम्यक्त्व है। प्रदेशनिका समूहरूप बहुप्रदेशी हैं यातैं पंच अस्तिकाय कहिए हैं। बहुरि निरंतर अपने गुणपर्यायनिरूप गमनकरै प्रवर्त्तै तातैं छह द्रव्य कहिए। अर वस्तुका स्वभाव है यातैं तत्त्व कहिए हैं। बहुरि निश्चयकरनेयोग्य है यातैं नवपदार्थ कहिए हैं। ऐसैं पंचास्तिकाय छह द्रव्य सप्त तत्त्व नव पदार्थनिका श्रद्धानकूं सम्यक्त्व कहिए। सो इन तत्त्वनिका लक्षण इस ग्रंथमैं वर्णन है यातैं विशेष इहां नहीं लिख्या है। बहुरि ए सम्यक्त्व तीन प्रकार है। तहां जो दर्शनमोह तीन प्रकार अर च्यार प्रकार अनंतानुबंधी कषायका करणलब्धिका परिणामकी सामर्थ्यतैं क्षयकरिकैं जो निमलश्रद्धान होय सो क्षायिकसम्यग्दर्शन है। सो प्रतिपक्षीकर्मका अभावतैं नित्य है अविनाशी है। आत्मगुणकी विशुद्धतातैं उपज्या तातैं प्रतिसमय गुणश्रेणीरूप निर्जराका कारण है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि वर्त्तमानभवमैंही मुक्त होजाय। तथा देवलोक जाय देवतैं मनुष्य होय निर्वाण जाय तातैं तीन भव भए। अर कोऊ पूर्वैं मिथ्यात्व अवस्थामैं नरक आयुबंध किया होय अर पाछैं क्षायिकसम्यक्त्व होजाय तो प्रथमनरक जाय नरकतैं निकसि मनुष्य होय निर्वाण जाय। ऐसैं तीन भव ग्रहण करै। अर कोऊ पहिलै मनुष्य आयुका वा तिर्यक् आयुका बंध किया होय तो कर्मभूमिका मनुष्य तिर्यंच नहीं होय भोगभूमिमैं मनुष्य तिर्यंच होय मरणकरि कल्पवासी देव होय फिर मनुष्य होय निर्वाण जाय। ऐसैं च्यार भव ग्रहणकरै। इस सिवाय संसारमैं नहीं रहै। बहुरि क्षायिकसम्यग्दृष्टि है सो खोटे उ-

पदेशकरि तथा कुहेतुदृष्टांत तथा इंद्रियनिकै भयका उत्पन्न करनेवाला देव मनुष्य तिर्यंचनिका विकाररूप भेषकरि तथा ग्लानिरूप वस्तुतें उत्पन्न भई ग्लानिकरि तथा बहुत कहनेकरि कहा त्रैलोक्यकरिकैहू क्षायिकसम्यक्त्वी नहीं चलायमान होय है। बहुरि दर्शनमोहका क्षयपणाका आरंभ तो कर्मभूमिका मनुष्य केवली श्रुतकेवलीकै निकटही करैहै। अर निष्ठापन सर्व च्यारिगतिमैं होय है। बहुरि दर्शनमोहनीयका भेद सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होतें अर छह प्रकृतिनिका क्षयोपशम होतें चल मल मलिन अगाढ इन तीन दोषनिकरि सहित जो तत्त्वनिका श्रद्धान सो क्षायोपशम सम्यक्त्व होय है। इहां दर्शनमोहके उदयकूं वेदनेतें अनुभवनैतें याका दूजा नाम वेदकसम्यक्त्व है। बहुरि अनंतानुबंधी च्यार कषायनिका उदयाभाव लक्षण अप्रशस्त उपशमकरि तथा दर्शनमोहकी तीन प्रकृतिनिका अप्रशस्त उपशमकरिकै जैसैं कर्दम जाका नीचैं बैठिगया अर ऊपरि निर्मल जलसमान जो पदार्थनिका श्रद्धान उपजना सो उपशमसम्यक्त्व है। उपशमसम्यक्त्व अंगीकार करनेयोग्य जीवकूं कहैहैं। च्यारूं गतिमैं भव्य संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तक विशुद्ध ज्ञानोपयोगी जाग्रच्छुभलेश्यायुक्तके सम्यक्त्वग्रहण होयहै। ऐसैं तीन सम्यक्त्व कहे। बहुरि मिथ्यात्व सासादन मिश्रका स्वरूप पूर्वै गुणस्थानप्ररूपणामैं कह्या सोही जानना। ऐसैं सम्यक्त्वप्ररूपणा सप्तदशमी वर्णन करी।

अब अठारमी संज्ञाप्ररूपणा वर्णन करैहैं—मनइंद्रियावरणका क्षयोपशमतें उपज्या जो ज्ञान सो संज्ञा है। सो संज्ञा जाकै विद्यमान होय सो संज्ञी कहिए जो शिक्षा क्रिया उपदेश आलापकूं ग्रहण करै सो जीव संज्ञी कहिए है। हितमैं प्रवृत्ति अहितका निषेधरूप जो शिक्षा ताहि ग्रहण करै ऐसा कोऊ मनुष्यादिक अर हस्तपादका चलावनेरूप जो क्रिया ताकूं ग्रहणकरै ऐसा कोऊ बलध इत्यादिक तथा कोरडा चामठी इत्या-

दिककरि मारन ताडन विधानादिक उपदेश इत्यादिककूं ग्रहण करनेवाला कोऊ गजादिक अर श्लोकादिक पाठ सो आलाप ताकूं ग्रहण करनेवाला कोऊ चकोर राजसूवा इत्यादिक इस प्रकार मनका अवलंवनकरिकै शिक्षा क्रिया उपदेश आलापकूं ग्रहण करनेवाला जीवकूं संज्ञी कहिए। अर शिक्षा क्रिया उपदेश आलापके ग्रहण करनेकूं असमर्थ ते जीव असंज्ञी कहिए। बहुरि जे जीव कार्य जो करनेयोग्य ताकूं अर अकार्य कहिए नहीं करनेयोग्यकूं पहलीही विचारै अर तत्त्व अतत्त्वकी शिक्षा ग्रहण करै अर नामकरि बुलाया आवै सो जीव मनसहित है। अर इन लक्षणरहित अमनस्क असंज्ञी हैं ऐसैं संज्ञिमार्गणा नाम अठारमी प्ररूपणा वर्णन करी। अब आहारप्ररूपणा उगणीसमी वर्णन करै हैं—औदारिक वैक्रियिक आहारक ए तीन प्रकार शरीर नामकर्मकी प्रकृतिनिमैं कोऊ एक शरीर नाम कर्मका उदय करिकैं तिस शरीरकै अर वचनकै अर द्रव्यमनकै योग्य जे नोकर्मवर्गणानिका ग्रहण सो आहार है। औदारिकादिक शरीरनिविषै जो उदय आया कोऊ एक शरीरवर्गणा अर भाषावर्गणा अर मनोवर्गणा इनि वर्गणानिका नियमतैं यथायोग्यकालविषै यथायोग्य "आहरति" कहिए ग्रहण करै सो परमागममैं आहार कह्या है। बहुरि विग्रहगतिकूं प्राप्तहुवा जीव अर प्रतरलोकपूरण समुद्घातकूं प्राप्तहुवा सयोगकेवली जिन अर अयोगकेवलीजिन अर सिद्धपरमेष्ठी ए अनाहारक होय हैं। विग्रहगतिनैं प्राप्तहुवा जीव अर प्रतरलोकपूरणअवस्थामैं सयोगीजिन अर अयोगीजिन नोकर्मवर्गणा नहीं ग्रहण करै तातैं अनाहारक है। अन्य समस्तजीव समस्तसमयमैं आहारवर्गणा ग्रहण करैंही हैं तातैं आहारकही हैं। अब समुद्घात केते प्रकार हैं सो कहै हैं। वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात, केवलसमुद्घात, ऐसैं सप्तप्रकार समुद्घात कह्या है। अब समुद्घातका ल-

क्षण कहे हैं। मूलशरीरकूं तौ छांड़ैनाहीं अर कामर्णशरीर तैजसशरीर सहित जीवके प्रदेशनिका शरीरतैं बाहिर निर्गमन सो समुद्घात कहिए है। आहारक अर मारणांतिक दोय समुद्घात तो नियमकरि एकदिशाकोही प्राप्त होय है। जातैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण ऊंचा चौडा आत्माका प्रदेश निकसै सो जहांतांई जाना होय तहांतांई मूलशरीरतैं लेइ तारसा चल्या जाय है। बहुरि अन्य पंचसमुद्घात रहे ते दशोंदिशानिकूं प्राप्त होय हैं। इनविषै यथायोग्य चौडाई लंबाई ऊंचाई पाइए है। ऐसैं आहारकप्ररूपणा उगणीसमी संक्षेपकरि वर्णन करी।

अब उपयोगप्ररूपणा वीसमी वर्णन करैहैं "वसतः गुणपर्यायौ यस्मिन्" इति वस्तु। ऐसैं वस्तुकी निरुक्ति कही। याका अर्थ ऐसा—जामैं गुणपर्याय वसैं सो वस्तु कहिए है। वस्तुका ग्रहणके निमित्त जो ज्ञान प्रवर्तै सो उपयोग है। पदार्थका ग्रहणके निमित्तज्ञानका व्यापार वा ज्ञानका परिणमन वा क्रियाविशेष सो उपयोग कहिए। सो उपयोग दोयप्रकार है। एक साकारोपयोग। एक अनाकारोपयोग। जामैं वस्तुका आकार प्रगट होजाय सो साकारोपयोग अष्टप्रकारका ज्ञान है ताके मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल कुमति कुश्रुत कुअवधि नाम हैं। बहुरि वस्तुकी सत्तामात्र अनाकारग्रहणरूप चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन अवधिदर्शन केवलदर्शन ए च्यार प्रकार दर्शनोपयोग हैं। इहां मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ज्ञानकरिकैं अपना अपना विषयविषै अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत अर्थकूं ग्रहण करनेके अर्थि व्यापारप्रवृत्ति करना सो ज्ञानोपयोग है। सो साकारोपयोग है। बहुरि चक्षुइंद्रियकरिकैं वस्तुका सत्तामात्र सामान्यग्रहण सो चक्षुर्दर्शनोपयोग है। बहुरि चक्षुविना अन्यस्पर्शनआदिक इंद्रियनतैं सत्तामात्र सामान्य ग्रहण सो अचक्षुर्दर्शन है तथा मनकै अचक्षुरिंद्रियपणा है यातैं अचक्षुर्दर्शनकरि वा अवधिदर्शनकरि जीवादिकपदार्थनिमैं विशेषकरिकैं निर्विकल्प

जो अंतर्मुहूर्त्तकाल सामान्य अर्थग्रहणमैं व्यापार लक्षण रूप उपयोग सो अनाकारोपयोग है। समस्तजीवनिका उपयोग लक्षण है। सो अव्याप्ति अतिव्याप्ति असंभवी दोषनिकरि रहित है। जो लक्षण लक्ष्यविषैभी व्यापै अर अलक्ष्यविषैभी व्यापै सो अतिव्याप्तिदोष है। जैसें जीवका लक्षण अमूर्त्तिक कहिए तो अमूर्त्तपना तो जीवविषैभी है अर आकाशादि अजीवविषैभी है। बहुरि जहां लक्ष्यका एकदेशविषै लक्षण पाइए सो अव्याप्तिदोष है। जैसें जीवका लक्षण रागादिक कहिये तो रागादिक संसारीविषै संभवै सिद्धनिविषै संभवै नाहीं तातैं लक्षण अव्याप्तिदोषसहित है। बहुरि लक्ष्यतैं विरोधी लक्षण होइ सो असंभवी है। जैसें जीवका लक्षण जडत्व कहिए सो संभवै नाहीं। ऐसें त्रिदोषरहित उपयोग ही जीवका लक्षण निर्दोष है। ऐसें वीसमी उपयोगप्ररूपणा वर्णनकरी। अब इनमैं अष्ट सांतर्मार्गणा है।

गाथा—उवसमसुहुमाहारे, विगुव्वियामिस्सरणअपज्जत्ते। सासणसम्मे मिस्से, सांतरगा मग्गणा अट्ठ ॥१॥
सत्तादिणा छम्मासा, वास पुद्धतं च बार सुमुहुत्ता। पल्लासंखं तिण्हं, वरमवरं एगसमयो दु ॥२॥

अर्थ—ए सात मार्गणा अंतरालसहित हैं। उपशमसम्यक्त्व[1], सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान[2], आहारकशरीर[3], आहारकमिश्रशरीर[4], वैक्रियिकमिश्र[5], लब्ध्यपर्याप्तमनुष्य[6], सासादनगुणस्थान[7], मिश्रगुणस्थान[8]। इस समस्त त्रैलोक्यमैं उपशमसम्यक्त्ववाला कोऊभी जीव नहीं पाइए तो सप्तदिनपर्यंतका उत्कृष्ट अंतर है। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानका उत्कृष्ट अंतराल छह महिनेका है। आहारक आहारकमिश्र पृथक्त्ववर्षका उत्कृष्ट अंतर है। इहां पृथक्त्व नाम तीन वर्ष ऊपरि नव वर्षके मांहि आगमपठित जानना। अर वैक्रियिकमिश्रका उत्कृष्ट अंतर बारहमुहूर्त्त है बहुरि लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यका अर सासादनगुणस्थानका अर मिश्रगुणस्थानका इन तीनका उत्कृष्ट अंतराल पल्यका असंख्यातवां भागप्रमाण असंख्यातवर्षका अंतराल है। पाछैं कोऊ

होय ही ऐसा नियम है। अर जघन्य अंतर एकसमयका है ऐसा जानना। नानाजीवनिकी अपेक्षा करिकैं कोऊ गुणस्थान वा मार्गणास्थानकूं छांडिकरि अन्यगुणस्थान वा मार्गणास्थानकूं प्राप्तहोयकरिकैं फिर उस-ही गुणस्थान वा मार्गणास्थाननैं नहीं प्राप्त होय तितनैं काल अंतर कहिएहै। सो पूर्वै कहाही है। अब औरहू विशेष जानना। प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहित देशव्रतीका नानाजीवनिकी अपेक्षा चोदह दिनका अंतर है। अर उपशमसम्यक्त्वसाहित महाव्रतीका अंतर नानाजीवनिकी अपेक्षा पंद्रह दिनका अंतर है तथा द्वितीय सिद्धांतकी अपेक्षा तीस दिनका अंतर है। ऐसैं सांतरमार्गणा वर्णनकीया। अब मार्गणानिमैं गुणस्थानका संक्षेप ऐसा जानना। नरकगतिमैं आदिका च्यार गुणस्थान होयहैं। अपर्याप्तअवस्थामैं सासादन अर मिश्र विना दोय गुणस्थान हैं। बहुरि कर्मभूमीके तिर्यंचके पंचगुणस्थान होय हैं। अपर्याप्तमैं मिथ्यात्व सासादन दोयही गुणस्थान होयहैं। भोगभूमिकै तिर्यंचकै आदिका च्यार गुणस्थान होयहैं। अपर्याप्तअवस्थामैं मिश्रविना तीन गुणस्थान होयहैं। बहुरि एकेंद्रिय वेंद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय असैनीपंचेंद्रिय इनके पर्याप्तअवस्थामैं एक मिथ्यात्वही गुणस्थान है। अपर्याप्तमैं मिथ्यात्व सासादन दोयभी होय। पंचेंद्रियकै चोदह गुणस्थान होयहैं। पर्याप्तमैं मिश्रविना तीनगुणस्थानही होय। पृथ्वीकाय अप्काय तेजकाय वायुकाय वनस्पतिकायके पर्याप्तमैं मिथ्यात्वही एक गुणस्थान होयहै। अर अपर्याप्त अवस्थामैं पृथ्वी अप् वनस्पति कायके सासादनभी होय। अर तेजस्काय वायुकायके जीवकै अपर्याप्तमैं मिथ्यात्वही होयहै। योगनिमैं सत्यअनुभयवचनमैं तेरह गुणस्थान हैं। अर सत्यउभयवचनयोगमैं बारह आदिके गुणस्थान हैं। असत्यअनुभयमनोयोगमैं आदिके तेरह अर असत्यउभयमनोयोगमैं आदिके बारह गुणस्थान हैं। औदारिककाययोगमैं आदिके तेरह गुणस्थान हैं। औदारिकमिश्रकाययोगमैं मिथ्यात्व सासादन अविरत अर

सयोगी ए च्यार गुणस्थान हैं। वैक्रियिककाययोगमैं आदिके च्यार गुणस्थान हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमैं मिश्रविना आदिके तीन गुणस्थान हैं । आहारक आहारकमिश्रविषै एक प्रमत्तसंयतनाम छठा गुणस्थान है। कार्मणकाययोगमैं मिथ्यात्व सासादन अविरत अर समुद्घातकी अपेक्षा सयोगी गुणस्थानहू है। अयोगी योगरहित हैं। बहुरि तीन वेदनविषैं आदिके नव गुणस्थानही हैं। ऊपरि वेद नहीं है। बहुरि अनंतानुबंधीकषायमें मिथ्यात्व सासादन दोयही गुणस्थान हैं। अप्रत्याख्यानावरण च्यार कषायनिमैं आदिके च्यार गुणस्थान हैं। प्रत्याख्यानावरणविषैं आदिके पांच गुणस्थान हैं। संज्वलन तीन कषाय ए आदिके नवगुणस्थानपर्यंत हैं। संज्वलनलोभ दशमगुणस्थानपर्यंत है। अर हास्यादिक छह नोकषाय अष्टम गुणस्थानपर्यंत हैं। तीन वेद नवमा गुणस्थानपर्यंत हैं। बहुरि ज्ञानविषै मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान इन तीन ज्ञानविषै अविरतादि बारमा गुणस्थानपर्यंत नवगुणस्थान होयहै। मनःपर्ययज्ञानविषै छठा प्रमत्तगुणस्थानकूं आदि लेय बारमा गुणस्थानताई सप्त हैं। केवलज्ञानविषै सयोगी अयोगी केवलीजिन दोय हैं। सिद्ध हैं ही। कुमति कुश्रुत विभंगविषै मिथ्यात्वादि दोयही गुणस्थान हैं। मिश्रगुणस्थानमैं मिश्रज्ञान है।

अब संयमविषै सामायिक छेदोपस्थापन दोय संयममैं प्रमत्तादिक च्यार गुणस्थान हैं। परिहारविशुद्धिसंयमविषै छठा सातमा दोयही गुणस्थान होय हैं। सूक्ष्मसांपरायचारित्रविषै एक सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान होय है। यथाख्यात संयमविषै उपशांतमोहादिक च्यार गुणस्थान होय हैं। संयमासंयमविषै एक देशसंयमगुणस्थानही होय है। असंयमविषै मिथ्यात्वादि च्यार गुणस्थान होय हैं। दर्शनमार्गणामैं चक्षुअचक्षुदर्शनमें आदिका बारह गुणस्थान होय हैं। अवधिदर्शनविषै अविरतादि नव गुणस्थान हैं। केवलदर्श-

नमैं सयोगी अयोगी दोय गुणस्थान होय हैं। लेश्यामार्गणाविषैकृष्ण नील कापोत लेश्याविषै आदिका च्यारही गुणस्थान होय हैं। पीत पद्मलेश्याविषै मिथ्यात्वादि सप्तगुणस्थान हैं। शुक्ललेश्याविषै मिथ्यात्वादि तेरह गुणस्थान हैं। अयोगी गुणस्थान लेश्यारहित है। भव्यमार्गणामैं भव्यकै चौदह गुणस्थान हैं अभव्यकै एक मिथ्यात्व गुणस्थानही है। सम्यक्त्व मार्गणाविषै उपशमसम्यक्त्वविषै अविरतादि आठ गुणस्थान हैं। क्षयोपशमसम्यक्त्वविषै अविरतादि च्यार गुणस्थान हैं। क्षायिकसम्यक्त्वविषै अविरतादि अयोगीपर्यंत तथा सिद्धहू जानने। संज्ञीमार्गणाविषै संज्ञीकै मिथ्यात्वादि बारह गुणस्थान हैं। असंज्ञीकै पर्याप्तमैं एक मिथ्यात्व अपर्याप्तमैं सासादनहू होय है। आहारकमार्गणामैं आहारक अवस्थामैं मिथ्यात्वादि तेरह अनाहारककै मिथ्यात्व सासादन अविरत सयोगी अयोगी पंच गुणस्थान होय हैं। ऐसैं श्रीगोमटसारासिद्धांतकी आज्ञाप्रमाण वीस प्ररूपणाका वर्णन अतिसंक्षेपतैं कीया। इहां विशेष जाननेका इच्छुक होय सो मूलग्रंथ गोमट्टसारजीकी टीकातैं जानहु इहां प्रयोजन जानि मंदज्ञानीनिकै गुणस्थानादि प्ररूपणाका ज्ञान होनेके अर्थि हमारी बुद्धिप्रमाण लिख्या है। बहुतज्ञानी होय सो इहां प्रमादके वसतैं वा अज्ञानके वसतैं जो भूल चूकि लिख्याहोय सो शुद्ध करदीज्यो। इहां प्रसंग जायगांजायगां गुणस्थानादिकनिका आवै यातैं मंदज्ञानी जानिले तो कथन समझिमैं नीका आजाय यह प्रयोजन जाणि लिख्या है। अब बंधपदार्थ कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः॥ १॥

अर्थ—मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय योग ए पंच बंधके हेतु कहिए कारण हैं। तहां अतत्त्वश्रद्धानरूप जो मिथ्यादर्शन सो दोयप्रकार है। एक तो मिथ्यात्वकर्मके उदयतैं परके उपदेशविनाही तत्त्वार्थका

सयोगी ए च्यार गुणस्थान हैं। वैक्रियिककाययोगमैं आदिके च्यार गुणस्थान हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमैं मिश्रविना आदिके तीन गुणस्थान हैं । आहारक आहारकमिश्रविषै एक प्रमत्तसंयतनाम छठा गुणस्थान है। कार्मणकाययोगमैं मिथ्यात्व सासादन अविरत अर समुद्घातकी अपेक्षा सयोगी गुणस्थानहू है। अयोगी योगरहित हैं। बहुरि तीन वेदनविषैं आदिके नव गुणस्थानही हैं। ऊपरि वेद नहीं हैं। बहुरि अनंतानुबंधीकषायमें मिथ्यात्व सासादन दोयही गुणस्थान हैं। अप्रत्याख्यानावरण च्यार कषायनिमैं आदिके च्यार गुणस्थान हैं। प्रत्याख्यानावरणविषैं आदिके पांच गुणस्थान हैं। संज्वलन तीन कषाय ए आदिके नवगुणस्थानपर्यंत हैं। संज्वलनलोभ दशमगुणस्थानपर्यंत है। अर हास्यादिक छह नोकषाय अष्टम गुणस्थानपर्यंत हैं। तीन वेद नवमा गुणस्थानपर्यंत हैं। बहुरि ज्ञानविषै मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान इन तीन ज्ञानविषै अविरतादि बारमा गुणस्थानपर्यंत नवगुणस्थान होयहैं। मनःपर्ययज्ञानविषै छठा प्रमत्तगुणस्थानकूं आदि लेय बारमा गुणस्थानतांई सप्त हैं। केवलज्ञानविषै सयोगी अयोगी केवलीजिन दोय हैं। सिद्ध हैं ही। कुमति कुश्रुत विभंगविषै मिथ्यात्वादि दोयही गुणस्थान हैं। मिश्रगुणस्थानमैं मिश्रज्ञान है।

अब संयमविषै सामायिक छेदोपस्थापन दोय संयममैं प्रमत्तादिक च्यार गुशस्थान हैं । परिहारविशुद्धिसंयमविषै छठा सातमा दोयही गुणस्थान होय हैं। सूक्ष्मसांपरायचारित्रविषै एक सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान होय है। यथाख्यात संयमविषै उपशांतमोहादिक च्यार गुणस्थान होय हैं। संयमासंयमविषै एक देशसंयमगुणस्थानही होय है। असंयमविषै मिथ्यात्वादि च्यार गुणस्थान होय हैं। दर्शनमार्गणामैं चक्षुअचक्षुदर्शनमैं आदिका बारह गुणस्थान होय हैं। अवधिदर्शनविषै अविरतादि नव गुणस्थान हैं। केवलदर्श-

नमैं सयोगी अयोगी दोय गुणस्थान होय हैं। लेश्यामार्गणाविषैकृष्ण नील कापोत लेश्याविषै आदिका च्यारही गुणस्थान होय हैं। पीत पद्मलेश्याविषै मिथ्यात्वादि सप्तगुणस्थान हैं। शुक्ललेश्याविषै मिथ्यात्वादि तेरह गुणस्थान हैं। अयोगी गुणस्थान लेश्यारहित है। भव्यमार्गणामें भव्यकै चौदह गुणस्थान हैं अभव्यकै एक मिथ्यात्व गुणस्थानही है। सम्यक्त्व मार्गणाविषै उपशमसम्यक्त्वविषै अविरतादि आठ गुणस्थान हैं। क्षयोपशमसम्यक्त्वविषै अविरतादि च्यार गुणस्थान हैं। क्षायिकसम्यक्त्वविषै अविरतादि अयोगीपर्यंत तथा सिद्धहू जानने। संज्ञीमार्गणाविषै संज्ञीकै मिथ्यात्वादि बारह गुणस्थान हैं। असंज्ञीकै पर्याप्तमैं एक मिथ्यात्व अपर्याप्तमैं सासादनहू होय है। आहारकमार्गणामें आहारक अवस्थामें मिथ्यात्वादि तेरह अनाहारककै मिथ्यात्व सासादन अविरत सयोगी अयोगी पंच गुणस्थान होय हैं। ऐसैं श्रीगोमटसारासिद्धांतकी आज्ञाप्रमाण वीस प्ररूपणाका वर्णन अतिसंक्षेपतैं कीया। इहां विशेष जाननेका इच्छुक होय सो मूलग्रंथ गोमट्टसारजीकी टीकातैं जानहु इहां प्रयोजन जानि मंदज्ञानीनिकै गुणस्थानादि प्ररूपणाका ज्ञान होनेके अर्थि हमारी बुद्धिप्रमाण लिख्या है। बहुतज्ञानी होय सो इहां प्रमादके वसतैं वा अज्ञानके वसतैं जो भूल चूकि लिख्याहोय सो शुद्ध करदीज्यो। इहां प्रसंग जायगांजायगां गुणस्थानादिकनिका आवै यातैं मंदज्ञानी जानिले तो कथन समझिमें नीका आजाय यह प्रयोजन जाणि लिख्या है। अब बंधपदार्थ कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः ॥ १ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय योग ए पंच बंधके हेतु कहिए कारण हैं। तहां अतत्त्वश्रद्धानरूप जो मिथ्यादर्शन सो दोयप्रकार है। एक तो मिथ्यात्वकर्मके उदयतैं परके उपदेशविनाही तत्त्वार्थका

श्रद्धानका अभावरूप आत्माका परिणाम सो नैसर्गिकमिथ्यात्व है। सो एकेंद्रियादिक सर्व संसारीजीवनिकै अनादितैं प्रवर्त्तैहै। याहीकूं अगृहीतमिथ्यात्व कहिए है। बहुरि जो मिथ्यात्व खोटे मिथ्यादृष्टि अन्यपुरुषनिके उपदेशतैं प्रवर्त्तैं तथा मिथ्याशास्त्रका श्रवणतैं मिथ्यागुरुके उपदेशतैं प्रवर्त्तै सो परका उपदेश है निमित्त जाकूं ऐसा गृहीतामिथ्यात्व कहिए है सो बडा कठिन है। इहां मिथ्यात्व कह्या सो एकांत विपरीत संशय विनय अज्ञान भेदकरि पंचप्रकार है। तिनमैं अनेकधर्मरूपजो वस्तु तिस वस्तुका एकधर्मग्रहणकरि सर्वथा एकांतरूप ही निश्चयकरै सो एकांतमिथ्यादृष्टि है। ताका विशेष ऐसा जो—वस्तुकूं अस्तिरूपही कहैं, वा सर्वथा नास्तिरूपही कहैं, सर्वथा एक रूपही कहैं सर्वथा अनेकरूपही कहैं, सर्वथा नित्य वा अनित्यही कहैं, गुणपर्यायनितैं सर्वथा भिन्नाही कहैं, सर्वथा अभिन्नाही कहैं नयकी अपेक्षाविना सर्वथा वस्तुका स्वरूप कहना सो एकांतमिथ्यात्व है। तिनमैं कालवादी तो सर्वथा कालहीकूं कर्त्ता मानै हैं। जो कालही समस्तकूं उपजावै है। कालही समस्तका नाश करै है। कालही निद्राकूं प्राप्त करै है। कालही जागृत करै है। कालही फलपुष्पादिककरि युक्त करै कालही रहित करै है। कालही संयोग वियोग करै है। कालही समस्तकूं जीर्ण करै है। तातैं समस्तजगतकी रचनाका कारण कालही है। ऐसैं कालहीका सर्वथा एकांत करै हैं। कितनेही ईश्वरका एकांत करै हैं। आत्मा तो अज्ञानी है अनाथ है। आत्माके सुख, दुःख, जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, ज्ञानीपणा, अज्ञानीपणा, पापीपणा, धर्मीपणा स्वर्गगमन नरकगमन समस्त ईश्वर करै है। तथा संसारका कर्त्ताभी ईश्वर है हरताहू ईश्वरही है। ईश्वरतैं ही समस्तकी उत्पत्ति प्रलय है। ऐसैं ईश्वरकी कल्पनाकरि सर्वथा एकांत करैं हैं। बहुरि कितनेही आत्मवादी समस्तकूं एक आत्माही कहै हैं। जो आत्मा जगतमैं एकही है सो सर्वव्यापी है महान् है पुरुष है देव है सर्वांगनिगूढ है सचेतन है निर्गु-

ण है उत्कृष्ट है इत्यादि स्वरूप आत्माकूं सर्वथा प्ररूपै हैं। बहुरि कोऊ भावीकूंही प्रधानकरि कहै हैं। जो जाकै जैसा होना है सो नियमतैं होयगा तिसकूं इंद्रहू अन्यप्रकार करनेकूं समर्थ नाहीं। ऐसैं भवितव्यताकाही एकांत करै हैं। बहुरि कोऊ स्वभावहीका एकांत करै हैं। जो कंटकांनै तीक्ष्ण कोन करै हैं। मयूरनैं चित्रविचित्र कोन करै हैं। कमलनिकों सुगंध कोन करै हैं। मृग शूकर सिंह व्याघ्र सर्प पक्षी इत्यादिकनिके भिन्नाभिन्न रूप कौन करै इनको स्वभावही कारण कहै हैं। ऐसैं स्वभावका सर्वथा एकांत करैं हैं। बहुरि केई सर्वथा पुरुषार्थतैंही कार्यकी सिद्धि कहै हैं। केई पुरुषार्थरहित देवबलतैं ही कार्यकी सिद्धि कहै हैं। बहुरि केई संयोगतैंही कार्यकी सिद्धि कहै हैं। संयोगविना कोऊ कार्य सिद्ध नहीं होइ सकै हैं ऐसैं अपेक्षरहित जितने नयवादी हैं ते सर्वथापणातैं एकांतामिथ्यात्वरूप हैं बहुरि अहिंसादिक समीचीन धर्मका फल स्वर्गादिकका सुख है। ताकूं हिंसारूप यज्ञादिकका फल मानना सो विपरीत मिथ्यात्व है। अर जो हिंसाही धर्मका कारण है तो मत्स्यनिके मारनेवाले धीवरादिक अर पक्षीनिके मारनेवाले शाकुनिक अर सूकरादिकनिके मारनेवाले सौकरादिकनिकै धर्मकी प्राप्ति होनेका प्रसंग आवै। तातैं हिंसातैं धर्म कदाचित् नहीं होय है। अर जो या कहोहो जो यज्ञविषै पशुका मरण पापकै अर्थि नहीं है अर अन्यमें पाप अर्थिही है ऐसा कहनाभी योग्य नहीं दोऊ स्थानमें मारण है सो तो दुःखका कारण समानही है। यज्ञबाहिर जैसा मरणमें दुःख होय तैसाही यज्ञमें होय। अर जो या कहो जो स्वयंभू स्वयंमेव यज्ञकै अर्थिही पशु रचे हैं तातैं यज्ञमें मारनेमें पाप नहीं है तो पशुनिऊपरि चढना क्रयविक्रयादि करना ये अयोग्य है जो भगवान् तो यज्ञवास्तैं रचे अर फिर चढना सो भगवान्की आज्ञातैं पराङ्मुख भया। बहुरि जो ईश्वर अपने सेवकादिकनितैं यज्ञमें पशु मराय स्वर्ग देहै तो विनायज्ञही स्वर्ग क्यों नहीं पहुचावै। अर जो कहोगे

करनीविना स्वर्ग कैसैं दे, ताकूं कहिए जो करनी करावनेवालाभी तो ईश्वरही है ऐसी खोटी करनी करा-
य स्वर्ग देहै तो परोपकारादि भली करनी कराय स्वर्ग क्यों नहीं देवै अर जो कहोगे जैसैं मंत्रका साम-
र्थ्यतैं दीया विष है सो मरणका कारण नहीं होय है। तैसैं वेदोक्तमंत्रनिकै संस्कारपूर्वक पशुका मरण पाप
का कारण नहीं है। सो यह कहनाभी नहीं बनै है जातैं रज्जु इत्यादिकविनाही मंत्रका प्रभावतैं यज्ञमैं स्वय-
मेव पशु आय पडै तदि तो मंत्रका प्रभावही मानिए सो है नाहीं। बहुरि मंत्रतैं हू मारिए तोहू जैसैं शस्त्रा-
दिककरि प्राणीनिकूं मारनेवालेकै अशुभ अभिप्रायतैं पापका बंध होय है तैसैंही मंत्रकरि मारनेवालेकैहू
पापकाही बंध होय है। बहुरि स्त्रीनिमैं लंपटी क्षुधा तृषादिकसहितकूं तथा कामी क्रोधीनिकूं परमात्मा
परमेश्वर मानना। संसारमैं उत्पन्न जीव हैं तिनका उपकार अपकार प्रलय करनेवालेनिकूं कृतकृत्य मा-
नना तथा ग्रंथसहितकूं निर्ग्रंथ मानना। केवलीकूं कवलाहारी मानना। पञ्चभर्त्तारीकूं सती मानना। गृह-
स्थकै केवलज्ञानकी उत्पत्ति मानना। इत्यादिक विपरीत मिथ्यात्वकी जाति हैं।

बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकूं मोक्षमार्ग कह्या सो एही मोक्षमार्ग हैं कि अन्य, समस्तमतनिमैं भिन्न-
भिन्न मार्ग प्ररूपैं हैं सो परस्पर वचनमैं विरूद्धता कोऊ प्रत्यक्ष जाननेवाला सर्वज्ञ है नहीं शास्त्र परस्पर
मिलै नहीं तातैं कोऊ निश्चयतैं निर्णय नहीं होय सकै है इत्यादिक अभिप्राय सो संशयमिथ्यात्व है। ब-
हुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतप संयमध्यानादिकनिकी अपेक्षारहित गुरुनिके पादपूजनादिक विनयकरि
ही मुक्ति मानै सो विनयमिथ्यात्व है। तथा सर्व देवनिका सर्वशास्त्रनिका सर्वमतनिकूं समस्तभेषीनिकूं
समान मानि समस्तका विनय करै अर विनयमात्रतैंही अपना कल्याण होना मानै सो विनयमिथ्यात्व है
बहुरि जो हित अहित परीक्षारहित परिणाम सो अज्ञानमिथ्यात्व है। जाकै ऐसा विचार होइ जो स्वर्ग

तथा मुक्ति नरक कोन देख्या, स्वर्गका समाचार कोनकै आया, पापपुण्य कहां लगै अर पापपुण्य कहा वस्तु है परलोककों कोन जानै कोनकै स्वर्गतैं समाचार आया स्वर्ग नरक समस्त कहनेमात्र हैं। इहांही स्वर्ग नरक है सुख भोगै सो स्वर्ग है दुःख भोगै सो नरक है अर हिंसाकूं पाप कहैहैं अर दयाकूं धर्म कहैहैं सो कहनेमात्र है कोऊ ठिकाना हिंसारहित नहीं है। सबमैं हिंसा है कहू पांव धरनेकूं ठिकाना नहीं है। अर ए भक्ष्य हैं ए अभक्ष्य हैं ऐसा विचारभी निरर्थक है। एकेंद्रिय वृक्ष अन्नादिक भक्षण करनेमैं अर मांसभक्षणकरनेमैं तफावत नाहीं अर दोऊनिमैंही जीवहिंसा समान है अर जीवनिकै जीवनिकाही आहार भगवान् बताया है अर जगतमैं समस्तवस्तु खावनेभोगनेकूंही है इत्यादिक अभिप्रायरूप अज्ञानमिथ्यात्व है। ऐसैं तो मिथ्यात्वको बंधका कारण कह्या। बहुरि छह कायके जीवनिकी विराधनाका त्याग नहीं करना अर पांच इंद्रिय अर छठा मन इनिकूं विषयनितैं नहीं रोकना सो बारह प्रकार अविरत हैं सो कर्मबंधका कारण हैं। बहुरि भावशुद्धि कायशुद्धि विनयशुद्धि ईर्यापथशुद्धि भैक्ष्यशुद्धि शयनासनशुद्धि प्रतिष्ठापनशुद्धि वाक्यशुद्धि ऐसैं अष्टप्रकार शुद्धि अर दशलक्षण धर्म इनविषै उत्साहरहित परिणाम होइ मंदोद्यमी होइ सो प्रमाद है। अथवा स्त्रीकथा राजकथा भोजनकथा देशकथा ऐसैं च्यार विकथा अर क्रोध मान माया लोभ ए च्यार कषाय अर पंच इंद्रिय अर निद्रा अर स्नेह ऐसैं प्रमादके पनरह भेद हैं। इनमैंतैं कोऊ प्रमादमैं ऐसा लीन होइ जो आपकी अर परकी हेयकी उपादेयकी समालि भूलि असावधान होजाय सो प्रमाद है। सो ए प्रमाद कर्मबंधके कारण हैं। अर पचीस कषाय अर मन वचन कायके पंद्रहू योग ए समस्तहू अर भिन्नाभिन्नहू कर्मबंध होनेकूं कारण हैं। तिनमैं मिथ्यात्वगुणस्थानमैं मिथ्यादर्शनादि पंच बंधके कारण हैं। अर सासादन मिश्र अविरत इन तीन गुणस्थाननिमैं मिथ्यात्वविना अविरत प्रमाद

कषाय योग ए च्यार बंधके कारण हैं। अर देशवूत है सो संयतासंयत है इसमैं विरतपणाहू है अर अविरतपणाहू है। तातैं च्यारोंही बंधका कारण हैं। बहुरि प्रमत्तसंयतगुणस्थानमैं प्रमाद कषाय योग ए तीनही बंधके कारण हैं। बहुरि अप्रमत्तादि च्यार गुणस्थाननिमैं कषाय अर योग दोय ही बंधके कारण हैं बहुरि उपशांतकषाय क्षीणकषाय सयोगकेवली इन तीन गुणस्थाननिमैं केवल योग करिही कर्मका बंध होयहै। बहुरि अयोगकेवली बंधरहित है। ऐसैं संसार अवस्थामैं आत्मा अनादिकालका कर्मरूप पुद्गलस्कंधनितैं मिलरह्या तातैं संसारअवस्थामैं कथंचित् मूर्तिक कहिए है। तातैं नवीन कर्मका बंध होता जाय है पुरातन निर्जरता जाय है। जैसैं सुवर्ण अर पाषाणकै अनादिका संबंध है तैसैं जीवपुद्गलकै अनादिहीका संबंध है जब रत्नत्रयकी परिपूर्णता होइ तदि भिन्नाभिन्न होय है। ऐसैं बंधके कारण कहे । अब बंधके स्वरूपकूं कहे हैं—

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बंधः ॥ २ ॥

अर्थ—जीव है सो कषायसहितपणातैं कर्मयोग्य पुद्गलनिकूं ग्रहण करैहै सो बंध है। समस्तलोक ऊपरि नीचैं सर्वतरफतैं पुद्गलनिकरि गाढा गाढा भरया हैं। ते पुद्गल अनेकप्रकार परिणामनकी योग्यताकूं प्राप्त होरहे हैं। तिनमैं अनंतानंत पुद्गलपरमाणु कर्म होनेयोग्यहू समस्तलोकमैं भरे हैं। जहां आत्माके प्रदेश हैं तहांहू तिष्ठै हैं। जब यह आत्मा योगद्वारै सकंप होय कषायसहित होय है तदि समस्त तरफतैं समस्त आत्माके प्रदेशनिकरि कर्मयोग्य पुद्गलनिका ग्रहण होना सो बंध है। जैसैं तप्तायमान लोहका गोला जलके मध्य समस्त तरफतैं जलकूं ग्रहण करै है। तैसैं योग कषायनिकरि कर्मयोग्य पुद्गलनिका ग्रहण होय है बहुरि जैसैं उदरविषै जठराग्निका आशयकै अनुसार आहारका खल रस भागादिरूप परिणमन होय है।

तैसैं तीव्र मंद मध्यकषायके आशयकै अनुकूल कर्मनिका स्थितिबंध अर अनुभागबंध होय है। जातें मि-थ्यादर्शनादिकका आश्रयतैं आर्द्र जो आत्मा ताकै सर्वतरफतैं योगनिके विशेषतैं सूक्ष्म एक क्षेत्रमैं अवगाहकरि तिष्ठते अनंतप्रदेशरूप कर्म होनेके योग्य ऐसे पुद्गलनिका आत्मातैं एकक्षेत्रावगाहरूपकरि परस्पर मिलना सो बंध है। ऐसैं कहिए हैं जैसैं भाजनविशेषमैं क्षेपे जे नानारस बीज फल फूल तिनका मदिराभाव परिणाम होय है। तेसैंही आत्माविषै तिष्ठते पुद्गलनिका योग कषायके वशतैं कर्मभावकरि परिणमन जानना योग्य है। ऐसैं कार्मणवर्गणानिका आत्मातैं विभागरहित एकत्वपनाकरियुक्त होना सो बंध है। ज्ञान दर्शन अव्याबाध श्रद्धान अवगाहन सूक्ष्मता अगुरुलघुत्व अनंतवीर्य लक्षण पुरुषका सामर्थ्यकूं बांधे है रोकैहै तातैं बंध कहिए है। जैसैं कोठ्यारमैं धानका निकलनाभी होय अर प्रवेशकरनाभी होय अर संचयभी बन्या रहैहै तैसैं सिद्धराशिके अनंतवैं भाग अर अभव्यराशितैं अनंतगुणा ऐसा मध्य अनंतप्रमाण कर्मपरमाणु समयसमय नवीन बंधैहैं अर इतनाही निर्जरैहैं ताहि समयप्रवद्धकाहिए है। अर ड्योढगुणहानिगुणित समयप्रवद्धमात्र सासतो सत्तामैं कर्म मोजूद रहैहै सो याका हिसाब विस्तारसहित गोमटसारजीमैं है तहांतैं जानना इहां लिख्यां कथनी विशेष है ग्रंथ बधै है। अब बंधका प्रकार कहैहैं—

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध, प्रदेशबंध ऐसैं बंध च्यार प्रकार हैं। तहां छह प्रकृति तो स्वभावकूं कहिएहै। जैसैं निंबका स्वभाव कटुक है सांटाका स्वभाव मीठा है। तैसैं समस्त कर्मपुद्गलप्रकृति जो अपना स्वभाव तिसकरि सहित है। ज्ञानावरणकी प्रकृति ज्ञानकूं आच्छादन करनेकी है। जैसैं देवताका मुखऊपरि वस्त्र होय तादि देवताकी प्रतिमा है ऐसा सामान्य तो जाण्याजाय परंतु विशेष रंग रूप मुख

हस्त पाद नेत्र नासिका नहीं जानी जाय ऐसा ज्ञानावरणकर्म है सो समस्त वस्तुकूं जाननै नहीं देवैहै। बहुरि दर्शनावरणकी प्रकृति है सो दर्शनकूं आच्छादन करैहै। जैसें द्वारपाल द्वारमांही प्रवेशही नहीं करनेदेय यातें सामान्य हू नहीं जान्या जाय है। बहुरि वेदनीयकी कहा प्रकृति है-सुखदुःखकूं उत्पन्न करने की है। जैसें मधुकरि लिप्त खड्गकी धारा है। मोहनीय कर्मकी कहा प्रकृति है-मद्य धत्तूर मक्खन कोद्रवकी ज्यों मोहोत्पादनता अचेतनता करता है। आयुकी कहा प्रकृति है-जैसें बेडीमें खोडेमें पग जाका ऐसा पुरुष नहीं निकलिसकै तैसें भवकूं धारणकरि आयुपूर्ण भएविना भवमैंतें नहीं निकसने देहै। बहुरि नामकर्मकी कहा प्रकृति है-चित्रकारी जो नरनारकादि नानाप्रकार शरीरादि करनेरूप है। बहुरि गोत्रकर्मकी कहा प्रकृति है-कुंभकारीकी ज्यों उच्च नीचपणाने प्राप्त करना है। अंतरायकी कहा प्रकृति है-भंडारीकी ज्यों देनेलेनेमें विघ्न करना है। ऐसें स्वभावकूं प्रकृति कहिए है। बहुरि जे बंधकूं प्राप्त भई प्रकृति ते जितने कालतांई अपने स्वभावकूं नाहीं छांडै सो स्थिति है। जैसें ज्ञानावरणका स्वभाव ज्ञान प्रगट नहीं होनेदेनेरूप है सो तिस रूप स्वभावकूं जबतांई नहीं छांडै सो स्थितिबंध है। बहुरि जैसें छेली गौ भैंस इनके दुग्धमें तीव्र मंदादिभावकरिकैं रसविशेष है तैसें कर्मप्रकृतिमें तीव्र मंद रस देनेकी शक्ति सो अनुभव है याहीकूं अनुभागबंध कहै हैं। बहुरि कर्मभावरूप परिणए पुद्गलस्कंध तिनका परमाणुके प्रमाणकरि निश्चय सो प्रदेश है। इनि पुद्गलनिके प्रदेशनिका जीवके प्रदेशनिकरि मिलना सो प्रदेशबंध है। ऐसें बंधके च्यार भेद हैं। इहां सूत्रमें विधिशब्द प्रकारवाची है तातें ए समस्त प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश ए बंधके प्रकार हैं तहां प्रकृतिबंध अर प्रदेशबंध ये दोय तो योगनिके निमित्ततें होयहैं। अर स्थितिबंध अर अनुभागबंध ए दोऊं कषायनिके निमित्ततें होयहैं। इन योगकषायनिकी हीनअधिकतातें बंधके हू विचित्रपना है। इहां कोऊ

आशंका करै कि पुद्गल तो जड है अचेतन है इनकै प्रकृत्यादिरूप अनेकप्रकार परिणमन अर रस देनेका सामर्थ्य कैसैं संभवै। ताकूं कहिए है—जो अचेतन जड पुद्गलनिकै तो बडा सामर्थ्य है। जैसैं उदरमैं प्राप्त भया भोजनरूप पुद्गल सो एकक्षणमात्रमैं रुधिर मांस हाड चाम वीर्य मल मूत्र केश नख वात पित्त कफादिक नाना प्रकार परिणमनकूं प्राप्त होय है। अर क्रमतैं अपना प्रभाव प्रगटकरि भोगावै है। वेदनाकूं दूरि करैहै तथा बहुतकाल तांई वेदनाकूं वधावै है। तथा औषधादि खाया हुवा बहुतवर्षपर्यंत अपना भला बुरा रस देहै अथवा औषधभक्षण किया हुवा बहुतकाल रस नहीं देहै। अर कालांतरमैं अपना उदयकै योग्य आहार पान तथा क्षेत्र कालादिकनिका निमित्त पाय उदय आवै है। तैसैं कर्मपुद्गलनिकाभी सामर्थ्य जानना। बहुरि श्वानविषादिक तथा पारो हींगलू मृगांक तामेश्वरादिक बाह्यनिमित्त मिले उदयकूं प्राप्त होयहैं। निमित्त नहीं मिलै तेते शरीरमैं मिल्या रहै अपना रस नहीं देवै तैसैं कर्मपुद्गलनिकाहू स्वभाव जानना। बाह्यनिमित्त मिले रस देवैहैं। तथा मणि मंत्र औषधादिक तथा वचनपुद्गलादिक ए नानाप्रकार सामर्थ्यरूप प्रगट देखिए हैं। तैसैं कर्मपुद्गलनिका सामर्थ्य जानहु। अब प्रकृतिबंध मूल उत्तरके भेदतैं दोयप्रकार है। तिनमैं मूलप्रकृति कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

**आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायाः ॥ ४ ॥** ४

अर्थ—आद्य कहिए प्रथम जो प्रकृतिबंध ताके ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय आयु नाम गोत्र अंतराय ए अष्ट भेद हैं। कर्मप्रकृतिनिका अष्ट प्रकार स्वभाव है। प्रकृति कहो शील कहो वा स्वभाव कहो। जो कारणांतरकी अपेक्षा नहीं करै ताकूं स्वभाव कहिए है। जैसैं अग्निका ऊर्ध्वगमनस्वभाव है। पवनका तिर्यग्गमनस्वभाव है। जलका अधोगमनस्वभाव है। अर स्वभाव है सो कोऊ स्वभाववान्की

अपेक्षा करै है। यातैं ये ज्ञानवरणादिक कोनका स्वभाव हैं ऐसैं कहो तो ये जीव अर कर्म दोऊनिका स्वभाव हैं। तिनमैं आत्माका स्वभाव तो ज्ञान है रागादिक स्वभाव नहीं परंतु मोहनीयके निमित्ततैं ज्ञानका ज्ञानस्वभावहू राग द्वेष मोहरूप होइ विभावरूपपरिणातिनैं प्राप्त होय है। जैसैं स्फटिकमणि डाकके संयोगतैं विकारी हुवा दीखै तैसैं विभावपरिणमनशक्तिहू ज्ञानहीकी है तातैं यो ज्ञान अज्ञानीपणानैं प्राप्त होइ रागादिरूप परिणतिनै प्राप्त हो रह्या है। अर रागादिकनिका उत्पादपणा कर्मका स्वभाव है। अब इहां कोऊ कहै—ऐसैं तो इतरेतराश्रय दोष आया सो नहीं है। जातैं इनकै सादिसंबंध होइ जब इतरेतराश्रय दोष आवै। जीवकर्मकै तो कनकपाषणमैं सुवर्ण अर मलका संबंधकी ज्यों अनादिसंबंध है। याहीतैं अमूर्तजीव मूर्तिककर्मकरि बंधै है। अर जो या कहो जीवकर्मका अस्तित्व कैसैं सिद्ध है। ताकूं कहैहैं—अहं सुखी अहं दुःखी इत्यादि अनुभवतैं तो आत्माका अस्तित्व स्वतःसिद्ध है। अर एक धनवान् एक दरिद्र इत्यादि विचित्रपरिणामनतैं कर्मका अस्तित्वकै हू स्वतःसिद्धपना है। ज्ञानकूं जो आवरण कहिए आच्छादन करै सो ज्ञानावरण है। दर्शनकूं आवरण करै सो दर्शनावरण है। जो वेदिए सो वेदनीय है। सुखदुःखका उत्पादकपणा वेदनीयकर्मका कार्य है। जो मोहित करै जाकरि मोहनै प्राप्त होय सो मोहनीय है जिसकरि नरकादिकभवनिकूं प्राप्त होइ सो आयु है। नारकादि नानारूप करै सो नाम है। जाकरि उच्च नीच कहाइए उच्चनीचपणानैं प्राप्तकरै सो गोत्र है। दातार दे याचकादिकनिकै मध्य प्राप्त होइ विघ्न करै सो अंतराय है। कोऊ या कहै—जो हित अहितकी परीक्षाका अभाव करनेतैं ज्ञानावरण अर मोह ए एकही दीखै हैं। ताकूं कहिए है। इनकै जुदापणा है। वस्तुका जैसा स्वरूप है तैसा जाणै तोहू यह ऐसैंही है इस प्रकार श्रद्धानका नहीं उपजने देना सो मोह है। अर वस्तुकूं जानने नहीं दे सो ज्ञाना-

वरण है। अब कोऊ कहै—पुद्गलद्रव्य एक है तिसकै आवरण करना अर सुख दुःखादिककूंहू उपजावना ऐसैं अनेककार्य करनेमैं विरोध है। ताकूं कहिए ए दोष नहीं है। जैसैं एक अग्निकै दग्धकरना पकावना प्रतापरूप होना प्रकाशकरना इत्यादि अनेककार्य विरोधकूं नही प्राप्त होय है। तैसैं एकपुद्गलद्रव्यकैहू आवरण अर सुखदुःखादिका निमित्तपणा विरोधनै नहीं प्राप्त होय है। बहुरि कर्मके भेद हैं ते शब्दकी अपेक्षा तो एकतैं लेय संख्यात जानने। सामान्यकरि तो कर्मबंध एक है। जैसैं सेना एक है। वन एक है। अर विशेषकी अपेक्षा सेनामैं हस्ती घोडा स्वामी सेवकादि अनेकभेद हैं। वनमैं अशोक बकुल तिलकादि अनेक भेद हैं। तैसैंही विशेषकी अपेक्षातैं पुण्यपापके भेदतैं दोय प्रकार है। अनादिसांत, अनादिअनंत सादिसांत ऐसैं तीन भेद हैं । अथवा भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित ऐसैं हू तीन भेद हैं। प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशतैं च्यार प्रकार है। द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव रूप निमित्तके भेदतैं पंच प्रकार हैं। षट्जीवनिकायके भेदतैं छह प्रकार हैं। राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ रूप हेतुके भेदतैं सप्त प्रकार हैं। ज्ञानावरणादि विकल्पतैं अष्ट प्रकार हैं। ऐसैं संख्येयभेद हैं। अर अध्यवसाय स्थानके भेदतैं असंख्येय भेदरूप हैं। पुद्गल परमाणुरूप स्कंधके भेदतैं अनंतभेदरूप हैं तथा अविभागपरिच्छेदनिकी अपेक्षा अनंतभेद हैं। कर्म दोय प्रकार हैं। तिनमैं ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय ए च्यार कर्म हैं ते जीवका ज्ञान दर्शन वीर्य सम्यक्त्व चारित्र दान लाभादिगुणनिकूं घातै हैं नष्ट करै हैं तातैं घातिसंज्ञाकूं धारै हैं। अर आयु नाम गोत्र वेदनीय ए च्यार कर्म ज्ञानावरणादिककी ज्यों जीवका गुणनिका घात नहीं करैहैं तातैं अघातिसंज्ञाकूं धारै हैं।

अब इन अष्टकर्मनिके कहनेका अनुक्रमकी उत्पत्तिकूं कहै हैं—तहां ज्ञान है सो आत्माके अधिगमका

एकेंद्रिय वा विकलेंद्रियपणानैं प्राप्तहोइ तथा पंचेंद्रियपणोभी होइ तोहू इंद्रियनिमैं अवलोकनसामर्थ्य नहीं होइ सो चक्षुअचक्षुर्दर्शनावरण है। नेत्रद्वारै वस्तुका सामान्यग्रहणकूं नहीं होनेदे सो चक्षुर्दर्शनावरण है। चक्षुविना अन्य इंद्रियद्वारै अर्थका सामान्यग्रहणकूं नहीं होनेदे सो अचक्षुर्दर्शनावरण है। अवधिदर्शनद्वारै वस्तुका सामान्यग्रहणका निरोध करै सो अवधिदर्शनावरण है। केवलदर्शनद्वारैकरि समस्तदर्शन नहीं होनेदे सो केवलदर्शनावरण है। मद खेद ग्लानि दूरि करनेकूं शयनकरना सो निद्रा है तथा निद्रादर्शनावरणकर्मका उदयकरि गमन करताहू खडा रहिजाय अर बैठिजाय पडिजाय है। बहुरि जो निद्राका ऊपराऊपरि प्रवृत्ति होइ सो निद्रानिद्रा है। जातैं निद्रानिद्रादर्शनावरणकर्मका उदयकरि जीव नेत्रनिकूं उघाडि नहीं सकैहैं। बहुरि जो शोक खेद मंदादिकतैं उपजी निद्रा तिसकरि पांचों इंद्रियनिका व्यापारका अभाव होजाय अंतरंगमैं प्रीतिका बलकूं कारण बैठ्याहुवाकै हू नेत्रनिमैं शरीरमैं विकारकूं जणावै सो प्रचला है। प्रचलादर्शनावरणके उदयकरि जीव है सो नेत्रनिकूं किंचित् उघाडिकरि शयन करै है। अर सूताहू किंचित् किंचित् जानै है अर वारंवार मंदमंद सोवै है। अर बैठ्याहूवा हू घूमैहै नेत्र गात्र चलायमान रहैहैं। देखतोसंतोहू नहीं देखैहै। बहुरि प्रचलाप्रचलादर्शनावरणका उदयकरि लाल बहै मुखतैं लाल श्रवै हैं। अंग उपांग चलायमान होय हैं। बहुरि स्त्यानगृद्धि नाम दर्शनावरणका उदयकरि उठ्याहुवोभी सोवै निद्रामैं वीर्यविशेषके प्रगट होनेतैं बहुत घोररौद्रकर्म करै। निद्रामैं बहुतकर्म करै वार्त्ताकरै। ऐसैं नवप्रकार दर्शनावरण कह्या। अब दोय प्रकार वेदनीय कर्मकूं कहे हैं—

सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥

अर्थ—साता असाता ऐसैं दोय प्रकार वेदनीयकर्म है। जाके उदयतैं देवादिकगतिविषै उपकारक द्रव्य-

निका संबंधकरि प्राणीनिकै शारीरकमानसिक अनेकप्रकार सुखरूप परिणाम होइ सो सातावेदनीय है। अर जाके उदयतैं नरकादिकगतिविषै जन्म जरा मरण प्रियवियोग अप्रियसंयोग रोग वध बंधनादिकरि उपज्या शरीरसंबंधी मनसंबंधी दुःखकूं प्राप्त होइ सो असातावेदनीय है। जातैं प्रशस्तवेदन सो सातावेदनीय है सो रतिमोहनीय कर्मका उदयके बलकरि जीवकूं सुखका कारण जे इंद्रियनिके विषय तिनका अनुभव करावैहै। अर अप्रशस्त वेदन सो असातावेदनीय है। सो आरतिमोहनीयकर्मका उदयके बलकरि जीवकै दुःखका कारण इंद्रियनिके विषय तिनका अनुभव करावैहै। अब अठाईस प्रकार मोहनीयकूं कहै हैं—

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदा अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥

अर्थ—दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय, अकषायवेदनीय, कषायवेदनीय, है नाम जिनके ऐसैं तीन दोय नव षोडश भेदरूप है। तिनमैं दर्शनमोहनीय तीन भेदरूप है, चारित्रमोहनीय दोयभेदरूप है। अकषायवेदनीय नवप्रकार है। कषायवेदनीय षोडशप्रकार है। तिनमैं, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व ऐसैं दर्शनमोहनीय तीन प्रकार है। अर अकषायवेदनीय, कषायवेदनीय, ऐसैं दोय प्रकार चारित्रमोहनीय है। तिनमैं हास्य, रति अरति शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, ऐसैं अकषायवेदनीय नवप्रकार है। अर अनंतानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन इन एकएकके क्रोध मान माया लोभ भेदनिकरि षोडशप्रकार कषायवेदनीय है। ऐसैं अठाईस प्रकार मोहनीय कह्या। तहां

दर्शनमोहनीय है सो बंधप्रति तो एक मिथ्यात्वरूपही है। अर उदयकूं अर सत्त्वकूं आश्रयकरि मिथ्यात्व सम्यक्त्व मिश्र ऐसैं तीन प्रकार है। तहां जाके उदयकरि सर्वज्ञकरि कह्या मार्गतैं पराङ्मुखपणा अर तत्त्वार्थके श्रद्धानमैं निरुत्सुकपणा उद्यमरहितपणा अर हितअहितकी परीक्षारहितपणा सो मिथ्यात्व है। वहुरि जो शुभपरिणामके प्रभावकरि इस मिथ्यात्वका रस रुकिजाय तदि शक्तिके घटनेतैं असमर्थ हुवा आत्माका श्रद्धानकूं रोकनेमैंसमर्थ नहीं सम्यक्त्वकूं विगाड़ि नहीं सकै अर सम्यक्त्वकूं मलसहित करै सो सम्यक्त्व है। वहुरि जाके उदयतैं तत्त्वनिका श्रद्धान अर अश्रद्धान दोऊरूप मिले भाव होंइ सो सम्यग्मिथ्यात्व है। वहुरि चारित्रमोहनीयके अकषायवेदनीय कषायवेदनीय ऐसैं दोय भेद हैं। इहां अकषायशब्दकरि कषायका अभाव नहीं जानना। क्योंकि अकारका ईषत् अर्थ है। जैसैं या भेड अलोमिका है कहनेकरि काछिवाकीज्यों रोमका अभावही नहीं जानना छेदनेयोग्य रोम वाकै नाहीं तातैं अलोमिका कही है। तथा जैसैं या कन्या अनुदरा है तो उदररहित तो कोऊ है नहीं परंतु गर्भधारणादियोग्य स्थूल उदरके अभावतैं अनुदरा कही याका अर्थ कृशोदरा है। तैसैं हास्यादिक नव कषायनिकूं अकषाय कहिए है। वा नो अव्ययकाभी ईषत् अर्थ है तातैं नोकषाय कहनेकरिहू ईषत्कषाय जानना। इनकै ईषत्कषायपना कैसें सो कहे हैं- जैसैं श्वान जो कूकरा सो स्वामीका सहायका अवलंवनतैं वहुत वलवान होइ प्राणीनिके मारनेमैं वर्त्तै है अर स्वामीका सहायका अवलंबन नहीं होइ पाछा फिरि आवै। तैसैं क्रोधादि कषायका अवलंवनतैं हास्यादिकनिकी प्रवृत्ति होइ अर क्रोधादिकषायकी प्रवृत्तिका अभावतैं हास्यादिक नहीं प्रवर्त्तै तातैं इनकूं अकषाय कहे। जाके उदयतैं हास्य प्रगट होइ सो हास्य है। अर जाके उदयतैं देशादिकनिमैं उत्सुकपणा आसक्तपणा होजाय सो रति है। अर जाके उदयतैं देशादिकनिमैं अनुत्सुकपणा सो अरति है। जाके

उदयतैं सोच प्रगट होइ सो शोक है। जाके उदयतैं उद्वेग प्रगट होइ सो भय है सो सप्तप्रकार है। समस्तही भय सप्तप्रकारमैं गर्भित हैं। जाके उदयतैं अपना दोषका आच्छादन करना अर अन्यका कुल शीलादिकनिमैं दोष प्रगटकरि अवज्ञा करना तिरस्कारादि करना ग्लानि करना सो जुगुप्सा है। बहुरि जाकै उदयतैं मार्दवका अभाव अर मायाचारादिककी अधिकता कामका प्रवेश नेत्रविभ्रमादिसुखकै अर्थि पुरुषसैं रमनेकी इच्छाकूं प्राप्त होइ सो स्त्रीवेद है। बहुरि जाके उदयतैं निःकपटपणा निश्चलपणा उदारपणा स्त्रीनिमैं रमनेकी इच्छारूप परिणाम सो पुरुषवेद है। बहुरि जाके उदयतैं कामकी अधिकता भंडशीलता स्त्रीपुरुष दोऊनिमैं रमनेकी इच्छा सो नपुंसकवेद है। अर जो योनि लिंग कुचादिक शरीरका आकार है सो नामकर्मकरि रच्या है वेदजनित नहीं है। ऐसैं नवप्रकार अकषाय वेदनीय कही। अब कषायवेदनीय षोडशप्रकार ऐसैं जानना—तहां क्रोध मान माया लोभ ऐसैं च्यारप्रकार कषाय हैं। तिनमैं स्वपरकै घात करनेके परिणाम तथा परका उपकार करनेका अभाव तथा क्रूरपरिणाम सो क्रोध है। सो पाषाणमैं लीक पृथ्वीमैं लीक बालुरेतमैं लीक जलमैं लीक इनके समान च्यार प्रकार है। बहुरि जाति कुल बल ऐश्वर्य विद्या रूप तप लाभ इत्यादिकका मदजनित उद्धततामैं परतैं नम्रीभूत नहीं होनेके परिणाम सो मान है। सो पाषाणस्तंभसमान अर अस्थि कहिए हाडसमान अर काष्ठसमान अर लतातुल्य च्यार प्रकार हैं। बहुरि परके ठगनेके परिणामकरि परिणामनिका कुटिलपणा सो माया है। सो बाणाकी जड मींढाका सींग गोमूत्रिका अर अवलेखनी इनके तुल्य च्यार प्रकार है। बहुरि जो अपना उपकार द्रव्यमैं अभिलाषा सो लोभ है। सो कृमिराग कज्जल कर्दम हरिद्राका रंगतुल्य च्यार प्रकार है। ऐसैं क्रोध मान माया लोभ इनकी च्यार प्रकार अवस्था है। अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन

ऐसें च्यार हैं। अनंतसंसारका कारणपणातैं मिथ्यात्वकूं तो अनंतनामकरि कह्या है। मिथ्यात्वके अनुबंध-नकरनेवाला अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ है सो तो सम्यक्त्वकूं नहीं होनैदेहै। बहुरि जाके उदयतैं अ कहिए किंचितहू प्रत्याख्यान जो देशरूपत्याग नहीं होसकै सो अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ है। बहुरि जाके उदयतैं समस्त महाव्रतरूप त्याग नहिं हो सकै सो प्रत्याख्यानावरण क्रोधमान माया लोभ है। बहुरि जो संयमकी साथिहू प्रज्वलित रहै आत्माकूं शुद्धोपयोगरूप नहीं होने दे सो संज्वलन क्रोध मान माया लोभ है। ऐसें षोडशप्रकार कषायवेदनीय कह्या। ऐसें अठाईस प्रकार मोहनीयकर्मके भेद कहे। अब च्यार प्रकार आयुकूं कहै हैं—

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥

अर्थ—नारक, तैर्यग्योन, मानुष, दैव ए च्यार आयुके भेद हैं। जाका सद्भावतैं आत्माका जीवन होय अर अभावतैं मरण होइ यातैं जो भवका धारणका कारण सो आयु है। इहां कोऊ कहै—जीवनका कारण तो अन्नपानादिक है अन्नपानादिकका लाभतैं जीवन देखिए है अलाभतैं मरण देखिएहै। ताकूं कहिहैं अन्नपानादिक तो बाह्यकारण हैं। मूल उपादानकारण आयुकर्म है। जैसैं घटके होनेविषै मूलकारण तो मृत्तिका है अर बाह्यनिमित्तकारण चाक कुंभकार दंडादिक हैं। तैसैं भवधारणका मूलकारण आयुकर्म है आयुका उपकारक अन्नादिक हैं। जाका आयु नष्ट हो जाय ताकै अन्नादिक निमित्तकी निकटता होते हू मरण देखिए है। अर देव नारकीनिकै अन्नादिकका बाह्य आहारविना हू जीवन आयुका निमित्ततैं होय है। जाके उदयतैं तीव्र शीतोष्ण वेदना करनेवाले नरकमैं दीर्घकाल जीवनरूप भवधारण होइ सो नरकायु है। बहुरि जाके उदयतैं क्षुधा तृषा शीत उष्णादिकृत प्रचुर उपद्रवसहित तिर्यग्योनिमैं वसना हो-

इ सो तिर्यगायु है। बहुरि जाके उदयतैं शरीर मनःसंबंधी सुखदुःखकरि व्याप्त मनुष्यपर्यायमैं जन्म होइ सो मनुष्यआयु है। बहुरि जाके उदयतैं शारीरिक मानसिक सुखादिसहित देवनिमैं उत्पत्ति होइ सो देवायु है। कदाचित् प्रियका वियोग महर्द्धिक देवनिका अवलोकन मृत्युका चिह्न जो माला भूषणादिकका मलिनपणाका दर्शन आज्ञाकी हानि इत्यादिककरि मानसिक दुःखहू प्रगट होय हैं। ऐसैं च्यार प्रकार आयुकर्मकूं कह्या। अब नामकर्मकी बीयालीस प्रकृतिनिकूं कहै हैं—

गतिजातिशरीरांगोपांगनिर्माणबंधनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगंधवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्त्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥ ११ ॥

अर्थ—गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण, बंधन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, विहायोगति इस प्रकार इकईस अर प्रत्येकशरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, सूक्ष्म, पर्याप्ति, स्थिर, आदेय, यशःकीर्ती ए दश अर इनके प्रतिपक्षी दश अर तीर्थंकरत्व ऐसैं बीयालीस भेदरूप नामकर्म है। तथा याहीके तिराणवैं भेद हैं सो कहै हैं। जाके उदयतैं आत्मा भवांतरप्रति सन्मुख होइ गमनकूं प्राप्त होइ सो गति है सो नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, देवगति ऐसैं च्यार प्रकार है। जाके उदयतैं आत्माकै नारकभव होइ सो नरकगति नाम है। ऐसैंही अन्यभी जानना। बहुरि तिन नारकादिगतिमैं व्यभिचरै नहीं सदृशपणाकरि एकरूप किया सो जाति है सो पंच प्रकार है। एकेंद्रियजातिनाम, द्वींद्रियजातिनाम, त्रींद्रियजातिनाम, चतुरिंद्रियजातिनाम, पंचेंद्रियजातिनाम। जाका उदयतैं आत्मा एकेंद्रियादिक होवै सो जातिनामकर्म है। बहुरि

अर नवमा दशमा ग्यारमा बारमा स्वर्गलोकमैं असृपाटिकविना पंचसंहननवालेका गमन है। अर तेरमा चौदमा पंद्रमा सोलमा स्वर्गमैं असृपाटिक अर कीलकविना च्यार संहननवालेहीका गमन है। अर नवग्रैवेयकनिमैं नाराच वज्रनाराच अर वज्रऋृषभनाराच इन तीन संहननवालेहीका गमन है। अर नवअनुदिशविमाननिमैं वज्रनाराच अर वज्रर्षभनाराच दोयसंहननवालोंहीका गमन है। अर पंचअनुत्तरविमाननिमैं वज्रर्षभनाराचसंहननका धारकहीका गमन है। बहुरि मोक्षहू अर क्षपकश्रेणीहू वज्रर्षभनाराचसंहननके धारकहीकै होयहै। बहुरि उपशमश्रेणी उत्तम तीन संहननवालेहीकै होय है। बहुरि धम्मा मेघा वंशा तीन नारक पृथ्वीपर्यंत तो छहूं संहननवाले जाय हैं। अर चौथी पांचवीं जो अंजना अरिष्टा पृथ्वीमें असृपाटिका संहननविना पंचसहननवाले जाय हैं। अर मघवी जो छठी पृथ्वी तामैं असृपाटिका कीलितविना च्यार संहननवालेका गमन है। अर सप्तम माघवीपृथ्वीमैं वज्रर्षभनाराचसंहननका धारीहीका गमन है। अन्य पंचसंहननतैं गमन नहीं। बहुरि देव नारकी एकेंद्रिय इनकै तो संहननका अभावही है। इनका शरीर सप्तधातुमय नहीं इनकै हाड नहीं। बेंद्री तेंद्री चोंद्रीकै असृपाटकही एक संहनन है। कर्मभूमिकी स्त्रीनिकै आदिका तीन संहननविना अर्द्धनाराच कीलित असंप्राप्तासृपाटिका ए तीन संहननही नियमतैं होय हैं। बहुरि भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिकै एक वज्रर्षभनाराचसंहननही है। अर कर्मभूमिके मनुष्यतिर्यंचनिकै छहु संहनन होय हैं। पंचमकालमैं उपजे मनुष्य तिर्यंचनिकै अंतका तीन संहननही हैं। ऐसैं संहनन कह्या। जिस कर्मका उदयतैं शरीरमैं स्पर्श प्रगट होइ सो स्पर्श नाम कर्म अष्टप्रकार है। कर्कशनाम, मृदुनाम, गुरुनाम, लघुनाम, स्निग्धनाम, रूक्षनाम, शीतनाम, उष्णनाम ऐसैं जानना। बहुरि जाके उदयतैं देहमैं रस प्रगट होइ सो रसनामकर्म पंचप्रकार है। तिक्तनाम, कटुकनाम, कषायनाम, आम्लनाम, मधुरनाम,

ऐसैं पंचभेद हैं। बहुरि जाके उदयतैं देहमैं गंध प्रगट होइ सो गंधनाम दोय प्रकार है। सुगंध, दुर्गंध। बहुरि जाके उदयतैं वर्ण प्रगट होइ सो वर्णनाम पंचप्रकार है। कृष्णवर्णनाम, नीलवर्णनाम, रक्तवर्णनाम हरिद्रावर्णनाम, शुक्लवर्णनाम ऐसैं पंच भेदरूप हैं। इहां कोऊ कहै—ए कहे स्पर्श रस गंध वर्ण अचेतनमैं कर्मका उदयविना कैसैं हैं? ताकूं कहिए है। ते पुद्गलके स्वभावतैंही परिणत हैं। पुद्गलनिमैं तो स्वयमेव स्पर्शरसादिकका परिणमन है ही। चेतनासहित शरीरकै कर्मके उदयकी अपेक्षातैं होइ है। बहुरि जाके उदयतैं पूर्वले शरीरके आकारविनाश नहीं होइ सो आनुपूर्व्य है। ताके च्यार भेद हैं। नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम। जिस कालमैं मनुष्य वा तिर्यंचका आयु पूर्ण होइ तदि पूर्वके शरीरतैं वियुक्त होइ अर नरकके भवप्रति सन्मुख होइ ताकै मार्गमैं आत्माके प्रदेशनिका आकार पूर्वले शरीरके आकारतैं नहीं बिगडै सो नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य है सो याका उदय विग्रहगतिहीमैं है ऐसैंही अन्य तीन आनुपूर्व्य हैं। याका उदय काल विग्रहगतिमैं जघन्य एक समयका है उत्कृष्ट तीन समयका है। विग्रहगतिविना अन्यकालमैं याका उदय नहीं है। बहुरि जाकै उदयतैं लोहका पिंडज्यों भारीपणातैं नीचैं नहीं पड़ै हलकापणातैं आकका फूल फुंग्याज्यों उर्ध्व नहीं गमनकरै सो अगुरुलघुनाम कर्म है। यह कर्मकी प्रकृति शरीरसंबंधी जाननी। अर जो अगुरुलघुत्व सर्वद्रव्यनिमैं गुण है सो यातैं भिन्न स्वाभाविक है। बहुरि जाकै उदयतैं अपने शरीरके अवयव बडा सींग लंबा स्तन बडाभारी उदरादिकनितैं अपनाही घात होय सो उपघात नाम है। अर जाके उदयतैं तीक्ष्ण शृंग नख सर्पकै डाढ इत्यादिक परके घात करनेवाला अंग होइ सो परघातनाम है। बहुरि जाके उदयतैं आतापकारी शरीर होइ सो आतापनाम है। याका उदय सूर्यके विमानमैं बा-

दरपर्याप्तजीव पृथ्वीकायिक मणी हैं तिनकैंही है अन्यकैं नाहीं। बहुरि जाके उदयतैं उद्योतरूप शरीर होइ सो उद्योतनाम है याका उदय चंद्रके बिंबकी मणीनिमैं वा आज्ञानाम चोइंद्रीजीव इत्यादिकनिमैं होइ है। बहुरि जाके उदयतैं उच्छ्वास होइ सो उच्छ्वासनामकर्म है। बहुरि जाके उदयतैं आकाशविषै गमन होइ सो विहायोगतिनाम दोय प्रकार है। तहां जो प्रशस्तहस्ती वृषभकीज्यों सुंदरगमनका कारण प्रशस्तविहायोगति है। अर ऊंट गर्धभादिकज्यों असुंदरगमनका कारण अप्रशस्तविहायोगति है। अर सिद्ध होते जीवनिकै अर पुद्गलनिकै कर्मका उदयविना स्वाभाविकी गति है। इहां ऐसा नहीं जानना जो आकाशमैं गति तो पक्षीनिकै है मनुष्यादिकनिकै नहीं होयगी सो समस्त जीवपुद्गलनिका आकाशहीमैं गमन है। बहुरि जाका उदयतैं एक आत्माकै भोगनैका कारण प्रत्येक एक शरीर होइ सो प्रत्येकशरीरनाम है। अर जाके उदयतैं बहुत आत्माकै उपभोगका कारण साधारण एकशरीर होइ सो साधारणशरीरनाम है। जिनकै आहारादि च्यारि पर्याप्ति जन्म मरण स्वास उच्छ्वास उपकार उपघात अनंतजीवनिकै समानकालमैं होइ सो साधारणजीव है।

भावार्थ—जो एकदेहमैं अनंतजीव एकक्षेत्रमैं अवगाहनरूप होइ तिष्ठैं ते साधारणशरीरनामकर्मका उदयतैं साधारणजीव हैं। जिस कालमैं आहारादि पर्याप्ति जन्ममरण श्वासोच्छ्वास एक ग्रहण करै तिस काल अनंतजीवनिकै ग्रहण होय है तातैं ते साधारणजीव कहावै हैं। साधारणजीव निगोदिया वनस्पतिकायमैं हैं अन्य स्थावरनिमैं नहीं। जाके उदयतैं द्वींद्रियादिप्राणीनिमैं जन्म होइ सो त्रसनाम है। अर जाके उदयतैं पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पतिकायमैं उत्पत्ति होइ सो स्थावरनाम है। बहुरि जाके उदयतैं अन्यकै प्रीति उपजै देखतेही अन्यका प्रीतिरूप परिणाम होजाय सो सुभगनाम है। बहुरि जाके उदय-

तैं रूपादिगुणनिकरि सहितहू परकै अप्रीतिका कारण होइ सो दुर्भगनाम है। जाके उदयतैं मनोज्ञस्वरकी उत्पत्ति होइ जाका शब्द सर्वकूं सुहावै सो सुस्वरनाम है। अर जाके उदयतैं अमनोज्ञस्वर होइ सो दुःस्वर नाम है। बहुरि जाके उदयतैं मस्तकादि प्रशस्त अवयव होइ देखे श्रवण कीए रमणीक होइ सो शुभनाम है। बहुरि जो देखे सुणे रमणीकता नहीं उपजावै सो अशुभनाम है। जाके उदयतैं अन्य जीवनिका उपकार तथा घातके योग्य शरीर नहीं होइ सो तथा पृथ्वी जल अग्नि पवनादिकतैं जाका घात नहीं होइ वा वज्रमैं पहाडमैं प्रवेश करतैं शरीर नहीं रुकै सो सूक्ष्मशरीर है। बहुरि अन्यकै बाधाका निमित्त स्थूलशरीर जाके उदयतैं होय सो बादर नाम है। बहुरि जाके उदयतैं आहारादि पर्याप्तिकी रचना होइ सो पर्याप्तिनाम है। सो छह प्रकार है। आहारपर्याप्तिनाम, शरीरपर्याप्तिनाम, इंद्रियपर्याप्तिनाम, प्राणापानपर्याप्तिनाम, भाषापर्याप्तिनाम, मनःपर्याप्तिनाम इस प्रकार है। इहां कोऊ कहै-प्राणापानकर्मके उदयतैं उदरतैं पवनका निकसना प्रवेश करना फल है सोही उच्छ्वासकर्मके उदयतैं है इनमें कुछ विशेष नहीं। ताकूं कहै हैं—इनमें इंद्रिय अतींद्रिय भेद हैं। जो शीत उष्णके संबंधतैं उपज्या है दुःख जाकै ऐसा पंचेंद्रियकै जो उच्छ्वास निःश्वास दीर्घनादरूप कर्णइंद्रिय अर स्पर्शनइंद्रियकै प्रत्यक्ष हैं ते तो उच्छ्वासनाम कर्मके उदयतैं उपजै हैं। अर जो प्राणापानपर्याप्तिनामकर्मके उदयतैं कीए समस्त संसारीनिकै श्रोत्रेंद्रियानिकरि नहीं ग्रहणमैं आवै तातैं अतींद्रिय हैं। एकेंद्रियकै भाषा मन विना च्यारि हैं। विकलचतुष्ककै मनविना पांच हैं। सैनी पंचेंद्रियकै छह पर्याप्ति हैं। बहुरि जाके उदयतैं आत्मा छहू पर्याप्तिनिमैं एक पर्याप्तिकूंहू पूर्ण करनेकूं नहीं समर्थ होइ सो अपर्याप्तिनाम है। बहुरि जाके उदयतैं रसादिक सप्तधातु अर सप्त उपधातु अपने अपने स्थानमैं स्थिरभावकूं प्राप्तहोइ सो स्थिरनाम है। तथा दुष्कर उपवासादि तपश्चरणकरतैंहू अंगउपां-

गनिकैं स्थिरपणा वण्या रहै सिथिलपणा नहीं होइ सो स्थिरनाम है। जातैं रसतैं तो रुधिर होय है। रुधिरतैं मांस होय है मांसतैं मेदा होइ मेदातैं हाड होइ हाडतैं मज्जा जो मिजी, सो होय मज्जातैं वीर्य होय वीर्यतैं संतान होइ ऐसैं सप्तधातु कह्या। वहुरि वात पित्त कफ सिरा स्नायु चाम जठराग्नि ए सप्त उपधातु जानने। वहुरि जाके उदयतैं किंचित् उपवासादि करनेतैं तथा स्वल्पहू शीत उष्णादिककै संवंधतैं अंगोपांग कृश होजाय धातु उपधातुका स्थिरपणा नहीं होइ सो अस्थिरनाम है। वहुरि जाके उदयतैं प्रभासहित शरीर होइ तथा देखनेवालेकूं इष्ट होइ सो आदेयनाम है। वहुरि जाके उदयतैं प्रभारहित शरीर होइ सो अनादेयनाम है। वहुरि जाके उदयतैं पुण्यरूप गुणनिकी विख्यातता प्रगट होइ सो यशःकीर्त्तिनाम है। जातैं यश तो उज्वलगुण है अर कीर्त्तिनाम विख्याततताका है। वहुरि पापरूप गुणनिकी विख्यातता जाके उदयतैं होय सो अयशस्कीर्त्तिनाम है। वहुरि जाके उदयतैं अचिंत्यविभूतिविशेषकरि युक्त अरहंतपणा उपजै सो तीर्थंकरत्वनाम है। ऐसैं नामकर्मकी वीयालीस प्रकृतिनिहीके तिराणवैं भेद जानने। अव गोत्रकर्मकी दोय प्रकृति कहे हैं—

उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥

अर्थ—उच्चगोत्र नीचगोत्र ए दोय गोत्रकर्मकी प्रकृति हैं। जाके उदयतैं लोकपूज्य ऐसा अर जाका महानपणा विख्यात होइ ऐसैं इक्ष्वाकुआदि कुलमैं जन्म होय सो उच्चैर्गोत्रकर्म है। वहुरि जाके उदयतैं निंद्य तथा दरिद्रसहित अप्रसिद्ध दुःखकरि आकुल कुलमैं जन्म होय सो नीचैर्गोत्रकर्म है। अव अंतरायकर्मकी पांच प्रकृतिनिकूं कहेहैं—

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणां ॥ १३ ॥

अर्थ—दान लाभ भोग उपभोग वीर्य इन पांचनिमैं विघ्न करनेवाला पंचप्रकार अंतरायकर्म है। जो दान दिया चाहै तोहू जाके उदयतैं देनेसमर्थ नहीं होइ सो दानांतराय है। बहुरि लाभकी इच्छा करताहूं जाके उदयतैं लाभकूं प्राप्त नहीं होइ सो लाभांतराय है। बहुरि जाकै उदयतैं भोगकीया चाहै तोहू भोगनेसमर्थ नहीं होइ सो भोगांतराय है। बहुरि उपभोग कीया चाहै तोहू जाके उदयतैं उपभोग करनेसमर्थ नहीं होइ सो उपभोगांतराय है। बहुरि जाके उदयतैं उत्साहरूप होनेका इच्छुकहू शरीरमैं सामर्थ्यकूं नहीं प्राप्त होइ सो वीर्यांतराय है। इहां गंध अतर पुष्प स्नान तांबूल अंगराग भोजन पानादिक तो भोग हैं। अर शयन स्त्री आभरण हस्ती घोडा रथ पयादा महल बाग इत्यादिक उपभोग जानने। ऐसैं ज्ञानावरणादिकनिका उत्तरप्रकृतिबंध कह्या। अब जो कर्म अपने कर्मस्वभावकों छांडि आत्मातैं जुदा जेतैं काल नहीं होइ सो स्थितिबंध है। सो दोयप्रकार है। एक जघन्य एक उत्कृष्ट दोयप्रकार स्थितिबंध हैं। तिनमैं उत्कृष्ट स्थितिकूं कहै हैं—

आदितस्तिसृणामंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥ १४ ॥

अर्थ—आदिका तीन जो ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अर अंतराय इन च्यार कर्मनिकी उत्कृष्टस्थिति तीस कोटाकोटीसागरप्रमाण है। संज्ञीपंचेंद्रियपर्याप्तकजीवकै ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अंतरायकी उत्कृष्टस्थिति तीस कोटाकोटीसागरप्रमाण है। तिनमैंहू ज्ञानावरणकी पांच, दर्शनावरणकी नव, अंतराय की पांच, असातावेदनीय एक इन वीसप्रकृतिनिकी उत्कृष्टस्थिति तीस कोटाकोटीसागरप्रमाण है। अर सातावेदनीय एककी उत्कृष्टस्थिति पनराकोडाकोडीसागरकी है। बहुरि अन्य जीवनिकी स्थिति आग-

मतैं जानना। सोही कहे हैं—एकेंद्रियपर्याप्तकै इन च्यार कर्मनिकी उत्कृष्टस्थिति एक सागरोपमके सप्तभाग करिए तिनमैं तीनभागप्रमाण है। द्वींद्रियपर्याप्तककै पचीस सागरोपमके सातभागमैं तीनभागप्रमाण है। त्रींद्रियपर्याप्तककै पचाससागरोपमके सातभागमैं तीनभागप्रमाण है। चतुरिंद्रियपर्याप्तकै सौसागरोपमके सप्तभागमैं तीनभागप्रमाण है। असैनी पंचेंद्रियपर्याप्तकै हजारसागरोपमके सप्तभागमैं तीनभागप्रमाण है। अर संज्ञीपंचेंद्रिय अपर्याप्तकै अनंतसागरोपमकोटाकोटीप्रमाण उत्कृष्टस्थिति है। वहुरि एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय असंज्ञीपंचेंद्रिय अपर्याप्तकै च्यार कर्मनिकी उत्कृष्टस्थिति अपने अपने पर्याप्तिकी उत्कृष्टस्थिति कही तिनमैं पल्यका असंख्यातमाभागप्रमाण ऊन है। अब मोहनीयकी उत्कृष्टस्थिति कहैहैं—

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥

अर्थ—मोहनीयकर्ममैं मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्टस्थितिवंध संज्ञीपंचेंद्रियपर्याप्तककै सतरिकोडाकोडीसागरप्रमाण जानना। एकेंद्रियपर्याप्तकै उत्कृष्टस्थिति एकसागरकी, द्वींद्रियकै पचीस सागरकी, त्रींद्रियकै पचाससागरकी, चतुरिंद्रियकै सौसागरप्रमाण है। वहुरि पर्याप्तक असंज्ञिपंचेंद्रियकै एकहजारसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थिति जाननी। बहुरि एकेंद्रिय द्विंद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय तथा असंज्ञीपंचेंद्रिय अपर्याप्तककै अपनीअपनी पर्याप्तिकी स्थिति कही तातैं पल्यकै असंख्यातभाग घाटि जाननी। अर सैनी अपर्याप्तककै अंतःकोडाकोडीसागरप्रमाणस्थिति जाननी। अब नामगोत्रकर्मकी उत्कृष्टस्थिति कहैहैं—

विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥

अर्थ—संज्ञीपंचेंद्रियपर्याप्तकै नामकर्म अर गोत्रकर्मकी उत्कृष्टस्थिति वीसकोडाकोडीसागरप्रमाण है। एकेंद्रियपर्याप्तकै एकसागरका सातभागमैं दोयभागप्रमाण है। द्वींद्रियपर्याप्तकै पचीससागरका सप्तभागमैं

दोयभागप्रमाण है। त्रींद्रियपर्याप्तकै पचाससागरका सप्तभागमैं दोयभागप्रमाण है। चतुरिंद्रियपर्याप्तकै सौसागरका सप्तभागमैं दोयभागप्रमाण है। असंज्ञीपंचेंद्रियकै हजारसागरका सातभागमैं दोयभागप्रमाण है। संज्ञीपंचेंद्रियअपर्याप्तकै अंतःकोडाकोडीसागरप्रमाण है। वहुरि एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय असैनी अपर्याप्तकै अपनेअपने पर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितितैं पल्योपमकै असंख्यातवैंभाग ऊन स्थिति जाननी। अब आयुकी उत्कृष्टस्थिति कहैहैं—

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥

अर्थ—आयुकर्मकी उत्कृष्टस्थिति तेतीससागरोपमकी है। संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तककै उत्कृष्टस्थिति तेतीससागरोपमकी है। असंज्ञीकै पल्यके असंख्यातवैंभागप्रमाण है। अर एकेंद्रियादिकनिकै आयुकी उत्कृष्टस्थितिवंध कोडिपूर्वका जानना। ऐसैं मूलप्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंध कह्या। अब उत्तरप्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंध कहैहैं—ज्ञानावरण पांच दर्शनावरण नव अंतरायकी पांच असातावेदनीय एक ऐसैं बीस प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंध तीस कोडाकोडीसागरका होय है। अर सातावेदनीय स्त्रीवेद मनुष्यद्विक इन च्यारका पंद्रह कोटाकोटीसागरप्रमाणस्थितिबंध है। दर्शनमोहबंधविषै एक मिथ्यात्वही है ताकी सत्तरि कोडाकोडीसागरकी स्थिति है। चारित्रमोहनीयमैं षोडशकषायनिका चालीस कोटाकोटीसागरका स्थितिबंध है। हुंडकसंस्थान असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन इन दोय प्रकृतिनिकी बीस कोटाकोटीसागरकी स्थिति है। वामनकी अर कीलककी अठारह कोटाकोटीकी स्थिति है। कुब्जककी अर्द्धनाराचकी षोडशकोडाकोडीकी, स्वातिककी अर नाराचकी चोदह कोटाकोटीकी, न्यग्रोधपरिमंडलकी अर वज्रनाराचकी बारह कोटाकोटीकी, समचतुरस्रकी अर वज्रर्षभनाराचकी दशकोटाकोटीप्रमाणस्थितिबंध है। बहुरि विक-

लब्ध्य अर सूक्ष्म अपर्याप्तक साधारण इन छहकी अठरहकोडाकोडीसागरकी उत्कृष्टस्थिति है। बहुरि अरति शोक पंढवेद तिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य भय जुगुप्सा नरकगति नरकगत्यानुपूर्व्य तैजस कार्मण औदारिक औदारिकअंगोपांग वैक्रियिक वैक्रियिकअंगोपांग आतप उद्योत नीचैर्गोत्र त्रस बादर पर्याप्त प्रत्येक वर्ण रस गंध स्पर्श अगुरुलघु उपघात परघात उच्छ्वास एकेंद्रिय पंचेंद्रिय जाति निर्माण स्थावर अप्रशस्त विहायोगति अस्थिर अशुभ दुर्भग दुःस्वर अनादेय अयशःकीर्ति इनि इकतालीस प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंध बीसकोडाकोडीसागरप्रमाण है। अर हास्य रति उच्चगोत्र पुरुषवेद स्थिर शुभ सुभग सुस्वर आदेय यशःकीर्ति प्रशस्त विहायोगति देवगति देवगत्यानुपूर्व्य इन तेरह प्रकृतिनिकी दशकोडाकोडीसागरप्रमाणस्थिति है। अर आहारक आहारकअंगोपांग तीर्थकरत्व इन तीन प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंध अंतःकोटाकोटीसागरप्रमाण है। अर देवआयु नरकायुका उत्कृष्टस्थितिबंध तेतीससागरप्रमाण है। तिर्यग्मनुष्यआयुका स्थितिबंध तीनपल्यप्रमाण है। ऐसैं बंधयोग्य एकसोवीस प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंध कह्या सो संज्ञीपर्याप्त पंचेंद्रियकैही होय है। एकेंद्रियादिकनिकै यथायोग्य आगमतैं जानना। सो इनमैं देव मनुष्य तिर्यक् आयुविना एकसौ सतरह प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबंधकूं संक्लेशपरिणामही कारण है। उत्कृष्ट संक्लेशपरिणामतैं उत्कृष्टस्थितिबंध होय है। अर विशुद्धपरिणामनिकरि जघन्यस्थितिबंध होय है। अर तिर्यक् मनुष्य देवायुको उत्कृष्टविशुद्धपरिणामकरि उत्कृष्टस्थितिबंध होय। अशुद्धपरिणामनिकरि जघन्यस्थितिबंध होय है। बहुरि आहारकद्विक अर तीर्थकरनाम देवायु इन च्यार प्रकृति विना एकसो सोलह प्रकृतिनिका सर्वोत्कृष्टस्थितिका बांधनेवाला मिथ्यादृष्टिजीवही आगममैं कह्या है। अर देवायु आहारकद्विक तीर्थंकरप्रकृति इन च्यार प्रकृतिनिका सम्यग्दृष्टिही बंध करैहै।

अब जघन्यस्थितिबंधकूं वर्णन करैहैं—

अपरा द्वादशमुहूर्त्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥

अर्थ—वेदनीयकर्मकी जघन्यस्थिति बारहमुहूर्त्तकी है सो सूक्ष्म सांपराय गुणस्थानविषैही बंधै है। अब नामगोत्रकी जघन्यस्थिति कहैहैं—

नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥

अर्थ—नामगोत्रकी जघन्यस्थिति आठमुहूर्त्तकी है सो सांपरायगुणस्थानमैंही बंधै है। अन्यकर्मकी स्थिति कहैहैं—

शेषाणामंतर्मुहूर्त्ता ॥ २० ॥

अर्थ—ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतराय मोहनीय आयु इन पांचकर्मनिकी जघन्यास्थिति अंतर्मुहूर्त्तकी बंधै है सो सूक्ष्मसांपरायविषैही है। अर मोहनीयकी जघन्यस्थिति अंतर्मुहूर्त्तकी बंधै है सो अनिवृत्तिबादरसांपरायगुणस्थानहीमें बंधैहै। आयुकी जघन्यस्थिति संख्यातवर्षकी आयुको धारक मनुष्य तिर्यंचही बांधै है। ऐसैं स्थितिबंध तो कह्या अब अनुभव बंधकूं कहै हैं—

विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥

अर्थ—विपाक है सो अनुभव है। विशिष्ट कहिए विशेषरूप जो पाक कहिए उदय सो विपाक कहिए। तथा विविध कहिए नानाप्रकार जो पाक सो विपाक है। तहां उपकार अपकार करनेका है स्वरूप जिनका ऐसैं ज्ञानावरणादिक कर्मनिकी प्रकृतिनिका पूर्व आस्रवके निमित्ततैं तीव्र मंद मध्य भावकरि जो उदय सो विपाक है। अथवा द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव लक्षण जो निमित्त तिनके भेदतैं उपज्या जो ना-

नामप्रकारका पाक कहिए उदय सो विपाक है। इस विपाकहीकूं अनुभव कहिए है। शुभपरिणामनिकी प्रकर्षपणातैं अधिकतातैं पुण्यप्रकृतिनिमैं अधिकरस पडैहै सोही प्रकर्ष अनुभव होय है। अर अशुभप्रकृतिनिमैं मंदरस पडैहै। बहुरि अशुभपरिणामनिकी अधिकतातैं अशुभप्रकृतिनिमैं अधिक रस पडैहै अर शुभ प्रकृतिनिमैं मंद रस पडैहै। ऐसैं कह्या जो अनुभव सो स्वमुख अर परमुखकरि दोय प्रकार प्रवर्तै है। समस्त मूल अष्टकर्मनिका तो स्वमुखकरिही अनुभव होय है। अन्यकर्म अन्यकर्मरूप होइ उदय नहीं आवै है तातैं स्वमुखोदय कहिए है। अर उत्तरप्रकृति हैं तिनमैं तुल्यजातीयप्रकृति हैं तिनकै परमुखकरिभी अनुभव होय है। जैसैं मतिज्ञानावरणीय श्रुतज्ञानावरणीयरूप होयकै हू उदय आवै है। असातावेदनीय है सो कारणनिके वशतैं सातावेदनीयरूपभी रस देहै ऐसैं परमुखकरिभी उदय आवै है। परंतु दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीय परस्पर नहीं पलटैहै। दर्शनमोहनीय है सो चारित्रमोहनीयरूप होइ रस नहीं देहै। चारित्रमोहनीय है सो दर्शनमोहनीयरूप होइ उदयमैं नहीं आवै है। बहुरि च्यारों आयुभी परस्पर पलटि उदय नहीं आवै हैं। जो बांधी सोही अपना स्वरूपकरि रस देहै। सोही कहैहैं—

स यथानाम ॥ २२ ॥

अर्थ—जो प्रकृतिनिका नाम है तैसाही ताका अनुभव है। जैसैं ज्ञानावरणका फल ज्ञानका अभाव है। दर्शनावरणका फल दर्शनशक्तिका अवरोध होना है। ऐसैं समस्त मूलप्रकृतिनिका वा उत्तरप्रकृतिनिका जाका जैसा नाम तैसाही फल देहै सोही अनुभव है। अब कहैहैं—जो कर्म उदयमैं आय तीव्र मंद रस दीए पाछैं आवरण जो पडदाका आच्छादनकीज्यों जीवकै लग्या रहै कि साररहित होइ आत्मातैं छूटि पडै है। सो कहै हैं—

## ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥

अर्थ—तिस अनुभवपाछैं निर्जरा ही है। जो कर्मबंध भया सो उदयकै अवसरमैं आत्मातैं सुखदुःख देय निर्जरै ही है। जातैं स्थितिको क्षय होतैं आत्मा एक समयहू ऊपरि नहीं रहिसकैहै। आत्मातैं छूटि कर्मपणाके अभावतैं अन्यरूप होइ परिणमैहै। सोही निर्जरा है। सो दोयप्रकार है। एक सविपाकनिर्जरा, दूजी अविपाकनिर्जरा। तहां अनेक एकेंद्रियादिजातिविशेषकरि घूर्णित जो चतुर्गतिरूप संसारसमुद्रमैं चिरकालतैं परिभ्रमण करते जीवकै अनेक शुभ अशुभ कर्म हैं तिनका उदयका काल आय प्राप्त होय तादि जैसा विकल्पनिकरि बंध कीया तिसरूप भोगतेकै उदयावलीरूप नालीकरिकै जो कर्मरस देय झडै हैं सो सविपाकनिर्जरा है। सो या सविपाकनिर्जरा च्यारोंगतिके समस्त संसारीजीवनिकै होयहै। बहुरि जिस कर्मका उदयकाल तो नहीं आया अर तपश्चरणादिक सामर्थ्यके विशेषतैं उदीरणा होइ कर्म झडिजाय सो अविपाकनिर्जरा है। जैसैं आम्रफल पालमैं शीघ्र पचै तैसैं जानना। इहां सूत्रमैं "च" शब्द है सो "तपसा निर्जरा च" ऐसैं आगै कहैंगे ताकूं हू जनावै है। इहां कोऊ कहै संवरके पीछैं निर्जरा कहना था इहांही क्यों कह्या ताका समाधान—जो इहां लघु करनेका प्रयोजन है विपाककूं अनुभव कह्या अनुभव नाम भोगनेका है भोगनेमैं आया सो निर्जरैही है तातैं निर्जरा थोरेमैं कह्या गया। कर्मकी प्रकृति दो प्रकार है। एक घातिका, दूजी अघातिका। तहां ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय ए च्यार घातिका हैं। अन्य च्यार अघातिका हैं। तिनमैं घातिकाहू दोय प्रकार है। सर्वघातिका अर देशघातिका। तिनमैं ज्ञानावरण च्यार, दर्शनावरण तीन, अंतराय पांच, संज्वलन कषाय चार, नोकषाय नव, अर सम्यक्त्वप्रकृति एक ऐसैं छव्वीस देशघातिका हैं। अर केवलज्ञानावरण केवलदर्शनावरण बहुरि निद्रा पांच, मिथ्यात्व एक अं-

नंतानुवंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, ए बारह कषाय ऐसैं वीस प्रकृति सर्वघातिका हैं। अर सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति जात्यंतरसर्वघाति हैं तिस सहित एकवीस सर्वघातिका हैं। ऐसैं सैंतालिस प्रकृति घातिका हैं। बहुरि नामकर्मकी प्रकृतिनिमैं पंच शरीर तीन अंगोपांग, एक निर्माण, पांच बंधन, पांच संघात, छह संस्थान, छह संहनन, आठ स्पर्श, पांच रस, दोय गंध, पंच वर्ण, एक अगुरुलघु, एक उपघात, एक परघात, एक आताप, एक उद्योत, प्रत्येक साधारण, शुभ अशुभ, स्थिर, अस्थिर, ए बासठिप्रकृति पुद्गलविपाकी हैं। इनका विपाक जो उदय सो पुद्गलमैं आवैहै। बहुरि च्यारि आनुपूर्व्य क्षेत्रविपाकी हैं। जातैं जीवकौं परलोकगमन करते पूर्वलादेहका आकारकूं धारता कार्मणशरीरसहित आत्माका गमन होय तदि मार्गमैं जीवके प्रदेशनिका आकाररूप क्षेत्रहीमैं इनिका विपाक कहिए उदय हैं तातैं क्षेत्रविपाकी हैं। बहुरि च्यार आयुकर्म भवविपाकी हैं इनका विपाक भवधारणरूपही है। अर अवशेषप्रकृति अठंतरि जीवविपाकी हैं। ते कौन? सो कहैहैं च्यार घातियानिकी सैंतालीस, दोय वेदनीय दोय गोत्र सत्ताइस नामकर्मकी तिनमैं गति च्यार, जाति पांच, उच्छ्वास एक, विहायोगति, त्रस स्थावर शुभग दुर्भग सुस्वर दुःस्वर सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त आदेय अनादेय यशस्कीर्ति अयशस्कीर्ति तीर्थंकर ऐसैं सब मिलि अठंतरि जीवविपाकी कहीं जीवकैं उपयोगमैं उदय देवैहै तातैं जीवविपाकी हैं। ऐसैं सत्ताकी अपेक्षा एकसो अठतालीस कही। अब बंधके च्यार भेदनिमैं प्रदेशबंधकूं कहैहैं—

नामप्रत्ययाःसर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः
सर्वात्मप्रदेशेष्वनंतानंतप्रदेशाः ॥ २४ ॥

अर्थ—नाम जो समस्तज्ञानावरणादिकर्मप्रकृति तिनकूं होनेकूं कारण ऐसैं सर्वभवानिमैं मन वचन कायके

योगविशेषतैं सूक्ष्म एकक्षेत्रमैं अवगाह करि तिष्ठते समस्त आत्मप्रदेशनिमैं अनंतानंत कर्मप्रदेश हैं। भावार्थ—एक आत्माकै असंख्यात प्रदेश हैं। तिस एकएक प्रदेशविषै अनंतानंत पुद्गलके स्कंध एकएक समयमैं बंधरूप होय तिष्ठैं सो प्रदेशबंध है। ते पुद्गलस्कंध कैसेक हैं समस्त ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति उत्तरप्रकृति उत्तरोत्तरप्रकृतिरूप होनेकूं कारण हैं। बहुरि कैसेक हैं समस्त त्रिकालवर्त्ती भवनिमैं मन वचन कायरूप योगनिके निमित्ततैं आवैं हैं अर सूक्ष्म हैं इंद्रियगोचर नाहीं। बहुरि आत्माके प्रदेश अर कर्मके प्रदेश क्षीरनीरकीज्यों एकक्षेत्रमैं अवगाहकरि तिष्ठैहैं। अर एकएक आत्माके प्रदेशमैं अनंतानंत कर्मपुद्गल तिष्ठै हैं। ऐसैं प्रदेशबंध कह्या। अब बंधपदार्थमैं अंतर्भूत जो पुण्यबंध पापबंध कह्या चाहिए तिनमैं प्रथम पुण्यप्रकृतिनिकूं कहेहैं—

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यं॥ २५॥

अर्थ—साता वेदनीय अर शुभ आयु शुभनाम शुभगोत्र ये पुण्यप्रकृति हैं। घातियाकर्म तो च्यारों अशुभ ही हैं। अर अघातियामैं पुण्य पाप दोऊरूप हैं। तिनमैं अडसठि प्रकृति पुण्यरूप हैं। तिनके नाम कहेहैं—साता वेदनीय एक, अर तिर्यक् मनुष्य देव ए तीन, आयु, अर उच्चगोत्र एक अर नामकर्मकी त्रेसठि तिनमैं मनुष्यदेवगति दोय अर पंचेंद्रियजाति एक अर शरीर पांच अर अंगोपांग तीन अर निर्माण एक अर बंधन पांच संघात पांच समचतुरस्रसंस्थान एक अर वज्रर्षभनाराचसंहनन एक अर आठ स्पर्श पांच रस दोय गंध पंच वर्ण ए प्रशस्तवर्णादिकनिकी बीस अर मनुष्य देवगत्यानुपूर्व्य दोय अर अगुरुलघु परघात आतप उद्योत उच्छ्वास प्रशस्त विहायोगति प्रत्येकशरीर त्रस सुभग सुस्वर शुभ बादर पर्याप्त स्थिर आदेय यशस्कीर्ति तीर्थंकर ऐसैं नामकर्मकी त्रेसठि समस्त अडसठि पुण्यप्रकृति जाननी। अब पाप प्रकृतिनिकूं कहै हैं—

ष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्व्य मनुष्यआयु इन दशकी व्युच्छित्ति अविरतगुणस्थानमैं होय है तातैं देशविरतमैं सडसठिहीका बंध होय है। बहुरि पंचमगुणस्थानमैं च्यार अप्रत्याख्यानावरणकी व्युच्छित्ति तदि छठे प्रमत्त गुणस्थानमैं त्रेसठिही बंध योग्य हैं। बहुरि प्रमत्तगुणस्थानमैं अस्थिर अयशःकीर्ति अशुभ असाता अरति शोक इनि छह प्रकृतिके बंधकी व्युच्छित्ति होइ तदि अप्रमत्तगुणस्थानमैं बंधयोग्य सत्तावन तिनमैं आहारकद्विक मिलें गुणसठि बंध योग्य हैं। बहुरि अप्रमत्तगुणस्थानमैं एक देवआयुकी व्युच्छित्ति भई तातैं अपूर्वकरणमैं बंधयोग्य अठावन प्रकति हैं। बहुरि अपूर्वकरणमैं पहले भागमैं तो निद्रा प्रचलाकी व्युच्छित्ति होय है अर छठा भागमैं तीर्थंकर निर्माण प्रशस्तविहायोगति पंचेंद्रिय तेजस कार्मण आहारकद्विक समचतुरस्रसंस्थान देवगति देवगत्यानुपूर्व्य वैक्रियिक, वैक्रियिक अंगोपांग, स्पर्श रस गंध वर्ण अगुरुलघु उपघात परघात उच्छ्वास त्रस वादर पर्याप्त प्रत्येक स्थिर शुभ सुभग सुस्वर आदेय ऐसें तीसकी व्युच्छित्ति होय है। बहुरि अंतभागविषै हास्य रति भय जुगुप्सा इनि च्यारिकी व्युच्छित्ति होय है। ऐसैं अपूर्वकरणमैं छत्तीस प्रकृतिकी व्युच्छित्ति होय है तदि अनिवृत्तिकरणमैं बाईस प्रकृतिही बंध योग्य हैं। बहुरि अनिवृत्तिकरणकै पंचभागनिमैं अनुक्रमतैं पुरुषवेद, संज्वलन च्यार कषाय, इन पांचकी व्युच्छित्ति होय है तदि सूक्ष्मसांपरायमैं सत्तरह प्रकृति बंधयोग्य हैं। बहुरि सूक्ष्मसांपरायके अंतमैं पांच ज्ञानावरण पांच अंतराय च्यार दर्शनावरण यशस्कीर्ति उच्चगोत्र इनि सोलहके बंधकी व्युच्छित्ति होय है तादि उपशांतकषाय क्षीणकषाय सयोगीजिन इन तीन गुणस्थाननिमैं एक सातावेदनीयही बंधै है ताकी एक समयकी स्थिति सो बंधके समयमैंही उदय होय निर्जरै है। अर अयोगी बंधरहित है। ऐसैं गुणस्थाननिमैं बंधप्रकृति कही मार्गणानिमैं आगममैं कहीहैं सो जाननी।

बहुरि इनमैंहू ज्ञानावरण पांच दर्शनावरण नव अंतराय पांच मिथ्यात्व एक कषाय सोलह भय जुगुप्सा तैजस कार्मण अगुरुलघु उपघात निर्माण वर्णचतुष्क ए सैंतालीस प्रकृति अपनी व्युच्छित्तिपर्यंत ध्रुव उदयरूप हैं। इनका उदय समस्त संसारीनिकै अपनी व्युच्छित्तिके गुणस्थानपर्यंत ध्रुवउदयकूं धारैहै। इनि प्रकृतिनिका उदय अनादितैं सासता निरंतर है तातैं ध्रुवउदयरूप हैं बहुरि सैंतालीसतो ए कहीं सो अर तीर्थंकर आहारकद्विक च्यार आयु इन चोवनप्रकृतिनिका ध्रुवबंध जानना इनका निरंतर बंध हुवाही करैहै। परंतु तीर्थंकर अर आहारकद्विक ए तीनप्रकृतिनिका बंध है सो तो बंधका प्रारंभकाल पाछैं जिन गुणस्थाननिमैं बंध संभवै तहां तो निरंतर बंधैहै। अर बंधयोग्य गुणस्थानका अभाव होजाय तो बंधकूं नहीं प्राप्तहोय है। अर आयु है सो बंधका प्रारंभ भए पीछैं आयुबंधका त्रिभागका अंतर्मुहूर्त्तके समय हैं तिनमैंही निरंतर बंधैहैं अन्य अवसरमैं निरंतर बंधै नहीं है। बहुरि त्रसस्थावरमैंतैं एक बादरसूक्ष्ममैं एक, पर्याप्त अपर्याप्तमैं एक,प्रत्येकसाधारणमैं एक,स्थिर अस्थिरमैं एक,शुभ अशुभमैं एक,सुभग दुर्भगमैं एक,आदेय अनादेयमैं एक,यश अयशमैं एक,गतिच्यारिमैंएक, जाति पांचमैं एक,शरीरतीनमैंएक,संस्थानछहमैं एक,आनुपूर्व्यच्यारमैं एक, ऐसैं चौदह प्रकृति नामकर्मकी निरंतर बंधै हैं। ऐसैं तो बंध कह्या। अब उदयमैं ज्ञानावरणादि एकसो बाईस प्रकृति हैं तिनमैं ऐसा उदयका नियमहै। आहारक शरीरका उदय प्रमत्तगुणस्थानमैंही होय तीर्थंकरप्रकृतिका उदय केवलीहीकै होय है मिश्रप्रकृतिका उदय मिश्रगुणस्थानमैंही होय अन्यमैं नहीं होय। सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय क्षयोपशमसम्यक्त्वहीमैं होयहै। अर आनुपूर्व्यका उदय मिथ्यात्व सासादन अविरत इन तीन गुणस्थाननिमैंही होइ अन्यमैं नहीं होय। इहां इतना विशेष—जो सासादनगुणस्थानमैं मरणकरि नरक नहीं जाय यातैं नरकानुपूर्व्य मिथ्यात्व अर अविरत इन दोय गुणस्थान-

निमैंही होय है। अब गुणस्थाननिमैं उदय योग्य प्रकृति कहै हैं—उदययोग्य प्रकृति एकसो बाईस तिनमैं सम्यक्त्वप्रकृति अर मिश्रप्रकृति अर आहारकद्धिक तीर्थंकर इन पांच विना मिथ्यात्वगुणस्थानमैं एकसौ सतरहप्रकृतिनिका उदयकी योग्यता है। बहुरि मिथ्यात्वमैं मिथ्यात्व आताप सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण इनि पंचप्रकृतिनिकी व्युच्छित्ति होय अर एक नरकानुपूर्व्यका उदय नहीं तातैं सासादनमैं एकसो ग्यारह उदययोग्य हैं। बहुरि च्यार अनंतानुबंधी एकेंद्रिय स्थावर विकलत्रय इन नव प्रकृतिनिका उदय सासादनपर्यंतही है तातैं मिश्रगुणस्थानमैं एकसो दोय प्रकृति भई परंतु एक मिश्रप्रकृतिका उदय तो मिलिगया अर तीन आनुपूर्व्यका उदय मिश्रमैं होइ नाहीं तातैं निकासि लीनी तदि सौ प्रकृतिका उदय होइ। बहुरि मिश्रगुणस्थानमैं एक मिश्रप्रकृतिकी व्युच्छित्ति होइ तदि अविरतमैं नीन्याणवें प्रकृति रही फिर च्यार आनुपूर्व्य एक सम्यक्त्वप्रकृति ऐसैं पांच मिलें उदययोग्य एकसो च्यार प्रकृति हैं। बहुरि अप्रत्याख्यानावरण च्यार कषाय अर वैक्रियिक अष्टक मनुष्यगत्यानुपूर्व्य तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य दुर्भग अनादेय अयश ऐसैं सतरह प्रकृति चतुर्थगुणस्थानके अंतपर्यंतही हैं। तातैं व्युच्छित्ति भई तदि देशसंयम गुणस्थानमैं उदययोग्य सत्यासी प्रकृति हैं। बहुरि प्रत्याख्यानावरण च्यार कषाय अर तिर्यंच आयु उद्योत नीचगोत्र तिर्यंचगति इन आठप्रकृतिनिकी देशसंयमके अंतमैं व्युच्छित्ति होइ है तदि प्रमत्तगुणस्थानमैं उदययोग्य गुण्यासी प्रकृतिमैं आहारकद्धिक मिले इक्यासी उदययोग्य हैं। बहुरि आहारकद्धिक अर स्त्यानगृद्धि अर निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला इन पांचकी व्युच्छित्ति प्रमत्तगुणस्थानिमै होइ है तदि अप्रमत्तमें छिहंतरि उदयकै योग्य हैं। बहुरि सम्यक्त्वप्रकृति अर अंतका तीन संहनन इन च्यारकी व्युच्छित्ति अप्रमत्तमैं होइ है तदि अपूर्वकरणमैं उदययोग्य बहत्तरि प्रकृति हैं। बहुरि छह नोकषायकी व्युच्छित्ति अपूर्वकर-

णमैं होइ है तदि अनिवृत्तिकरणमैं छ्यासाठि प्रकृति उदययोग्य हैं। बहुरि अनिवृत्तिकरणमैं तीन वेद संज्वलन क्रोध मान माया इनि छहकी व्युच्छित्ति भई तदि सूक्ष्मसांपरायमैं साठि ही उदययोग्य हैं। बहुरि सूक्ष्मसांपराय मैं सूक्ष्मलोभकी व्युच्छित्ति होइ है तदि उपशांतकषायमैं गुणसठि प्रकृतिकी उदयकी योग्यता है। बहुरि वज्रनाराच अर नाराच दोऊनिकी व्युच्छित्ति उपशांतकषायमैं होइ है तदि क्षीणकषायमैं सत्तावन प्रकृति उदययोग्य हैं। बहुरि निद्रा प्रचला अर पांच ज्ञानावरण अर पांच अंतराय च्यार दर्शनावरण इन सोलहकी व्युच्छित्ति क्षीणकषायमैं होइ तदि सयोगीगुणस्थानमैं एक तीर्थंकर प्रकृति और मिलि बीयालीस उदययोग्य हैं। बहुरि एक वेदनीय, निर्माण स्थिर अस्थिर शुभ अशुभ सुस्वर दुःस्वर प्रशस्तविहायोगति औदारिक औदारिकअंगोपांग तैजस कार्मण समचतुरस्रसंस्थान स्पर्श रस गंध वर्ण अगुरुलघु उपघात परघात उछ्वास प्रत्येक ऐसैं तीसकी व्युच्छित्ति सयोगी गुणस्थानमैं होइ है तदि अयोगीमैं बारहका उदय होयहै। बहुरि एक वेदनीय, मनुष्यगति, पंचेंद्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्त्ति, तीर्थंकरत्व, मनुष्यायु, उच्चगोत्र इन बारह प्रकृतिनिकी व्युच्छित्ति अयोगी भगवानकै होइ है तदि सिद्धपरमेष्ठी समस्त कर्मोदयरहित अनंतज्ञान अनंतसुखमय निरंतर अविनाशी तिष्ठैं हैं। ऐसैं इहां गुणस्थाननिमैं उदयप्रकृति कहीं। अर मार्गणानिमैं आगमकै अनुसार जाननेयोग्य हैं। इहां ऐसा अन्यविशेष जानना—गति आनुपूर्व्य आयु ए तीन सद्दशस्थानमैं युगपतही उदय आवैहैं अर आतापप्रकृतिको उदय बादर पर्याप्त पृथ्वीकायकै ही होय है। अर उच्चगोत्रका उदय देव मनुष्य दोय गतिहीमैं होइ है। अर स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला इन तीनका कर्मभूमिहीके मनुष्य तिर्यंचनिकै पर्याप्तअवस्थामैं उदय आवैहै अन्यकै नाहीं। परंतु आहारक तथा वैक्रियिक ऋद्धिके प्रगट

करनवारेनिकै उदय नहीं होयहै। और अव्रतगुणस्थानमैं अपर्याप्त अवस्थामैं स्त्रीवेदका उदय नहीं अर धम्मानरकका अपर्याप्तविना अन्य द्वितीयादिपृथ्वीके नारकीनिका अपर्याप्तअवस्थाका अव्रतगुणस्थानमैं नपुंसकवेदकाहू उदय नहीं तातैं स्त्रीवेदका अव्रतगुणस्थानमैं च्यारों आनुपूर्व्यका उदय नहीं अर नपुंसकका अव्रतमैं नरकविना तीन आनुपूर्व्यका उदय नहीं है। अर एकेंद्रिय विकलत्रय अर स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्त इनका उदय तिर्यंचनिहीमैं होय अन्यकै नाहीं। अर अपर्याप्तका उदय मनुष्यकैभी होय है अर षट्संहनन अर औदारिकद्विकका उदय मनुष्यतिर्यंचहीकै होय हैं। अर वैक्रियिकद्विक देवनारकीनिकेही उदय होय हैं। बहुरि उद्योतप्रकृतिनिका उदय है सो तेजस्काय वातकाय साधारणवनस्पति पृथ्वीकायविना बादरपर्याप्त अन्यतिर्यंचनिकै होय है। अर एकेंद्रियकै अंगोपांग अर संहननका उदय नहीं होय है ऐसैं सामान्य उदयप्रकृति कहीं। बहुरि इहां इतना विशेष जानना—जो कर्मप्रकृतिका उदय आवे है तिनकूं बाह्यनिमित्तभी जानना। इनि कर्मसारिखे पदार्थ हैं ते कर्मकीज्यों रस देनेके निमित्त हैं। ज्ञानावरणकी ज्यों वस्तुका विशेषज्ञानकूं रोकनेवाला महीन पडदा है। जैसैं देवताका मुखऊपरि महीनवस्त्र पडिजाय तदि सामान्य तो ग्रहण होजाय परंतु समस्त अवयवसहित विशेषग्रहण करनेकूं समर्थ नहीं होय। दर्शनावरणकीज्यों वस्तुका सामान्यग्रहणके रोकनेवारा द्वारविषै नियोग कीया द्वारपाल है सो नोकर्म है। जातैं द्वारपाल द्वारमाहीं प्रवेश नहीं करनेदे तदि देवताका सामान्यभी ग्रहण नहीं होयहै। वेदनीयकी सहतलपेटी खड्गधारा नोकर्म है। जातैं वेदनीयकीज्यों याहू सुखदुःख वेदनाका कारण है। मोहनीयका मद्य नोकर्म है। जातैं मोहनीयकीज्यों मद्यहू जीवका गुणकूं घातैहै। आयुकर्मका च्यार प्रकार आहार नोकर्मद्रव्य हैं। जातैं च्यार प्रकार आहारकैहू आयुकर्मकीज्यों शरीरकी स्थितिका हेतुपणा है। बहुरि नामकर्मका

औदारिकादिदेहही नोकर्मद्रव्य है। जातैं औदारिक देहकैहू योगका उपजावना संभवै है। बहुरि गोत्रकर्मका उच्च नीच अंग नोकर्म हैं। जातैं गोत्रकर्मज्यों उच्च नीच अंगकैहू कुलादिक प्रगट करनेका सद्भाव है। अंतरायकर्मको भंडारी नोकर्म है। जातैं अंतरायकर्मकीज्यों भंडारीहू भोगादिवस्तुनिके संयोगमैं विघ्न करैहै। ऐसैं उत्तरप्रकृतिनिकाभी जानना। मतिज्ञानादिका रोकनेवाला मतिज्ञानादि कर्म है। त्योंही पटादिककी आड मतिज्ञानकूं रोकैहै। विषादिक द्रव्य श्रुतज्ञानकूं रोकै है। अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञानका घात करनेवाला कोऊ संक्लेश करनेवाला बाह्यपदार्थ है। केवलज्ञानावरणकै नोकर्म नाहीं है। केवलज्ञान क्षायिक है याकूं रोकनेवाला संक्लेशकारी वस्तु नहीं है। पंचप्रकारकी निद्राका नोकर्म भैंसिका दही लशुन खल आदिद्रव्य हैं। चक्षुरचक्षुदर्शनकूं रोकनेवाला पटादिक वस्तुकरि आच्छादकता है। अवधिदर्शनकूं रोकनेवाला संक्लेशकारी बाह्यपदार्थ नोकर्म हैं। केवलदर्शन क्षायिक है। याका नोकर्म नहीं है। सातावेदनीयका इष्ट अन्नपानादि नोकर्म द्रव्य हैं। असातावेदनीयका अनिष्ट अन्नपानादिक नोकर्म हैं। सम्यक्त्वप्रकृतिका नोकर्म कहैं हैं—आप्त अर आप्तका आलय आगम अर आगमका धरनेवाला तप अर तपका धारक ए पद् आयतनहू सम्यक्त्वप्रकृतिकीज्यों सम्यग्दर्शनके घात करनेवारे नहीं। सम्यक्त्वके चल मल अगाढ ही के हेतु हैं। अर अनाप्त अर अनाप्तका स्थान कुश्रुत अर कुश्रुतका धारक मिथ्यातप अर मिथ्यातपस्वी ए छह अनायतन मिथ्यात्वकर्मके नोकर्म हैं। मिथ्यात्वकीज्यौं श्रद्धानके बिगाडनेवाले हैं। अर छह आयतन अर अनायतन दोऊ मिलेहुए मिश्रकर्मका नोकर्म हैं। अनंतानुबंधी कषायका मिथ्यात्वका आयतनादि षद् अनायतनादिक हैं। बहुरि अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन कषायनिका जो देशव्रत सकलसंयम यथाख्यातचारित्रके निवारक अपनेअपने योग्य काव्य नाटक कोकआदिक ग्रंथ तथा विटजना

विना एकसो छियालीस है। अप्रमत्तमैंभी तिर्यगायु नरकायुविना एकसो छियालीस हैं। बहुरि उपशमसम्यग्दृष्टिकै अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय उपशांतमोह इन च्यार गुणस्थानरूप उपशमश्रेणीविषै एकएकमैं एकसो छीयालीसको सत्त्व है। बहुरि क्षायिकसम्यग्दृष्टिकै उपशमश्रेणीके च्यार गुणस्थाननिमैं नरक तिर्यक् देव आयु अर च्यार अनंतानुबंधी अर तीन दर्शनमोहकी इन दशविना एकसो अडतीसका सत्त्व है। बहुरि क्षपकश्रेणीके च्यार गुणस्थान हैं तिनमैं अपूर्वकरणमें तो तीन आयु च्यार अनंतानुबंधी तीन दर्शनमोहनीयाविना एकसो अडतीस हैं। बहुरि अनिवृत्तिकरणका नवभाग हैं। तिनमैं प्रथमभागमैं तो एकसोअडतीसहीका सत्त्व है अर इहांही नरकगति नरकगत्यानुपूर्व्य तिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य विकलत्रय स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला उद्योत आताप एकेंद्रिय स्थावर सूक्ष्म साधारण इन षोडशकी व्युच्छित्ति भई तदि अनिवृत्तिकरणका द्वितीयभागविषै एकसो बाईसका सत्त्व है। बहुरि द्वितीयभागमैं आठ मध्यमकषायकी व्युच्छित्ति भई तदि तृतीयभागमें एकसो चौदहका सत्त्व है। ऐसैंही तृतीयभागमैं षंढवेद, चतुर्थभागमैं नपुंसकवेद, पंचमभागमें हास्यादिक छह नोकषाय, छठाभागमें पुरुषवेद, सप्तममैं संज्वलनक्रोध, अष्टममें मान, नवममें माया ऐसैं अनिवृत्तिकरणके नव भागनिविषै छत्तीसप्रकृतिनिका नाश भया तदि सूक्ष्मसांपरायमें येकसो दोयका सत्त्व है। बहुरि सूक्ष्मसांपरायमें संज्वलनलोभकी व्युच्छित्ति भई तदि क्षीणमोहमैं एकसौ एकका सत्त्व है। बहुरि क्षीणमोहमें निद्रा प्रचला पांच ज्ञानावरण च्यार दर्शनावरण पांच अंतराय ऐसैं षोडशका नाश होतै पचासी प्रकृतिका सत्त्व सयोगीजिनकै है। सयोगीमैं व्युच्छित्ति नहीं है। बहुरि पंच शरीर, पंचबंधन, पंच संघात, षट् संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, पांच वर्ण, दोय गंध, पंच रस, आठ स्पर्श, स्थिर अस्थिर शुभ अशुभ सुस्वर दुःस्वर देवग-

ति देवगत्यानुपूर्व्य प्रशस्त अप्रशस्त विहायोगति दुर्भग निर्माण अयश अनादेय प्रत्येक अपर्याप्त अगुरुलघु उपघात परघात उच्छ्वास, एक वेदनीय, नीचगोत्र ए बहत्तरि प्रकृति अयोगीकै द्विचरमसमयमैं नाशनैं प्राप्त होंय तादि अयोगीका अंतसमयमैं तेरहका सत्त्व है। बहुरि अयोगीका अंतका समयमैं एक वेदनीय मनुष्यगति पंचेंद्रियजाति सुभग त्रस बादर पर्याप्त आदेय यश तीर्थंकर मनुष्यायु उच्चगोत्र मनुष्यगत्यानुपूर्व्य इन तेरहको नाशकरि एक समयमैं सिद्धालयकूं प्राप्त होय है। ऐसैं सत्त्वका गुणस्थाननिमैं सामान्यवर्णन किया। मार्गणानिमैं गोमटसारादि आगमतैं धारण करना। अब दशकरणका नामादिक स्वरूप कहैहैं। बंधकरण[1], उत्कर्षणकरण[2], संक्रमणकरण[3], अपकर्षणकरण[4], उदीरणाकरण[5], सत्त्वकरण[6], उदयकरण[7], उपशमकरण[8], निधत्तिकरण[9], निकाचनकरण[10] ऐसैं दशकरण जानने। जीवकै मिथ्यात्वादिक परिणामनिकर जो नवीन पुद्गलद्रव्य ज्ञानावरणादिकर्मके स्वरूप परिणमैं हैं अर कर्मस्वरूप होइ जीवका ज्ञानादिगुणनिकूं आच्छादन करै हैं सो बंधनाम करण है। बहुरि कर्मनिकी स्थिति अर अनुभाग पूर्वै बंधरूप था तिनकी वृद्धिका होना सो उत्कर्षण नाम है। बहुरि जो प्रकृति अपने स्वरूपकूं छांडि परप्रकृतिरूप परिणमनकूं प्राप्त होइ सो संक्रमणनाम है। बहुरि स्थिति अर अनुभागकी हानि होना सो अपकर्षणनाम है। उदयावलीवाह्य तिष्ठता कर्मकूं स्थितिद्रव्यकूं अपकर्षणका वशतैं उदयावलीविषै निक्षेपण करना सो उदीरणानाम है। पुद्गलनिका कर्मरूपकरि अवस्थितपणा सो सत्त्वनाम है। बहुरि कर्मके निषेक अपनी स्थितिका क्षय होनेतैं सदैव झडैं सो उदयनाम है। बहुरि जो कर्मस्वरूप परिणम्या पुद्गलद्रव्य उदयावलीविषै क्षेपनेकूं अशक्य होइ सो उपशांतनाम है। अर जो कर्मस्वरूप परिणम्या पुद्गल उदयावलीमैं क्षेपणेकूं अर संक्रमण करनेकूं शक्य नहीं होइ सो निधत्तिनाम है। बहुरि जो कर्मपुद्गलद्रव्य उदयावलीमैं

क्षेपणेकूं अर संक्रमण करनेकूं उत्कर्षण करनेकूं अर अपकर्षण करनेकूं शक्य नहीं होइ सो निकाचितनाम है। ऐसें कर्मकी दश अवस्था हैं। तिनमें मिथ्यात्वगुणस्थानकूं आदिकरि अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यंत तो दश करण हैं। अपूर्वकरणकै ऊपरि दशमगुणस्थानपर्यंत उपशांत निधत्ति निकाचिताविना सात करण हैं। ऊपरि सयोगीपर्यंत संक्रमणकरणविना छह करण हैं। अयोगकेवलीगुणस्थानविषै सत्त्वकरण अर उदयकरण दोयही करण हैं। इहां इतना विशेष है—उपशांतकषायविषै मिथ्यात्वप्रकृतिको अर मिश्रप्रकृतिको सम्यक्त्वरूप करणकरि संक्रमकरणहू है। अन्यप्रकृतिनिका संक्रमकरणविना छह करणही हैं। ऐसैं बंधपदार्थ है सो परमावधि सर्वावधिज्ञानी तथा मनःपर्ययज्ञानी केवलज्ञानी तो प्रत्यक्ष जानै हैं। जिनकै एक एक परमाणुका अनंतानंत शक्तिके अंशपर्यंत जाननेका सामर्थ्य है। अन्य जीव तिनका उपदेशया आगमतैं जानि इस कर्मका विध्वंश करना योग्य है। ऐसैं इस अध्यायमैं बंधतत्त्वका निरूपण है। तहां पहलै तो गुणस्थानादि वीस प्ररूपणा वर्णनकरी बहुरि मिथ्यात्व आदि बंधके कारण कहे अर बंधका स्वरूप कह्या। आगैं तिसके च्यार भेद कहिकरि पहला प्रकृतिबंधकी मूलप्रकृति आठ अर उत्तरप्रकृति एकसो अडतालीस तिनके भिन्नभिन्न नाम कहे अर अष्टकर्मनिकी तथा उत्तरप्रकृतिनिकी उत्कृष्ट जघन्य स्थिति कही। बहुरि अनुभवबंध अर प्रदेशबंधका स्वरूप कह्या। बहुरि पुण्यपापप्रकृतिनिका भेद कह्या। बहुरि बंधकूं अर उदयसत्त्वकी गिणती गुणस्थानद्वारै कही। बहुरि निरंतरबंधी ध्रुवबंधयोग्यकृतिनिकूं तथा ध्रुव जिनका उदय तिन प्रकृतिनिकूं कहि दशकरणरूप दश अवस्थाका सामान्यवर्णनकरि अष्टम अध्याय समाप्त किया ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमो अध्यायः।

अर्थ—ऐसैं तत्त्वर्थका है अधिगम जातैं ऐसा जो दशअध्यायरूप मोक्षशास्त्र तिसविषैं अष्टम अध्याय समाप्त भया।

दो०—है जातैं तत्त्वार्थका, अधिगम शिवसुखदाय। मोक्षशास्त्र मंगलमयी, नमुं अष्टम अध्याय ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः प्रारभ्यते ।

दोहा ।

ज्ञानविरागस्वभावतैं, करै न कर्म प्रवेश ।
पूर्वकर्म बहु निर्जरै, पाय आप्तउपदेश ॥ १ ॥

अर्थ—बंधपदार्थका व्याख्यानकै अनंतर संवरतत्त्व कहनेकूं सूचन करैहैं। जो यो अष्टप्रकार कर्मनिको बंध है सो अनादिसंतानतैं वारंवार सुखदुःख का कारण है। अर समस्त आत्मप्रदेशनि ऊपरि इन कर्मनिका दृढ अवस्थान है अर नानाजातिके शरीरके उपजावनमैं समर्थ है सो ऐसा बंध कोन उपावकरि नाशकूं प्राप्त होइ यातैं बंधके नाशके अर्थि संवरका लक्षणकूं कहै हैं—

आस्रवनिरोधः संवरः ॥ १ ॥

अर्थ—आस्रवका निरोध होना सो संवर है। कर्मके आवनेके निमित्त जो मन वचन कायके योग मिथ्यात्व कषायादिकनिका निरोधहोनेतैं जो अनेकदुःखनिका कारण जो कर्म ताकी प्राप्तिका अभाव होना सो संवर है। सो संवर द्रव्य भावको भेदकरि दोय प्रकार है। चतुर्गतिमैं भ्रमणरूप जो संसार ताको कारण जो क्रिया ताका अभाव होना सो संवर है। अर भावके निमित्ततैं कर्मपुद्गलनिका आगमनका रुकना सो द्रव्यसंवर है। इहां गुणस्थाननिमैं संवर योग्य प्रकृतिनिका कथन अष्टम अध्यायका अंतमैं कह्याही है। इहां आस्रवका निरोध होना सो संवर कह्या परंतु आस्रवके निरोध कोन कारण करि होइ ऐसा नहीं जाण्या यातैं आस्रव निरोधके कारण कहनेकूं कहै हैं—

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजयचारित्रैः ॥ २ ॥

अर्थ—स कहिए कह्या जो संवर सो गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा परीषहजय चारित्र इन छहप्रकारकरि होइ है। संसारपरिभ्रमणके कारणनितैं आपकी रक्षा करना सो गुप्ति है। परप्राणीनिकै पीडाका परिहारकी इच्छा करि जो सम्यक् यत्नाचाररूप प्रवृत्ति करना सो समिति है। इष्ट जो नरेंद्र मुनींद्र देवेंद्रादिस्थानमैं आत्माकूं धारण करै सो धर्म है। शरीरादिक परद्रव्य ज्ञानस्वभाव आत्मद्रव्य अन्य धर्मादिक द्रव्यनिका स्वभावनिका वारंवार चिंतवन करना सो अनुप्रेक्षा है। क्षुधातृषादि परिषह वाह्य अभ्यंतर निमित्ततैं प्राप्त होइ तिनकूं क्लेशरहित परिणामनितैं सहना सो परिषहजय है। संसारपरिभ्रमणकूं कारण ऐसी क्रियाका अभावकरि आचरण करना सो चारित्र है ऐसैं गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा परिषहजय चारित्र इनकरि संवर होना कह्या। इहां संवरका प्रकरण होतैंहू स शब्द सूत्रमैं कह्या सो ऐसा जणावै है जो गुप्त्यादिकनितैं ही संवर होइ है। अन्य जो तीर्थनिमैं अभिषेक करना दीक्षाग्रहण करना मूंड मुंडावना देवताराधनादिक संवरके कारण नहीं हैं। जातैं राग द्वेष मोहकरि ग्रहण कीया कर्मका अभाव होना अन्यकारणनिकरि नही संभवै है। अव संवरका अन्यहू कारण है ताकूं कहै हैं—

तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥

अर्थ—तपकरि संवर तो होइही है तपतैं निर्जराहू होइ है। यद्यपि दशलक्षणधर्मविषै तप आगया तोहू समस्त संवरके कारणनिमैं तप है सो प्रधानकारण है यातैं प्रधानकूं भिन्न कह्याही चाहिए। तपके प्रभावतैं नवीनकर्मका संवर होइ है। अर पुरातनवंधनरूप भए सत्तामैं तिष्ठतेनिकी निर्जराहू होइ है। यद्यपि तपका फल स्वर्ग राज्यादिकनिका अभ्युदयरूप है तथापि प्रधानफल कर्मका क्षयकरि मुक्त होना है। गो-

णफल इंद्र चक्रवर्त्यादिकनिका विभव है। जैसैं खेतीका प्रधानफल धान्य उपजना है गौणफल पराल घासादिक हू है। अब गुप्तिका लक्षण कहै हैं—

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥

अर्थ—योग जो मन वचन कायकी क्रिया इनका यथेष्ट आचरणका रोकना सो योगनिग्रह है। सम्यक् कहिए सत्कार लोकरंजनादिक तो इस लोकसंबंधी अर विषयसुखादि परलोकसंबंधीनिकी अपेक्षारहित केवलस्वरूपकी विशुद्धिताके अर्थि योगनिका निग्रह सो गुप्ति है। मन वचन कायकी स्वेच्छाप्रवृत्तितैं जो आस्रव होइ था सो इनके निरोधतैं संवर होइ है। जो शरीरका परित्याग जेतैं नहीं होय तेतैं संक्लेशका अभावके अर्थि मन वचन कायके योगनिके रोकनेकी प्रतिज्ञा है। तोहू आहार विहार नीहार प्रश्नादिककी अपेक्षातैं योगनिकी प्रवृत्ति अवश्य होइ। तिस प्रवृत्तिमैं समितिरूप प्रवर्त्तनेतैं आस्रव नहीं आवै है संवर होइ है। तातैं समितिनिकूं कहै हैं—

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥

अर्थ—ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपण उत्सर्ग ए पांच समिति हैं। इहां पूर्वसूत्रतैं सम्यक्पदकी अनुवृत्ति आवै है तातैं सम्यक्पद पांचूंनिमैं लगाना। तातैं सम्यगीर्या, सम्यग्भाषा, सम्यगेषणा, सम्यगादाननिक्षेपण, सम्यगुत्सर्ग, ऐसैं इनकी अनादिसिद्धांतमैं सार्थकसंज्ञा है। तहां जो मुनि जीवनिके स्थानयोन्यादिकको ज्ञाता होइ अर धर्मके अर्थि यत्नमैं सावधान होय ऐसे साधुकै सूर्यका उदय होजाय अर नेत्रनिके विषयग्रहणका सामर्थ्य उपजि आवै अर मनुष्य तिर्यंचनिकै परिभ्रमणतैं ओस बरफ इत्यादिक जिस मार्गतैं दूरि भई होइ ऐसे मार्गमैं अन्यतैं मनको रोकि धीरैंधीरैं पद स्थापन करता शरीरका अंगोपांगादिकनिकूं संको-

चरूप करता जूड़ाप्रमाण आगली भूमिके देखनेमें दृष्टीकूं लगावता संता गमन करै ताके पृथ्वीकाय जलकायादिजीवनिकी विराधनाके अभावतें ईर्यासमिति होइ है। बहुरि हित मित संदेहरहित वचन बोलै सो भाषासमिति है। तहां जातें अपने संसारका अभाव होइ सो स्वहितवचन है। अर जातें परजीवनिका संसारपरिभ्रमण मिटै सो परहित है ऐसा वचन कहै जातें अपना अर अन्यका हित होय अर अनर्थक बहुत प्रलापरहित प्रामाणीक वचन सो मितवचन है। अर जामें संदेहादिरहित प्रगट अर्थ होय वा प्रगट अक्षरहोय सो असंदिग्धवचन है। हित मित असंदिग्ध वचन तो कहै अर मिथ्यात्ववचन ईर्षाके वचन अप्रियवचन कषायके वचन भेद करनेवाले वचन अल्पसावचन शंकाकूं धारता शंकित वचन भ्रम उपजावनेवाला वचन कषायके वचन हास्यके वचन देशकालादिकके अयोग्यवचन सभाके सत्पुरुषनिमें नहीं बोलनेके वचन कठोरवचन अधर्मकी विधिका उपदेशक वचन अतिप्रशंसादिक वचन इत्यादि सदोषवचनकूं छांडि निर्दोष जिनसूत्रकै अनुकूल वचन कहै ताकै भाषासमिति होइ है। बहुरि दिवसविषै एकवार निर्दोष आहार ग्रहण करना सो एषणासमिति है। तिसके धारक गृहादिकपरिग्रहरहित अर गुणरत्ननिकरि भरी देहरूपगाडीकूं बांगवाकीज्यों प्रमाणीक आहार देय समाधितपनिकूं प्राप्त करनेके इच्छुक हैं। अर उदरमें उपज्या क्षुधादिक दाहका उपशमनकै अर्थि औषधिकी ज्यों प्रमाणीक आहार ग्रहणकरता भोजनके आस्वादनकी लालसारहित देशकालादि सामर्थ्यसहित उत्तमकुलमें उपज्या अनिंद्य अर उद्गम उत्पादन एषणासंयोजनप्रमाण अंगार धूप कारणादिदोषरहित नवधा भक्तिसहित कृत कारित अनुमोदनादि दोषरहित उत्तमकुलके उपजेनिकरिभक्तितें दीया अंतराय टालि खडा अपना हस्तरूपही पात्रमें भोजन करै। याचना नहीं करै हुंकारादि समस्या नहीं करै, आधा उदर भोजनतें भरै, चौथाई जलतें भरै अर

उदरका चतुर्थभाग रीता राखै। केवल रत्नत्रय धर्मका सहकारी शरीरकूं जाणिं धर्मका पालनके निमित्त आहार लेहै। अर शरीरकी पुष्टता आस्वादनादि दोषरहित ग्रहण करै ताकै एषणासमिति होइ है। बहुरि शरीर पुस्तक कमंडलादि धर्मतैं विरोधरहित अन्य जीवनितैं विरोधरहित उपकरणनिकूं नेत्रनितैं देखि पीछीतैं सोधि ग्रहणकरना धरना प्रवर्त्तन करना सो आदाननिक्षेपणसमिति है। बहुरि त्रसस्थावरजीवनेकूं बाधा जैसैं नहीं होइ तैसैं शुद्ध जंतुरहित अंकुररहित मार्गचारिनिकी दृष्टिके अगोचर भूमिमैं मलमूत्रादि क्षेपणकरि प्राशुकजलतैं शौचक्रिया करै सो उत्सर्गसमिति है। ऐसैं संवरकूं कारण पंचसमिति कहीं। इहां कोऊ शंका करै—जो ईर्यासमित्यादि पंचसमिति तो कायगुप्ति के अंतर्भूत हैं फिर भिन्न कैसैं कही? ताकूं उत्तर कहै हैं—जो प्रमाणीककालपर्यंत समस्त योगनिका निग्रह सो तो गुप्ति है। अर गुप्तिमैं बहुतकालपर्यंत ठहरनेकूं असमर्थ साधुकै अपने कल्याणरूप क्रियामैं प्रवृत्ति होय सो समिति है। याहीतैं गमन भाषण भोजन ग्रहण निक्षेपणा मलमोचनलक्षण समितिकी विधिमैं जे अप्रमादी हैं तिनकै गमन भाषणादिद्वारै प्रवेश करते कर्मनिका निरोधहोनेतैं संवरकी सिद्धि होइ है। अब धर्मके संवरका हेतुपणातैं धर्मकूं कहैहैं॥

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥

अर्थ—उत्तमक्षमा, उत्तममार्दव, उत्तमआर्जव, उत्तमशौच, उत्तमसत्य, उत्तमसंयम, उत्तमतप, उत्तमत्याग उत्तमआकिंचन्य, उत्तमब्रह्मचर्य ए दश धर्मके भेद हैं। आहारके अर्थि परके कुलमैं गमन करते साधुकै दुष्टजननिकरि किए दुर्वचन तिरस्कार हास्य ताडन मारणादिक क्रोधकी उत्पत्तिके निमित्तनिकी निकटता होतै हू परिणाममैं मलीनपणाका अभाव सो क्षमा है। बहुरि उत्तम जाति कुल रूप विज्ञान ऐश्वर्य श्रुत लाभ वीर्यनिकूं विद्यमान होतै हू इन कृत मदका नहीं होना सो मार्दव है अथवा परकरि किया तिर-

स्कार होतै हू अभिमानका अभाव सो मार्दव है। बहुरि मन वचन कायकी कुटिलता वक्रताका अभाव सो आर्जव है। बहुरि जो परके धन परकी स्त्रीनिमैं अभिलाषाका अभाव अर छह कायके जीवनिकी हिंसाका अभाव सो शौच है अथवा अपने जीवितका लोभ पर जे स्त्रीपुत्रामित्रादिकनिके जीवितका लोभ अर अपने आरोग्यपणा चाहना तथा स्त्रीपुत्रादिकनिकै आरोग्य रहनेका लोभ अपने इंद्रिय प्रबल रहनेका लोभ तथा स्त्रीपुत्रादिकनिका इंद्रियांकै प्रबलता रहनेका लोभ अपने उपभोगसामग्री मिलनेका स्थिर रहनेका लोभ ऐसैं च्यार प्रकार लोभका परिणाममैं अभाव होइ समभाव संतोषभावका प्रगट होना सो शौच है। बहुरि प्रशस्तजनामैं सुंदरवचन बोलना सो सत्य है। ताके जनपदादिक दश भेद कहे। कोऊ कहै जो सत्य तो भाषासमितिमैं अंतर्भूत है फिर सत्य कैसैं कह्या। ताकूं कहैहैं—जो संयमी है सो साधुपुरुषनिमैं असाधुपुरुषनिमैं हितमितही कहै है। जो प्रमाणीक नहीं कहै तो रागभाव तथा अनर्थदंडादिक दोष आवै तातैं भाषासमिति कही। अर इहां ऐसा जो दीक्षित संयमी वा संयमीनिका भक्त जे श्रावक हैं ते ज्ञानचारित्रादिककी शिक्षादिकमैं सत्यवचन सूत्रके अनुकूलवचन धर्मकी वृद्धिके अर्थि बहुत बोलनाहू युक्त है। अब संयम कहा है सो कहैहैं—ईर्यासमित्यादिकमैं वर्त्तता मुनिकै जीवनिकी रक्षाके अर्थि एकेंद्रियादि प्राणीनिकै पीडा करनेका परिहार सो प्राणीसंयम है। अर शब्द रूप गंध रस स्पर्श रूप इंद्रियनिके विषयनिमैं रागका अभाव सो इंद्रियसंयम है। ऐसैं प्राणीसंयम अर इंद्रियसंयम दोयप्रकार संयम कह्या। तिस संयमकाहू दोय भेद हैं—एक उपेक्षासंयम एक अपहृतसंयम दोय ऐसैं भेद हैं। तहां देशकालके विधानका जाननेवाला अर उत्कृष्टसंहननकूं धारता अर मनवचनकायकी गुप्तिका धारक साधुका जो रागद्वेषकरि लिप्त नहीं होना सो उपेक्षासंयम है। तथा याकूं वीतरागसंयम हू कहैहैं। बहुरि उत्कृष्ट

मध्यम जघन्य भेदकरि अपहृत संयम तीन प्रकार है। तहां प्रासुकवस्तिका प्रासुकआहारमात्रही है बाह्य साधन जाकै अर स्वाधीन वा पराधीन है ज्ञानचारित्रका करणा जिनकै ऐसा साधुकै बाह्यजंतु प्राणीका पडना होजाय तो उस प्राणीतैं अपना शरीरकूं दूरिकरि प्राणीनिकी रक्षा करै सो उत्कृष्ट है। अर कोमल उपकरणतैं प्राणीनिको दूरि परिहार करै सो मध्यम है। अर अन्य उपकरणकरि प्राणीनिकूं दूरि करना सो जघन्य अपहृतसंयम है। अब इस अपहृतसंयमका जाननेके अर्थि अष्टशुद्धिका उपदेश भगवान् कह्या है। सोही कहैहैं—भावशुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, भिक्षाशुद्धि, प्रतिष्ठापनाशुद्धि, शयनासनशुद्धि, वाक्यशुद्धि ऐसैं अष्टशुद्धिका नाम कह्या। अब अष्टशुद्धि ताकूं कहैहैं। तहां जो भावशुद्धि है सो कर्मनिके क्षयोपशमकरि उपजैहै अर मोक्षमार्गमैं रुचि करिकैं उज्ज्वलताकूं प्राप्तभई है अर रागादि उपद्रवकरि रहित है सोही भावशुद्धि है। याकूं होतेंही आचार प्रकाशकूं प्राप्त होय है। जैसें उज्ज्वल भीतपरि चित्राम दिपैहै। तैसैं जाका रागादिक उपद्रवरहित भावशुद्धि होयगी ताकैही आचार भूषित होयगा। बहुरि कायशुद्धि कहैहैं—जाका काय वस्त्रादिक आभरण अर आभूषणादिरहित है। अर स्नानविलेपनादिसंस्काररहित है। अर शरीरमैं पसेव रजादिककरि लिप्तपणाकूं धारै हैं। अर नेत्र भ्रकुटि ग्रीवा हस्तपादादिकनितैं विकार करनेकरि रहित हैं। अर जाकी सर्वत्रयत्नाचाररूप प्रवृत्ति है। मानू मूर्तिमान प्रशमभावके सुखकूं दिखावैही है। ऐसी कायकी शुद्धता होय तातैं अन्य जीवनिकै आपतैं भय नहीं होय है अर अन्यजीवनितैं आपकै भय नहीं उपजै सो ही कायशुद्धि है। अब विनयशुद्धिकूं कहै हैं। अरहंतादिक परमगुरुनिमैं यथायोग्य पूजा स्तवन वंदनादिकमैं लीन अर सम्यग्ज्ञानादिकनिमैं यथा विधिकरि युक्त अर समस्त कार्यनिमैं गुरूनिके अनुकूलप्रवृत्तिकरि युक्त अर प्रश्न

स्वाध्याय वाचना कथा विज्ञप्ति इत्यादिकनिके अंगीकार करनेमें प्रवीण अर देश काल भावनिका यथावत् जाननेमैं प्रवीण ऐसा आचार्यनिकै अनुकूल आचरण करनेवाली विनयशुद्धि है समस्त त्रैलोक्यकी संपदाकी मूल है अर या विनयशुद्धिही संसारसमुद्रके तिरणेकूं जिहाज है। ऐसैं विनयशुद्धि कही।

अब ईर्यापथशुद्धि कहै हैं। नानाप्रकार जीवनिके स्थान तथा जीवनिके उत्पत्तियोग योनिस्थान अर जीवनिके वसनेके आश्रय इनका ज्ञानकरि उपज्या यत्नाचार तिसकरि प्राणीनिकै पीडाका परिहारकरि जामैं गमन होय अर अपना अंतरंगज्ञानका प्रकाश अर सूर्यका प्रकाश अर अपना इंद्रियका प्रकाशकरि देख्याहुवा क्षेत्रमैं गमन होय अर जामैं शीघ्रगमन नहीं होय विलंबतैं गमन नहीं होय अर संभ्रमरूप विस्मयरूप क्रीडा विकार दिगंतरावलोकनादिदोषरहित गमन होय सो ईर्यापथशुद्धि है। याकूं होतैं संतैं संयम प्रतिष्ठाकूं प्राप्त होय है। जैसैं सम्यक् नीति होतैं विभवप्रतिष्ठा पावै। ऐसैं ईर्यापथशुद्धि कही। अब भिक्षाशुद्धिकूं कहैहैं—कैसी है भिक्षा जो भिक्षाकूं जायहै तदि शरीरकूं आगैं पाछैं नेत्रनितैं अवलोकनकरि है गमन जामैं अर शरीरका आगला पाछला अंग ऊपरि पीछी फेरनेका है विधान जामैं अर आचारांग सूत्रमैं जो भिक्षाका देशकाल कह्या तिसका जाननेमैं प्रवीण अर भोजनका लाभमैं अलाभमैं सन्मानमैं अपमानमैं समान है मनकी वृत्ति जामैं अर लोकनिंद्य कुलका वर्जन करनेमैं तत्पर अर चंद्रमाका गमनज्यों हीन अधिक गृहमैं समान है गमन जामैं अर दीन अनाथनिके गृह अर दानशाला विवाहगृहादिकनिके अत्यंत वर्जनेकरि सहित अर दीनवृत्तिकरि रहित अर प्रासुक आहारके अवलोकनमैं सावधान अर आगममैं जो कह्या निर्दोष आहारकी प्राप्तिकरि प्राणीनिकी रक्षामात्रही है फल जाका अर लाभमैं अर अलाभमैं सुंदर रसरूप आहारमैं अर विरस आहारमैं समान है संतोष जामैं ऐसी भिक्षा आगममैं कही है।

भावार्थ—मुनिकी भिक्षा सदाकाल ऐसैं जानना—जिस अवसरमैं अन्यमतनिके भेषीजन भिक्षा लेय आवर्त होय तथा बहुत धूलिआदिक शांत होगई होय चाकीनिके मूसलनिके शब्द होते रहिगए होंय तिस कालमैं अपने अंगका आगला पाछला भागकूं देखि पींछीसूं सोधि गमन करै। ईर्यापथ सोधते मौनसहित मार्गमैं वचनालापरहित धर्मध्यानादि तथा द्वादशभावनादि चिंतवन करता गमन करै। सो आचारांगमैं मुनिके आहार करनेयोग्य देशकी अर कालकी प्रवृत्तिकूं निपुण हुवा जानता होय जो देशकी कालकी प्रवृत्तिही नहीं जानै ताकै मुनिधर्म कैसैं प्रवर्त्तै? जो इस देशमैं उत्तम कुलमैं मनुष्यनिकी ऐसी रीति है ऐसा खानपान है धर्मका आचारका मार्गकूं मुनिके आहार देनेकी विधके जाननेवाले लोक बसै हैं कि नहीं जाननेवाले बसै हैं तथा लोकनिके ऐसा कालमैं भोजन होइ है तथा इस कालमैं दानमैं सावधानी है। तथा इस कालमैं ऐसैं वाणिज्यादि कर्ममैं प्रवर्त्तै है। ऐसैं देशकालजनित प्रवृत्ति पहलैही श्रावकादिक धर्मात्माजननितैं श्रवणकरि लीनी होय अर जो भोजनका लाभ होजाय तो हर्ष नहीं करै। अर अलाभ होय तो विषाद नहीं करै। अर सन्मान होय तो हर्ष नहीं अर अपमान होय तो विषाद नहीं करै। अर लोकनिंद्य कुलमैं कदाचित् गमन नहीं करै अर विना जानै गमन होजाय तो अंतरायकरि वनकूं पाछा जाय फिर उस दिवसमैं भोजन नहीं करै। अर धन ऐश्वर्यवान राजाके घरमैंहूं भोजनके अर्थि प्रकाश करै तैसैं साधु है सो दरिद्रीका घरमैंहू भोजनके अर्थि प्रवेश करै अर धनाढ्यकैहू प्रवेश करै। अर जे दीन अनाथ याचकादिक लोक हैं तिनके घरमैं प्रवेश नहीं करै। अर जहां दान वटता होइ विवाहादिक मंगलगान गीतादिक प्रवर्त्तता होय जहां पूजन यज्ञादिक होता होय ऐसे घरमैं भोजनके अर्थि प्रवेश नहीं करै। अर आहारके निमित्त याचना आशीर्वाद धर्मलाभादिक नहीं कहै। अर विवर्णता उदरकी कृशता

हस्त नेत्र भृकुटीकी समस्या तथा हुंकारादिक ऐसी दीनवृत्ति कदाचित् नहीं करै। तीनबार आदरपूर्वक तिष्ठतिष्ठ इत्यादिक प्रतिग्रहविना खडा नहीं रहै। जठांताईं अन्य भिक्षुकादिकनिकै जानेकी मनाई नहीं होइ तीठांपर्यंत जाय विजुलीका चमत्कारकीज्यों अंग दीखो तथा मतिदीखो वाहुड़ि अन्य ग्रहमैं प्रवेश करै प्रासुक आहारकूं देखनेमैं तत्पर अयोग्य जैसातैंसा नहीं ग्रहण करै। अर आचारांग आगममें कही ज्यों छीयालीस दोष बत्तीस अंतराय चोदह मल इत्यादिकरहित शुद्धविधिकरि निर्दोष आहारकूं ग्रहणकरि प्राणनिका रक्षामात्रही फल जानै है। आहार करनेकरि भोजनका आस्वादन इंद्रियबल दीर्घजीवनादिफल कूं नहीं चाहै हैं। जातैं चारित्ररूप संपदा तो भोजनकी शुद्धतातैं है। जैसैं साधुजननिकी सेवा गुणसंपदाकूं कारण है। लाभमैं अलाभमैं सुंदररसरूप भोजनमैं नीरस विरस भोजनमैं समभाव करि जो संतोषी होय तिसहीकै भिक्षाशुद्धि है। भिक्षाकी पांच वृत्ति हैं—गोचरीवृत्ति, अक्षम्रपणवृत्ति, उदराग्निप्रशमनवृत्ति, भ्रमराहारवृत्ति, गर्त्तपूरणवृत्ति ऐसैं पंचप्रकार भिक्षावृत्ति है। तिनमैं जैसैं लीला आभरणादिसहित श्रेष्ठस्त्रीकरि ल्याया घासकूं गौ चरैहै। परंतु तिस स्त्रीका रूपसंपदा आभरणादिकके देखनेमैं लीन नहीं होइहै जैसा घास धरया तैसैकूं चरबेमैंही लीन है तैसैं साधुहू भिक्षाके देनेवाले मनुष्यनिका कोमलललित रूप सौंदर्य वेष विलास देखनेमैं निरुत्सुक हुवा शुष्क आहार द्रव कहिए जलघृतादिकनिकरि रहित आहारमैं तफावत नहीं विचारता जैसा रस नीरस शीत ऊष्ण कठिन कोमल जैसा दातारकरि दीया वैसा भक्षण करैहे। तातैं गौकीज्यों चार कहिए भक्षण तातैं गोचरीवृत्ति कहिए है। अथवा जैसैं वनके नानास्थाननिमैं तिष्ठते अपनेयोग्य घासकूं गौ चरैहै अर वनके स्थानशोभा संपदा देखनेमैं तत्पर नहीं होइहै। तैसैं साधुहू गृहस्थका दीया योग्य आहारहीकूं भक्षण करैहे। गृहस्थका महल मकान सुवर्ण रूपामय मृत्तिकामय पात्र धन

समृद्धिसहितपणा रहितपणाके देखनेमैं लीन नहीं होय तिनकै गोचरीवृत्ति वा गवेषणावृत्तिकरि आहार कहिए है। बहुरि जैसैं वणिक् रत्नांके भारकरि परिपूर्ण भरी गाडीकूं कोऊ घृतादिकतैं वांगि अपने वांछित देशकूं प्राप्त करै है। तैसैं मुनिहू गुणरत्ननिकरि भरी देहरूप गाडीकूं निर्दोष भिक्षा देय अपने वांछित समाधिपतनकूं प्राप्त करै हैं समाधिमरणपर्यंत लेजाय है सो अक्षमृषणवृत्तिकरि भिक्षा है। इहां अक्षमृषण नाम गाडीकूं वांगनेका है। बहुरि जैसैं भंडारमैं लाग्या अग्निकूं जैसातैसा जलकरि गृहस्थी बुझावै हैं तैसैं साधुहू उदरमैं प्रज्वलित भई क्षुधारूप अग्निकूं रस नीरस भोजनकरि बुझावैं सो उदराग्निप्रशमनवृत्ति नाम भिक्षा है। बहुरि जैसैं भ्रमर है सो पुष्पकूं बाधा नहीं करता गंध ग्रहण करैहै तैसैं साधुहू दातारकै किंचित् बाधा नहीं उपजावता आहारकूं ग्रहण करै सो भ्रमराहारवृत्ति है। बहुरि जैसैं गृहस्थ है सो अपना गृहमैं भया खाडाकूं भाटा रेत कजोडा इत्यादिककरि भरिदेहै तैसैं साधुहू उदररूप खाडाकूं लूखा सचिक्कण शीत उष्ण जैसा प्राप्तभया भोजन तिस करि पूर्ण करैहै सो गर्त्तपूरणवृत्ति है। ऐसैं भिक्षा पंचप्रकारवृत्तिकरि होय सो भिक्षाशुद्धि है। बहुरि साधु है सो अपने नख रोम नासिका मल कफ वीर्य मूत्र मलादिकका क्षेपण करै सो देशकालकूं जाणि जैसैं कोऊ जीव मात्रकै बाधा नहीं होइ परिणाम नहीं बिगडै मार्गमैं आवने जावनेवालेनिका परिणामकै मलीनता नहीं आवै ऐसा प्रासुक चोपटरूप भूमि होइ तहां क्षेपण करै सो प्रतिष्ठापनशुद्धि है। बहुरि शयनासनशुद्धिका इच्छुक मुनि है सो जहां स्त्रीनिका आरजार होय नीचपुरुष तिष्ठते होंइ तथा चोर मद्यपानी सिकारी कुकर्मादि करनेवाले होंय तथा शृंगारके विकार शरीरके विकारकरि सहित उज्ज्वलवेषके धारनेवाली वेश्या कुलटादिक जहां होंइ तथा क्रीडासामग्रीसहित तथा गीत नृत्य वादित्रादिकरि व्याप्त होय। ऐसैं स्थाननिकूं दूरिहीतैं छांडै तथा तिर्यंच रोगीपुरुष मार्गके आ-

वनेजावनेवालेनिके स्थानकूं छांडिकरि अकृत्रिम गुफा वृक्षनिके कोटरादिक तथा कृत्रिम शून्यगृहादिक अपने अर्थि नहीं रच्या ऐसें जंतुबाधारहित प्रासुकस्थाननिमें तथा वनके प्रदेश पर्वतनिके शिखर वालू के टीवा इत्यादिक निर्दोषस्थानमैं शयनासन करै तिनकै शयनासनशुद्धि है। वहुरि वाक्यशुद्धिका धारक साधु है सो ऐसा वचन बोले जो पृथ्वी कायिकादि छह कायके जीवनिका घात नहीं होइ तथा पृथिव्यादिकनिका आरंभकी प्रेरणारहित होइ अर कठोर निष्ठुर परके पीडाका प्रेरक नहीं होइ, जिस वचनतें मिथ्यात्व असंयमादिक नहीं होइ, कषायनका संघरहित राग द्वेष मोहका नाश करनेमें तत्पर होइ, व्रतशील उपदेशादिक जाका प्रधान फल होइ सांसारिकफल नहीं होइ, अर आपका परका हितरूप होइ प्रमाणीक अल्प अक्षररूप होइ, मधुर होइ मनोहर होइ संयमीके योग्य होइ ऐसा वचनका उच्चारण करना सो वाक्यशुद्धि है। समस्त चारित्रसंपदा वाक्यशुद्धिके आधार है। ऐसें अपहृतसंयममें अष्टशुद्धि कही।

वहुरि जो कर्मका क्षयके निमित्त अनशनादिक तपका करना उत्तमतप है जैसें अग्निकरि तपाया सुवर्ण मलकूं छांडि शुद्ध होय है तैसें तपकरि तपाया आत्माहू कर्ममलकरि रहित शुद्ध होय है। वहुरि चेतन अचेतनलक्षण परिग्रहका त्याग सो त्यागधर्म है। बहुरि जो आत्मस्वरूपतें अन्य जो शरीरादिकनिमें संस्कारादिकनिका अभावके निमित्त ए हमारा, ऐसा ममत्वरूप अभिप्रायका अभाव सो आकिंचन्य है। वहुरि पूर्वैं जो कलागुणनिकरि चतुर ऐसी स्त्रीनिकूं अनुभवकरि तिनकूं स्मरण करनेका त्याग तथा स्त्री मात्रकी कथा श्रवण करनेका त्याग तथा रससुगंधादिकरि वासित स्त्रीनिका संसर्गसहित शय्या आसनादिकनिका संसर्गका त्याग करना तथा विषयानुरागरहित होइ ब्रह्म जो अपना शुद्ध आत्मा तिस विषै जो चर्या कहिए प्रवर्तन करना सो ब्रह्मचर्य है। ऐसें संवरके अर्थि दशलक्षण धर्मका धारण कह्या। इन क्षमा-

दिक दशधर्मनिके उत्तम विशेषण हैं सो दृष्टप्रयोजनादिक जो ख्याति लाभ पूजादिककी निवृत्तिके अर्थि जानना। अर समस्त जो ए उत्तमक्षमादिक गुण इनिके प्रतिपक्षी जे क्रोधादिक तिनमैं दोष जाणि भावना करना योग्य है। सोही कहैहैं–उत्तमक्षमातैं व्रतकी अर शीलकी रक्षा होइ है, इस लोक परलोकमैं दुःखका संगम नहीं होय है। अर समस्तजगतमैं सन्मान सत्कारादि प्रगट होय है। अर क्रोधके वशतैं धर्म अर्थ काम मोक्षका नाश होय है तातैं क्षमाही करना योग्य है। बहुरि अन्य कोऊ क्रोधके निमित्त दुर्वचन निंदादि प्रगट करिहैं तो ऐसा विचारै जो यो मूनैं निंदे है दोष कहै है ते दोष हमारे मांही विद्यमान हैं कि नहीं हैं जो हैं तो सत्य कहैहैं तदि सत्य कहनेवाला हमारा निंदक नहीं है उपकारक है। अब मोकूं ए दोष अंगीकार नहीं करना शीघ्रत्याग करना। सत्य कहनेवालेमैं दोष कोन अज्ञानी करै है। यह मेरा उपकारक है जो कुगतिमैं डूबतेकूं हस्तावलंबन देहै। अर झूठे कहैहैं तो यो कहनेवाला अज्ञानी है अज्ञानभावतैं कहैहैं आपके कर्मबंध करैहै अर हमारे निजर्रा होय है। अर जो यो दुर्वचन कहे अर मैंहू क्रोधरूप हो जाऊं तो मुझमैं अर इसमैं भेद कहा रह्या अर गाली दुर्वचन ए वस्तुत्वकरि देखिए तो शब्दरूप परिणमे पुद्गलस्कंध हैं हमारे लगै नाहीं। अर जो यो दुर्वचन कहैहैं सो मेरे देहकूं नामकूं जातिकुलकूं कहैहैं सो ए पर पुद्गल हैं मैं इनसूं भिन्न हूं। बहुरि जाकूं दुर्वचन कहे सो मैं नहीं अर मैं हूं ताकूं वचन पहुंचे नहीं। बहुरि जो यो दुर्वचन कहैहै सो परोक्ष कहैहैं प्रत्यक्ष तो नहीं कहैहैं। अज्ञानी प्रत्यक्षभी कहैहै अर जो प्रत्यक्ष कहै तो विचारै जो ताडना तो नहीं करैहै। अज्ञानी ताडनाहू करैहै। अर ताडन करै तो मोकूं प्राणरहित तो नहीं किया। अज्ञानी मारिभी डारैहैं अर जो मारिडारै तोहू चिंतवै जो एकवार मरण तो अवश्य होइहीगा इसमैं मेरा धर्मघात तो नहीं किया। संसारमैं मरण सबकूं आवैगा।

यो त्रैलोक्यपूज्य परमउपकारक अनंतभवनिमैं दुर्लभ यो उत्तमक्षमादिकधर्म हमारा मति विनसो अर हमाराही पूर्वकृत कर्म है जो मैं पूर्वैं अशुभकर्म बांध्या सो उदय आया है पर पुरुष तो निमित्तमात्र है। इस पापका फल नरकमैं उदय आवता अब सहजही रस देय निर्जरै है। अर हे आत्मन्! तू भगवान् वीतरागकूं जानै है। अर वीतरागधर्मकी उपासना करै है। यातैं तोकूं तो वीतरागता वधावनाही श्रेष्ठ है। बहुरि केते उपकारी जन तो परकै सुखके आर्थि धन देवै है जमीं जायगां देवैं हैं शरीरकूं देवै हैं ऐसे हैं। अब यो मोकूं दुर्वचनादि कहिकरिही सुखी होजाय तो मेरै इस सिवाय कहा लाभ है। मेरै निमित्ततैं कोऊ प्राणीकै दुःख मति होहु। अर अशुभकर्म तो मैं कीया अर अब उदयकूं भोगता अन्यकूं दूषण द्यूं सो तो मेरी बडी मूढता है। अर अठै तो दुर्वचनही सहूंहूं अर संक्लेश परिणामकरि नवीनकर्म बांधूंहूं सो याका फल तिर्यंचमैं मारिडारना नासिका फोडि रज्जू सांकल घालना वारंवार मारना वहुत वोझ भार लादना मर्मस्थाननिमैं लाठी चामठी लोहमय आयुधनिकी चोव देना दृढ बांधना क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोगादिजनित हजारां वेदना भोगना पराधीन रहना सो तो थोरे कालमैं उदय आवैगा तातैं वैर विरोध छांडि समभावकूं अंगीकार करि जिनेंद्रभाषित परमोपकारक आत्माका रक्षक ऐसा उत्तमक्षमाधर्महीका शरण ग्रहणकरि धारणकरना श्रेष्ठ है। बहुरि मानकषायका अभावतैं मार्दवधर्मका धारक पुरुषविषै गुरुजन अनुग्रह करै हैं। साधुपुरुष हैं ते मार्दवयुक्तकूं साधु मानै हैं उत्तम जानै हैं। यातैं सम्यग्ज्ञानादिकनिको पात्र होय है। तातैं स्वर्गमोक्षफलकी प्राप्ति होइ है। इस लोकमैं कीर्ति विस्तरै है। अर मानकरि मलिन मनविषै व्रत शील नहीं तिष्ठै हैं नष्ट होजाय हैं। साधुजन मानीका संसर्गका परित्याग करै हैं। लोकमैं अपकीर्ति होइ है। अभिमानीका जगत वैरी होजाय है। संपूर्ण आपदाका मूल एक अभिमान है। तातैं

मानकषाय छांडि मार्दवधर्म धारना श्रेष्ठ है। बहुरिं सरलहृदयमैं समस्तगुण बसैं हैं। सत्यप्रतीती कीर्ति समस्तगुण सरलपरिणामीकूं प्राप्त होय हैं मायाचारीकों गुण नहीं आश्रय करै हैं। मित्र भी अवज्ञा करै। प्रतीति सांचधर्म समस्त नष्ट होजाय दुर्गतिकूं प्राप्त होइ। तातैं आर्जवधर्म धारना श्रेष्ठ है। बहुरि शौचधर्मीका इहांही बडा सन्मान होय है। तमस्त विश्वासादि गुण यामैं बसै हैं। क्लेशित परिणाम नहीं रहै हैं। समभाव संतोषभावतैं इहांही बडा सुखकूं पाय स्वर्गमोक्षपद पावै हैं। अर लोभीमैं समस्त दोषही बसै हैं। गुण अवकाश नहीं पावै है लोभीमैं समस्त पाप कृतघ्नता धर्महीनता अकीर्ति वैर हिंसादिकमहापाप बसै हैं इस लोक परलोकमैं अचिंत्यकष्ट लोभीमैं आवै हैं यातैं लोभत्यागि शौचधर्म धारना श्रेष्ठ है बहुरि सत्य बोलनेवालेमैं समस्त गुणनिकी संपदा बसै हैं। असत्यवादीकी बांधवादिकभी अवज्ञा करै हैं। मित्र हैं ते असत्यवादीकों छांडै हैं। अर इहांही जिह्वाका छेद सर्वस्वहरणादि कष्ट भोगि दुर्गतिमैं जाय हैं। तातैं सत्यधर्म धारना श्रेष्ठ है। बहुरि इस मनुष्यपर्यायमैं आत्माका हित एक संयमही है। संयमी यहांही देवनिकरि पूजनीक है परलोकके फलकूं तो कोन कहि सकै। अर संयमरहित है सो प्राणीनिकी हिंसामैं विषयनिके अनुरागमैं नित्यप्रवर्त्तनकरि दुर्गतिका पात्र होय है। तातैं संयमधारण करनाही श्रेष्ठ है। बहुरि तप है सो समस्त अर्थका साधन है। तपतैं अनेक ऋद्धि प्रगट होय है। तपस्वीनिकरि आश्रय किया क्षेत्रहू लोकमैं तीर्थताकूं प्राप्त होय है जाकै तप नहीं सो लोकमैं तृणहूतैं लघु है अर तप छोडनेवालेकूं समस्त गुण छाडै हैं। अर संसारपरिभ्रमणतैं नहीं छूटै है तातैं तपधर्म धारनाही श्रेष्ठ है। बहुरि परिग्रहत्यागही आत्माका हित है। जिसजिस परिग्रहतैं रहित होइ तिसतिसतैं जीवकै खेद क्लेश दूरि होय है। पाप रहित परिणाम होय है। दुर्ध्यान नष्ट होय है। परिग्रहकी आशा बहुत बलवान है। इस जीवकै परिग्रह-

करिकै तृप्ति नाहीं उपजै है। बडवानलकीज्यों आशारूप खाडाकूं कोन पूर्ण करै। यो आशारूप गर्त दिन-दिन ऐसा बधै है जामैं त्रैलोक्यकी संपदा आजाय तोहू नही भरै। समस्त जीव विषयनिकी वांछाकरि सदाकाल कलुषित हो रहे हैं। तातैं उत्तमत्यागधर्म धारनाही श्रेष्ठ है। बहुरि शरीरादिकनिमैं निर्ममत्वपणातैं संसारतैं परमनिवृत्तिरूप होय है शरीरादिकनिमैं कीया है स्नेह जानैं ऐसे पुरुषकै सर्वकाल संसारपरिभ्रमणही जानना। तातैं शरीरादिक समस्त परवस्तुमैं ममत्व छांडि अपने स्वरूपकूं आकिंचन्य भावना सोही आकिंचन्य श्रेष्ठ धर्म है। बहुरि ब्रह्मचर्यकूं पालन करता पुरुषकूं हिंसादिक दोष नहीं स्पर्शन करै है। जो सास्वता गुरुकुलमैं बसै तिस विषै गुणसंपदा वसै है अर जो रूपवती स्त्रीनिका हाव भाव विलास विभ्रमके वशीभूत हैं ताहि पाप अपने आधीन करै हैं। जो इंद्रियनिकै वश होना है सो अपने आत्माका घात करना है। तातैं ब्रह्मचर्य धारण करना श्रेष्ठ है। ऐसैं उत्तम क्षमादिकनिमैं अर इनके प्रतिपक्षी क्रोधादिकनिमैं गुण दोष विचारपूर्वक क्रोधादिकनिका अभाव होतैं संतैं इनके निमित्ततैं आवते कर्मके आस्रवके अभावतैं महान् संवर होय है। अव संवरको कारण द्वादश अनुप्रेक्षाकूं कहे हैं—

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्म-
स्वाख्याततत्त्वानुचिंतनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥

अर्थ—अनित्य अशरण संसार एकत्व अन्यत्व अशुचि आस्रव संवर निर्जरा लोक बोधदुर्लभ धर्मस्वाख्यात इन बारहके स्वरूपको वारंवार चिंतना सो अनुप्रेक्षा है। इस जीवकै अनित्यभावना नहीं रुची तदि देह धन कुटुंबादिकनिके अर्थि महापापमैं प्रवर्त्तै है। ए इंद्रियविषय धन यौवन जीवितव्य जलबुद्बुदज्यों अथिरस्वभाव हैं। गर्भादि अवस्थाविशेष हैं ते संयोगवियोगरूप हैं। मोहतैं अज्ञानी --

त्यता मानैं हैं। संसारमैं अपना ज्ञानदर्शनोपयोग स्वभावतैं अन्य कोऊ वस्तुका संयोग ध्रुव नहीं है। जन्म है सो मरणकरि सहित है। यौवन जराकरि ग्रस्त है। लक्ष्मी विनाशसहित है। जहां संयोग है तहां अवश्य वियोग है। इंद्रियनिके विषय इंद्रधनुषवत् चंचल हैं। देखते देखते नष्ट होय हैं। इंद्रियनिका सामर्थ्य अवश्य दिनादिन घटै है। जैसैं मार्गमैं सन्मुख आवता पथिकजनका संसर्ग क्षणमात्रका है तैसैं मित्र बंधुजननिका संबंध अत्यंत अल्पकाल जानहु। नाना भोजन पान सुगंध वस्त्र आभरणादिककरि बहुतकाल लालन पालन कीयाहू देह क्षणमात्रमैं विनसै है। अर लक्ष्मी चक्रीनिकीहू स्थिर नहीं। तातैं समस्तकूं अनित्य चिंतवन करना सो अनित्यभावना है। ऐसैं चिंतवन करतेके समस्त देह धन कुटुंबादिकनिमैं आसक्तताका अभावतैं वियोग होतैंहू परिणाममैं पीडा नहीं उपजै है।

बहुरि अशरणभावना भावनेतैं सांसारिक संबंधकूं अपने रक्षक नहीं जाणै है। जैसैं एकांत वनमैं बलवान् अर क्षुधावान् अर मांसका इच्छुक ऐसा व्याघ्रकरि पकड्या मृगका बालककूं किंचित शरण नहीं है। तैसैं जन्म जरा मरण रोग, प्रियका वियोग, दुष्टका संयोग, वांछितका अभाव, दारिद्र्य दुर्जनादिकतैं उपजे दुःखकरि पीड़ित प्राणीकै कोऊ शरण नहीं है। बहुत पुष्ट किया अपना शरीरहू भोजनप्रति सहायी है कष्टमैं नहीं कष्ट आवतै आत्माकै अपना शरीर ही दुःख उपजावै है। अर बडे यत्नतैं संचयाकिया धनहू परलोककूं नहीं जाय है। अर जिनकूं सुखदुःखमैं सामिल होय भोगे ऐसैं मित्रहू मरणकालमैं नहीं रक्षा करे हैं। अर समस्त बांधवहू रोगसहितकी रोगतैं रक्षा नहीं करै हैं। इस संसारमैं मरण कहां नहीं देखो हो। जामैं स्वर्गलोकको इंद्र ताकूं अणिमादिक अनेकऋद्धिनिके धारक असंख्यात देवहू क्षणमात्रभी नहीं रक्षा करिसकै तो अन्य ग्रह पिशाच योगिनी यक्ष क्षेत्रपाल मंत्र तंत्र यज्ञ होम औषधि

वैद्य रसायानादिक कोन रक्षा करनेमैं समर्थ होइ। मरण तो आयुकर्म नाश होनेतैं है अर आयुकर्म कोऊ देनेकूं समर्थ नहीं। यातैं देवनिका इंद्रहू आयु पूर्ण भए रक्षा करनेमैं समर्थ नहीं है। अन्यकी कहा कथा। अर जो मरण करते मनुष्यकी देव देवी मंत्र तंत्र क्षेत्रपालादिक रक्षा करते तो मनुष्य अक्षय हो जाते। देखहु नाना प्रकार रक्षाका उपायकरिकैहू कोऊ बलवान् ऐश्वर्यवान् धनवान् ज्ञानवान् शूरवीर तथा निर्बल निर्धन रंक अज्ञान अशक्त मरणतैं नहीं वचै हैं। ऐसैं प्रत्यक्ष देखताहू जो ग्रह भूत पिशाच योगिनी यक्ष मंत्र तंत्रादिकनिकूं शरण मानै हैं सो यो महान् मिथ्याभावका उदय है। ऐसैं अन्य असातादिक कर्मके उदयकूंहू निवारण करनेकूं कोऊ शरण नहीं है। एक सम्यग्भावतैं आचरण कीया धर्मही शरण है। जातैं शरण दोय प्रकार है—एक लौकिकशरण एक अलौकिकशरण तिनमैंलौकिकशरण तो चेतन अचेतन मिश्र भेदकरि तीन प्रकार है। तिनमैं राजादिक तथा देवतादिक तो लौकिक जीवशरण है। गढकोट कपाट इत्यादि लौकिक अजीवशरण हैं। मनुष्यादिक सहित नगरग्रामादिक लौकिकमिश्रशरण हैं ऐसैं ही पंचपरमष्ठी अलौकिकजीवशरण हैं। इनिके धातुपाषाणादिमय प्रतिबिंब जिनसिद्धांतके पुस्तक वाक्यादिक अलौकिकअजीवशरण हैं। धर्मोपकरणसहित साधूनिका समूह अलौकिकमिश्रशरण हैं। ऐसैं व्यवहारशरण कह्या। निश्चयशरण तो उत्तमक्षमादिकरूप परिणमनकूं प्राप्तभया ऐसा शुद्ध वीतरागपरिणतिरूप अपना आत्माही आपकै शरण है। जातैं निश्चयतैं तो क्रोधादिरूप परिणया आत्मा आपही आपका घातक है अर क्षमादिक परिणमननैं प्राप्त होइ तदि आपही आपका रक्षक है। अन्यकूं रक्षक घातक समझना सो मिथ्याभाव है। एक भलेप्रकार आचरण कीया धर्महीकूं शरण जानहु। मित्रधनादिक कोऊ रक्षक नहीं हैं। ऐसैं अशरणानुप्रेक्षा चिंतवन करतेकैं मैं नित्य अशरणहूं ऐसे भावतैं सांस रे...

स्त बंधमें ममत्वके अभावतें भगवान् सर्वज्ञकथित वचनहीमें लीनता उपजे है। ऐसें अशरणभावना कही। अब संसारभावनाका ऐसा स्वरूप है। संसारनाम परिभ्रमणका है। इस संसारमैं एक शरीरकूं छांडे है अन्यकूं ग्रहण करै है। ऐसें निरंतर एकएककूं छांडना अर नवीन नवीन ग्रहणकरना तथा नाना प्रकारकी देहनिमें परिभ्रमण करना सो संसार है। जब पापका उदय आवै है तादि नरकनिमें प्राप्त होइ नानाप्रकार वचनके अगोचर ताडन मारन छेदन भेदन शूलारोपण वैतरणीनिमज्जन शाल्मलीघसीटन तथा असुरांकरि कीया दुःखशरीरसंबंधी मानसिकदुःख क्षेत्रजनितदुःख परस्परकीया दुःख ऐसें पंचप्रकारके घोर दुःखनिकूं असंख्यातकालपर्यंत नरकधरामें भोगै हैं। जिनकै नेत्रका टिमकारामात्रहू सुखरूप नहीं है। अर तिलतिलमात्र खंड करेहू घांणीमें मिलेहू आयु पूर्ण भएविना मरणकूं प्राप्त नहीं होय है। पाराकीज्यों देहके खंडखंडहू मिलिजाय हैं। बहुरि कदाचित् नरकमेंतें आयु पूर्ण करि निकलै तो नानाप्रकारका तिर्यंचयोनिकूं प्राप्तहोइये है। तहां गर्भविषैही छेदन मारणादि दुःखकूं प्राप्त होय है। तथा क्षुधा तृषा शीत उष्णजनित घोरवेदना भोगै है। जहां परस्पर मनुष्यनिकीज्यों अपना सुखदुःख कहना श्रवण करना गोष्ठी करना उपाय करना है नाहीं। सदाकाल क्षुधादिवेदनाकरि पीडित भयभीत रहै हैं। अनेक तिर्यंच मारि खाजाय हैं। दुष्ट मनुष्य मारि भक्षण करै है। जेठैंतेठैं हेरिकरि मारै हैं। तथा नासिका फाडि जेवड़ा शांकल घालि बांधै हैं बहुतभार लादै हैं मर्मस्थाननिमें तीक्ष्ण मारनितें मारै हैं। भागने छिपने नहीं देहैं अपना दुःख सहि सकैनहीं कोऊ पुकार सुनै नाहीं। रोगादिककी तीव्र वेदना होतै हू मर्मस्थाननिमें चोट देय मारै हैं। उछलै हैं पडै हैं अत्यंत पराधीनता भोगै हैं। जिनकै कार्य करनेकूं हस्तादिक अवयव कहनेकूं वचन नहीं कोनसूं दुःख कहैं कोन पूछै कोन सुनै। कोऊ राजादिक सहाय करै नहीं।

अर अशक्त होय पडै तो कोन उठावै जलमैं थलमैं कर्दममैं शीतमैं तावडामैं वर्षामैं पड्याहुवाकूं असमर्थ जाणि काकादिक दुष्टपक्षी तीक्ष्ण लोहसमान चूंचनिकरि नेत्रनिकों खोंसि लेजाय हैं अर मर्मस्थाननिमैं काटिकाटि खाय हैं। ऐसैं तिर्यंचगतिका घोरदुःख प्रत्यक्ष दीखै है। जो अन्यायकरि परका धन खाय हैं। लोभी व्यसनी होय कुदान लेवैं हैं। अभक्ष्य भक्ष्य भक्षण रात्रिभोजन करै हैं विकथामैं प्रवर्त्तै हैं ताका फलतिर्यंचगतिमैं भोगवैं हैं तथा तिर्यंचनिमैं पक्षी हैं तेहू अत्यंत दुःखरूप रहैं हैं। वृक्षनिकी छोटी शाखानिकूं दृढ पकडि भयभीत भए क्षुधातृषाकी बाधा तीव्र पवनकी बाधा वर्षाका पतनकूं शीत बरफके पडनेकूं गड़ेनिकी मारकूं अत्यंत भोगते अंधकारकी भरी रात्रिकूं भयभीत भए एकाकी पूर्ण करै हैं। ऐसी तिर्यंचगतिमैं मायाचारके परिणामतैं भोले असमर्थ जीवनिके धन विषयभोगनिकूं हरनेतैं अनेकपर्यायनिमैं असंख्यातकालपर्यंत दुःख भोगै हैं। कोन कहनेकूं समर्थ हैं।

बहुरि कदाचित् मनुष्य होय तो तहांहू गर्भवासविषै संकुचित अंग हुवा महाग्राणके स्थानमैं नव दशमास पूर्णकरि योनिसंकट महादुःख भोगि वाहिर आवैहै। बहुरि बाल्य अवस्थामैं नानाप्रकारका रोगजनित दुःख तथा मातापिताका मरण होनेकरि वियोगजनित दुःख क्षुधा शीत उष्णजनित वेदनाकूं सहता महान दुःख भोगै हैं। बहुरि विषयभोगनिकी चाहजनित दरिद्रजनित अपना भयतैं उपज्या अलाभतैं उपज्या घोर दुःख भोगै हैं। अर कोऊ पुण्ययुक्तहू मनुष्य होय ताकैहू इष्टका वियोग अनिष्टका संयोगजनित दुःख देखिएही हैं। कोउकै तो स्त्रीही नहीं है कोऊकै स्त्री है तो पुत्र नहीं पुत्र है तो धन नहीं धन है तो नीरोगशरीर नहीं नीरोगशरीर है तो धनका नाश होजाय तथा पुत्र कपूत होइ तथा स्त्री दुराचारिणी होइ स्त्रीका पुत्रका मरण होजाय तथा वैरीसमान बांधव होयहै राजा लूटैहै अग्नि दग्ध करै है

तथा धनवान् होइ निर्धन होजायहै। इत्यादिक दुःख मनुष्यपर्यायमैं प्रत्यक्ष देखहु। बहुरि देवपर्यायमैंहू इष्टवियोगादिक दुःख तथा महर्द्धिकदेवनिकी संपदा देखि तथा विषयांकी तृष्णातैं दुःख तथा स्वर्गलोकतैं पतन होनेका घोरदुःख भोगैहैं। ऐसैं संसारीजीव अनंतकालतैं चतुर्गतिनिमैं नानादुःख भोगता अनंत-वर्त्तन पूर्णकीए। परिवर्त्तन नाम परिभ्रमणका है। सो परिवर्त्तन द्रव्य क्षेत्र काल भव भावकरि पांच प्रकार है। तहां द्रव्यपरिवर्त्तन कर्म नोकर्म भेदकरि दोय प्रकार है। तिनमैं नोकर्मपरिवर्त्तन कहै हैं। याका

परिवर्त्तनका प्रारंभ भया तब सर्वही अगृहीत भए पीछैं ग्रहे ते गृहीत होयहैं। इस अपेक्षाहू अगृहीत मिश्रगृहीत यथासंभव जानना। तिनका काल द्रव्यपरिवर्त्तनमैं ऐसा जो नोकर्मपुद्गलपरिवर्त्तनका प्रथमसमयतैं आरंभ करिए हैं। जो पहले समय अगृहीतग्रहण होइ फेरि दूजै समयगृहीत वा मिश्र ग्रहण होजाय सो गिणतीमैं नाहीं। अगृहीतही ग्रहण होइ सो दूजीबार गिणतीमैं आवै फेरि अगृहीतही ग्रहण होइ सो तृतीयवारकी गिणतीमैं आवै। ऐसैं अगृहीतग्रहण निरंतर अनंतबारही ग्रहण होजाय तदि एकवार मिश्रग्रहण होइ। फेर अनंतबार निरंतर अगृहीतग्रहण होजाय तदि फेर एकवार मिश्रग्रहण होइ सो दोयवार मिश्र भया। फिर अनंतवार निरंतर आठहीतैं ग्रहण होजाय तदि एकवार मिश्रग्रहण होय सो तीनवार मिश्र ग्रहण भया। ऐसैं अनंतवार अगृहीतग्रहण होय एकएकवार मिश्रग्रहण होतै होतै मिश्रग्रहणहू अनंतवार होजाय तदि फेरि अनंतवार अगृहीतग्रहण करि एकवार गृहीतग्रहण करै वहुरि अनंतवार अगृहीतग्रहण करि एकवार मिश्रग्रहण करै। फेरि अनंतवार अगृहीतग्रहण करै तदि एकवार मिश्रग्रहण करै तदि दोयवार मिश्रग्रहण भया।

ऐसैं अनंतवार अगृहीतग्रहणकरि एकएकवार मिश्रग्रहण करतैं फिर अनंतवार मिश्रग्रहण होजाय तादि फेरि अनंतवार गृहीतग्रहण करि एकवार गृहीतग्रहण होय ऐसैं दोयवार गृहीतग्रहण भया। ऐसा पलटनितैंही अनंतवार गृहीतग्रहण हो चुकै तदि पुद्गलपरिवर्त्तनका चतुर्थभाग भया। फिर ऐसैंही निरंत्तर मिश्रग्रहण अनंतवार होजाय तदि एकवार अगृहीतग्रहण होय। फिर अनंतवार मिश्रग्रहण होजाय तदि एकवार अगृहीतग्रहण होय। ऐसैं अनंतवार अगृहीतग्रहण होचुकै फिर अनंतवार मिश्रग्रहणकरि एकवार गृहीतग्रहण होय। ऐसैं निरंतर गृहीतग्रहणहू अनंतवार होजाय(?) वहुरि पुद्गलपरिवर्त्तनकी द्वितीय च-

तुर्थांश पूर्ण होइ है। बहुरि निरंतर मिश्रग्रहण अनंतवार हो चुकै तदि एकवार गृहीतग्रहण होय। फिर निरंतर अनंतवार मिश्रग्रहण हो जाय तदि एकवार ग्रहीतग्रहण होय ऐसैं अनंतवार गृहीतग्रहण होजाय तादि फेर निरंतर मिश्रग्रहण अनंतवारकरि एकवार अगृहीतग्रहण करै। ऐसैं अगृहीतग्रहण अनंतवार होजाय तदि पुद्गलपरिवर्त्तनका तृतीय चतुर्थांश पूर्ण होय है। बहुरि निरंतर गृहीतग्रहण अनंतवार होजाय तदि एकवार मिश्रग्रहण करै। फेरि निरंतर अनंतवार गृहीतग्रहण होजाय तदि एकवार मिश्रग्रहण होय। ऐसैं अनंतवार मिश्रग्रहण होजाय तदि निरंतर गृहीतग्रहण अनंतवारकरि एकवार अगृहीतग्रहण करै। ऐसैं अनंतवार अगृहीतग्रहण होजाय तदि पुद्गलपरिवर्त्तनकी चतुर्थांश पूर्ण होय फिर लगतेही समयविषै जे नोकर्मपुद्गलपरिवर्त्तनके प्रथमसमयमैं ग्रहणकरि द्वितीयादि समयमैं निर्जरारूप किए। ऐसैं अनंते नोकर्मके समयप्रबद्धपुद्गल थे तेही अथवा तिनसमानही शुद्ध गृहीतरूप आयकरि ग्रहण होय तदि यो समस्त मिल्यो हुवो नोकर्मपुद्गलपरिवर्त्तन होय है। अब कर्मपुद्गलपरिवर्त्तन ऐसैं जानना—जे पुद्गल एकसमयविषै एकजीव अष्टप्रकार कर्मस्वभावकरि ग्रहण किए। ते समयाधिक आवलीकालकूं उलंघनकरि द्वितीयादि समयनिमैं निर्जीर्ण भए। ते कर्मयोग्यपुद्गल पूर्वोक्त नोकर्मद्रव्यपरिवर्त्तनकीज्यों तिसही क्रमकरि तिसही प्रकारकरि तिस जीवके जेते काल कर्मभावकूं प्राप्त होइ तिष्ठै हैं तितनैं यो समस्त मिल्यो हुवो कर्मपुद्गलपरिवर्त्तन होय है। ओर समस्तविध नोकर्मपरावर्त्तनकीज्यों जाननेयोग्य हैं। ये कर्म नोकर्मद्रव्यरूप दोऊ पुद्गलपरिवर्त्तनका समानही काल है। ऐसैं द्रव्यपरिवर्त्तनका स्वरूप संक्षेपकरि कह्या। अब क्षेत्रपरिवर्त्तन कहैहैं। क्षेत्रपरिवर्त्तन दोयप्रकार है। एक स्वक्षेत्रपरिवर्त्तन, एक परक्षेत्रपरिवर्त्तन। तिनमैं स्वक्षेत्रपरिवर्त्तन कहैहैं। कोऊ जीव अंगुलके असंख्यातवैं भागप्रमाण जीव सूक्ष्मनिगोदीयाकी जघन्य अ-

वगाहनकरि उपजि अर अपनी स्वाँसकै अठारवैंभाग जो आयुप्रमाण जीयकरि मर्‌या सो फिर उस देहतैं
एकप्रदेश अधिक अवगाहनाकरि उपजि अपनी स्थितिप्रमाण जीवता रहि फेरि मरि दोय प्रदेश अधिक
अवगाहना पावै। ऐसैं पूर्वले देहतैं एकएक प्रदेश अधिक महामत्स्यका देहकी अवगाहनापर्यंत समस्त
अवगाहनाके भेदनिकरि अनुक्रमतैं समस्त अवगाहना समाप्त करै अर वीचिवीचि अनंतवार अन्यअन्य
अवगाहना धारै सो इहां गिणीनहीं। जातैं एकप्रदेश अवगाहना पायवेका अवसर कोऊ अनंतभवनिमैं
आवैहै तातैं एकएक प्रदेशकी अधिकता करिकैं अनंतानंत कालमैं समस्त अवगाहना पूर्ण करैहै तदि
यो समस्त स्वक्षेत्रपरिवर्त्तन होय है। अब परक्षेत्रपरिवर्त्तन कहैहैं—कोऊ जीव सूक्ष्मनिगोदका लब्ध्य-
पर्याप्तक होय ताकी समस्त अवगाहनातैं जघन्य अवगाहना है यातैं अन्य जघन्यअवगाहना नहीं
सो इस जघन्य अवगाहनाकरि लोकाकाशका मध्यका अष्टप्रदेशांनै अपने शरीरका मध्यका अष्टप्रदे-
शांमैं करि उपजि अर अपनी स्थिति पूर्ण होतैं मरण करी फेरि सोही जीव तैसैंही तिस अवगाह-
नाकरि लोकाकाशका अष्ट मध्यप्रदेशांनै अपने शरीरके वीचिकरि दूजीवार तीजीवार इत्यादिक घ-
नांगुलका असंख्यातभागका जेता प्रदेश होइहै तितनाही वार तहांही उपजि उपजि मरै। अर वीचिमैं अ-
नंतवार अन्यअन्य क्षेत्रनिमैं उपजै सो इस परिवर्त्तनके प्रमाणमैं नहीं। पाछैं एकप्रदेश उस क्षेत्रतैं अधिकमैं
उपजै ऐसैं एकएक प्रदेशकी अधिकताकरि समस्तलोक तीनसोतियालीस घनराजूप्रमाण समस्तप्रदेशनिकूं
अपने जन्मक्षेत्रपणांकूं प्राप्तकरै सो परक्षेत्र परिवर्त्तन है—भावार्थ—ऐसा है—जो सूक्ष्मनिगोद जीवकी ज-
घन्य अवगाहनाकूं आदि लेय महामत्स्यकी उत्कृष्टअवगाहनापर्यंत कोऊ ऐसी अवगाहना बाकी नहीं
रही जो यो जीव नहीं पाई। बहुरि लोकका मध्यतैं लेय नीचे ऊपरि तिर्यक् समस्तलो

शनिमें ऐसा कोऊ एक प्रदेश नहीं है जहां इस जीवनै जन्ममरण नहीं किया।

अव कालसंसारकूं कहै हैं—कोऊ जीव उत्सर्पिणी कालका प्रथमसमयविषै उत्पन्न हुवा फिर अपनी आयु समाप्त करि मरण करै। फिर वीसकोडाकोडी सागरमैं उत्सर्प्पिणीकाल आवै ताके दूजे समयमें जन्म ले अर दूजासमयमैंही जन्म लेना कहां होइ कोऊ अनंते उत्सर्प्पिणी जातेहू दूजे समयमैंही उपजनेका संयोग मिलै। ऐसैं ही उत्सर्प्पिणीका तीसरा समयमें चतुर्थमें पंचममें ऐसैं उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीका वीसकोडाकोडीसागरका जेता समय होय तितना निरंतर जन्मकरि पूर्णकरै अर ऐसैंही समस्तसमय मरणकरि पूर्णकरै। जो यो जन्ममरणका समुदितरूप काल सो कालपरिवर्त्तन है। भावार्थ—उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीका ऐसा कोऊ समय वाकी नहीं है। जिसमें यो जीव अनंतानंतवार जन्ममरण नहीं किया।

अव भवपरिवर्त्तन कहै हैं—कोऊ जीव नरकगतिमें जघन्य आयु दशहजार वर्षकी धारणकरि उपज्या फिर मरणकरि संसारमें परिभ्रमणकरि द्वितीय वारभी दशहजार वर्षकी आयु पावै जो एक दोय समय घडी दिन वर्ष अधिक पावै सो गिणतीमैं नहीं। तृतीयवार चतुर्थवार पंचमवारकूं आदिकरि दशहजार वर्षका जेता समय होय तीतनीवार तो दशहजार वर्षप्रमाणही आयुपाय मरै पाछैं एकसमय अधिक इत्यादि तेतीससागरका जेता समय होय तितना समय यो उत्तर आयुकरि व्यतीत करै सो नरकभवपरिवर्त्तन जानना। ऐसैंही तिर्यंचगतिमें जघन्य आयु अंतर्मुहूर्त्तप्रमाण पाय फिरि समाप्तकरि अंतर्मुहूर्त्तका जेते समय होंय तितना प्रमाण जघन्य आयु धारि पाछैं एकसमय अधिक अनुक्रमकरि तीन पल्यपर्यंत समस्तस्थितिविषै जन्मधारि पूर्ण करै सो तिर्यग्भवपरिवर्त्तन जानना। ऐसैंही मनुष्यआयुकूं अंतर्मुहूर्त्तकूं आदिलेय तीनपल्यपर्यंत पूर्ण करै। देवगतिमें नरकगतिज्यों दशहजार वर्षकूं आदिलेय इकतीससागर

पर्यंत पूर्ण करै सो देवभवपरिवर्त्तन है। इकतीससागरतैं अधिक आयुके धारक अनुदिश अनुत्तर चौदह विमाननिमैं उपजे देवनिकै परिवर्त्तन नहीं होय। जातैं उनके नियमतैं सम्यक्त्व है। सम्यग्दृष्टीकै संसारमैं भ्रमण होय नहीं। ऐसैं च्यार आयुसंबंधी समस्त परिवर्तनका मिल्याहुवा काल भवपरिवर्तनका जिनेंद्र कह्या है। अब भावपरिवर्त्तनकूं कहैहैं—योगस्थान अनुभागबंधाध्यवसायस्थान कषायाध्यवसायस्थान स्थितिस्थान इन च्यारनिके परिवर्त्तनतैं होइ है। सो इन च्यारनिका स्वरूप ऐसा—जिनतैं प्रकृतिबंध प्रदेशबंध होइ ऐसैं प्रदेशपरिस्पंदलक्षण योग तिनतैं जे घनादिस्थान ते योगस्थान हैं। बहुरि जिन कषाययुक्तपरिणामनितैं कर्मनिका अनुभाग बंध होहै तिनके जघन्यादिक स्थान ते अनुभागबंधाध्यवसायस्थान हैं। अर जिन कषायपरिणामनितैं स्थितिबंध होहै तिनके जघन्यस्थानतैं इहां कषायाध्यवसायस्थान कहै हैं। अर बंधनरूप जे कर्मनिकी स्थिति तिनके जघन्यादिस्थान ते स्थितिस्थान कहिए। कोऊ पंचेंद्रियसंज्ञक पर्याप्तक मिथ्यादृष्टी जीव है सो आपके योग्य सर्वमैं जघन्य ज्ञानावरणकर्मकी स्थिति अंतःकोटाकोटीसागरप्रमाण बांधै है। जातैं संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टीकै अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाणतैं घाटि नहीं बंधैहै। कोटिसागरके ऊपरि अर कोटाकोटीके मांही ताहि अंतःकोटाकोटीसागर कहिए है। तिस जघन्यस्थितिकूं आदि लेय एकएकसमय अधिकताकरि तीस कोटाकोटीसागरकी उत्कृष्ट स्थितिपर्यंत भेदकूं लीए ज्ञानावरणकर्मकी स्थिति है। अर तिस एकएक स्थितिस्थानकूं असंख्यात लोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थान कारण हैं एकएककषायाध्यवसाय स्थानकूं असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधाध्यवसायस्थान कारण हैं। बहुरि एकएक अनुभागबंधाध्यवसायस्थानकै योगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान हैं। अब परिवर्तनके आरंभका क्रम ऐसा—

मिथ्यादृष्टीकै ज्ञानावरणकर्मकी अंतःकोटाकोटीसागरप्रमाणजघन्यस्थितिबंध होय अर तिस स्थितिकूं कारण जघन्यही कषायाध्यवसायस्थान अर तिस जघन्यकषायाध्यवसायस्थानकूं कारण जघन्यही अनुभागबंधाध्यवसायस्थान होइ अर जघन्यही योगस्थान होइ। बहुरि योगस्थान तो पलटि दूजोहू होय अर अनुभागकपायस्थिति जघन्यही बंधै। फिर योगस्थान तीजो होजाय अर वे तीनों जघन्यही रहैं। फिर योगस्थान चोथो पांचवों छठो इत्यादिक श्रेणीके असंख्यातवैं भागप्रमाण योगस्थान पलटिजाय अर स्थित्यादि तीनों जघन्यही रहैं। ऐसैं श्रेणीके असंख्यातभागप्रमाणयोगस्थान पलटिजाय तदि स्थितिस्थान अर कपायस्थान तो जघन्यही रहैं। अर अनुभागस्थान दूजा होय। फिर दूजा अनुभागस्थानकै योग्य श्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण योगस्थान क्रमतैं पलटिजाय तदि फिर अनुभागस्थान तीसरा होइ। फिर इस उपरि योगस्थान श्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान पलटि जाय तदि अनुभागस्थान चौथा होय। इस क्रमतैं एक अनुभागस्थानके योगश्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण योगस्थान पलटतै पलटतै असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधाध्यवसायस्थान होजाय तदि एककषायाध्यवसायस्थान पलटै। तदि स्थितिस्थान तो जघन्यही रह्या अर कषायस्थान दूसरा भया। अर अनुभागस्थान पहला अर योगस्थान पहला भया फिर श्रेणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण योगस्थान पलटिजाय तदि एक अनुभागस्थान पलटै। अर ऐसैं असंख्यातलोकप्रमाण अनुभाग पलटि जाय तदि एककषायाध्यवसायस्थान पलटै। ऐसैं असंख्यातलोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थानभी पलटि चुकै तदि अंतःकोटाकोटीसागरप्रमाणजघन्यास्थितितैं एक समय अधिक कर्मकी स्थिति बांधै। ऐसैं श्रेणीके असंख्यातवेंभाग वार योगस्थान पलटिजाय तदि तो येक अनुभागस्थान पलटै अर असंख्यातलोकप्रमाण अनुभाग पलटि जाय तदि येककषायस्थान

पलटै। अर असंख्यातलोकप्रमाण कषायस्थान पलटिजाय ताद एकसमय अधिक होय स्थिति पलटै। ऐसैं एकएकसमयकरि अधिकतातैं ज्ञानावरणकर्मकी तीसकोटाकोटीसागरकी स्थिति समाप्त करै। फिर दर्शनावरण वेदनीय अंतरायकी तीसकोटाकोटीसागरकी अर नामगोत्रकर्मकी वीस कोटाकोटीसागरकी अर आयुकर्मकी तेतीससागरकी ऐसाही क्रमकरि पूर्णकरै। फिरि एकसो अडतालीस उत्तरप्रकृतिनिकी अर असंख्यात लोकप्रमाण उत्तरोत्तर प्रकृतिनिकी स्थिति पूर्ण करै तदि एकभावपरिवर्त्तन होइ है। ऐसैं पंच-प्रकारके परिवर्त्तन अनंते किए। ऐसैं अनेक कुयोनि अर कुलकोटिनिके वहुत संकटरूप संसारमैं कर्म-यंत्रकरि प्रेरित प्राणी पिता पुत्र होय, पुत्र पौत्र होय हैं। माता, भहण भार्या पुत्री होय हैं, वहुत कहा कहिए आपही आपकै पुत्र होय है। इत्यादि संसारका स्वभावका चिंतवन सो संसारानुप्रेक्षा है। ऐसैं संसारभावनाकूं चिंतवन करनेवाला पुरुष संसारका दुःखतैं भयभीत होय संसारतैं विरक्त होयहै। विराग-युक्त होय तदि संसारका नाशके आर्थि यत्न करैहै। ऐसैं संसारभावना कही। वहुरि जन्म जरा मरण रोग वियोगादिकनिके महादुःखनिमैं आपकूं असहाय एकाकी चिंतवन करना सो एकत्वानुप्रेक्षा है। संसारविषैं मैं एकाकी अनादिकालतैं हू, कोऊ मेरै स्वजन नहीं है, अर परिवार नहींहै, जो मेरै व्याधि जरा मरणादिक दुःखकूं दूरि करै। एक धर्म ही मेरा सहायी है शरण है अविनाशी है। ऐसैं चिंतवन करना सोही एकत्वभावना है। ऐसैं चिंतवन करतेकै स्वजननिविषै प्रीति नहीं उपजैहै। परजननिमैं द्वेष नहीं उपजैहै तातैं समस्तमैं प्रीति वैर छांडि मोक्षके आर्थिही यत्न करै हैं। ऐसैं एकत्वभावना कही। वहुरि शरीरादिकनितैं अपना स्वरूपकूं अन्य चिंतवन करना सो अन्यत्वानुप्रेक्षा है। यो शरीर इंद्रियगम्य है। अर मैं आत्मा अतींद्रिय हूं। अर शरीर अज्ञानी है अर मैं आत्मा ज्ञानीहूं। शरीर अनित्य है मैं निर-

हूं। शरीर आद्यंतवान् है मैं अनादि अनंत हूं। संसारमैं परिभ्रमण करता जो मैं ताके अनंतशरीर व्यतीत भये। ऐसैं शरीरादिकनितैं अपना अन्यपणाकूं चिंतवन करना सो अन्यत्वभावना है। ऐसैं चिंतवन करते जीवके शरीरादिकनिमैं ममत्वके अभावतैं आत्मकल्याणमैंही उद्यम होय है। शरीरका अशुचिरूप चिंतवन करना सो अशुचिभावना है। अर शुचिपणा—लौकिक लोकोत्तर भेदतैं दोय प्रकार है। तिनमैं आत्माकै कर्मकलंकका नाश होय अपने स्वरूपमैं अवस्थित होना सो तो लोकोत्तरशुचिपणा है। इसका कारण तो सम्यग्दर्शनादिक हैं तथा सम्यग्दर्शनादिककै धारक साधु हैं तथा साधुनिकी आधाररूप निर्वाणभूम्यादिक मुक्त होनेके उपायहैं तातैं शुचिनामके योग्य हैं। बहुरि लौकिकशुचिपणा अष्टप्रकार है—कालशौच, अग्निशौच, भस्मशौच, मृत्तिकाशौच, गोमयशौच, जलशौच, ज्ञानशौच, ग्लानिरहितपणाशौच ऐसैं हैं। परंतु ये अष्टप्रकार शौच लौकिक हैं। ते शरीरनै शुद्धिकरनेकूं समर्थ नहीं। जातैं शरीर तो अन्यजलादिकशुचिद्रव्यनकूं अशुचि करैहै। शरीरका आदिकारण तो महा अपवित्र माताका रुधिर पिताका वीर्य है। अर उत्तरकारण आहारका परिणमनादिक हैं सो मनुष्य तिर्यंचनिके कवलाहार है सो ग्रहण होतै प्रमाण कफके स्थानकूं पायकरि अतिद्रवरूप हुवा अधिक अशुचि होय है। पाछैं पित्ताशयनै प्राप्त होइ पच्या हुवा महा अशुचिही होय है। फिर पक्याहुवा वाताशयकूं पाय वायुकरिकैं खलरसभावकरि भेदनै प्राप्त होय है। तहां मलमूत्रादिक तो खलभागरूप है। रुधिर मांस मेदा मज्जा वीर्य ये रसभाग हैं यातैं समस्त अशुचिका कारण पात्र शरीर है। याकी अशुचिता दूरि करनेकूं कुंकुम चंदन कर्पूरादिकनिके अनुलेपन तथा स्नानादिक समर्थ नहीं है। अंगारकीज्यों आपके आश्रितद्रव्यनिकूं शीघ्रही अपने स्वभावज्यों अशुचि करैहै। ऐसैं स्मरण करतेकै शरीरतैं विरक्तता होइ तदि संसारसमु-

द्रके तरणके अर्थि चित्तकूं धारेहैं। ऐसैं अशुचिभावना कही। बहुरि मिथ्यात्व अविरत कषायनिके द्वारै कर्मनिका आगमन ताकूं आस्रव कह्या। जो संसार परिभ्रमणका कारण आत्माका गुणनिका घातक है। इंद्रियनिका आतापकरि संसारमैं महाक्लेश भोगै हैं। तथा मोहके उदयके वशतैं जीवके परिणाम होइ हैं ते समस्त आस्रवही हैं। इन मिथ्यात्वादिक आस्रवभावतैं पुण्यपापरूप कर्मका आगमन होयहै सो संसारमैं परिभ्रमण करावै है। ऐसैं आस्रवनिके दोषनिकूं चिंतवन करना सो आस्रवभावना है। ऐसैं चिंतवन करतेंकै उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्ममैं दृढबुद्धि होय है। आस्रवनिके निरोधमैं यत्न करैहैं।

बहुरि सम्यक्त्व देशव्रत महाव्रत तथा कषायनिका विजय योगनिका निरोध ए संवरहीके नाम हैं। तथा तीन गुप्ति पंचसमिति दशलक्षणधर्म अनुप्रेक्षा परिषहजय उत्कृष्टचारित्र इनतैं परमसंवर होय है। जो पुरुष समस्तविषयतैं विरक्त होइ संवर करै है ताकै संसारपरिभ्रमणका अभाव होय है। ऐसैं संवरभावना कही। बहुरि जो सम्यग्ज्ञानी अहंकारमदरहित हुवा निदानरहित वीतरागभावनातैं तप करैहै ताकै बडी निर्जरा होय है। समस्तकर्मनिकी शक्तिका उदय होना सो अनुभव है सोही कर्मके रसका अनुभव है। अर रस दीयां पाछैं निर्जरैही है सो निर्जरा संसारीजीवकै च्यारोंही गतिमैं अवसरपाय होय सो तो सविपाकनिर्जरा है अर तप व्रत संयमके प्रभावतैं होय सो अविपाकनिर्जरा है। जैसैं जैसैं संयमीनिकै उपशमभावकी तपकी वृद्धि होय तैसैं तैसैं निर्जराकी वृद्धि होय है। जो साधु कषायनिका निग्रह करिकैं दुष्टनिकरि कीए अनेक प्रकारके दुर्द्धर उपसर्ग सहै हैं। शरीरकूं विनाशीक जडस्वभाव जानि अपना ज्ञानदर्शनस्वभावकूं अखंड अविनाशी अनुभव करता संक्लेशरहित मन अर इंद्रियनिका निग्रहकरि अपने स्वरूपमैं लीन होइ हैं तिनकै परमनिर्जरा है। निर्जरा है सो मोक्षका कारण है। ऐसैं चिं

निर्जरा जानि निरंतर भावना करना उचित है। ऐसैं निर्जराभावना कही। अब लोकभावना कहै हैं—सर्व तरफ अनंतानंतक्षेत्ररूप आकाशद्रव्य है। ताका अत्यंतमध्यविषै षड्द्रव्यनिका समुदायरूप लोक है। सो समस्त चौदह राजू ऊंचा है। अर दक्षिण उत्तर नीचैं उपरि मध्यमैं समस्त सात राजू है अर पूर्व पश्चिम विषै नीचै तो सात राजू है अर पाछैं उपरि अनुक्रमतैं सात राजू ऊंचापर्यंत घटि मध्यलोककै निकट एक राजूप्रमाण है। बहुरि ताकै उपरि क्रमकरि वधतावधता साढातीन राजू ऊंचा जाय ब्रह्मस्वर्गका अंतके निकट पांच राजू विस्तार है। बहुरि ताकै उपरि क्रमकरि घटता घटता लोकका अंतविषै एकराजूप्रमाण हैं। या प्रकार लोकका पूर्वपश्चिम विस्तार है। इस लोककै मध्यमैं एकराजू लंबी एकराजू चोडी चोकोर चौदहराजू ऊंची लोकका नीचला वातवलयका अंतसूं उपरि लोकका अंतपर्यंत त्रसनाली है। त्रसजीव इस त्रसनालीमैं ही हैं नरक भुवनलोक मध्यलोक व्यंतरलोक तिर्यग्लोक ज्योतिर्लोक स्वर्गलोक मुक्तिस्थान समस्त त्रसनालीकै मांही है। त्रसनालीकै बाह्य उपपाद अर मारणांतिक अर केवलसमुद्घातविना त्रसका गमननाही है। अर स्थावरजीव समस्तही लोकमैं हैं। अर विकलत्रयजीव तथा असंज्ञीपंचेंद्रिय तिर्यंच हैं ते कर्मभूमिके एकसो सत्तरिक्षेत्रमें हैं। अर अंतका स्वयंभूरमणद्वीपका अर्द्धभागमैं समस्तस्वयंभूरमणसमुद्रमैं अर ताके बारैं च्यार कोणनिमैंही हैं। अर समस्त असंख्यातद्वीपसमुद्रानिमैं नहीं हैं। अर ऊर्ध्वलोक अधोलोकमैं हू विकलचतुष्क नहीं है। अर मनुष्य अढाई द्वीपमैंही हैं। अढाईद्वीपबारैं आधास्वयंभूरमणद्वीपपर्यंत हैमवतक्षेत्रकी जघन्यभोगभूमिके तिर्यंचानिसमान पंचेंद्रियतिर्यंचही हैं। अर लवणोदधि कालोदधि अर अंतको स्वयंभूरमणसमुद्र इन तीन समुद्रमैंही जलचरजीव हैं। अन्य असंख्यातद्वीपनिमैं नहीं हैं। अर समस्तरचनाकी कथनी तृतीय अध्यायमै वर्णन करीही है। इस लोकके अंतमैं नीचैं ऊपरि

मध्यमैं सर्वत्र तीनपवन व्याप्त हैं। बहुरि तीनसैं तेतालीस राजूप्रमाण आकाशरूप क्षेत्रके समस्त प्रदेशनिमैं तिलमैं तेलकीज्यों धर्म द्रव्यके अर अधर्मद्रव्यके असंख्यातप्रदेश व्याप्त होरहे हैं। अर तिसही असंख्यातप्रदेशरूपलोकाकाशमैं अनंतानंतजीवद्रव्य तिष्ठै हैं। अर याहीमैं जीवराशितैं अनंतानंतगुणे पुद्गल तिष्ठै हैं। इस लोककेही असंख्यातप्रदेशनिमैं एकएक भिन्नस्वरूपकरि कालद्रव्य तिष्ठै हैं। ऐसैं छहूं द्रव्यनिका समुदायरूप लोकाकाशविषै यो जीव अनंतानंतकालमैं मिथ्यात्वके वशतैं परद्रव्यनिमैं आपा मानि परिभ्रमण करै है। पुद्गलजनितपर्यायहीमैं अहंकार मानि रह्यो है। सो लोकभावनाका चिंतवन करनेतैं समस्तद्रव्यनिका भिन्नभिन्नगुणपर्यायनिकरि स्वभाव जाननेतैं जीवद्रव्यका स्वभाव जानैं तदि जीवद्रव्यमैं आपना आत्माभी है ताहि निश्चयकरि परके उलझानितैं आपकूं निकाशि मोक्षके अर्थि यत्न करै। ऐसैं लोकभावना कही।

बहुरि रत्नत्रयस्वभावका प्राप्त होना अतिदुर्लभ है। जातैं एकनिगोदशरीरमैं अतीत कालके सिद्धनितैं अनंतगुणे जीव हैं। ऐसैं निगोद शरीरनितैं तथा पंचप्रकारकेस्थावर जीवनितैं समस्तलोक निरंतर व्याप्त है। तहां त्रसपणा पावना बालुकासमुद्रमैं हीराकी कणिकावत दुर्लभ है। अर त्रसनिमैंहू विकलत्रयजीवनिकी बहुलता है तातैं पंचेंद्रिय पावना बहुत दुर्लभ है। जैसैं गुणवंतनिकै कृतज्ञता पावना बहुत कठिन है। अर कदाचित् पंचेंद्रियहू होय तो तिनमैं पशू सिंह व्याघ्र मृग पक्षी सर्पादिकनिकी बहुत पर्यायनिमैं जाय उपजै चोहटेमैं रत्नराशिका पावना दुर्लभ तैसैं मनुष्यपणा बहुतदुर्लभ है। अर मनुष्यपणा पायकरि छूटि फेरि मनुष्य होना ऐसा दुर्लभ है जैसैं दग्धहुवा वृक्षके पुद्गलनिका फिरि वृक्षरूप होना दुर्लभ है। अर कदाचित् मनुष्यपणाभी होजाय तौहू हित अहितका विचाररहित पशुसमानमनुष्यनिकरि भरया कुदेश बहुत हैं। तातैं पाषाणनिमैं मणिकीज्यों उत्तमदेशपावना अति[illegible]लभ

कट तिष्ठता जलका हृद तिसमैं मनकूं नहीं चलावते जलकायके जीवनिकै बाधाका परित्यागकी इच्छातैं जलका चाहरहित है। जैसैं जलका संबंधरहित बेलि म्लानताकूं प्राप्त जो शरीरलता ताहि नहीं गिणतैं तपका परिपालनमैं तत्पर है अर भिक्षाका अवसरमैंहू अपनी चेष्टा आकार समस्यादिकरि अपने पीवनेयोग्यभी जलादिकप्रति प्रेरणा याचना नहीं करते अपना धैर्यरूप कुंभमैं धारणकीया शीतलसुगंध ध्यान रूप जलकरि तृषारूप अग्निकी शिखाकूं बुझावै है। तिन साधुनिकै तृषापरिषहसहना होय है॥ २॥ वहुरि जो शीतके कारणनिकूं निकट होतैं शीतका इलाजकी वांछारहित हुवा संयमका परिपालन करै हैं, ताके शीतपरिषहसहना जानना। वस्त्रनिका है परित्याग जिनकै अर पक्षीनिकीज्यों रहनेका स्थानका नहीं है निश्चय जिनकै अर शरीरमात्रही है आधार जिनकै अर समस्तही ऋतुमैं वृक्षनिके नीचैं तथा चौहटे तथा गुफादिक वा नदी तलावका तटमैं रात्रीकूं ध्यानादिसहित व्यतीत करनेका है प्रतीज्ञा जिनकै, अर शिशिरऋतुमैं पडता ओस अर बरफ पाला अर महान् शीतपवनका घात करि हन्या है शरीर जिनका, तोहू शीतके दूरि करनेमैं समर्थ अग्नि इत्यादिकनिकूं चिंतवन नहीं करै हैं। अर ऐसा विचारै हैं जो हे आत्मन् तू नरकनिविषै दुःसह शीतवेदना असंख्यातकाल पर्यंत अनंतवार कर्मकै वसि होय भोगी है। या वेदना तो कुछ है नहीं। ऐसैं चिंतवन करता परमार्थ विगडनेका भयतैं शीत दूरि होनेके इलाजकी वांछाप्रति विचार नहीं करै है। शीतके दूरि करनेमैं समर्थ विद्या मंत्र औषधि पत्र वल्कल त्वचा तृण चामडादिकनिका संबंधमैं कदाचित् मनकूं नहीं चलावैहैं। अन्यका देहतुल्य अपना देहकूं मानि रहे है। धैर्यरूप गर्भगृहमैं विवेकरूप दीपकके उद्योतमैं निजस्वरूपकूं अवलोकन करते आनंदसहित रात्रिकूं व्यतीत करै हैं। अर जो पूर्वकालमैं भोगे जे श्रेष्ठ स्त्रीनिकूं नवीन यौवनकरि पुष्ट कुच नितंब भुज-

अपेक्षाकरि हैं प्रवर्त्तन जिनकै, ऐसैं त्यागीनिकै अनेक उपवास अर मार्गके चलनेतैं अर रोगके उपजनेतैं तथा तपके वर्द्धनतैं तथा स्वाध्यायके करनेतैं उपज्या खेदतैं वा वेलांका उलंघनतैं अवमोदर्यादिकतैं तथा असातावेदनीयकी उदीरणादिकतैं तथा नानाप्रकार आहाररूप इंधनका अभाव इत्यादि कारणनितैं जैसैं पवनकरि प्रज्वलित अग्निकी शिखाकीज्यों शरीर इंद्रिय हृदयके क्षोभ करनेवाली जठराग्निकरि प्रज्वलितक्षुधाकी वेदना उत्पन्न होय ताका इलाजकूं अकालविषै अर संयमकी विरोधीद्रव्यानिकरि आप नहीं करै अर अन्यकरि कीयाहुवाकूं नहीं सेवन करै अर मनविषै संयमके घात करनेवाले द्रव्यनिका सेवनकूं नहीं धारण करै हैं। अर ऐसा विषाद नहीं करै—या वेदना दुस्तर है अर काल महान् है दिन बडो है कैसैं पूर्ण होयगा। अर जिनकै हाड चाम नख कलेवरमात्र देह रहिगया तोहू आवश्यक क्रियामें नित्य सासता उद्यमी हैं। अर पराधीनवंदिग्रहादिकमैं तिष्ठता मनुष्य तथा निर्धन रोगीमनुष्य तथा पींजरेनिमें दृढबंधननितैं बंधे तिर्यंच तिनकै क्षुधाकी पीडा पराधीनता अवलोकनकरि संयमरूप कुंभमें धारणकीया धैर्यरूपजलकरि जे क्षुधारूप अग्निकूं शांत करते क्षुधाकृतपीडाकूं नहीं गिणै हैं तिन साधुनिकैं क्षुधापरीषहका विजय होय है॥१॥ बहुरि तृषावेदनीयकी उदीरणाके कारण होतै हू ज्यों तृषाके वस नहीं होना सो तृषापरीषहसहना है। देखहु वीतरागामुनिकै स्नानका अवगाहका अंगऊपरि जलके सींचनेका तो यावज्जीव त्याग है अर पक्षीनिकीज्यों एकस्थानमैं ध्रुव जिनका वसना नहीं है अर परकै घर अतिक्षार सचिक्कण रूक्ष प्रकृतिविरुद्ध आहार ग्रहण कीया है। अर ग्रीष्मऋतुका आताप अर पित्तज्वर अर अनशनादितप इनकरि उदीर्णाकूं प्राप्त भई जो शरीर अर इंद्रियानिमैं मथनकरनेवाली तृषा, ताका इलाजमैं अनादररूप मन जिनका अर ग्रीष्मके तीक्ष्णसूर्यकी किरणनिकरि संतापित जो वनभूमि तिसर्वैं

कट तिष्ठता जलका हृद तिसमैं मनकूं नहीं चलावते जलकायके जीवनिकै बाधाका परित्यागकी इच्छातैं जलका चाहरहित है। जैसैं जलका संबंधरहित बेलि म्लानताकूं प्राप्त जो शरीरलता ताहि नहीं गिणतैं तपका परिपालनमैं तत्पर है अर भिक्षाका अवसरमैंहू अपनी चेष्टा आकार समस्यादिकरि अपने पीवनेयोग्यभी जलादिकप्रति प्रेरणा याचना नहीं करते अपना धैर्यरूप कुंभमैं धारणकीया शीतलसुगंध ध्यानरूप जलकरि तृषारूप अग्निकी शिखाकूं बुझावै है। तिन साधुनिकै तृषापरिषहसहना होय है॥ २॥ वहुरि जो शीतके कारणनिकूं निकट होतैं शीतका इलाजकी वांछारहित हुवा संयमका परिपालन करैं हैं, ताके शीतपरिषहसहना जानना। वस्त्रनिका है परित्याग जिनकै अर पक्षीनिकीज्यों रहनेका स्थानका नहीं है निश्चय जिनकै अर शरीरमात्रही है आधार जिनकै अर समस्तही ऋतुमैं वृक्षनिके नीचैं तथा चौहटै तथा गुफादिक वा नदी तलावका तटमैं रात्रीकूं ध्यानादिसहित व्यतीत करनेका है प्रतीज्ञा जिनकै, अर शिशिरऋतुमैं पडता ओस अर बरफ पाला अर महान् शीतपवनका घात करि हन्या है शरीर जिनका, तोहू शीतके दूरि करनेमैं समर्थ अग्नि इत्यादिकनिकूं चिंतवन नहीं करै हैं। अर ऐसा विचारैं हैं जो हे आत्मन् तू नरकनिविषै दुःसह शीतवेदना असंख्यातकाल पर्यंत अनंतवार कर्मके बसि होय भोगी है। या वेदना तो कुछ है नहीं। ऐसैं चिंतवन करता परमार्थ विगडनेका भयतैं शीत दूरि होनेके इलाजकी वांछाप्रति विचार नहीं करै है। शीतके दूरि करनेमैं समर्थ विद्या मंत्र औषधि पत्र वल्कल त्वचा तृण चामडादिकनिका संबंधमैं कदाचित् मनकूं नहीं चलावैहैं। अन्यका देहतुल्य अपना देहकूं मानि रहै हैं। धैर्यरूप गर्भगृहमैं विवेकरूप दीपकके उद्योतमैं निजस्वरूपकूं अवलोकन करते आनंदसहित रात्रिकूं व्यतीत करै हैं। अर जो पूर्वकालमैं भोगे जे श्रेष्ठ स्त्रीनिकूं नवीन यौवनकरि पुष्ट कुच नितंब भुज-

करै है। तिनकै अरति परिषहका विजय होय है॥७॥बहुरि सुंदर स्त्रीनिका रूपका अवलोकन स्पर्शनादिक तैं पराङ्मुखपणा सो स्त्रीपरिषहका जीतना है। एकांतवन बगीचेनिके महलभवनादिक स्थानमैं तिष्ठते साधुनिकें रागद्वेषसहित यौवनका मद रूपका मद आभरण वस्त्रादिकनिका मद उन्मादसहित मद्यपानादिकरि उन्मत्त हावभावविलासविभ्रमनिकरि सहित स्त्री आय नानाप्रकारकी बाधा करतासंताहू स्त्रीनिके नेत्र मुख भृकुटीका विकार शृंगार आकार विहार विलास लीलाकरि कटाक्षनिका विक्षेप तथा सुकुमार सचिक्कण कोमल उन्नत पुष्ट ऐसे कुच अर उज्ज्वल कृश उदर अर विस्तीर्ण जघन अर रूप गुण आभरण सुगंध वस्त्रमाल्यादिकनिके अवलोकन स्मरणतैं अत्यंत दूरिवर्ती है मन जिनका, देखनेस्पर्शनेकी अभिलापारहित हैं। तथा स्त्रीनिके कोमल स्नेहके भरे शृंगाररसकूं पुष्ट करनेवाले गीत वादित्रनिके श्रवणप्रति निरादररूप वर्तै हैं। संसारसमुद्रके मध्य पतनतैं अतिभयभीत तिनकैं स्त्रीपरीषहका सहन होय है॥८॥बहुरि मार्गके गमनके दोषनिका निग्रह करना सो गमनपरीषहका विजय है। बहुत कालपर्यंत गुरुनिके संघमें ब्रह्मचर्यका कीया है अभ्यास जिननैं अर जाण्या है बंधमोक्षका पदार्थका स्वरूप जिननैं। अर कषायनिका निग्रहमें तत्पर अर द्वादशभावनामैं स्थापी है बुद्धि जिननै अर नानादेशनिके व्यवहार अर भाषामें प्रवीण ऐसें साधुनिके गुरुनिकी आज्ञातें संयमीनिकी भक्तिके अर्थि तथा ग्रामकै नजीक एकरात्रि वसना नगरके समीप पंचरात्रि वसनेका वर्षाऋतुविना उत्कृष्टनियम है यातें पवनज्यों निःसंगपणानै प्राप्त भया देशकालादिप्रमाणकरि मार्गविषै गमनकूं करते भयानक बनीके प्रदेशनिमें सिंहकीज्यों निर्भयपणातें सहायकूं नहीं वांछा करता कर्कश कंटक कंकरादिकनिके भिदनेकरि उत्पन्न भया है चरणनिमें खेद जिनकै तोहू पूर्वे अनुभव किया जो यानवाहनादिऊपरि चढि गमन ताकूं नहीं स्मरण करतेकै गमनजनित दोष-

निका परिहारतैं चर्यापरीषह सहन होइ है ॥ ९॥ बहुरि स्वयं संकल्प किया जो आसन तातैं चलायमान नहीं होना सो निषद्यापरीषहका विजय होय है। संयमकी क्रियाके जाननेवाला अर धैर्यही है सहाय जाकै अर उत्साहवान् अर श्मसान उद्यान वन शून्यगृह पर्वतनिकी गुफा दराड़ा इत्यादिक पूर्वैं परचै नहीं किए ऐसे स्थाननिमैं तिष्ठते साधु हैं सो उपसर्ग रोगविकार प्रगट होतै आसनतैं चलायमान नहीं होय हैं। मंत्रविद्यादिक इलाजकूं नहीं करैहैं। अनेक क्षुद्रजीवनिकी बाधा होतैहू काष्ठपाषाणवत् निश्चल रहैहैं। पूर्वैं अनुभव किए जे कोमल गादी गदरा सिंहासनादिक तिनके सुखरूप स्पर्शादिकनिकूं नहीं चिंतवन करैहैं प्राणीनिका पीड़ाका परिहारमैं उद्यमी हैं। ज्ञानध्यानभावनामैं बुद्धिकूं धारै हैं तिनकै निषद्यापरीषहका सहन होय है ॥ १० ॥ बहुरि आगमकी आज्ञाप्रमाण शयनतैं नहीं चिगना सो शय्यापरीषहका सहन है। स्वाध्याय अर ध्यान मार्गमैं गमनकरि खेदसहित ऐसैं अर कठोरभूमि कठैं नीची कठैं ऊंची ऐसी विषमभूमि अर प्रचुर कांकरा कांकरी ठीकरानिके खंडनिकरि सहित अर सकड़ी तथा अतिशीत अतिउष्ण भूमिविषै मुहूर्तप्रमाणनिद्राकूं प्राप्त होते ऐसे अर जैसैं करवट लिया तैसैं एक पसवाडे वा दंडतुल्य वा सूधे शयन करते ऐसे अर शरीरमैं बहुत बाधा होतैहू संयमके पालनके अर्थि हलनचलन नहीं करते ऐसे अर व्यंतरादिक दुष्टदेवनिमैं त्रासरूप किए तोहू भागनेउठनेप्रति अभिलाषरहित ऐसे अर मरणका भयकी शंकारहित ऐसे अर पड्या काष्ठकीज्यों वा मृतकशरीरकीज्यों पलटनेकरि रहित ऐसे अर व्याघ्र सिंह महानसर्पादिक दुष्टजीवनिकरि भर्या यो बन है इहांतैं शीघ्र निकसि जाना भला है कदि रात्रि पूरी होसी इत्यादिकविषादकूं नहीं धारते ऐसे पूर्वैं गृहस्थावस्थामैं भोगी जो लूण्या घृतवत् कोमल शय्या ताकूं नहीं यादि करते ऐसे ज्ञानी वीतरागी साधुकै सम्यक् आगमोक्त शय्यातैं नहीं चिगना

जिनकै पात्र है। अर वहुतदिन बहुतगृहांमें परिभ्रमण करतेहू भोजनका लाभ नहीं होतेहू संक्लेशरहित है चित्त जिनका अर यो पुरुष दाता नहीं अन्य दाता है इत्यादिक परीक्षारहित है परिणाम जिनका अर लाभतैंभी अलाभकूं परमतप मानि संतोषकूं धारते साधुकै अलाभपरिषहका विजय होयहै ॥१५॥ बहुरि नानाप्रकारकी व्याधि होतेहू इलाजप्रति वांछाका अभाव सो रोगपरीषहका विजय है। यो शरीर दुःखको कारण है। अशुचिताको भाजन है जीर्णवस्त्रकीज्यों अवश्यत्यागनेयोग्य है। अर वायु पित्त कफ संनिपातके निमित्ततैं अनेकज्वर काशश्वासादिक अनेकरोगनकरि पीडित है ऐसैं अपने शरीरकूं अन्यका शरीरकीज्यों मानै हैं। वीतरागपरिणामतैं नहीं छूटै हैं। देहका इलाजतैं अपूठा (विरक्त) है चित्त जाका। रत्नत्रय इस देहविना नहीं रहै। यातैं रत्नत्रयका सहकारी देहका अकालमैं नाश नहीं होनेंके अर्थि आचारांगकी आज्ञाप्रमाण निर्दोष आहार ग्रहण करै हैं। जिनकै जल्लोषधादिक अनेक ऋद्धि तपके प्रभावतैं उपजी हैं तोहू शरीरमैं निस्पृहपणातैं प्रतिकारीकी नहीं वांछा करता रोगकूं पूर्वकर्मकृतफल जानि समभावतैं सहते ऐसा विचारै हैं जो कर्मका ऋण चुकै है। अब मैं ऋणरहित भया ऐसैं चिंतवन करतेकै रोगपरीषहका विजय होय है ॥ १६ ॥ तृणकंटकादिकानिका निमित्ततैं उपजी वेदनाकूं सहते साधुकै तृणस्पर्शविजय होय है। शरीरमैं व्याधि अर मार्गमैं गमन अर शीतऊष्णताजनित खेदके दूरि करनेकै अर्थि आपकै निमित्त नहीं संवारै ऐसे सूके तृण पत्र कठोरभूमि कंटक काष्ठफलक शिलातलादिक प्रासुकदेशनिमैं शय्या वा आसनादिक करनेतैं तृणादिककरि बाधानैं प्राप्तभया है शरीर जाका अर उत्पन्नभया है खाजिका विकार जाकै तोहू तृणकंटक कठोर कांकरीभूमिका स्पर्शजनित दुःखकूं नहीं अनुभव करतेकै तृणपरीषहसहना होय है ॥ १७ ॥ बहुरि अपना शरीरका मल अर आगंतुकमलका संचयका नाश होनेका

संकल्पका अभाव सो मलपरीषहका सहन जानना। जीवनिकी पीडाका परित्यागके अर्थि यावज्जीव स्नानका त्यागकी है प्रतिज्ञा जाकै अर पसेवरूप कर्दमकरि लिप्त है सर्व अंग जाका अर खाजि दाद कोढकी उत्कटतासहित है काय जाका अर नख रोम डाढी मूंछके केशनिका अर सहज बाह्यमलका मिलापकेकारण अनेक चामकै मध्य है विकार जाकै अर अपने शरीरमैं अर परकै मलका संचय दूरि करनेमैं नहीं है मन जाका, कर्ममलरूप कर्दमका नाश करनेमें उद्यमी अर पूर्वे भोग्या स्नानविलेपनादिकका स्मरणतें पराङ्मुख है चित्तकी वृत्ति जाकी ऐसे साधुकै मलपरीषहका सहन कहिए है ॥ १८ ॥ बहुरि जिन साधुनिका सन्मान अपमानविषै समरूप होय सत्कारपुरस्कारका अभिलाष नहीं होइ तिनकै सत्कारपुरस्कारविजय है। मैं चिरकालतें ब्रह्मचर्यका सेवन कीया है। महातपस्वी हूं स्वमतपरमतका निश्चयका ज्ञाता हूं। हितकारी उपदेश देनेमैं तत्पर हूं। रत्नत्रयमार्गमैं प्रवीण हूं। अर बहुतवार वादीनिका विजय कीया है। ऐसा हूं तोहू मोकूं प्रणाम नहीं करै हैं। भक्ति नहीं करै हैं। हर्षतें खडा होइ आसनादिक नहीं देहैं। ऐसे परिणाम कदाचित् नहीं करै हैं। अपने आत्मकल्याणकूं ध्यावै हैं। सत्कारपुरस्कारकूं नहीं वांछा करैं हैं। ताकै सत्कारपुरस्कारपरीषहका विजय होय है। पूजाप्रशंसारूप तो सत्कार है। अर नाममैं क्रियाके आरंभमें अग्रेसर करना वा प्रधानकार्यमें बुलावना सो पुरस्कार है ॥ १९ ॥ बहुरि बुद्धिके मदका अभाव करना सो प्रज्ञापरीषहका विजय है। मैं अंगपूर्वप्रकीर्णकनिमैं प्रवीण हूं। अर समस्तग्रंथ तथा अर्थका निश्चय करनेवाला हूं। त्रिकाल विषय अर्थके जाननेवाला हूं। शब्दशास्त्र तथा न्यायशास्त्रके जाननेमैं निपुण हूं। हमारे अग्रभागविषै अन्य पंडितजन सूर्यका उद्योतकरि तिरस्कारकूं प्राप्तहुवा आग्याका उद्योतज्यों अवभासै है। इस प्रकार प्रज्ञाका मदका अभाव करना सो प्रज्ञापरीषहका जीतना है ॥ २० ॥ बहुरि आपकै

अज्ञानपणाकरि आपका तिरस्कार होना अर ज्ञानका अभिलाष करतैहू ज्ञानका नहीं होना ऐसा अज्ञानजनितपरीषहका जीतना सो अज्ञानपरीषहका सहना है। यो अज्ञानी है कुछ नहीं जानै है पशुसमान है। इत्यादिक तिरस्कारके वचननिकूं मैं सहूंहूं। अर अध्ययन करनेमैं अर अर्थके ग्रहण करनेमैं अर तिरस्कार सहनेमैं सशक्त हूं। अर बहुतकालका दीक्षित हूं। अर नानाप्रकारके तपके भारकरि व्याप्त हूं। अर सकलसामर्थ्यमैं उद्यमी हूं। अर अनिष्टमनवचनकायकी प्रवृत्तिकरि रहित हूं। तोहू अबभी मेरे ज्ञानका आतिशय नहीं उपज्या। ऐसैं विकल्पनिकूं स्वप्नहूमैं नहीं करै ताकै अज्ञानपरीषहका विजय जानना ॥ २१ ॥ बहुरि दीक्षादिकनिकूं निरर्थक जाननेका अभाव सो अदर्शनपरिषहका सहन है। मैं संयमीनिमैं मुख्य हूं। अर दुर्द्धरतपका आचरण करनेवाला हूं परमवैराग्यभावनाकरि शुद्धमनका धारक हूं। सकलपदार्थनिके तत्त्वका जाननेवारा हूं। अर्हत्के आयतन साधुजन अर धर्म इनका पूजक हूं। अबहू मेरा ज्ञानका अतिशय प्रगट नहीं भया। महान उपवासादिक आचरण करनेवालेनिकै प्रातिहार्यविशेष प्रगट होयहै सो यह बात तो प्रलापमात्र है कहनेकी है। अर या दीक्षाहू निरर्थक है। अर व्रतनिका पालनाहू निष्फल है। हमकूं तो कुछ प्रभाव प्रगट हुवा नहीं दर्शनविशुद्धताके योगतैं इत्यादिक चिंतवन नहीं प्रगट होय ताकै अदर्शनपरीषहका विजय होयहै ॥ २२ ॥ ऐसैं विना संकल्पही उपजे द्वाविंशतिपरीषह तिनकूं सहता संक्लेशचित्त नहीं होयहै तिसकै रागादिकपरिणामजनित आस्रवका अभावतैं महान् संवर होयहै। अब गुणस्थाननिमैं परिषहनिकूं कहै हैं—

सूक्ष्मसांपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥ १० ॥

अर्थ—सूक्ष्मसांपराय तो दशमगुणस्थानवर्त्ति अर छद्मस्थ वीतराग जो उपशांतकषाय क्षीणकषाय है नाम

जिनकै ऐसैं ग्यारमा बारमा गुणस्थानवालेनिकै चौदहपरीषहही हैं। क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, प्रज्ञा, अज्ञान, ए चतुर्दश हैं। अवशेष नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, सत्कारपुरस्कार, आक्रोश, याचना, अदर्शन इन अष्टपरीषहानिका सद्भाव नहीं है। अर ए चौदह परीषहहू सत्तामात्र हैं। जैसैं सर्वार्थसिद्धिके देवनिकै समस्तपृथ्वीका गमनका सामर्थ्य है परंतु जानेका प्रयोजन नहीं अर रागभाव नहीं तातैं गमन नहीं। तैसैं सूक्ष्मसांपरायके तो मोहका अत्यंत मंद उदय अर छद्मस्थ वीतरागके मोहका अभाव तातैं वेदनीयका तथा ज्ञानावरण अंतरायके सद्भावतैं चौदह परीषह उपचारतैं कहीं मोहनीयके अभावतैं मुख्यपणातैं अभावही है। अब केवलीकै कहै हैं—

एकादश जिने ॥ ११ ॥

अर्थ—जिनेंद्रभगवानकै ग्यारह परीषह कल्पे हैं। वेदनीयकर्मके उदयके सद्भावतैं भगवान केवलीजिनकै ग्यारह परीषह हैं। कोऊ कहैगा ग्यारह परीषह है तो क्षुधादिककाहू प्रसंग आया। सो नहीं है—जातैं अघातिकर्मका उदयका अभावतैं वेदनीयकर्मके क्षुधादिक वेदना उपजावनेका सामर्थ्यका अभाव है। जैसैं मंत्र औषधादिकके बलतैं क्षीण भई है मारणशक्ति जामैं ऐसा विषद्रव्य मरणके अर्थि नहीं कल्पना करिएहैं। तैसैं ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध कीए हैं घातिकर्मरूप इंधन जानैं अर प्रगट भया है अनंत ज्ञानादिकचतुष्टय जाकै ऐसे केवली जिनकै अंतरायकर्मका अत्यंत अभावतैं निरंतर शुभनोकर्मपुद्गलनिका संचय होनेतैं प्रक्षीण भया है सहाय बल जाकै ऐसा वेदनीयकर्म अपना वेदनारूप प्रयोजन उपजावनेकूं असमर्थ है। यातैं भगवान् जिनकै वेदनीयका उदय होतैहू क्षुधाका अभाव निश्चय करना। संसारीजीवनिकै वेदनीयकर्मके उदयतैं क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श, मल, ए

ग्यारहपरीषह होय हैं। यातैं केवलीजिनकैहू वेदनीयकर्मका उदय है तातैं कर्मकूं कारण देखि केवलीके ग्यारह परीषह कहीं। परंतु मोहनीयकर्मके बलतैं वेदनीयकर्म प्रबल होइ आहारादिककी इच्छारूप क्षुधादिक परीषह उपजावै था अब वेदनीयकै मोहनीयकर्मके सहायका अभावतैं वेदना देनेरूप शक्ति नहीं रही तब क्षुधादिक वेदना कैसें उपजावै। अर असातावेदनीयकी उदीरणा होय तदि क्षुधा उपजै है। सो वेदनीयकर्मकी उदीरणा छठा गुणस्थानपर्यंतही है उपरि नाहीं है। तदि वेदनीयकी उदीरणाविना केवलीकै क्षुधादिकबाधा कैसें होय। जैसें निद्रा प्रचलाकर्मका उदय तो बारमा गुणस्थानपर्यंत है परंतु उदीरणा विना निद्रा नहीं व्यापै है। अर जो निद्राकर्मके उदयतैं ही ऊपरके गुणस्थाननिमैं निद्रा आजाय तो प्रमादीकै ध्यानका अभाव होजाय। बहुरि जैसें संज्वलनका मंद उदय होतै अप्रमत्तगुणस्थानमैं प्रमादका अभाव है। जातैं प्रमाद है सो संज्वलनका तीव्र उदयमैं होय है मंदउदयमैं नहीं होय। तथा वेदनीयके तीव्र उदयतैं संसारिजीवकै मैथुनसंज्ञा होय है। अर वेद नवगुणस्थानतांई हैं। परंतु वेदके मंद उदयतैं श्रेणी चढे हुए संयमीनिकै मैथुनसंज्ञाका अभाव है मंद उदयतैं मैथुनमैं वांछा नहीं उपजै है तथा निद्रा प्रचला कर्मका उदय तो बारमा गुणस्थानतांई है। परंतु मंद उदयतैं निंद्रा नहीं व्यापै है। तैसैंही केवलीभगवानकै वेदनीयका मंद उदयतैं क्षुधातृषादिक नहीं उपजैं है। बहुरि शक्तिरहित आसातावेदनीयहू केवलीकै क्षुधादिकवेदना उपजावनेकूं समर्थ नही है। जैसें स्वयंभूरमण समुद्रका समस्त जलकूं एक सरसूंका अनंतवां भाग प्रमाण विषकी कणिका विषरूप करनेकूं समर्थ नहीं तैसें अनंतगुण अनुभागका धारक सातावेदनीयका उदयसहित केवली भगवानकूं अनंतभागखंड असंख्यातवार जाका होगया ऐसा असातावेदनीयकर्म क्षुधादिक वेदनीकूं नहीं उपजाय सकै है! अर जो थे या कहो आहारविना केवलीका देहकी

स्थिति कैसैं रही तो यों जाणों ? आहारविना देवनिके शरीरकी स्थिति कैसैं हैं ? जैसैं देवनिके शरीरकी स्थिति कवलाहारविना है तैसैं केवलीका देहकी स्थितिहू है। अर जो थे या कहो–देवनिकै तो मानसिक आहार है तो केवलीकैहू निरंतर शुभसूक्ष्मशरीरके बलाधानका कारण ऐसैं नोकर्मपुद्गलनिका ग्रहणरूप आहार है ही अर जो थे या कहो केवलीका देह तो मनुष्यका है मनुष्यदेह औदारिक है इस देहकी स्थिति कवलाहारविना कैसैं होय तातैं देहवत् कवलाहारही उचित है ऐसैं कहो सो ठीक नहीं—जो मनुष्यनिकै तपश्चरणजनित ऐसा प्रभाव प्रगट होय है जो त्रैलोक्यमैं ऐसा सामर्थ्य नहीं अर भगवान् केवलीकै अनंत ज्ञान अर अनंतवीर्य प्रगट भया। अन्यमनुष्यनिकै इंद्रियजनित ज्ञान केवलीकै अतींद्रियज्ञान केवलीजिनकूं अन्यमनुष्यनिकै समान कैसैं कहो हो। अर मनुष्यनिकै अर केवलीजिनकै समानता होजाय तदि आतमा अर परमात्मामैं भेद काहेका रह्या। जिस काल क्षपकश्रेणी चढै हैं तिस कालविषै अधःप्रवृत्तिकरणका परिणामनितैं च्यारि आवश्यक होय हैं। प्रथम तो समयसमयविषै कषायनिकी मंदतातैं परिणामनिकी अनंतगुणी उज्वलता ॥ १ ॥ अर स्थितिबंधापसरण कहिए पूर्वैं कर्मकी स्थिति बांधी ताका समयसमय अनंतगुणा घटना। २। अर सातावेदनीयादि प्रशस्तकर्मनिका अनुभाग जो रस देनेकी शक्ति ताका समयसमय अनंतगुणा वढना। ३। अर असातावेदनीयादिक अप्रशस्तकर्मकी प्रकृतिनिका अनुभाग समयसमय घटना। ४। जातैं अशुभप्रकृतिनिमैं विषहालाहलरूप शक्तिका तो अभाव होय है अर निंबू कांजीरूप रस रहिजाय है ऐसैं च्यार आवश्यक तो अधःप्रवृत्तिकरणतैं होय हैं अर अपूर्वकरणतैं गुणश्रेणीनिर्जरा, अर गुणसंक्रमणं, अर स्थितिकांडकोत्कीर्ण, अर अनुभागकांडकोत्कीर्ण, ए च्यार आवश्यक अपूर्वकरणतैं होय हैं। यातैं केवलीभगवान-

कै असातावेदनीय आदि अप्रशस्तप्रकृतिनिका रस असंख्यातवार अनंतानंतका भागलागिकैं घटिगया तदि असातामैं सामर्थ्य कहां रही जो केवलीकै क्षुधादिवेदना उपजावै। बहुरि असातावेदनीयका वंध तौ छठा गुणस्थानपर्यंतही है। अर सप्तमगुणस्थानतैंही असातावेदनीयका बंध नहीं, एक सातावेदनीयका ही वंध है। अर ग्यारमा बारमा तेरमा गुणस्थाननिमैं जो सातावेदनीयका वंध है सो एक समयकी हू स्थिति नहीं पावै है। जातैं स्थितिका कारण कषाय तो मूलतैं गया तदि साताका वंध उदयरूप होता ही वंधै है। तदि पूर्वका वंध्या असाताका मंद उदय वर्त्तमानकालका साताका उदयरूप होय परिणामै है। तव क्षुधादिक वेदना कौन उपजावै? जैसैं अमृतके समुद्रमैं मिल्याहुवा एक दग्धहुवा विषका कण रस नहीं दे सकै है। बहुरि बडी मूढता प्रगट देखिये है जो तीन लोकके पतिकरि वंदनीक देवाधिदेव परमपूज्य अर्हत् भट्टारककूं अर जगतके विषयी कषायी रंक पुरुषनिकूं समान कहना इस सिवाय अन्य मूढता नहीं है अर जगतविषै भी प्रसिद्ध है--जो मणि मंत्र औषध विद्या तप इनका अचिंत्य प्रभाव है। चिंतामणि अर अन्यपाषाण कैसैं समान होय। अर अन्य तारा अर सूर्य कैसैं समान होय। तातैं नानावेदनाका नष्ट करनेमैं समर्थ ऐसा केवलज्ञानके होतै केवलीकै आहार निहार मानना अनंतसंसारका कारण है। अर प्राणीनिका जीवना तो आयुकर्मके उदयके आधीन है। केवल आहारमात्रतैं ही नहीं है। जातैं भोगभूमिके मनुष्यनिका तो शरीर तीन कोसप्रमाण है। अर तीन पल्यका आयु है अर तीन दिन गए पीछैं बोरप्रमाण आहार करै हैं। बहुरि अंडेमैं पक्षी अपनी माताका उदरकी ऊष्माहीतैं वृद्धिनैं प्राप्त होय है तातैं पक्षीनिकै उजाहार है। एकेंद्रियनिके जल पवनादिकही आहार हैं। सो लौकिकजनहू कितने जीवनिकै पवनकाही आहार कहै हैं। नारकीनिकै कर्मनिका भोगनाही आहार है। देवनिकै

मानसिक आहार है। तैसैं केवलीजिनकै नोकर्मपुद्गलनिका आहार है।

बहुरि अन्यमनुष्यनिकीज्यों केवलीजिनकै वेदनीके उदयतैं कवलाहार मानोहो तो सयोगीकै द्रव्यमन का सद्भावतैं मनका विकल्पहू मानो अर द्रव्येंद्रिय विद्यमान हैं तातैं इंद्रियजनितज्ञानहू मानो अर शुक्लेश्या विद्यमान है तातैं कषायहू केवलीकै माननेका प्रसंग आवैगा। जिस मुनिकै कायबलऋद्धि होयहै ताकैही ऐसा सामर्थ्य होयहै जो त्रैलोक्यकूं चलायमान करै तो केवलीका सामर्थ्य कौन कहिसकै बहुरि भक्षण करनेकी इच्छाकूं बुभुक्षा कहिए हैं। सो भगवानकै मोहनीय कर्मका अभाव भया तदि भोजनकी इच्छा काहेतैं भई? अर मोहनीयकर्मका अभाव होतैंभी जो इच्छा मानोहो तो स्त्रीभोगनेकी इच्छाकाहू सद्भाव आया तदि वीतरागताकूं जलांजलि दीनी वीतरागता कहां रही। बहुरि जो केवली भोजन करै हैं सो नित्य एकवार करै हैं कि अनेकवार करै हैं कि एकदिन दोय दिनकै आंतरै करै हैं कि छह महीना वरस दिनकै अंतरतैं करै हैं। उनके कितने दिनके अंतरकरि भोजन है। जो प्रमाण कहोगे तो उनकी शक्तिका उतनाही प्रमाण आगया तदि अनंतशक्ति कहना वृथा है। बहुरि भोजन करै है सो क्षुधाकी वेदनातैं करै हैं कि रसनेंद्रियका स्वादकै अर्थि करै हैं? जो क्षुधाकी वेदना नहीं सहीजाय यातैं करै हैं तो क्षुधासमान वेदनाही नहीं तदि केवलीकै अनंतसुख कहना वृथा भया। अर जो रसनेंद्रियका स्वादकै अर्थि करै हैं तो अतींद्रियात्मक स्वाधीनसुखका अभाव आया। भोजनकै आधीन सुख रह्या तदि स्वाधीन परमेश्वरपणाका अभाव आया। बहुरि भोजनकूं आस्वादै हैं सो केवलज्ञानतैं आस्वादै हैं कि रसनेंद्रियतैं आस्वादै हैं। जो केवलज्ञानतैं आस्वादै हैं तो दूर समस्त त्रैलोक्यमैं वर्त्तते अहारकूंहू आस्वादन करै हैं फेर कवलाहारसूं कहां प्रयोजन रह्या अर रसनेंद्रियतैं आहारका स्वाद लेहैं तो केवलीकै इंद्रियजनित

मतिज्ञानका प्रसंग आया तदि केवलज्ञानका अभाव आया। बहुरि केवली त्रैलोक्यमैं वर्त्तते समस्त जीवनिका मरण ताडन त्रासन मांस रुधिरादिकनिकूं प्रत्यक्ष देखता भोजनका अंतराय कैसैं टालै हैं। अल्पशक्तिका धारक श्रावकहू ऐसैं घोरकर्मनिकूं देखै तो अंतराय करै है फिर केवली कैसैं भोजन करै हैं। वहुरि भोजनकी इच्छामात्रतैं सप्तमगुणस्थानका धारक तथा श्रेणीमैं तिष्ठता साधु छठे गुणस्थानकूं प्राप्त होय है सो प्रमादी कहावै है तो केवली भोजन करता प्रमादी कैसें नहीं होय ? यह वडा आश्चर्य है। ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध कीए हैं च्यारघातियाकर्म जिननैं अर अनंत अशोक ज्ञानदर्शनसुखवीर्य जिनकै प्रगट भया ऐसा भगवान् केवलीकै अंतरायकर्मके अत्यंत अभावतैं निरंतर समयसमय शुभसूक्ष्मपुद्गलनिके संचय होनेतैं औदारिकशरीर कवलाहारविनाही अनंतशक्ति धारण करै है तातैं वहोत कहांताईं लिखीजाय केवलीके आहारकी असत्यकल्पनाकरि मोहनीयकी सत्तरिकोटाकोटीसागरकी स्थिति निरंतर बांधना उचित नहीं। निरस्त भयाहै घातिकर्मका चतुष्टय जाकै ऐसे जिनभगवानकै वेदनीयका सद्भाव होतैंहू द्रव्यकर्मका सद्भावतैं एकादशपरीषह नहीं होयहैं जातैं मोहनीयका सहायविना वेदनीयकर्म क्षुधादिकवेदना नहीं करि सकै हैं अर वेदना नहीं करै है तोहू वेदनीयका कर्मपरमाणुके सद्भावतैं उपचारतैं ग्यारह परीषह कहे हैं। जैसैं समस्त ज्ञानावरणका अभावकरि सकलपदार्थनिका अवभासक केवलज्ञान प्रगट होतैंहू केवलीभगवानकै उपचारतैं ध्यान कह्या। भगवानकै सकलपदार्थ एककालमैं युगपत् प्रत्यक्ष भए तदि एकाग्रचिंतानिरोधध्यान जो एकपदार्थकूं आलंबनकरि ध्यावै सो कहां रह्या तोहू ध्यानका फल कर्मका नाश होनेके सद्भावतैं उपचारतैं ध्यान कह्या अथवा इसही वाक्यतैं केवलीजिनकै ग्यारहपरीषह नहीं है जातैं उपचारतैं परीषह कहे हैं सो उपचार झूठा है। जैसैं किसी बालकमैं क्रूरपणा शूरपणा देखि [illegible]

कहिदिया तीक्ष्ण नखदंत कपिल नयन केशावलीका धारनेवाला सिंह नहीं है परंतु सिंहका कोई धर्म देखि सिंह कहना सो उपचार है। तथा लौकिकजन कहैं हैं—यह वस्त्र आभरण मेरा है, यह देश मेरा है, यह राज्य हमारा है, यह नगर हमारा है, ऐसैं समस्त कहना उपचार है सो झूठा है तातैं जिनेंद्रकै उपचारतैं कहे ग्यारह परीषह नहीं है। अब बहुत कथनी कीए ग्रंथविस्तार बधिजाय तातैं श्वेतांबरपराजयादितैं विशेषकथन जानना। अब समस्तपरीषह कहा है सो कहै हैं—

वादरसांपराये सर्वे ॥ १२ ॥

अर्थ—प्रमत्तकूं आदिकरि नवमगुणस्थानतांई बादरसांपराय कहिए स्थूलकषाय हैं इनमें समस्त बाईस परीषह होय हैं। अब कौंन प्रकृतिका उदयतैं कौंन परीषह होय सो कहै हैं—

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ १३ ॥

अर्थ—ज्ञानावरणकूं होतेसंते प्रज्ञा अर अज्ञानपरीषह होय हैं। इहां कोऊ कहै ज्ञानावरणके उदय होतै अज्ञानपरीषह होना तो ठीक है परंतु प्रज्ञापरीसह कैसैं होय प्रज्ञा तो ज्ञान है सो आत्माका स्वभाव है सो ज्ञानावरणके उदयमैं कैसैं होय। ताका उत्तर कहैहैं—जो प्रज्ञाका मदजनित परीषह होय है सो ज्ञानावरण का उदय होतैही होयहै जातैं क्षयोपशमतैं उपजी मंदप्रज्ञा सोही मद उपजावै है। जाकै सकलज्ञानावरणका नाश होजायगा ताकै प्रज्ञाका मद नहीं उपजैगा प्रज्ञाका मद होयहै सो क्षयोपशमज्ञानीकै होय है क्षयोपशमज्ञानीकै ज्ञानावरणको उदयविद्यमान हैही—

दर्शनमोहांतराययोरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥

अर्थ—दर्शनमोहकूं होतेसंते अदर्शनपरीसह होय है अर अंतरायकर्मके उदयतैं अलाभपरीसह होय है।

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः ॥ १५ ॥

अर्थ—चारित्रमोहकूं होतैसंतै नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कारपुरस्कार ए सात परीषह होय हैं। अब अवशेष परीषहनिके निमित्तकूं कहै हैं—

वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥

अर्थ—ए कहे तिनतैं शेष जे क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श, मल ए ग्यारह परिसह वेदनीय कर्मके होतैसंतै होय हैं। अब एककालमैं युगपत कितने परिसह होंय तातैं सूत्र कहै हैं—

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः ॥ १७ ॥

अर्थ—एक जीवकै युगपत् एक कालमैं उगणीस परिषह होय हैं अधिक नहीं। जातैं शीत उष्णमैंतैं एक काल एकही होय अर शय्या चर्या निषद्या इन तीननिमैं एककालमैं एकही होय। तातैं तीन घटनेतैं युगपत् उगणीसही कहे। ऐसैं परिसहनिका प्रकरण कह्या। अब संवरनिर्जराका कारण चारित्रकूं कहैहैं— सो चारित्र चारित्रमोहका उपशम क्षय क्षयोपशम लक्षण जो आत्मविशुद्धिरूप लब्धि, ताकी सामान्य अपेक्षाकरि तो एक प्रकार है। प्राणीनिकै पीडा अर इंद्रियनिका दर्पका निग्रहकी शक्ति अपेक्षा दोय प्रकार है। उत्कृष्ट मध्य जघन्य विशुद्धिताकी प्रकर्षता अप्रकर्षतातैं तीन प्रकार है। अर सराग वीतराग सयोगी अयोगीकी अपेक्षा च्यार प्रकार हैं। तोहू पंचप्रकारकरि कहै हैं—

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातमिति चारित्रं ॥ १८ ॥

अर्थ—सामायिक छेदोपस्थापन परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसांपराय यथाख्यात ऐसैं पंचप्रकार चारि-

व्रतनिका धारण समितिका पालन, कषायनिका निग्रह अशुभमनवचनकायकी प्रवृत्तिरूप दंडनिका त्याग करना, इंद्रियनिका विजय, जिस जीवकै होय ताकै संयम जानना। तहां समस्त सावद्ययोगका अभेदकरि जामैं त्याग होय सो सामायिकचारित्र है। वहुरि कोऊ सामायिकसंयमरूप होय फेर चिगकरि सावद्यव्यापाररूप हुवा फिर प्रायश्चित्ततैं सावद्यव्यापारतैं उपज्य। दोषकूं छेदि आत्माकूं व्रतधारणादिरूप संयममें धारण करिए सो छेदोपस्थापन है अथवा व्रत समिति गुप्त्यादिकका भेदरूप चारित्र सो छेदोपस्थापन है। वहुरि प्राणीनिकी पीडाका परित्यागकरिकैं विशिष्टशुद्धता जाकै होय सो परिहारविशुद्धिचारित्र है सो परिहारविशुद्धिचारित्र कौनकै होय सो कहै हैं—जन्मतैं तीस वर्षप्रमाण जाकी अवस्था होय अर जन्मदिनकों आदि लेय सर्वकाल सुखी रह्यो होय अर तीस वर्ष पीछैं जिनदीक्षा ग्रहणकरि श्रीतीर्थंकरांका चरणारविंदसेवनकरै तो तीर्थंकरांका चरणांकैं समीप प्रत्याख्यान नाम नवमा पूर्व पढ्या होय, अर जीवनिका निरोध जीवनिका प्रगट होनेका काल जीवनिका प्रमाद उत्पत्ति योनि देश द्रव्यस्वभावके विधानका जाननेवाला होय प्रमादरहित होय, महावीर्यका धारक होय, बडी निर्जरा जाकै होय, दुर्द्धर चर्याका आचरण करनेवाला होय, तीन संध्याकूं वर्जनकरि अन्य अवसरमें दोय कोशप्रमाण विहार करनेवाला होय, रात्रिकै विषै विहाररहित होय, वर्षाकालका नियमरहित होय ऐसे साधुकै परिहारविशुद्धि संयम होय है अन्यकै नाहीं होय। इनके शरीरतैं जीवकी विराधना नहीं होय है। परिहारविशुद्धिचारित्रका जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त है। छटा अर सातमा दोय गुणस्थाननिमैं यो संयम है। जो अंतर्मुहूर्त्तमैं गुणस्थान पलटिजाय तो संयम छूटिजाय अर उत्कृष्टकाल अडतीस वर्ष घाटि कोटिपूर्व है। कैसैं सो कहैहैं—उत्पत्तिदिवसतैं तीस वर्षका दीक्षित होय अष्टवर्ष तीर्थंकरनिकै निकट रह्या पाछैं परिहारविशु-

द्धिसंयम उपजै अर कोटिपूर्वका आयु तातैं अडतीस वर्ष घाटि कोटिपूर्व रहै। बहुरि सूक्ष्मकषायगुणस्थानमैं सूक्ष्मसांपरायचारित्र है। जो सूक्ष्म अर स्थूलहिंसाका त्यागमैं असावधान नहीं अर अखंडित जिनकै उत्साह है अर सम्यग्दर्शनज्ञानमहापवनकरि संधुक्षित जो प्रशस्त परिणामरूप अग्निकी शिखाकरि दग्ध किया है कर्मरूप इंधन ज्यां, ध्यानविशेषकरि शिखारहित किया है कषायरूप विषका अंकुरा ज्यां, नाशकै सन्मुख किया है सूक्ष्ममोहबीज ज्यां, ऐसे साधुकै सूक्ष्मसांपरायचारित्र होय है। समस्त उपशांत तथा क्षीणमोहके होनेतैं यथाख्यातचारित्र होय हैं। जैसा निर्विकार आत्माको स्वभाव तैसा समस्त मोहनीयके उपशमतैं वा क्षयतैं प्रगट होगयो तातैं यथाख्यातचारित्र है सो उपशांतकषाय क्षीणकषाय वा सयोगी अयोगी जिनकै होय है। सामायिक छेदोपस्थापन संयम है सो प्रमत्त अप्रमत्त अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण इन च्यार गुणस्थाननिमैं होय है अर परिहारविशुद्धि छठे सातमे दोयही गुणस्थाननिमैं होय है। सूक्ष्मसांपराय एक सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानहीमैं होय है। इहां और विशेष जानना—सामायिकछेदोपस्थापनाकी जघन्यविशुद्धताकी लब्धि अल्प है तातैं परिहारविशुद्धिचारित्रकी जघन्यविशुद्धता अनंतगुणी है तातैं परिहारविशुद्धताकी उत्कृष्टविशुद्धता अनंतगुणी है तातैं सामायिकछेदोपस्थापनाकी उत्कृष्ट विशुद्धता अनंतगुणी है तातैं यथाख्यातचारित्रकी संपूर्णविशुद्धता अनंतगुणी है सो घाटि वाधिरहित है। अब निर्जराका कारण तपके भेदनिमैं बाह्यतपके भेद कहै हैं—

अनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥ १९ ॥

अर्थ—अनशन, अवमोदर्य वृत्तिपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन कायक्लेश ऐसैं छह प्रकार बाह्य तप हैं। तहां लौकिक ख्याति पूजा देवताआराधन मंत्रसाधनादिककी अपेक्षा नहीं करिकै जो

संयमकी सिद्धिकेअर्थि, रागका उच्छेदके अर्थि, कर्मका विनाशके अर्थि, ध्यानके स्वाध्यायकी सिद्धिके अर्थि, इंद्रियनिका विजयके अर्थि, कामका नाशके अर्थि निद्राप्रमादका विजयके अर्थि, जो भोजनको त्याग सो अनशनतप है। सो अवधृतकालका अर अनवधृतकालका भेदतैं दोय प्रकार है। तिनमैं एकवार भोजन तथा एक उपवास दोय तीन पांच पक्ष मास छहमास इत्यादिक कालकी मर्यादाकरि जो अशनत्याग सो अवधृतकाल अनशन है अर यावज्जीव भोजनका त्याग करि संन्यास करना सो अनवधृतअनशन है। बहुरि संयमका पालन निद्राका विजय त्रिदोषका उपशमन आलस्यका अभाव अनशनजनित बाधाका अभाव कायोत्सर्गकी दृढता ध्यानकी निश्चलता संतोष स्वाध्यायकी सुखसिद्धिके अर्थि जो अल्प आहार करना अर्द्धभोजन चतुर्थांशभोजन एकग्रासपर्यंत लेना सो अवमोदर्यतप है। बहुरि संयमीमुनिका एक गृह पांच गृह सात गृहमैं भोजनके अर्थि नियम करना तथा एक पाड़ामैं (महल्लामैं) वा दोय पाड़ामैं तथा रसता चोहट्टा आदिका नियम तथा दातारका भोजनका नियम तथा पात्रका नियमकरि भोजनके निमित्त नगर ग्रामादिकमैं जावना अर संकल्पमाफिक भोजनका लाभ मिलै तो लेना नहीं मिलै तो पाछा वनमैं आय उपवास धारणा सो वृत्तिपरिसंख्यान है। इस तपतैं आशाका अभाव अंतरायकर्मकी निर्जरा अर परमसंतोष होय है। बहुरि इंद्रियनिका दमन, तेजकी हानि, संयमका भंगका अभाव, लालसाका नाशके अर्थि, इंद्रियनिका दमनके अर्थि, तेजकी हानिके अर्थि, संयमका घातकूं दूरि करनेके अर्थि, जो घृत दुग्ध दधि तैल गुड लवण छह प्रकार रसनिका त्याग करना सो रसपरित्याग तप है। कोऊ कहै रसवान् वस्तुका त्याग सो रसपरित्याग नहीं है। जातैं समस्तही पुद्गल रसवान् हैं रसरहित कोऊ नहीं। तातैं रसपरित्यागकरि घृत तैल दुग्धादिरस ग्रहणका त्याग जानना। जो रसवान्का

त्याग करिए तो रसवान् तो समस्त आहार है तादि समस्त आहार त्यागका प्रसंग आजाय अर आहार विना देह रहै नहीं देहविना रत्नत्रय कौंनकै आधार होय? रत्नत्रयधर्मविना कर्मका अभाव नहीं तातें रस-शब्दकरि घृतादिरसविशेष ग्रहण करना। इहां कोऊ कहै—जो साधु आहारके निमित्त मौन धारणकरि जाय हैं अर आपकै निमित्त कीयाहुवा आहार ग्रहण नहीं करै है अर गृहस्थकूं अपना त्यागकूं जणावै नहीं है तादि रसनिका त्याग निर्वाह कैसें होय? सो ऐसा जानना—जो गृहस्थ पात्रमैंतै भोजन उठाय साधुका अंजूलीरूप पात्रमें धरै है? तादि साधु नेत्रकरि अपने भोजनकूं अवलोकन करै है—तिसमें दुग्ध दधि घृत गुडादिककरि संयुक्त होय सो तो दृष्टितेंही अवलोकनमैं आवै है अर लवणका अनुमान देशादिककी रीतिसों होजाय हैं। जो कितनेक देशनिमैं तो रोटी पुडी खीचडी वडा सेव कचोरी इत्यादिकमें लवणका संयोग नहीं होयहै कितनेही देशमैं लवणसहितही होयहै अर लाडू मोदक घेवर खीर पूवा इत्यादिकमैं लवण नहीं होयहै सो देशकालका ज्ञाता समस्तरीति जाणि त्याग ग्रहण करै हैं। कदेही छह रसका त्याग ग्रहण करै हैं कदेही एक रसका कदेही दोय च्यारका ऐसें अपनी इच्छापूर्वक रसनिका त्याग सो रसपरित्याग तप है। बहुरि प्राणीनिकी पीडारहित प्राशुक क्षेत्रविषै निवासकूं इच्छा करता साधु है सो एकांतमैं ब्रह्मचर्य स्वाध्याय ध्यानादिककी सिद्धिके अर्थि शयन आसन करै हैं—जिस स्थानमें विषयी कषायी रागीनिका संचार नहीं होय स्त्रीनिका नपुंसकनिका तिर्यंचनिका संचार क्रीडादिक नहीं होय इंद्रियनिका विषयनिकूं पुष्ट करनेवाली सामग्री नहीं होय ऐसा पर्वतनिका दराडा गुफा मठ वनखंडादिक निर्जन प्रदेशनिमैं शय्या आसन करै तिनकै विविक्तशय्यासननाम तप होय है। बहुरि शरीरमैं ममत्व त्यागी जिनेंद्रका मार्गतें अविरोध ऐसा अनेक प्रकार कायके कष्टरूप तप करै सो कायक्लेश [illegible]

रभूमिमें बहुतकाल आसनकी अचलताकरि तिष्ठना, मौन धारना, ग्रीष्मऋतुमें पर्वतके शिखर पर अचल कायोत्सर्गादिक धारणकरि तीव्र आतापनयोग धारण करना, वर्षाऋतुमें वृक्षके नीचें वर्षाकृत घोरबाधा सहना, शीतऋतुमें नदीकी तीर तथा चोहटै दृढशय्यासनकरि रात्रि व्यतीत करना, सर्प बीछू कांनाखिजूरे डांस इत्यादिक जंतूनिकरि करी बाधा तथा दुष्टमनुष्य व्यंतरादिक देव सिंह व्याघ्रादिकनिकरि करी तीव्र बाधाकूं समभावनितें सहना सो कायक्लेश तप है। सो यह तप देहकै आया दुःख सहनेके अर्थि अर विषयसुखनिमें अभिलाष मेटनेके अर्थि अर प्रवचनकी प्रभावनाके अर्थि कायक्लेश तप आचरण करिए है। ऐसे क्लेशका कारण होतेहू ज्ञानाभ्यासमें आत्मानुभवमें लीन रहै हैं चित्तमें क्षोभ नहीं करै हैं साम्यभावतें नहीं चिगै हैं ते साधु धन्य हैं। इहां सम्यक्पदकी अनुवृत्ति लेणी तातें सम्यक्तप है सो यंत्रमंत्रादिककी सिद्धिके अर्थि नहीं धारै है तथा जगतके जननिकरि पूजाप्रशंसाके अर्थि नहीं करै हैं केवल आत्माके सहनशीलता अर कर्ममलका क्षेपणके अर्थि करै हैं। कोऊ कहै परीषहमें अर कायक्लेशमें कहा भेद है ताका उत्तर—जो स्वयमेव उदै आवै सो परीषह है अर अपनी बुद्धिपूर्वक अंगीकार करै सो कायक्लेशतप है। अर इन छह प्रकारके तपकै बाह्यपणा कैसें सो कहै हैं—अनशनादिक बाह्यतपकी अपेक्षातें ए तप हैं तथा बाह्य इंद्रियनिकै ग्रहणमें आवै हैं तथा गृहस्थनकरिभी करिएहैं तथा बाह्यलोकनिकूं प्रत्यक्ष दीखै हैं तातें याकै बाह्यपणा जानना। कर्मरूप इंधनके दग्ध करनेतें तप कहिएहैं तथा देहकै अर इंद्रियनिकै ताप करनेतें तप कहिए हैं। अब अभ्यंतरतपकूं कहिए हैं—

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरं ॥ २० ॥

अर्थ—प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान ए छह प्रकार अभ्यंतर तप हैं। ए तप अन्य-

मतीनिकरि नहीं कीए जांय तथा बाह्य द्रव्यकी अपेक्षा नहीं करै हैं तातैं अभ्यंतरनाम है। अब इन अभ्यंतर तपनिके भेद कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

नवचतुर्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥ २१ ॥

अर्थ–नवप्रकार प्रायश्चित्त है विनय च्यार प्रकार है वैयावृत्य दश प्रकार है स्वाध्याय पंचप्रकार है। व्युत्सर्ग दोय प्रकार है। ऐसैं ध्यानतैं पहले पंच प्रकार तपके भेद कहे। अब प्रायश्चित्तके नव भेद कहनेकूं सूत्र कहै हैं।

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ॥ २२ ॥

अर्थ–आलोचना, प्रतिक्रमण, आलोचना अर प्रतिक्रमण दोऊ सो तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार, उपस्थापना, ए नव भेद प्रायश्चित्तके कहे। जो प्रमादतैं उपज्या दोषका अभाव होनेकूं अर भावनिकी उज्वलता होनेकूं अर परिणामनिकी शल्य दूरि करनेकूं अर अनवस्थाका अभावके निमित्त अर मर्यादाका लोप नहीं होनेके अर्थि अर संयमीकी दृढ आराधनादिककी सिद्धिके अर्थि नवप्रकारको प्रायश्चित्त अंगीकार करिए है। प्रायः जो साधु ताको चित्त जाविषै होय सो प्रायश्चित्त है। अथवा प्रायः जो अपराध ताकी चित्त कहिए शुद्धता सो प्रायश्चित्त है। तहां जो एकांतमैं तिष्ठते अर प्रसन्नमनका धारक अर देशकालके जाननेवाले ऐसे वीतरागी गुरुके आगैं शिष्य है सो विनयकरिकैं दश दोषरहित हुवा आपका प्रमादकूं प्रगट करि जनावना सो आलोचना है सो आलोचना गुरुनिकूं दश दोष टालिकरि करै। ते दोष कोन सो कहै हैं–जो आचार्य हमारे ऊपरि प्रीति अनुग्रहरूप होय अल्प प्रायश्चित देवैंगे ऐसे अभिप्रायतैं गुरुनिकी भेट पीछी कमंडलादिककरि आलोचना करै सो आलोचना आकंपितदोषसहित है।

वहुरि गुरुनिकूं ऐसा जणावै जो मैं प्रकृतिकरि बलरहित हूं रोगी हूं उपवासादि करनेकूं समर्थ नहीं हूं। जो मोकूं अल्प प्रायश्चित्त दीजीए तो मैं हू दोष आलोचना करूं ऐसैं आचार्यनैं अपना स्वरूपका अनुमान कराय आलोचना करै सो अनुमापित दोषसहित आलोचना है। वहुरि अन्यकरि नहीं देख्या दोषकूं तो छिपावै अर अन्यकै प्रगटहुवा दोषकूं आलोचना करै सो दृष्टदोष है। वहुरि अल्पदोष हुवा होय ताकूं तो नहीं जणावै अर स्थूल दोषकूं आलोचना करै सो वादरनाम दोष है। बहुरि महान दुस्तर प्रायश्चित्तका भयतैं महान् दोषकूं तो छिपावै अर वाकै अनुकूल अल्प दोष जणावै सो सूक्ष्मदोष है। वहुरि गुरुनिकूं पूछै जो हे भगवन् ऐसा दोष जाकै होय ताका कहा प्रायश्चित्त है ऐसा उपायकरि गुरुनिकूं पूछै सो प्रछन्नदोष है वहुरि पाक्षिक चातुर्मासिक सांवत्सरिकादि प्रतिक्रमणका दिवसमैं वहुत यतीनिके समुदायका शब्दमैं अपना दोषकूं कहै सो शब्दाकुलित दोष है। बहुरि जो यो गुरुनिको दीयो प्रायश्चित्त है सो योग्य है कि नहीं तथा आगममैं है कि नहीं ऐसी आशंकाकरि अन्यसाधुनिकूं पूछना सो वहुजनदोष है। वहुरि कुछ प्रयोजन विचार गुरुनिकूं दोष नहीं जणावै अर आपणैं समान अन्य साधुकूं दोष जणाय महानहू प्रायश्चित ग्रहण करै सो सफल नहीं सो यो अव्यक्तदोष है। बहुरि गुरुनिकूं तो आलोचना नहीं करै अर अन्य मुनिकूं आपसमान अपराधी जाणि वाकूं पूछै जो म्हारै याकै अपराध समान है जो याकूं प्रायश्चित्त दीया सो मोकूं करना युक्त है ऐसैं आपका दोषकूं छिपावै ताकै तत्समदोष है। ऐसैं दश दोषरहित आलोचना करै। संयमी आलोचना करै सो एकांतमैं एकाकी गुरुकूं आलोचना करै। अर अर्जिकाकी आलोचना एकगणिनी दूजी अर्यिका तीजा गुरु तिनकै आश्रय चौडै प्रकाशमैं होय है। जो साधु लज्जाकरि तिरस्कारके भयकरि अपना दोषकी आलोचनाकरि दोषकूं शोधन नहीं करै तो नहीं

जाण्या है लाभ अर खरच जानै ऐसा अधमऋणवानकीज्यों क्लेशित होय है। अर आलोचना कीए विना महानहू तप वांछितफलकूं नहीं देवै है। बहुरि आलोचनाहू करिकै गुरुनिका दीयाहुवा प्रायश्चित्तग्रहण नहीं करै सो विनावीजके संस्कारकीया धान्यकीज्यों फलकूं नहीं देवै है अर आलोचना अर पूर्व ग्रहण-कीया प्रायश्चित मज्जनकीया दर्पणमैं रूपकीज्यों देदीप्यमान होय है। बहुरि कर्मके वशतैं उपज्या प्रमादके उदयतैं उपज्या जो दोष सो म्हारै मिथ्या होहु ऐसैं परिणामनिमैं पापकूं खोटा जानि विरक्त होय मिथ्यामैं दुःकृत इत्यादिक प्रगट करना सो प्रतिक्रमण है। बहुरि कोऊ कर्म तो आलोचनामात्रकरि शुद्ध होइ है, कोऊ प्रतिक्रमणतैं शुद्ध होय है, कोऊ आलोचना अर प्रतिक्रमण दोऊनितैं शुद्ध होय है सो तदुभय है। वहुरि दोषसहित आहार पान उपकरणका संसर्ग भया होय तो ताका त्याग करना, आपको दोषतैं न्यारा करना सो विवेक है। वहुरि कालका नियमकरि कायोत्सर्ग करना सो व्युत्सर्ग है। वहुरि अनशनादितप ग्रहण करना तथा उपवास वेला तेला पंचोपवास पक्षमासादिकनिका उपवास ग्रहण करना सो तप है। वहुरि दिवस मास संवत्सरकी मर्यादाकरि दीक्षाका घटावना सो छेदनाम प्रायश्चित्त है। कोऊ साधु वहुतकालका दीक्षित होयकरिकैहू कोऊ दोष ऐसा करै जो ताका छेद नामा प्रायश्चित्त होय जैसैं कोऊ वीस वर्षका दीक्षित था फिर दोषके वशतैं दशवर्षकी दीक्षा छेदी गई तो अव आपको दश वर्षकाही दीक्षित मानै। दश वरशतैं एक दिवस पहलीकाभी दीक्षित होय ताकूं आपतैं वडा मानैं वंदनादिक पहली करै। वहुरि पक्षमासादिकका नियमकरि संघतैं बाह्य करना सो उपस्थापनप्रायश्चित्त है। ऐसैं नव प्रकार प्रायश्चित्त कह्या। इहां ऐसा जानना—जो प्रमादजनित दोषका तो सोधना शल्यका मेटना भावनिकी उज्जलता करना मर्यादमैं रहना इत्यादिककी सिद्धिकेअर्थि प्रायश्चित्त है। यद्यपि प्रायश्चित्त अने-

अर्थ—आचार्य उपाध्याय तपस्वी शैक्ष्य ग्लान गण कुल संघ साधु मनोज्ञ ए दशप्रकारके साधु इनका वैयावृत्य करना सो वैयावृत्यतप है। कायकी चेष्टाकरि वा अन्यद्रव्यकरि व्यापार करना आचार्यादिकनिकी टहल करना सो वैयावृत्त है तिनमैं जितने व्रताचरण करिए सो आचार्य हैं ऐसैं तो निरुक्ति है। अर याका विशेष—जो सम्यग्ज्ञानादिकगुणनिका आधार ऐसे महतपुरुषनितैं स्वर्गमोक्षके सुखरूप अमृत के वीज जे अहिंसादिकव्रत तिनकों अपने हितकेअर्थि भव्यजीव आचरण करैं ते आचार्य हैं जो व्रत शील भावनाके आधार होय अर जिनकी निकटतानै साधुजन विनयपूर्वक प्राप्त होय श्रुतका अध्ययन करिए सो उपाध्याय हैं। बहुरि जे महान उपवासादिकमैं तिष्ठैं ते तपस्वी हैं। बहुरि श्रुतज्ञानके शीखणेमैं तत्पर अर निरंतरव्रतभावनामैं निपुण सो शिष्य हैं। बहुरि जिनका शरीर रोगादिककरि क्लेशरूप होय ते ग्लान मुनि हैं। बहुरि वृद्धमुनिनिका समुदाय सो गण है वा बड़े मुनिनिकी परिपाटीका होय सो गण है। बहुरि दीक्षादेनेवाले आचार्यका शिष्य होय सो कुल है बहुरि च्यार प्रकारके मुनिका समूह सो संघ है। बहुरि बहुतकालका दीक्षित होय सो साधु है। बहुरि जाका उपदेश लोकमान्य होय वा स्वयं उपदेशविनाही लोकनिमैं पूज्य होय प्रशंसावान् होय सो मनोज्ञ है अथवा समस्तलोक जाकूं महाविद्यावान् कहै प्रशस्तवक्ता कहै महाकुलवंत कहै ऐसैं लोकमान्य होय जिनमार्गका गौरवके उत्पादनका कारण होय सो मनोज्ञ हैं अथवा असंयतसम्यग्दृष्टीहू मनोज्ञ है। ऐसैं आचार्यादिक दशप्रकार कह्या तिनके शरीरसंवंधी व्याधि अर दुष्टमनुष्य तिर्यंचनिकृत उपसर्ग वा क्षुधादिकपरिषह तथा मिथ्यात्वादिककी उत्पत्ति होजाय तो प्रासुक औषध भोजन पान वस्तिका काष्ठफलक तृणानिका संस्तरण धर्मोपकरणादिककरि इलाज करै।

अर सम्यक्त्व छूटिगया होय तो उपदेश देय फेरि सम्यक्त्वग्रहण करावै इत्यादिक वैयावृत्ति है । अर जो भोजन पान औषधादिक बाह्यसामग्री नहीं होय तो अपना देहकरिकैही टहल करै, कफ नासिकामल मूत्र विष्टादिकनिकूं दूरि क्षेपै जैसैं सुख होय तैसैं शरीरकरि टहल सेवा करै, जैसै धर्ममैं लीनता होजाय तैसैं उपदेश करि धैर्यधारण करावै, तिनकै अनुकूल आचरण करै सो समस्तवैयावृत्त्य है । इस वैयावृत्त्य करनेतैं रत्नत्रयकी विशुद्धता ग्लानिको अभाव प्रवचनमैं वात्सल्य इत्यादिकगुण प्रगट होय हैं । तातैं वैयावृत्त्यहीमैं प्रवर्त्तन करना उचित है। इहां विषयके भेदतैं वैयावृत्य दशप्रकार कह्या है अब स्वाध्याय तपकूं कहै हैं—

वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥ २५ ॥

अर्थ—वाचना, पूछना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश, ऐसैं पंचप्रकार स्वाध्यायतप है । तहां निर्दोष-ग्रंथका तथा ग्रंथके अर्थका तथा ग्रंथ अर्थ दोऊनिका विनयवान् धर्मका इच्छक भव्यपात्रकूं शिखावना पढावना सो वाचना स्वाध्याय है । वहुरि जो आपकै शब्दमैं शब्दके अर्थमैं संशय होय तो संशयके दूरि करनेकेअर्थि तथा अपने निश्चयरूप दृढपरिणाम होनेकेअर्थि विनयसहित होय वहुज्ञानीनिसूं प्रश्न करना सो प्रच्छनास्वाध्याय है । आपका ज्ञानकी उन्नति, परका तिरस्कार, परकी हास्य प्रगटकरनेकूं प्रश्न नहीं करै है । अर प्रश्न करै सो उद्धत होय नहीं करै, हँसतो संतो नहीं करै, वहुत उत्कट शब्दकरि सभानिवासीनिकै क्षोभ करता हुवा नहीं करै, वहुतप्रलाप नहीं करै, विनयपूर्वक अल्प अक्षरनिमैं प्रश्न करै सो प्रच्छनानामा स्वाध्याय है। वहुरि गुरुनिकी परिपाटीतैं जाण्याहुवा अर्थको मनकरि अभ्यास करना वारंवार चिंतवन करना सो अनुप्रेक्षास्वाध्याय है । वहुरि इस लोकसंवंधी फलकूं नहीं वांछा करता शीघ्रता अर विलंबनरूप जे घोषणाके दोष तिनकरि रहित जो पाठ करना सो आम्नायनामा स्वाध्याय है। वहुरि

दुष्टप्रयोजनका परित्यागतैं उन्मार्ग दूरि करनेके अर्थि संदेहका दूर करनेका अर अपूर्व पदार्थके प्रकाशनकेअर्थि धर्मके कथनरूप उपदेशरूप करना सो धर्मोपदेशनामा स्वाध्याय है सो स्वाध्यायतैं बुद्धिका अतिशय प्रगट होयहै, प्रशस्तअभिप्राय होय है, प्रवचनकी स्थिरस्ति होय है, संशयका उच्छेदहोय है, परवादीकी शंकाका अभाव होयहै, परमसंवेग जो धर्मानुराग वा संसारदेहभोगनितैं विरक्तता होयहै, तपकी वृद्धि होयहै, अतिचारनिकी शुद्धता होयहै। अब स्वाध्यायके अनंतर कह्या जो व्युतसर्ग ताहि कहै हैं—

बाह्याभ्यंतरोपध्योः ॥ २६ ॥

अर्थ—बाह्य अर अभ्यंतर दोय प्रकारकी उपधि जो परिग्रह ताका त्याग सो व्युत्सर्ग है। तहां आत्मातैं बाह्य जे धन शरीरादिकका त्याग सो बाह्य उपधित्याग है। बहुरि क्रोध मान माया लोभ हास्य रति अरति शोक भयादिक दोषनितैं निवृत्ति होना सो अभ्यंतरव्युत्सर्ग है। यह त्याग करना है सो कालका नियमकरि भी होयहै अर यावज्जीवभी होयहै सो यो कायोंत्सर्ग निःसंगपणो करै है, निर्भयपणा करै है, जीवितकी आशाका अभावकेअर्थि दोषनिका छेदकेअर्थि मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिकेअर्थि कायोत्सर्ग तप अंगीकार करना योग्य है। बाह्य अभ्यंतर परिग्रहत्यागी ज्ञायक शुद्ध आत्मस्वभावमें निश्चल तिष्ठना सो कायोत्सर्ग है। अब ध्याननामा तपकूं कहै हैं—

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमांतर्मुहूर्त्तात् ॥ २७ ॥

अर्थ—उत्तमसंहननके धारकपुरुषकै एकाग्रचिंताका निरोध सो ध्यान है सो ध्यान उत्कृष्टपणै अंतर्मुहूर्तपर्यंत है। आदिका तीन संहनन है सो उत्तमसंहनन है तेही ध्यानके कारण हैं अर ध्यान है सो उत्कृष्टपणै अंतर्मुहूर्त्तपर्यंतही रहै है तिनमैं मोक्षका कारण वज्रऋषभ नाराचही हैं। चित्तकी वृत्तिकूं अन्यक्रियातैं रोकि

एकके विषै निरोध करै सो एकाग्रचिंतानिरोध है सोही ध्यान है। भावार्थ—अर्थकी एकपर्यायकूं अवलंबनकरि चित्तकी वृत्तिका ठहरना सो ध्यान है सो उत्तमसंहननका धारककै अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट ठहरै अन्य संहननवालेकै इतने काल एकाग्र ठहरनेमें असमर्थपणा है। इहां एकाग्रवचनतें वैयग्र्यका अभाव जानना। नानापर्यायनिमें भ्रमण करै सो वैयग्र्य सो तो ज्ञान है, ध्यान नाहीं। इहां कोऊ पूछै—जो साधुपुरुषकै बहुतकाल ध्यानअवस्था कैसें कहिए ताका समाधान—जो एक ध्येयकूं छांडि दूजे ध्येयविषै उपयोग आवै ऐसें अन्यअन्य ध्येयमें ध्यानका संतान चल्या आवै जेतै एकाग्र ठहरै। ऐसें बहुतकाल कहनेमें विरोध नाहीं बहुरि इस सूत्रमें ध्याता ध्यान ध्येय ध्यानका काल ए चार कहे हैं। सामर्थ्यतें याके प्रवर्त्तनकी सामग्री जानिए है। तहां उत्तमसंहननका धारी पुरुष है सो ध्याता है। एकाग्रचिंताका निरोध होना सो ध्यान है। एककूं प्रधानकरि चित्तकूं रोकै सो ध्येय है। अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट याका काल है। इस सूत्रमें समस्त ध्यानको वर्णन नहीं संग्रह कीयो है। जातें ध्यानके प्राभृतग्रंथनिमें सकलध्यानके लक्षण वर्णन हैं। इहां तो प्रसंगपाय सामान्यलक्षण कह्या है। अब ध्यानके भेद जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥

अर्थ—आर्त्त रौद्र धर्म्य शुक्ल ए च्यार प्रकार ध्यान हैं। तिनमें आर्त्त रौद्र ए दोय अप्रशस्त हैं अर धर्म्य शुक्ल ए दोय प्रशस्त हैं। तिन शस्तप्रध्याननिकूं कहै हैं—

परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥

अर्थ—परे कहिए अंतके धर्म अर शुक्ल ये दोइ ध्यान मोक्षके हेतु हैं। इसही वचनतें पहिले कहे जे आर्त्त रौद्र ते अप्रशस्तध्यान हैं संसारके कारण हैं अब आद्यका आर्त्त ध्यानका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥ ३० ॥

अर्थ–अमनोज्ञका संयोग होतां संतां तिसके वियोगकेअर्थि जो चिंतवन सो आर्त्तध्यान है। विष कंटक शत्रु शस्त्रादिक जो अमनोज्ञवस्तु ताका वियोग मेरे कैसें होय ऐसें वारंवार चिंतवन करना सो अनिष्टसंयोगज आर्त्तध्यान है। तथा और दूसरा भेदकूं कहै हैं—

विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥

अर्थ–मनोज्ञवस्तुका वियोग होतैं तिसके संयोगकेअर्थि वारंवार चिंतवन करै सो इष्टवियोगज नाम आर्त्तध्यान है। अब आर्त्तका तिसरा भेद कहै हैं—

वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥

अर्थ–दुःखरूप रोगादिककी वेदनाका चिंतवन करना सो वेदनाजनित आर्त्त है। वेदना होतै वारंवार रोगका इलाजमैं चिंतवन करना, मनकी स्थिरताका अभाव होना, धैर्य छूटि जाना तथा अंगमै विक्षेप शोक विलाप रुदनादिक होना, सो वेदनाजनित आर्त्तध्यान है। अब रागके विशेषतैं वा कामकरि आतुरतातैं तथा परभवमैं विषयसुखमैं लंपटतातैं चोथा आर्त्तध्यान होय ताका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहै हैं–

निदानं च ॥ ३३ ॥

अर्थ–आगामीभोगनिकी वांछा सो निदान है। हमारै संपदा होजाय, कुटुंबकी वृद्धि होजाय ऐसें तथा स्त्रीकी प्राप्तिके निमित्त तथा राज्यकी, ऐश्वर्यकी, महलमकानकी, इंद्रियनिकाभोगांकी, वैरीनिका घातकी, वांछा करै सो निदान नामा आर्त्तध्यान है–सो यो च्यारप्रकारको आर्त्तध्यान कृष्ण नील कापोत लेश्यामैं उपजै है अर ज्ञानतैं उत्पन्न होय है अपने पुरुषार्थतैं उपजाया है, पापमैं प्रयोग रखणेका परि-

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यं ॥ ३६ ॥

अर्थ—आज्ञाविचय अपायविचय विपाकविचय संस्थानविचय ऐसैं च्यारप्रकार धर्मध्यान है। तहां जो आगमकी प्रमाणतातैं अर्थका निश्चय करना सो आज्ञाविचय है जो उपदेशदाताका तो अभाव होय अर अपनी बुद्धिमंद होय अर कर्मका प्रबल उदय होय अर पदार्थनिका स्वरूपकै सूक्ष्मपणा होय तातैं समझनेमैं नहीं आवै तथा हेतु दृष्टांत जाननेमैं नहीं आवै तहां सर्वज्ञका प्ररूप्या आगमकूं प्रमाण करिकै अर गहनपदार्थमैं ऐसा निश्चय करै जो योही तत्त्व है इस प्रकारही है अन्य नहीं अन्यप्रकार नहीं ऐसा चिंतवनकूं आज्ञाविचय कहिए है अथवा सम्यग्दर्शनकरि जाका परिणाम उज्जल होय अर अपने अर परकै मतके सिद्धांतकरि पदार्थनिका निर्णयका ज्ञाता होय। अर सर्वज्ञके कहे सूक्ष्मपदार्थनिकूं निश्चय करिकैं अर ए पदार्थ ऐसैं ही हैं इस प्रकार अन्य जीवनिकूं जनावनेका इच्छक होय सो पुरुष श्रुतज्ञानका सामर्थ्यतैं अपने सिद्धांततैं जैसैं विरोध नहीं आवै तैसैं व्याख्यानके अवसरमैं प्रमाण नय हेतु इत्यादिक करि सभानिवासी भव्यजननिकूं जिनभाषित सत्यार्थ तत्त्व जणावै तथा ताके समर्थनकेअर्थि तर्क नय प्रमाणकरि युक्त करनेमैं तत्पर होय चिंतवन करै सो सर्वज्ञकी आज्ञाप्रकाशनपणातैं आज्ञाविचय धर्मध्यान होय है। बहुरि अपायविचयकूं कहै हैं—जिनका मिथ्यादर्शनकरि ज्ञाननेत्र ढकिगया तिनका आचार विनय उद्यमादिक समस्त संसारका बधावनेकेअर्थि होय हैं अविद्याका आधिक्यतैं संसारपरिभ्रमण वधैही है तथा जैसैं जन्मके आंधे वलवान् हैं तोहू सन्मार्गतैं छूटेहुए कल्याणरूप मार्गका उपदेशदाताविना नीच उच्च पर्वत विषमपाषाण कठोर स्थाणु कंटकसमूहकरि व्याप्त पृथ्वीमैं पडेहुए उद्यम करतेहू सन्मार्गतैं प्राप्तहोनेकूं समर्थ नहीं होय है तैसैंही सर्वज्ञप्रणीतमार्गतैं विमुख पुरुष मोक्षकी वांछा करै है तोहू उपदेश-

दाताविना सत्यार्थमार्गकूं नहीं जाननेतैं दूरिहीतैं नष्ट होय हैं। ऐसें सन्मार्गका अभाव चिंतवन सो अपायविचय धर्मध्यान है अथवा—मिथ्यादृष्टीनिकरि कह्या उन्मार्गतैं ए प्राणी कैसें टलैं तथा अनायतन सेवाका अभाव कैसें होय तथा पापके कारण वचन अर पापकी भावनाका अभाव प्राणीनिकै कैसें होय। ऐसें चिंतवन करना सो अपायविचयधर्मध्यान है। बहुरि कर्मके फलका अनुभवनिकूं गुणस्थाननिमैं तथा मार्गणास्थाननिमैं तथा उदीरणाकूं चिंतवन करना सो विपाकविचयधर्मध्यान है। बहुरि जो लोकका संस्थानका तथा द्रव्यनिका स्वभावका तथा द्वादशभावनाका चिंतवन सो संस्थानविचयधर्मध्यान है सो असंयत देशसंयत प्रमत्त अप्रमत्त संयत इन च्यारगुणस्थाननिमैं होय है। अब उत्कृष्ट धर्मध्यान अप्रमत्त संयतही कै है शुक्लध्यानका स्वामीकूं कहै हैं—

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥ ३७ ॥

अर्थ—आद्यके दोय शुक्लध्यान हैं ते सकलश्रुतधारक श्रुतकेवलीके होय हैं च शब्दकरि धर्मध्यानहू होय है परंतु श्रेणी नहीं चढै तेतै धर्मध्यान है अर दोऊ श्रेणीनिमैं शुक्लध्यान(नहीं है ऐसें मोहके उपशमावनेवालेकै तो पहला शुक्लध्यान अर मोहके क्षपावनेवालेकै आदिके दोय शुक्लध्यान हैं। अब अन्य दोय कौनकै होय यातैं सूत्र कहै हैं।

परे केवलिनः ॥ ३८ ॥

अर्थ—अंतके दोय शुक्लध्यान सयोगकेवली अयोगकेवली जिनकै होय हैं। छद्मस्थकै नहीं होय है इहां आचार्यनिनै ऐसें कह्या है—जैसें अंधकारमैं मुष्टिकरि अभिघात करना तिसके सदृश शुक्लध्यानका कहना है। जातैं मोहनीयका उपशम तथा क्षयविना इस ध्यानका अनुभव नहीं होय है तातैं शुक्लध्यानके-

अतिपवन नहीं होय अतिवर्षाकी बाधा नहीं होय अति बडा नहीं होय बाह्य अभ्यंतर विक्षेपका करनेवाला नहीं होय ऐसा अनुकूलस्पर्शसहित पवित्र पृथ्वीतलके विषै सुखरूप तिष्ठता अर बांध्यो है पल्यंकासन जानैं ऐसो शरीरकूं सरल करिकैं कठोरता वक्रता रहितहुवा अपना अंक जो गोदि ताकैविषै वामहस्तका तलउपरि दक्षिणहस्तकी हथेलीकरि तिष्ठै अर नेत्रनिकूं अति ऊघाडै नहीं अर अति मींचैं नहीं अर दंतनिकरि दंतनिका अग्रभाग मिल्याहुवा रहै अर किंचितमात्र उन्नत मुख होय मध्यका अंग उदर सरल होय, कठोरतारहित होय परिणामकरि मस्तक ओष्ठ गंभीर होय, मुखकावर्ण प्रसन्न होय, टिमकारणेरहित स्थिर अर सौम्यदृष्टि होय अर निद्रा आलस्य काम राग रति अरति शोक हास्य भय द्वेष विचिकित्सा इनकरि रहित होय अर मंदमंद स्वासोस्वासका प्रचार होय इत्यादिक परिकरसहित साधु है सो मनकी वृत्तिकूं नाभिऊपरि वाह्य हृदयविषै तथा मस्तकविषै तथा अन्यस्थानमैं जहां परिचयकरि राख्या होय तहां निरोधकरि निश्चल मोक्षाभिलाषी हुवो प्रशस्तध्यानकूं ध्यावै। तिस ध्यानविषै एकाग्रमन हुवा उपशम कीया है राग द्वेष मोह जानै अर निपुणपणातैं निग्रहकरी है शरीरकी हलन चलन क्रिया जानैं अर मंद कीया है उच्छ्वासनिश्वास जानै अर भले प्रकार निश्चल कीया है अभिप्राय जानै ऐसा क्षमावान् हुवा बाह्य अभ्यंतर द्रव्यपर्यायनिभैं ध्यावता ग्रहणकीया है श्रुतज्ञानका सामर्थ्य जानैं ऐसा अर्थ अर अक्षर जे हैं तिनमैं, अर काय अर वचन जे हैं तिनमैं भिन्नाभिन्नताकरि परिभ्रमण करता ऐसा ध्यावनेवाला ध्याता वलका उत्साहपरिपूर्ण नहीं ताकीज्यों अनिश्चलज्यों मन ताकरिकै जैसैं अतीक्ष्ण कहिए भोंटा शस्त्रकरिकै बहुतकालमैं वृक्ष छेद्या जाय तैसैं मोहनीयका प्रकृनिकूं उपशम करता वा क्षपावता साधु पृथक्त्ववितर्कवीचारध्यानकूं भजनेवाला होय है। ऐसैं पृथक्त्ववितर्कवीचारध्यान कह्या—

छिन्नक्रियानिवर्तिध्यान कहिए हैं। तिस समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिध्यानके होतै समस्त बंध अर आस्रवका निरोध अर अवशेष समस्त कर्मनिका नाशका सामर्थ्य उत्पन्न होनेतैं अयोगकेवलीकै संपूर्ण संसारका दुःख का नाश करनेवाला साक्षात मोक्षका कारण संपूर्ण यथाख्यात चारित्र रूप ज्ञानदर्शनकी परिपूर्णताकूं प्राप्त होय है सो भगवान् अयोगकेवली तिस अवसरमैं ध्यानरूप अग्निकरि दग्धकीया है समस्तमलकलंकका बंध ज्यां जैसैं किट्टपाषाणरहित जातिवान् सुवर्णकीज्यों अपने शुद्धरूपकूं पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय है। इहां ऐसा जानना—जो यथाख्यातचारित्र तो पूर्वं बारमैं गुणस्थानहीमैं हो गया परंतु चारित्रकी परिपूर्णता जो चोरासी लाख उत्तरगुण अर अठारहहजार शील इनकी परिपूर्णता चोदमा गुणस्थानकेही अंतमैं होय है तातैं यथाख्यातचारित्रकी परिपूर्णता इहां लिखी है। अर यथाख्यातचारित्ररूप ज्ञानदर्शनहीका परिणमन हुवाहै अर जो पहलीही रत्नत्रयपरिपूर्ण होगया होय तो मोक्ष उसही कालमैं भया चाहिए तातैं जहां रत्नत्रयकी पूर्णता भई तिसही समयमैं मोक्ष होय ऐसैं जानना। यद्यपि भगवान् केवलीकै एकाग्रचिंतानिरोधध्यानही है एकएकपदार्थका चिंतवन तो क्षयोपशमज्ञानीकै होयहै भगवान केवलीकै युगपत् सकलपदार्थ प्रत्यक्ष होगया अब ऐसा पदार्थ कोऊ बाकी रह्या नाहीं जाका ध्यान करैं कृतकृत्य है कुछ करना जानना बाकी नहीं रह्या तथापि आयुकूं पूर्ण होने अर तीन कर्मकी स्थिति पूर्ण होतै योगनिका निरोध अर कर्मनिकी निर्जरा स्वयमेव होयहै। अर ध्यानतैंहू योगनिका निरोध अर कर्मकी निर्जरा होयहै। यातैं ध्यानकासा कार्य देखि उपचारतैं ध्यान कह्याहै सत्यार्थध्यान नहीं है। केवलीभगवानकै अनंतानंतपरिणतिसहित त्रिकालवर्ती समस्तपदार्थ हस्तरेखावत् प्रगट भया अब ध्यावनेकूं कोऊ बाकी रह्या नाहीं जाका ध्यान करैं। ऐसैं दोय प्रकार तप है सो नवीन कर्मका निरोधका हेतुपणातैं संवरका कारण है अर पूर्वके

बांधे कर्मनिके नाश करनेके निमित्तपणातें निर्जराका हेतुहू है। ऐसैं कही जो परीषहके जयतें अर तपश्चरणतें कर्मनिकी निर्जरा होयहै तहां ऐसैं नहीं जाण्यागया जो समस्तसम्यग्दृष्टीनिकै समानही निर्जरा है कि भिन्नभिन्न है। समस्तके निर्जरासमान नाहीं है। यातैं सूत्र कहै हैं—

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानंतवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशांत-
मोहक्षपकक्षीणमोहाजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि, श्रावक पंचमगुणस्थानी, विरत कहिए महाव्रती मुनि, अनंतानुबंधीका विसंयोजन करनेवाला, दर्शनमोहकूं क्षपावनेवाला, चारित्रमोहका उपशम करनेवाला, उपशांतमोह, क्षपकश्रेणी चढता, क्षीणमोहजिन, इनकै आदिके अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत अनुक्रमतें असंख्यातगुणी निर्जरा होइहै। प्रथम सम्यक्त्वकूं आदिकरि दशस्थाननिके धारकनिके परिणामनिकी विशुद्धताकी अधिकतातैं अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत समयसमय असंख्यातगुणी निर्जरा होयहै। इहां ऐसा जानना—जैसैं कोऊ मद्यपानीके मद्यका एकदेशका अभावतें अप्रगट कुछ ज्ञानशक्ति प्रगट होयहै तथा जैसैं प्रचुरनिद्रामैं शयन करता पुरुषके एकदेशनिद्राका अभाव होतेंही कुछ थोरा स्मरण उत्पन्न होयहै तथा जैसैं विषकरि अचेत पुरुषकै किंचित् विषके दूरि होनेतें चेतनाका अवलंबन होयहै तथा जैसैं पित्तादिविकारकरि मूर्छित पुरुषकै विकारका अंश किंचित् दूरि होतें अप्रगट चेतना प्रगट होयहै तैसैं निगोदादि एकेंद्रियपर्यायमैं अनंतानंतकाल परिभ्रमण करतें कोऊ विशेपलब्धितें द्वींद्रियादिक त्रसनिमैं जन्म पावै हैं फिर वारंवार निगोदादिमैं जायहैं फिर अनंतानंतकालमैं अतिकठिन त्रसपर्याय पाय फिर निगोदिमैं पृथ्वीकायादि एकेंद्रियनिमैं जायहै, पंचेंद्रियपणा पावना अतिदुर्लभ है। अर पंचेंद्रियभी होय तो क्रूर तिर्यंच होय दीर्घकाल नरकमैं व्यतीत करै हैं।

केचित् नरक तिर्यंचसूं निकसि मनुष्यपणामैं घुणाक्षरन्यायकरि उपजै हैं जैसैं कोऊ घुणनामा जीव धान्य तथा काष्ठादिकमैं उत्पन्न होय उसकूं भक्षण करतैं स्वयमेव अक्षर उकीरि आवै तैसैं मनुष्यजन्मकूं प्राप्त होय है। तिसमैंहू उत्तमदेश कुल इंद्रियपरिपूर्णता पाय अर संक्लेशका अभावतैं विशुद्ध अभिप्राययुक्त होय, बुद्धिकी शक्तियुक्त होय भव्य होय अर जाका आत्मा कषायमलरहित होय तोहू सम्यक् उपदेशका अभावतैं सत्यार्थमार्गकूं नहीं प्राप्तहुवा, कुगुरुनके उपदेशतैं मिथ्यादृष्टी होय फेर संसारमैं अनंतानंतकालमैं ज्ञानावरणकर्मका एकदेशका उपशमतैं परिणामनिकी विशुद्धितायुक्त हुवा उपदेश लब्धिसंयुक्त होय सत्यार्थउपदेशकूं प्राप्त होनेतैं अथवा मुनींद्रनिके संबंधतैं श्रद्धान ज्ञान पाय कर्मका अभावतैं सत्यार्थश्रद्धानकूं प्राप्त होता मिथ्यात्वके उपशम करनेकूं कारण तीन करणपरिणामनिकूं प्राप्त होय उपशमसम्यग्दृष्टी होय है।

तिस प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्तिके पहली तीन करण होय हैं तिनमैं अनिवृत्तिकरणका अंतसमयमैं वर्त्तती विशुद्धताकरि विशुद्ध जो सातिशय मिथ्यादृष्टी ताकै जो आयुकर्मविना सप्तकर्मनिकी निर्जराका जो गुणश्रेणीनिर्जरा द्रव्य असंख्यातगुणा है तातैं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकूं प्राप्त होतेही अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत समयसमय असंख्यातका गुणकारकूं लिए गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। तातैं देशसंयतगुणस्थानीकै अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत निर्जराहोनेयोग्य कर्मपुद्गलरूप गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। तातैं सकलसंयम ग्रहण करनेका आदिका अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत समयसमय असंख्यातका गुणकाररूप कर्मकी निर्जरा होनेयोग्य द्रव्य असंख्यातगुणा है सो सकलसंयम प्रथमही अप्रमत्तसंयतनाम सप्तमगुणस्थानहीमैं होय है। छठा प्रमत्तगुणस्थान तो सप्तमतैं पड्याहुवाकै होय है। तातैं अनंतानुबंधी च्यार कषायकूं द्वादशकषायमैं नवनोकषायरूप परिणमन कराय दे, तीन करणके प्रभावतैं ताकै असंख्यातगुणा

गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य है सो अनंतानुबंधीको विसंयोजन अविरत देशविरत प्रमत्तसंयम अप्रमत्तसंयत इन चार गुणस्थाननिहीमें होय है। जिस गुणस्थानमें विसंयोजन करै ताहि अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत समयसमय असंख्यातगुणी निर्जरा होय है। अर अनंतानुबंधीका विसंयोजनतें दर्शनमोहकूं क्षपावनेवालाकै गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है सो दर्शनमोहकी क्षपणाहू करणत्रयका सामर्थ्यतें केवली श्रुतकेवलीकै निकट मनुष्यहीकै अविरतादि च्यार गुणस्थाननिमें होय है। तहां ही अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत गुणश्रेणीनिर्जरा होय है तातें अपूर्व करणादि तीन गुणस्थानी कषायकै उपशम करनेवालेकै गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। तातें उपशांतकषाय गुणस्थानी सकलमोहनीयकूं उपशम कीया ताकै गुण श्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। तातें क्षपकश्रेणीवाला अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थावालेकै गुण श्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। तातें क्षीण कषायीकै गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य आसंख्यातगुणा है तातें स्वस्थानगत केवली जिनकै गुणश्रेणी निर्जराद्रव्य असंख्यात गुणा है। तातें समुद्घात केवली जिनकै गुणश्रेणी निर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है।

भावार्थ—इन ग्यारह स्थाननिकूं प्राप्त होय तिनकै आदिके अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत परिणामनिका विशुद्धताकी अधिकताकरि समयसमयप्राति असंख्यातगुणी आयुविना सप्तकर्मके परमाणुद्रव्यानिका निर्जरा होय है। इहां निर्जरा तो स्थानस्थानप्रति असंख्यातगुणी है अर निर्जरा होनेका काल असंख्यातवें भाग घटताघटता है। इहां समुद्घातजिनकै गुणश्रेणीनिर्जराका काल अंतर्मुहूर्त्त है सो समस्ततें अल्प है यातें संख्यातगुणा काल स्वस्थानजिनकै है। यातें क्षीणकषायीकै संख्यातगुणा है ऐसैं सातिशयमिथ्यादृष्टीपर्यंत वधतावधता है तोहू सातिशयमिथ्यादृष्टिकैहू गुणश्रेणीनिर्जराका काल अंतर्मुहूर्त्तही है। जातें अंतर्मु-

कहोहो तो श्रावककैभी निर्ग्रंथपणा कहनेका प्रसंग आया। ताकूं उत्तर कहै हैं—श्रावकके नग्नरूप नहीं कैसें निर्ग्रंथपणा आवै कदापि नहीं आवै। अर जो कहो अन्यमिथ्यादृष्टी नग्नभी रहै हैं तिनकैं निर्ग्रंथ कहनेका प्रसंग आया सो नहीं है। जातैं अन्य भेषीनिकै सम्यग्दर्शन नहीं है। नग्नपणमात्र तो बावलाकै तथा वालककै है तिर्यंचकैहू है सो निर्ग्रंथ कहावै नहीं, जो सम्यग्दर्शनसहित सम्यग्ज्ञानपूर्वक संसारदेहभोगनतैं विरक्त होय नग्नपणा धारैं हैं तिनमैं निर्ग्रंथशब्द प्रवर्त्तै है अन्यमैं नहीं प्रवर्त्तै। अब पुलाकादिकनिर्ग्रंथनिकै अन्य विशेष जणावनेकूं सूत्र कहै हैं—

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

अर्थ—संयम श्रुत प्रतिसेवना तीर्थ लिंग लेश्या उपपाद स्थान ए अष्टभेदरूप अनुयोगनिकरिहू पुलकादिक मुनिनिकै भेद साधणे। व्याख्यानकरणे तहां पुलाकादिक कोन संयममैं है सो कहै हैं—तहां पुलाक वकुस प्रतिसेवनाकुशील हैं ते सामायिक छेदोपस्थापन परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसांपराय इन चार संयमनिमैं वर्त्तै हैं अर निर्ग्रंथ स्नातक ए दोय एक यथाख्यातसंयमविषैं प्रवर्त्तै हैं। अव श्रुतकूं कहै हैं—पुलाक बकुश प्रतिसेवनाकुशील ए तीन उत्कृष्टताकरि अभिन्नाक्षर दशपूर्वधारी होय हैं। अर कषायकुशील अर निर्ग्रंथ ए दोय चौदहपूर्वधर होय हैं। अर जघन्यकरि पुलाककै आचारांगमैं आचारवस्तु होयहै। अर वकुश कुशील निर्ग्रंथनिकै अष्ट प्रवचनमात्रका ज्ञान होयहै। अर स्नातक हैं ते केवली हैं इनके श्रुत नहीं होयहैं। वहुरि प्रतिसेवना जो विराधना ताहि कहै हैं। पुलाकमुनिकै तो पंचमहाव्रत एक रात्रिभोजनत्याग इन छह व्रतनिमैं परके वसतैं जवरीतैं एक कोऊ व्रतकी विराधना होजाय है जातैं महाव्रतनिमैं मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनातैं पंचपापनिका त्याग है तिनमैं अपनी सामर्थ्यकी हीनतातैं कोऊ भंगमैं दूषण लागै

है। बहुरि बकुश दोय प्रकार हैं—एक उपकरणबकुश, एक शरीरबकुश। तिनमैं उपकरणनिमैं आसक्त कमंडलु पींछी पुस्तकादिकनिकी भूषा कहिए शोभायमान ताका अभिलाषकरि संस्कारका सेवनतैं उपकरणबकुशकै विराधना जाननी। बहुरि शरीरका संस्कारकरनेरूप शरीरबकुशकै विराधना है। बहुरि प्रतिसेवनाकुशील निर्ग्रंथ अर स्नातक इनकै प्रतिसेवना जो विराधना सो नाहीं है। जाका त्याग होइ ताकूं कोइ कारणकरि सेवनकरि फिर सावधान होय फेरि नहीं सेवन करै है यातैं प्रतिसेवना नाहीं है। इहां प्रतिसेवनाकूं विराधना हू कहिए है। अब तीर्थ कहै हैं—समस्त तीर्थंकरनिके तीर्थमैं पंचप्रकारके मुनि होयहैं। अब लिंग कहै है लिंग दोय प्रकार हैं—एक द्रव्यलिंग एक भावलिंग। तहां भावलिंगकरि तो पांचूंही भावलिंगी हैं। सम्यग्दर्शनसहित संयमपालनेमैं सावधान हैं। अर द्रव्यलिंगकरि भेद है। कोऊ आहार करै है, कोऊ अनशनादि तप करै हैं, कोऊ उपदेश करै हैं, कोऊ अध्ययन करै हैं, कोऊ ध्यान करै है, कोऊ तीर्थविहार करै हैं, काहूकै दोष लागै है, कोऊ प्रायश्चित्त लेहैं, कोऊ दोष नहीं लगावै हैं, कोऊ आचार्य हैं, कोऊ उपाध्याय हैं, कोऊ प्रवर्त्तक हैं, कोऊ निर्यापक हैं, कोऊ वैयावृत्त्य करै हैं, कोऊ ध्यानकरि श्रेणी चढै हैं, कोऊ केवलज्ञान उपजावै हैं। इत्यादिक प्रवृत्तिकरि भेद हैं। अर नग्न दिगंबरपणा सबकै है इसमैं भेद नाहीं है। ऐसा लिंगभेद नाहीं जैसें कोई रक्त पीत श्वेत श्यामवस्त्र धारै कोई जटा धारै कोऊ कौपीन धारै कोऊ पालकी चढै, कोऊ हस्ती चढै, रथ चढै, सो ए सब भेद मिथ्यादृष्टीनिकै कालके निमित्ततैं हैं। अब लेश्या कहै हैं—पुलाककै तो तीन शुभलेश्याही हैं। याकै बाह्यप्रवृत्तिका अवलंबन नहीं है। अपने मुनिपणाका साधनमैंही राचि रहे हैं। बकुश अर प्रतिसेवनाकुशीलकै छहभी होयहैं अपि शब्दकरि अन्य आचार्य तीन शुभही कहै हैं। कषाय कुशीलकै कापोतादिक च्यार हैं। अन्य आचार्यनिके

अभिप्रायतैं तीन शुभही हैं। अर निर्ग्रंथ स्नातकनिकै एक शुक्लही है। अयोगी लेश्यारहित हैं।

अब उपपाद कहै हैं—पुलाकमुनिका उत्कृष्ट उपपाद आयुके धारक सहस्रारस्वर्गके देवनिमैं अठारह सागरकी आयुका धारक उपजै। अर बकुश प्रतिसेवना कुशीलका उत्कृष्ट उपजना बाईस सागरका आयुके धारक आरण अच्युत कल्पमैं जानना। अर कषायकुशील अर ग्यारमा गुणस्थानवाले उपशांतमोह हैं ते निर्ग्रंथ हैं। तिन निर्ग्रंथनिका उत्कृष्ट उपपाद तेतीस सागरकी स्थितिका धारक सर्वार्थसिद्धिमैं होय है। बहुरि इन पंचप्रकार पुलाकादिक समस्तनिका जघन्य उपपाद दोय सागर आयुका धारक सौधर्म ईशानस्वर्गमैं है। अर स्नातकके निर्वाणही होय है। अब संयमका लब्धिके स्थान कहै हैं—ते कषायके निमित्ततैं असंख्यात लोकप्रमाण होय हैं। तहां सर्वजघन्यलब्धिस्थान पुलाक अर कषायकुशीलकै हैं। ते दोऊ युगपत् असंख्यात संयमलब्धिस्थाननिकूं प्राप्तहोय तीठां पाछैं पुलाककी व्युच्छित्ति होयहै। बहुरि कषायकुशील अर प्रतिसेवनाकुशीलकी अर बकुश युगपत् असंख्यातस्थान साथि प्राप्त होय पाछैं बकुशकी व्युच्छित्ति होय है। पाछैं तहांतैं प्रतिसेवनाकुशील अर कषायकुशील साथि गमनकरि प्रतिसेवनाकुशीलकी व्युच्छित्ति होय है। तहांतैंहू असंख्यातस्थान जाय कषायकुशीलकी व्युच्छित्ति होय है। यातैं ऊपरि अकषायस्थाननिकूं निर्ग्रंथप्राप्ति होय है। सोहू असंख्यातस्थान जाय व्युच्छित्तिकूं प्राप्त होय हैं। याकै ऊपरि एकस्थानकों प्राप्त होय स्नातक निर्वाणकूं प्राप्त होय है। ऐसैं ए संयमस्थानमैं हैं ते अविभागप्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा स्थानस्थानप्रति अनंतगुणा हैं। ऐसैं इस अध्यायमैं संवरतत्त्व निर्जरातत्त्वका निरूपण है। तहां संवरका कारण गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षाके भेद, परीषहका विशेषकरि भेदनिका कथन, अर चारित्रके भेद तपके बारह भेद, ताके उत्तरभेद तथा ध्यानके चारभेदनिका निरूपण किया।

बहुरि गुणश्रेणीरूप निर्जराके दशस्थान अर पुलाकादिक पंचप्रकार मुनिनिका स्वरूप कहि अध्याय पूर्ण किया।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अर्थ—ऐसें तत्त्वार्थका है अधिगम जातें ऐसा जो दशअध्यायरूप मोक्षशास्त्रविषै नवम अध्याय समाप्त भया।

दोहा।

है जातें तत्त्वार्थका, अधिगम सबसुखदाय। मोक्षशास्त्र मंगलमयी, नमूं नवम अध्याय ॥ १ ॥



अथ दशमोऽध्यायः प्रारभ्यते ।

दोहा ।

अरिरजविघ्न निवारिकैं, निरावरणनिर्दोष ।
नमूं आप्तके परमपद, होय मोक्षसुख पोष ॥ १ ॥

अब अंतविषै कह्या जो मोक्षपदार्थ ताके स्वरूप कहनेका अवसर है तथापि मोक्षकी प्राप्ति केवलज्ञानपूर्वक है तातैं पहिलै केवलज्ञानकी उत्पत्तिकों कहिए है—

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्च केवलं ॥ १ ॥

अर्थ—मोहनीय कर्मका क्षयतैं अंतर्मुहूर्त क्षीणकषायनाम पाय पाछैं युगपत ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायका क्षय करि केवलज्ञानकूं प्राप्त होय है। इहां पहली मोहका क्षय काहेतैं होय है सो—परिणामनिके विशेषतैं कहै हैं—पूर्वै कही जो विध तिसकरि अर परमतपका विशेषकरि परिणामनिकी उज्जलताकी अधिकतातैं शुभप्रकृतिनिमैं रस प्रचुर होजाय है अर अशुभप्रकृतिनिमैं रसविनष्ट होजाय है तहां कोऊ वेदकसम्यग्दृष्टी, अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयत, इन च्यार गुणस्थानमध्य कोउ एक गुणस्थानमैं तीन करणपरिणामनिकरि अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभकूं अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषाय नव नोकषायरूप परिणमन करै सोही अनंतानुबंधीका विसंयोजन है सो अनंतानुबंधीका विसंयोजनकरि बहुरि अंतर्मुहूर्त स्थिति रहि फिर तीन करणकूं प्राप्त होय क्रमतैं मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षयकरि क्षायिकसम्यग्दृष्टी होय अर कर्मनिकी हानि होनैतैं महान् विशुद्धताकरि शुद्धहुवो सप्तमगुणस्था-

नमें अधःकरणके परिणामनिकरि पूर्ववत् अपूर्वकरण क्षपकताने प्राप्त होय तहां नवीन शुभपरिणामनितैं पापप्रकृतिनिकी स्थिति अनुभागका नाशकरि अर शुभप्रकृतिनमैं अनुभाग वधाय अनिवृत्तिकरणकरि अनिवृत्तिवादरसांपरायनाम पाय तहां अप्रत्याख्यानावरण अर प्रत्याख्यानावरणरूप अष्टकपायनिको क्षयकरि फिरि नपुंसक वेदका नाशकरि फिर स्त्री वेदका नाश करि फिर नोकषाय षट्कक्रूं पुरुषवेदमैं क्षेपकरि इनका नाश करै। वहुरि पुरुषवेदक्रूं क्रोधसंज्वलनमैं, क्रोधसंज्वलनको मानसंज्वलनमैं, मानसंज्व-को मायासंज्वलनमैं, मायासंज्वलनक्रूं लोभसंज्वलनमैं, संक्रमणके विधानका क्रमकरि वादरप्रकृष्टिका वि-भागतैं नाशनै प्राप्त करिकै अनिवृत्तिवादरसांपरायक्षपकभावक्रूं पाय लोभसंज्वलनक्रूं सूक्ष्मकरि सूक्ष्मसां-परायक्षपकभावका अनुभवकरि समस्त मोहनीयका मूलतैं नाशकरि क्षीणकपायक्रूं चढिकरि उत्तारण कीया है मोहका भार जानें ऐसा क्षीणकपायगुणस्थानका द्विचरमसमयमैं निद्राप्रचलाका विनाशकरि अंतका समयविषै पंचज्ञानावारण च्यार दर्शनावरण पंच अंतराय इन चौदह प्रकृतिनिका नाशकरि तिसकैं अनंतर समयविषै ज्ञानदर्शन है स्वभाव जाका अर अचिंत्य है विभूतिविशेष जाकी अर जाकै कोऊ प्रति-पक्षी नाहीं ऐसा केवलनाम आत्माका असहाय पर्यायक्रूं प्राप्त होय केवली होय है। कैसाक है केवली— कर्मके लेपरहित है, अर कमलकीज्यों निर्मल है, अर त्रिकालवर्त्तीसमस्तद्रव्यनिका गुणपर्यायनिके स्व-भावक्रूं युगपत् साक्षात् जाननेवाला है अर सर्वत्र अरोक है दर्शन जाकै अर प्राप्तभया है समस्त पुरुषार्थ जाकै, जैसें वर्षाकालक्रूं व्यतीत होतें अपनी किरणनिका समूहकरि आल्हादकारी सौम्य है दर्शन जाका ऐसा चंद्रमाकीज्यों उज्वल है, देदीप्यमान है मूर्ति जाकी, ऐसा त्रैलोक्यनाथ भगवान् केवली होय है। अब कहै हैं जो अवरोधकारिरहित अनंतवीर्यादिसंयुक्त केवलज्ञानक्रूं अर इसका लाभ होनेका कारण-

निकूं तो जान्या। अब मोक्षका लक्षण तो कहा है अर कोन हेतुतैं मोक्ष होय सो कहो यातैं सूत्र कहै हैं—

बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ २ ॥

अर्थ—बंधके कारणनिका अभाव अर निर्जराकरिकै समस्तकर्मका अत्यंत अभाव सो मोक्ष है। तहां मिथ्यादर्शनादि बंधके कारणनिका अभावतैं तो नवीनकर्म नहीं बंधै अर पूर्वै बंधे कर्मनिका गुप्त्यादिकनिर्जराके कारणनिकरि निर्जरा होजाय तदि भवमैं स्थिति करनेके कारण आयुकर्मनाम गोत्र वेदनीय कर्मकी अत्यंत अभावतैं मोक्षही होय है। तहां चरमशरीरीकै नरक तिर्यंच देव इन तीन आयुका तो पहली बंधहीका अभाव है जातैं चरमशरीरीकै भुज्यमान एकही आयुका सत्त्व होय है परभवका आयु नहीं बांधै है ऐसा नियम है। अर असंयतादि चारि गुणस्थाननिमैंतैं कोईएक गुणस्थानविषै दर्शनमोहनीय कर्मकी तीन प्रकृति अर चार चार अनंतानुबंधी ऐसैं सात प्रकृतिनका क्षय करै बहुरि नवम गुणस्थानका नवभाग हैं—तिसके पहले भागमैं निद्रानिद्रा, प्रचला प्रचला, स्त्यानगृद्धि, नरकगति, तिर्यंचगति, एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय ए च्यार जाति नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, आताप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, इन षोडशप्रकृतिनिका युगपत् नाश करै है। अर दूसराभागमैं अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण इन आठ कषायनिका क्षय करै है। अर तीसरा भागमैं नपुंसकवेदका, चौथामैं स्त्रीवेदका पांचमांमैं छह हास्यादिकनिका, छटामैं पुरुषवेदका सातमामैं संज्वलन क्रोधका, आठमामैं मानका, नवमामैं मायाका, ऐसैं नवमा गुणस्थानमैं छत्तीस प्रकृतिनका नाश करै है। दशमगुणस्थामैं संज्वलनलोभका नाश करै है। बहुरि क्षीणकषाय छद्मस्थ वीतरागनाम बारमा गुणस्थानमैं द्विचरमसमयमैं पंचज्ञानावरण, पंच अंतराय दर्शनावरण ४ निद्रा १ प्रचला १ ऐसैं सोलह प्रकृतिनिका नाश करै

है। इहां पर्यंत सोलहप्रकृतिनिका नाश करि केवलज्ञान उपजाय चोदमा अयोगीगुणस्थानमैं पच्यासी प्रकृतिनिका नाश करै है तहां उपांत्यसमय जो अंतका समयका पहला समय तहां द्विचरम कहिए तिस विषै दोय वेदनीयमैंतैं एक वेदनीय, देवगति, पांच शरीर, पांच बंधन, पांच संघात, छह संस्थान, छह संहनन, तीन अंगोपांग, पंचवर्ण, दोयगंध, पंचरस, अष्ट स्पर्श, देवगत्यानुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगति, अपर्याप्तक, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नीचगोत्र, निर्माण, ऐसैं वहत्तरि प्रकृतिनिका क्षय करै है। वहुरि अयोगीका अंतसमयविषै, एक वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यआयु, पंचेंद्रियजाति, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, त्रस, वादर, पर्याप्तक, सुभग, आदेय अयशस्कीर्ति, तीर्थंकरत्व, उच्चगोत्र, इन तेरह प्रकृतिनका अत्यंत नाशकरि मोक्ष होय है।

इहां प्रश्न—जो कर्मका बंधके संतानकी आदिका अभाव है तातैं अंतहू नहीं भया चाहिए—ताकूं उत्तर कहै है, जो ऐसा एकांत नहीं है जातैं प्रत्यक्ष देखिए है जैसैं वीजका अर अंकुरका अनादिसंतान है तोहू अग्निकरि वीज दग्ध होजाय तदि फिर अंकुराप्रगट नहीं होय है ऐसैं अंत देखिए है। तैसैं मिथ्यादर्शनादि कारणनितैं संसारका अनादिसंतान होतैंहू ध्यानरूप अग्निकरि कर्मवीज दग्ध होजाय तदि भवरूप अंकुराके उत्पादका अभावतैं मोक्ष होयहै। द्रव्यकर्म है सो पुद्गलपरमाणुनिका स्कंध है सो कर्मकषायरूप परिणया है सो कर्मरूप पर्यायका नाश होयहै। पुद्गलद्रव्यपणाकरि विनाश नहीं होयहै। अव कोऊ पूछै है—जो पुद्गलमयी द्रव्यकर्मकी प्रकृतिनका नाशतैंही मोक्ष है कि भावकर्मकाभी नाश होयहै यातैं सूत्र कहै है—

औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ ३ ॥

अर्थ—जीवके औपशमिकादिभाव अर पारिणामिकमैं भव्यत्वभावनिके अभावतैं मोक्ष है। इहां भव्यत्वका ग्रहण है सो अन्य जीवत्वादिकका अभावका निषेधकेअर्थि है। औपशमिक क्षायोपशमिक औदयिक अर पारिणामिकमैं भव्यत्वकाहू मुक्तजीवकै अभाव है। अभव्यत्वभाव पहिलेही नहीं था अर जीवत्वादिक पारिणामिक भावका मुक्त जीवकै अभाव नहीं है। अब मुक्तजीवकै जे क्षायिकभाव हैं तिनकों कहै हैं—

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥

अर्थ—केवलसम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, सिद्धत्व, इन भावनिविना अन्यभावनिका मुक्तजीवकै अभाव है। इहां कोऊ कहै—जो मुक्तजीवकै चारही भाव अवशेष रह्या कह्या तो अनंतवीर्यकाहू अभाव आया। ताकूं कहै हैं—ये दोष नहीं है। जातैं अनंतवीर्यादिक हैं ते ज्ञानदर्शनतैं अविनाभावी हैं तातैं अनंतज्ञानदर्शनकी लारही अनंतवीर्य है। जातैं अनंतवीर्यरूप सामर्थ्यकरि हीनकै अनंतज्ञानदर्शनकी प्रवृत्तिभी नहीं होय है अर अनंतसुख है सो अनंतज्ञानमयही है ज्ञानविना जड़कै सुखवेदना है नहीं। इहां कोऊ कहै—जो दुःखरूप समुद्रमैं डूब्या हुवा समस्तजगतकूं जानते देखते सिद्धनिकै करुणा उत्पन्न होय, करुणातैं कर्मका आस्रव होनेका प्रसंग आवै है सो नहीं है जातैं भक्ति स्नेह करुणा वांछा क्रिया ए समस्त रागभावके भेद हैं। वीतरागकै समस्तरागका अभावतैं समस्तआस्रवका अभाव है अर जो कारणविनाही मुक्तजीवकै बंध कल्पना करिए तो मुक्ति होनेका अभाव आवैगा। मुक्त हुवा पाछैं बंधका सद्भाव ठहरैगा अर जो या कहोगे मुक्तजीवकै हू स्थानवान्पणो है तातैं पतन होयगा सो नहीं है। जातैं आस्रवका अभावतैं

पतन नहीं। जिस नावमें जल प्रवेश करैगा सो डूवैगी। मुक्तजीवकै आस्रव नहीं तातैं पतनहू नहीं है। वहुरि जाकै कर्मका बंधकरि भारीपणो है ताका पतन होय है। जैसें भारी जो तालका फल ताकै वृक्षतैं वंधी वींटकै संयोगका अभावतैं पतन देखिए है अर गौरवरहित आकाशका पतन नहीं देखिए है। अर मुक्तजीवकै गौरवता है नाहीं तातैं पतनको अभाव है। अर जिसकै मतमैं स्थानवानपणा ही पतनका कारण है ताकै समस्तपदार्थनिका पतन ठहरैगा। वहुरि कोऊ कहै—सिद्धक्षेत्र तो अल्प है तिसमैं अनंतानंतसिद्ध हैं तातैं परस्पर उपरोध होयगा सो नहीं है। अवगाहनशक्तिका योगतैं जैसैं मूर्तिमान्पदार्थनिमें हू अनेकमणिदीपकादिकनिका प्रकाश अल्पक्षेत्रनिमैंहू परस्पर नहीं रुकै है तो अवगाहनशक्तियुक्त अमूर्तिकमुक्तजीव कैसें परस्पर अवरोध करें। वहुरि मुक्तजीवनिकै अमूर्त्तिकपणातैं ही जन्ममरणक्लेशादिक बाधा नहीं है यातैं बाधारहितपणातैंही अनंतसुखी तिष्ठै हैं। वहुरि आकाशकूं तो परमाणुकरि अवगाह्यक्षेत्रकूं आदि लेय एकएक प्रदेशकी वृद्धिकरि कल्पनारूप आकाशका परिमाणकूं कल्पना किया परंतु मुक्तजीवका ज्ञानकूं उपमा देनेकूं कोऊ पदार्थ नहीं अर सांसारिकसुख है सो हू इंद्रियादिकानिकै आधीन अर वेदनापूर्वक अर अंतसहित है। अर मुक्तजीवनिका सुख स्वाधीन सास्वता वेदनारहित है तातैं मुक्तजीव उपमारहित हैं। वहुरि कोऊ कहै—मुक्तजीवनिकै मूर्त्ति नहीं तातैं आकारको अभाव होयगो सो नहीं है। चरमदेहका जैसा आकार है तैसा आत्मप्रदेशनिका आकार रहै है। फिर कोऊ कहै—जीवकी रचना आकार तो शरीरकै अनुकूल है शरीरका वंधनेमें था तदि शरीरकै आकार था, अव शरीरका अभाव भया, तदि स्वाभाविक लोकाकाशकै प्रदेशनिप्रमाण विस्तारकूं प्राप्त होना योग्य है ताकूं उत्तर कहै है—जो ऐसें नाहीं है। जातें आत्माकै प्रदेशनिका संकोच विस्तारका कारण नामकर्म था नाम

कर्म जैसा शरीरमैं प्रवेश करावै था तैसा संकोचविस्तार था, नामकर्मका अभावतैं दीपकवत् संहार संकोच विसर्पण विस्तार दोऊका अभाव जानना। अब कोऊ कहै—जिस देशमैं कर्मका अभाव होय तिस ही स्थानमैं मुक्तजीवका अवस्थान प्राप्त हुवा चाहिए। जातैं मुक्तजीवकै बंधका अभाव भया अर भारीपणाका अभाव है तातैं अधोगति संभवै नहीं है अर योगनिका अभावतैं तिर्यग्गति नहीं संभवै हैं। तातैं तहांही अवस्थानयुक्त होनै योग्य है। ताकूं उत्तर कहै हैं—जैसैं अनेकदिशामैं गमनके निमित्तका अभाव है तैसैं उर्ध्वगमनके निमित्तका अभाव नहीं है—

तदनंतरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकांतात् ॥ ५ ॥

अर्थ—समस्तकर्मका अभाव भए पीछे जीव उर्द्धगमन करै है सो लोकका अंतपर्यंत जाय है। अब ऊर्ध्वगमनका कारण कहे विना ऊर्ध्वगमन कैसैं निश्चय किया जाय तातैं ऊर्ध्वगमनका हेतु कहै हैं—

पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बंधच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥

अर्थ—पूर्वप्रयोगतैं असंगतैं बंधके छेदतैं तथा गतिपरिणामतैं इन चार हेतुनितैं ऊर्ध्वगमन होय है अब इन चार हेतुनिका दृष्टांतकेअर्थि सूत्र कहै हैं—

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरंडबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥

अर्थ—इहां पूर्वसूत्रमैं कहे हेतु तिनका यथासंख्य दृष्टांत जानना सोही कहै हैं—जैसैं कुंभकारके प्रयोगतैं भया जो हस्तका अर दंडका अर चाकका संयोग तातैं चाकका फिरना होयहै फिर जो कुंभकार फिरावता रहिगया तो हू पूर्वके प्रयोगतैं जहांताईं फिरनेका संस्कार नहींमिटै तहांताईं फिरबोही करै। तैसैंही संसारमैं तिष्ठता जीव हू मुक्तिकी प्राप्तिकेअर्थि वारंवार चिंतवन अभ्यास करै था सो मुक्ति भए पाछैं अभ्यास

नहीं रह्या तोहू पूर्वले संस्कारतें मुक्तिगमन होयहै। वहुरि जैसें तूंवा मृत्तिकाकै लेपतें भारयाहुवा जलमैं डूवि रह्या था मृत्तिकाका लेप दूरि होते ही तूंवा जलकै ऊपरिही आजाय तैसें कर्मके भारकरि दव्या परवश भया आत्मा तिस कर्मके संवंधतें संसारमें नियमतें पड्याहै फिर कर्मका लेप दूरि होय तव ऊर्ध्वही गमन करै है। वहुरि जैसें एरंडका डोडामें तिष्ठता एरंडवीज सो डोडाकूं सूकिकरि फूटतेंही ऊंचा उछलै है तैसें मनुष्यादिभवमें राखनेवाला गतिजात्यादि नामकर्म तथा आयु नाम गोत्रके वंधन टूटतेही आत्मा ऊर्ध्व गमन करै है। वहुरि जैसें तिर्यग्गमन करावनेवाला पवनका अभाव होय तदि दीपककी शिखा ऊर्ध्वही गमन करै है। तैसें नानागतिमें गमन करावनेका कारण कर्मका अभाव होतें आत्माका ऊर्ध्वगमन ही होय है। जैसें अग्निका ऊर्ध्वगमनस्वभाव है तैसें जीवकाहू ऊर्ध्वगमन स्वभाव है। जैसें अग्निशिखा पवनकी प्रेरी तिर्यग्गमन करै अर पवनका अभाव भए ऊर्ध्वगमन करै है तैसें कर्मका प्रेरया जीव चतुर्गतिमैं परिभ्रमण करै है कर्मका अभाव भए ऊर्ध्वगमन करै है। इहां कोऊ पूछै—मुक्ति भए पीछैं आत्माका ऊर्ध्वगमनस्वभावही है तो लोकके अंतमेंही कैसें ठहरया फिर ऊंचाही कोन हेतुतें नहीं जाय। ताका उत्तर कहैहैं—

धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥

अर्थ—मुक्त आत्मा है सो लोकका अंतमें जाय तिष्ठै है परैं अलोकमैं नहीं जायहै। जातें आगैं गति उपकार करनेवाला धर्मास्तिकायका अभाव है। अर धर्मास्तिकायका अभाव समस्तलोकमैंभी मानिए तो लोक अलोकका विभागका अभाव होजाय। आगैं पूछै हैं—मुक्त भए जीव तिनकैं गति जाति आदिक तो कारण नाहीं तातें इन विषै भेदका व्यवहार नाहीं है कि कछु भेदव्यवहार कीजिए। ताका उत्तर कथंचित् भेदभी करिए ताका सूत्र कहै हैं—

क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धिबोधितज्ञानावगाह
नांतरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥



अर्थ—क्षेत्र काल गति लिंग तीर्थ चारित्र प्रत्येकबुद्धबोधित ज्ञान अवगाहना अंतर संख्या अल्पबहुत्व इनि बारह अनुयोगनिकरि सिद्धजीवनिकूं भेदरूप साधने। प्रत्युत्पन्ननय अर भूतप्रज्ञापननय इन दोऊ नयनिकी विवक्षाकरि क्षेत्रादिक बारह अनुयोगनितैं सिद्धनिमैं भेद साधनेयोग्य है तहां क्षेत्रकरि तो कौंन क्षेत्रमैं सिद्ध होयहै—प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षाकरि सिद्धक्षेत्रविषै अथवा अपने आत्मप्रदेशनिविषै सिद्ध होयहै अथवा आकाशके प्रदेशनिविषै सिद्ध होयहैं। भूतप्रज्ञापननयकी अपेक्षाकरि जन्म अपेक्षातैं पनरह कर्मभूमिका जन्म्या जीवहीकै सिद्धगति होयहै। तथा पंद्रह कर्मभूमिमैं जन्म्या मनुष्यकूं कोऊ देव आदि अन्य क्षेत्रमैं लेजाय तो अढाई द्वीपप्रमाण समस्तमनुष्यक्षेत्रतैं सिद्ध होयहैं। इहां प्रत्युत्पन्नग्राहीनय वर्त्तमानपदार्थकूं ग्रहण करै है सो ऐसा नय ऋजूसूत्र है। तथा शब्द समभिरूढ एवंभूतभी याही नयका परिवार है। बहुरि कालकरि कौनसे कालमैं सिद्ध होय—तहां प्रत्युत्पन्नग्राहीनयकी अपेक्षाकरि एकसमयमैं सिद्ध होय हैं। भूतप्रज्ञापननयकी अपेक्षाकरि सामान्यकरि तो उत्सर्पिणी अवसर्पिणी दोऊ कालमैं सिद्ध होय हैं अर विशेषकरि अवसर्पिणीका सुखमदुःखमा जो तीजा काल ताका अंतभागविषै अर दुखमासुखमा जो चौथा काल समस्तके विषै उपज्या अर दुखमसुखमका उपज्या पंचमकालके विषैभी मोक्ष होय हैं। अर दुःखमकालमैं अर दुःखमदुःखमकालमैं उपज्या सिद्धगति नहीं पावै है। अर विदेह क्षेत्रका उपज्या कोइ देवादिक हरि ले जाय सो समस्त उत्सर्पिणीके विषै सिद्ध होय हैं। बहुरि गतिविषै प्रत्युत्पन्नग्राहीनयकी अपेक्षा सिद्धगतिविषैही सिद्ध होय हैं। अर भूतविषयनयकी अपेक्षाकरि मनुष्यगतिहीमैं

सिद्ध होय हैं। बहुरि लिंगकेविषै प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षाकरि वेदरहितही सिद्ध होयहैं। भूतग्राहीनयकी अपेक्षाकरि भाववेद तीनोंहीकरि क्षपकश्रेणी चढि मोक्ष पावै हैं। द्रव्यकरि पुरुषवेदहीतैं सिद्ध होय हैं अथवा निर्ग्रंथलिंगकरिही सिद्धगति होयहैं भूतविषयनयकी अपेक्षा पूर्वै जाकै सग्रंथीपणा था ताहिकै मोक्ष होयहै। बहुरि तीर्थकरि—कोऊ तो तीर्थंकर होय मोक्ष पावै है। अर केई सामान्यकेवली होय मोक्ष पावै है। तिसमैंहू कोऊ तो तीर्थंकर विद्यमान होय तिस समय मोक्ष पावै है। केई तीर्थकरनिकूं नहीं विद्यमान होतें मोक्ष पावै हैं। बहुरि चारित्रविषै प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा तो चारित्रनिका अभावहीकरि सिद्ध होय है। तहां चारित्रका नामही नहीं अर भूतग्राहीनयकी अपेक्षामें अनंतर अपेक्षा तो यथाख्यातचारित्रकरिही मोक्ष पावै हैं। अर अंतरकी अपेक्षा—सामायिक छेदोपस्थापना सूक्ष्मसांपराय यथाख्यातचारित्रकरिही मोक्ष पावै हैं। तथा कोऊकै परिहारविशुद्धि होय तब पांचूहीतें मोक्ष पावै है। बहुरि प्रत्येकबुद्ध तो अपनी शक्तिकरि स्वयमेवही ज्ञान पावै है। अर बोधित कहिए परके उपदेशतैं पावै। तहां केई तो प्रत्येक बुद्ध मोक्ष पावै हैं केई बोधितबुद्ध मोक्ष पावै हैं। बहुरि ज्ञानकरि प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा तो केवलज्ञानकरिही सिद्ध होय हैं। अर भूतग्राहीनयकी अपेक्षा करि—केई तो मति श्रुत इन दोय ज्ञानकरिही केवलज्ञान उपजाय मोक्ष पावै हैं। केई मति श्रुत अवधि मनःपर्यय इन चारोंज्ञानकरि केवल उपजाय मोक्ष पावै हैं। केई मति श्रुत अवधि इन तीन ज्ञानकरि केवल उपजाय मोक्ष पावै हैं। बहुरि अवगाहना उत्कृष्ट पांचसै पचीस धनुष्यकी है। अर जघन्य साढा तीन हस्तप्रमाण कछु घाटि है मध्यकै नानाभेद हैं। इनमैं एकएक अवगाहनातैं मोक्ष पावै हैं। प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा देशोनकही है बहुरि सिद्ध होते जीव अंतरकरिभी सिद्ध होय अर अंतररहितभी सिद्ध होय हैं। तहां जो सिद्ध होय हैं तिनकै अनंतर जघन्य तो

दो समय है। अर उत्कृष्ट अष्टसमयपर्यंत निरंतर सिद्ध होय हैं। बहुरि अंतर जघन्य तो एकसमय है अर उत्कृष्ट छह महिना है। बहुरि संख्या जघन्यकरि तो एकसमयम एकही सिद्धगति पावै है। अर उत्कृष्ट एकसमयमै एकसौ आठ जीव मोक्ष पावैं हैं। बहुरि क्षेत्र आदिकएकादशकरि आभिन्नाकै परस्पर भेदतैं संख्याकी विशेषतातैं अल्पबहुत्व कहिए हैं तहां प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा सिद्धक्षेत्रविषैही सिद्ध होय हैं। याकै अल्पबहुत्व नाहीं हैं। बहुरि भूतग्राहीनयकी अपेक्षा सिद्धक्षेत्र दोय प्रकार हैं। जन्मतैं अर संहरणतैं तिनमैं संहरणसिद्धअल्प हैं। इनतैं संख्यातगुणे जन्मसिद्ध हैं। बहुरि क्षेत्रनिका विभागतैं ऊर्ध्वलोकतैं। भए सिद्ध अल्प हैं। तिनतैं असंख्यातगुणा अधोलोकतैं भए सिद्ध हैं। तिनतैं असंख्यातगुणा तिर्यग्लोकतैं भए सिद्ध हैं। कोऊकहै ऊर्ध्वलोकतैं अर अधोलोकतैं भए सिद्ध कैसैं हैं—ताका उत्तर—जो आगमकी आज्ञा-विना अपनी रुचिसैं तो कहि करि कौन संसारमैं डूबै? विशेष जाणेविना कह्या जाय नाहीं सामान्य आगममैं लिख्या सो प्रमाण है? सोही लिखदिया है। बहुरि सर्वतैं थोरे समुद्रतैं भए सिद्ध हैं। तिनतैं संख्यातगुणा द्वीपतैं सिद्ध भए हैं। ऐसैं तो सामान्य कह्या।

इनका विशेष—सबतैं थोरैं लवणसमुद्रतैं भए समुद्रतैं सिद्ध हैं। तिनतैं संख्यातगुणा कालोदधिसमुद्रतैं भए सिद्ध हैं। तिनतैं संख्यातगुणा जंबूद्वीपतैं भए तिनतैं संख्यातगुणा धातकी द्वीपतैं भए सिद्ध हैं। तिनतैं असंख्यातगुणा पुष्करार्द्धतैं भए सिद्ध हैं। ऐसैं क्षेत्रका विभागतैं अल्पबहुत्व जानना। बहुरि कालका विभागतैं उत्सर्पिणीकालतैं सिद्ध भए, तिनतैं अवसर्पिणीकालमैं भए सिद्ध विशेषकरि अधिक हैं। बहुरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणीकाल विना जे सिद्ध भए ते तिनतैं संख्यातगुणा हैं। जातैं विदेहक्षेत्रनिमैं उत्सर्पिणी अवसर्पिणी दोऊ काल नहीं प्रवर्त्तै हैं। बहुरि प्रत्युत्पन्नयनकी अपेक्षाकरि एकसमयमैं सिद्ध होय हैं यातैं

अल्पवहुत्व नाहीं है। गतिविषै प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा तो अल्पवहुत्व नाहीं। वहुरि एकगतिका अंतर अपेक्षाकरि तिर्यंचगतिके आये मनुष्य सिद्ध भए ते तो समस्ततैं अल्प हैं। तिनतैं संख्यातगुणे मनुष्यगतितैं मनुष्य होय सिद्ध होय हैं। तिनतैं संख्यातगुणा नरकगतितैं आए मनुष्य होय सिद्ध होय हैं। तिनतैं संख्यातगुणा देवगतितैं आए मनुष्य होय सिद्ध होय हैं। वहुरि वेदका अनुयोगकरि प्रत्युत्पन्ननयकरि तो वेदरहित सिद्ध होय हैं तहां अल्पवहुत्व नाहीं। भूतनयकीअपेक्षासर्वतैं अल्प तो नपुंसकलिंगतैं श्रेणी चढि सिद्ध होय हैं तिनतैं असंख्यातगुणा स्त्रीवेदमैं श्रेणी चढि सिद्ध होय हैं तिनतैं संख्यातगुणा पुरुष वेदतैं श्रेणी चढि सिद्ध भए हैं। वहुरि तीर्थंकर होय सिद्ध भए अल्प हैं। तिनतैं संख्यातगुणा सामान्यकेवली होय सिद्ध भए हैं। वहुरि चारित्रकरि प्रत्युत्पन्ननयकीअपेक्षा चारित्रविनाही सिद्ध भए तहां अल्पवहुत्व नाहीं अर भूतनयकी अपेक्षा अनंतरचारित्र यथाख्यातहीतैं सिद्ध होय हैं तहांभी अल्पवहुत्व नाहीं है। वहुरि अंतरसहित चारित्रअपेक्षा पंचचारित्रतैं सिद्ध भए अल्प हैं तिनतैं संख्यातगुणा चारित्रतैं भए हैं। वहुरि प्रत्येकवुद्धनितैं संख्यातगुणे वोधितवुद्ध भए सिद्ध हैं। वहुरि ज्ञानकरि प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा तो केवलज्ञानहीतैं सिद्ध होय हैं। तिनमैं अल्पवहुत्व नाहीं। भूतनयकी अपेक्षाकरि दोय ज्ञानतैं सिद्ध भए अल्प हैं। तातैं संख्यातगुणा च्यार ज्ञानतैं भए सिद्ध हैं। तिनतैं असंख्यातगुणा तीन ज्ञानतैं भए सिद्ध हैं। वहुरि अवगाहनाकरि जघन्य अवगाहनातैं सिद्ध भए थोरे हैं। तिनतैं संख्यातगुणा उत्कृष्ट अवगाहनातैं भए सिद्ध हैं। तिनतैं संख्यातगुणे मध्यम अवगाहनातैं भए सिद्ध हैं। वहुरि संख्याविषै एकसमयमैं उत्कृष्ट पणैं एकसो आठ सिद्ध होय हैं ते तो अल्प हैं। तिनतैं अनंतगुणा पचासतांईकी संख्यात भए सिद्ध हैं तिनतैं असंख्यातगुणा

गुणचासतैं लगाय पचीसतांईकी संख्यात एकसमयमैं भए सिद्ध हैं । तिनतैं संख्यातगुणे चोईसतैं लगाय एकपर्यंत संख्यातैं एकसमयमैं भए सिद्ध हैं। ऐसै निसर्ग अर अधिगमविषै कोऊ एकतैं उपज्या तत्त्वार्थनिका श्रद्धान है स्वरूप जाका अर शंकादि अतिचाररहित है अर प्रशम संवेग अनुकंपा आस्तिक्य है प्रगट लक्षण जाका ऐसा निर्मलसम्यग्दर्शन अर सम्यग्दर्शनकी उपलब्धितैंही विशुद्ध हुवा सम्यग्ज्ञानकूं प्राप्त होय करिकै अर नामादिक च्यार निक्षेप अर प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण अर निर्देशादिक अर सत्संख्यादिक जे बडे उपाय तिनकरि जीवनिके पारिणामिक औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक क्षायिक भावनिका स्वरूप है ताहि जाणि करिकैं, बहुरि चेतनके भोगके साधनेरूप जे विषय तिनकी उत्पत्ति विनाश स्वभावके ज्ञान होनेतैं विषयनिमैं विरक्त होय अर वांछारहित होय तीनगुप्ति पंच समितिरूप हुवो दशलक्षण धर्मके आचरणतैं अर धर्मके फलका दर्शनतैं निर्वाणकी प्राप्तिमैं यत्नकेअर्थि वृद्धितैं प्राप्त हुवा है श्रद्धान अर संवेग जाकै अर भावनाकरि प्रगट किया है स्वरूप जानैं ऐसा अर अनुप्रेक्षाकरि स्थिर किया है अभिप्राय जानैं ऐसा अर संवररूप है आत्मा जाका ऐसा हुवा संता आस्रवरहितपणातैं दूरि भया है नवीनकर्मका संचय जाकै ऐसा बहुरि परिग्रहके जीतनेतैं अर बाह्य अभ्यंतर तपके आचरणतैं अर अनुभव करनेतैं सम्यग्दर्शनके धारक विरताविरतकूं आदि लेय सयोगीजिन पर्यंतनिकै परिणमनरूप अध्यवसाय कहिए परिणाम तिनका विशुद्धताके स्थानांतरकै असंख्यातका गुणाकार किया आधिकताकरिकै पूर्वले संचय किए कर्मनिकूं निर्जरा करता संता ऐसा, बहुरि सामायिकचारित्रकूं आदिलेय सूक्ष्मसांपरायपर्यंत कषायनिके विशुद्धिस्थाननिका उत्तरोत्तर उत्कृष्टपणाका अवलंबनतैं अर पुलाकादिक निर्ग्रंथनिका संयमके अनुपालनके विशुद्धताके स्थानविशेषनिकी उ-

त्तरोत्तर उत्कृष्टताकी प्राप्तिकरि रच्यो अर अत्यंत नष्ट हुवो है आर्त्त रौद्र ध्यान जामैं अर धर्मध्यानके प्रभावतैं प्राप्त भया है समाधिबल जाकै, अर शुक्लध्यानके विकल्प जे पृथक्त्ववितर्कविचार अर एकत्ववितर्कविचार इन दोउ ध्याननिके मध्य किसी एक ध्यानमैं वर्त्तती ऐसो, अर नानाप्रकारकी पूर्वोदित शुद्धिनिके विशेषकरि युक्त ऐसो, अर तिन शुद्धिनिमैं नहीं आसक्त है चित्त जाका ऐसा कोऊ महान् साधु है सो पूर्वे कह्या क्रमकरि मोहादिक च्यार घातिया कर्मनिका नाशकरि सर्वज्ञपणाकी ज्ञानलक्ष्मीकूं अनुभव करि अरहंतपणा पाय पाछैं शेष अघातिकर्मनिका नाशतैं भवबंधरहित हुवा जैसैं उपादानकारण ईंधनका अभाव जाकै होयगा ऐसा अग्निकीज्यों पूर्वै ग्रहणकीया भव ताका वियोगतैं अर कारणके अभावतैं नवीन शरीरका नहीं प्रगट होनेतैं संसारका दुःखको उलंघनतैं अंतरहित एकांतिक निरुपम निरतिशय ऐसा निर्वाणका सुखकूं प्राप्त होय है। इस प्रकार तत्त्वार्थभावनाको यो फल है सो तत्त्वार्थसूत्रके ज्ञाता वक्ता श्रोता भव्यजीवनिकूं प्राप्त होहू।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अर्थ—ऐसैं तत्त्वार्थका है अधिगम जातैं ऐसा जो दशअध्यायरूप मोक्षशास्त्र तिसविषै दशम अध्याय समाप्त भया।

दोहा।

है जातैं तत्त्वार्थका, अधिगम सबसुखदाय। मोक्षशास्त्र मंगलमयी, नमूं दशम अध्याय ॥ १० ॥

ऐसैं अर्थप्रकाशिकानाम देशभाषामय वचनिका श्रीराजवार्तिक नाम ग्रंथका अल्पलेश लेय अपना उपयोगकी विशुद्धिताके अर्थि तथा संस्कृतके बोधरहित अल्पज्ञनिके तत्त्वार्थसूत्रनिके अर्थ समझनेकेअर्थि अपनी बुद्धिकी अनुसार लिखी है परंतु राजवार्तिकका अर्थ तथा कहूंकहूं गोमटसार त्रिलोकसारका अर्थकूं लेय लिख्या है। अपनी बुद्धिकी कल्पनातैं इस ग्रंथमैं एक अक्षरहू नहीं लिख्या है जाकै पापका भय होयगा अर जिनेंद्रकी आज्ञाका धारणेवाला होयगा सो जिनेंद्रके आगमकी आज्ञाविना एक अक्षर स्मरणगोचर नहीं करैगा लिखना तो बणैंही कैसैं? अर जे सूत्रकी आज्ञा छांडि अपने मनकी युक्तितैंही अपने अभिमान पुष्ट करनेकूं योग्य अयोग्य कल्पनाकरि लिखैं हैं ते मिथ्यादृष्टी सूत्रद्रोही अनंतसंसारपरिभ्रमण करैंगे।

इस तत्त्वार्थसूत्रके दश अध्याय ऊपरि समंतभद्रस्वामी चौरासी हजार श्लोकनिमैं गंधहस्तिनाम महाभाष्य रचा है अर च्यार हजार श्लोकनिमैं सर्वार्थसिद्धिनाम टीका श्रीपूज्यपादस्वामी रची है। अर सोलह हजार श्लोकनिमैं राजवार्तिक नाम भाष्य श्रीअकलंकदेव रचा है अर वीस हजार श्लोकनिमैं श्लोकवार्तिक नाम भाष्य श्रीविद्यानंदस्वामी रचा है अर इस दशाध्यायसूत्रकी आदिका एक श्लोककी व्याख्याही आठ हजार अष्ट सहस्री अर तीन हजार आप्तपरीक्षा ए दोऊ ग्रंथ तथा अन्यभी वडेवडे ग्रंथ विद्यानंदस्वामी रचे हैं। आप्तका सत्यार्थस्वरूपकी दृढता कराई है। एकांत अभिप्रायकूं निकाशि दिया है। जिनके हृदयमैं ए ग्रंथ प्रवेश कीए तिनकै मिथ्याश्रद्धान जन्मांतरहूमैं प्रगट नहीं होय है। इसकी महिमा वचनद्वारा कहनेकूं कौंन समर्थ है। इस कलिकालमैं ए ग्रंथही साक्षात् केवलीतुल्य हैं। श्रीकुंदकुंदस्वामी करि विरचित समयसार प्रवचनसार पंचास्तिकाय नाटकत्रय तिनऊपरि श्रीअमृतचंद्रसूरि टीका रचीहै।

सो ऐसे ग्रंथ ऐसी टीकाकी रचना इस कालमें ओर है नहीं श्रुतकेवलीतुल्य ज्यांकी व्याख्या है। अर अष्टपाहुड नियमसार इत्यादिक अनेकग्रंथनिकी रचनाकरि धर्मका स्तंभ कीया है बहुरि श्रीनेमिचंद्र सैद्धांतिक गोमटसार लब्धिसार क्षपणासार त्रिलोकसार द्रव्यसंग्रहादिक अनेक रचना जिनसूत्रनितैं रची है जिन उपरि अभयनंदीसिध्दांती तथा केशववर्णी टीका रची तथा त्रिलोकसारउपरि माधवचंद्र त्रैविद्यदेव रचना रची है। श्रीवट्टकेरस्वामी मूलाचार रच्या, श्रीवीरनंदी आचारसार रच्या, श्रीपूज्यपादस्वामी जैनेंद्रव्याकरण रच्या, श्रीजिनसेन गुणभद्रादि महापुराण रच्या शिवाचार्य भगवतीआराधना रची, तथा श्रीप्रभाचंद्रमुनि अकलंकदेवकृत लघुत्रयी बृहत्त्रयीचूलिका इन सप्तग्रंथनिका सारभूत लेय कुमुदचंद्रोदय नाम महाप्रभाविक अनेकांतमय ग्रंथ रच्या तथा परीक्षामुख प्रमेयकमलमार्तंड, प्रमेयचंद्रिका, प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणनिर्णय, प्रमाणमीमांसा, पत्रपरीक्षादि अनेक ग्रंथ जीवनिका उपकारके निमित्त अनेक आचार्य रचना करि इस अनादिके धर्मकी इस कलिकालमें रक्षा करी है। जातैं इस कालमैं बुध्दिवीर्य आयु अत्यंत घटता जायहै तातैं पूर्वाचार्यनिकरि प्ररूपे महान् ग्रंथ तिनमें प्रवेश अति दुर्धर जानि इन ग्रंथनिमें महान् ग्रंथांमें प्रवेश होना जानि वडा उपकार कीया है। अब इन ग्रंथनिके समझनेवालेहू विरले रहिगये तातें धर्मकी प्रवृत्तिके निमित्त भाषावचनिका रचना बनी है। अब स्यादवादविद्याके पारगामी वीतरागी परमहितोपदेशके दयारूप अमृतरसकरि भीजे ऐसे निर्ग्रंथगुरुनिकूं अर उनके प्ररूपे ग्रंथनिकूं हमारा मन वचन कायकरि वारंवार सदाकाल आगामीकालमें वर्त्तमानमें वहुत विनयसंयुक्त नमस्कार होहु। इनके चरणारविंदके प्रसादतें हमारे हृदयविषें निरंतर पंच परमगुरुनिकी भक्ति होहु। हमारे समाधिमरण होहु। अपमृत्युका विनाश होऊ, जिनभक्तिविना पर्यायका एक क्षणहू मतिजाहु।

अथ ग्रंथप्रशस्ति ।

दोहा ।

नाम जु अर्थप्रकाशिका, देशवचनिका रूप । पढो पढावो ज्ञान बढि, पावो सुख निजरूप ॥ १ ॥
संवत् उगणीसै अधिक, द्वादश श्रावणमास । बादि नवमी शशिबार है, आरंभदिन उज्जास ॥ २ ॥
संवत् उगणीसै अधिक, चोदह आदितवार । सुदि दसमी वैसाखकी, पूरण किया विचार ॥ ३ ॥
उमास्वामि मुनि सूत्र धर, बंदौं शिवदातार । पूज्यपादगुरुकों नमों, शब्दब्रह्म आधार ॥ ४ ॥
अनेकांतआकाशमैं, दिपै जु सूरसमान । समँतभद्रस्वामीचिरन, नमत नसत अज्ञान ॥ ५ ॥
श्रीअकलंक कलंकहर, विद्यानंदि महान । बंदौं मनवचकायतैं, द्यो मम सम्यग्ज्ञान ॥ ६ ॥
पंचमकालकरालमैं, मोहतिमिर नहिं थाह । गुरुदीपकविन को गहै, अनेकांतपथराह ॥ ७ ॥

चौपई ।

बंदौं उमास्वामिमुनिराज । तत्त्वारथगर्भित वचकाज ॥ सूत्र मोक्षमारगके रचे । द्वादशांग आगमतैं जचे ॥८॥ भाष्यरचित्ता श्रीअकलंक । राजवार्त्तिक नाम निशंक ॥ मिथ्यामतखंडनकूं शूर । अनेकांतमय गुणकरि पूर ॥९॥ ताकी महिमाको कहि सकै । कोटि जीभ बरनत बल थकै ॥ जाकूं पढत जु सम्यकज्ञान । प्राप्त होय पावै शिवथान ॥१०॥ ताको किंचित अर्थ जु लेय । अर्थप्रकाशिका नाम धरेय ॥ भाषा देशवचनिका करी । भूलि सोधि बुध करियो खरी ॥११॥ मोक्षमार्ग प्रापक परिपूर । कर्मकठिननगभेदन शूर ॥ सकलतत्त्वके जाननहार । तद्गुणहेतु नमूं हितकार ॥१२॥ पूरवमैं गंगातट धाम । अतिसुंदर 'आरा' तिस नाम ॥ तामैं जिनचैतालय लसै । अग्रवाल जैनी बहु बसै ॥१३॥ बहुज्ञाता तिनमैं जु रहाय । नाम तास परमेष्ठिसहाय ॥ जैनग्रंथमैं रुचि बहु करै । मिथ्याधरम न चितमैं धरै ॥१४॥

दोहा।

सो तत्त्वार्थसूत्रकी, रची वचनिका सार। नाम जु अर्थप्रकाशिका, गिणती पांच हजार ॥१५॥
सो भेजी जयपुरविषै, नाम सदासुख जास। सो पूरण ग्यारह सहस, करि भेजी तिनपास ॥१६॥

छप्पै।

ढेडराजके वंसमाहि इक किंचित ज्ञाता। दुलीचंदका पुत्र कासलीवाल विख्याता॥ नाम सदासुख कहै आतमसुखका वहु इच्छक। सो जिन वानिप्रसाद विषयतैं भए निरिच्छक। इम जानि वानि सेवन करो, जगउपकार जु करनकी। इस भव परभव होहू मुझ, सरन जु सम्यकज्ञानकी ॥१७॥

सवैया।

अगरवालकुल श्रावक कीरतिचंद जु आरेमांहि सुवास। परमेष्ठीसहाय तिनके सुत पितानिकट करि शास्त्रअभ्यास। कियो ग्रंथनिजपरहित कारण लखि वहुरुचि जगमोहनदास। तत्त्वारथअधिगम सु सदासुखरास चहूं दिश अर्थप्रकाश ॥१८॥

दोहा।

वरतो भव्यनि उरविषै, स्यादवाद उजास। यातैं निजपरतत्त्व लखि, होय जु अर्थप्रकाश ॥१९॥

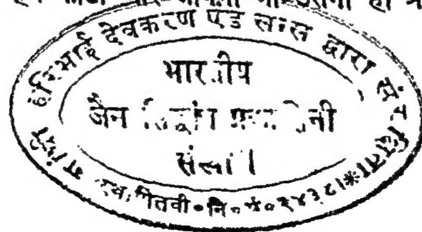


इति श्रीतत्त्वार्थसूत्रकी अर्थप्रकाशिका नाम वचनिका समाप्ता॥ १ ॥

# आवश्यकीय सूचना।

इस वर्ष **श्रीभारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनीसंस्थाके** दानवीर श्रेष्ठिवर्य—गांधी हरिभाई देवकरण एंड सन्स अर्थात् शोलापुर निवासी श्रेष्ठिवर्य श्री रामचंद्रजीके सुपुत्र श्रीयुत **बालचंद्रजी, हीराचंदजी फूलचंदजी गांधी** पांचहजार रुपये देकर **परमसंस्थापक व संरक्षक** होगये हैं और दशहजार रुपये लगाकर **गांधी हरिभाईदेवकरणजैनग्रंथमाला** नामकी एक तीसरी ग्रंथमाला प्रकाशित करनेकी आज्ञा दी है। जिसके द्वारा संस्कृत, प्राकृत, भाषा व भाषाटीका सहित सबही प्रकारके ग्रंथोंका उद्धार होता रहैगा। इस वर्ष आपने तीन ग्रंथ प्रकाशित करनेकी आज्ञा प्रदान की है जिनमेंसे प्रथम ग्रंथ तौ यह **अर्थप्रकाशिकाभाषा टीका** आपके सामनेही है दूसरा ग्रंथ श्रीजिनसेनाचार्यविरचित **हरिवंशपुराणजीका नवीन** सरल भाषानुवाद और तीसरा—१२००० श्लोक मय **मूल हरिवंशपुराणजी** बड़ी शीघ्रतासे छप रहे हैं दीवालीतक पूर्ण होकर सबके दृष्टि गोचर होंगे। ये सबही ग्रंथ १००) रु० देकर संस्थाके **स्थायीसभासद** बननेवालोंको एक एक प्रति विना मूल्य और पक्के ग्राहकोंको लागतके मूल्यसे देते रहनेका आर्डर दिया है। इसकारण अबसे संस्थाकी—**सनातनजैनग्रंथमाला** व **चुन्नीलालजैनग्रंथमालामें** छपे हुये ग्रंथ भी इसी नियमानुसार पक्के ग्राहकों को लागतके मूल्यसे दिये जांयगे। सो जिन महाशयोंको ये सबही महान् ग्रंथ विनामूल्य संग्रह करके अपने यहांकी आलमारियां भरना हों, वे तो एकमुष्टि १००) रुपये भेजकर इस संस्थाके **स्थायीसभासद** बन जावें और जिनको लागतके मूल्यसे सब ग्रंथ संग्रह करने हों, वे १) रुपया रजिष्टरमें नाम लिखवानेकी फीस भेज कर **पक्के ग्राहक** बन जावें। इसके अतिरिक्त—

जो महाशय शास्त्रदान करनेकी इच्छा रखते हों, वे २५-५०-१००-२०० जितनी प्रति जिस ग्रंथकी लेना चाहें उनको भी दान देने के लिये सब ग्रंथ लागतके मूल्यसे दिये जांयगे—यदि कोई—शास्त्रदानी महाशय किसी ग्रंथमें अपना नाम छपाना चाहें तौ छपनेसे पहिले जितनी प्रति लेना चाहें उतनी प्रतियोंके लागतके रुपये पेशगी भेज देवें तथा जो महाशय अपना फोटो व किसीके स्मरणार्थ एक दो पृष्ट जीवनी छपवाना चाहें तौ कमसे कम एक ग्रंथकी दो सौ प्रति लेनेसे हम फोटो और जीवनी भी उतनी ही प्रतियोंमें लगा देंगे।




जैनसमाजका दास
**श्रीश्रीलालजैन काव्यतीर्थ**
**मंत्री-भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था**
नं० ९, विश्वकोषलेन, बाघबाजार,
कलकत्ता।



अर्थप्रकाशिका समाप्ता ।